भारतीय
फिल्म
वार्षिकी
93

भारतीय फिल्म वार्षिकी १९९३

□ वर्ष : दो
□ अंक : दो

• नियामक
□ अंशु वैश्य
□ आर.के. कश्यप

• सम्पादक
□ श्रीराम ताम्रकर

• कार्यकारी सम्पादक
□ श्रीराम तिवारी

• सहायक सम्पादक
□ सुनील मिश्र

• आवरण : पारदर्शी जलरंग
□ प्रभु जोशी

मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम मर्यादित
संस्कृति विभाग भवन, बाणगंगा, भोपाल (म.प्र.)
फोन : ५५५२१२

• प्रकाशक :

□ **आर.के. कश्यप**

प्रबंध संचालक

म.प्र. फिल्म विकास निगम मर्या. भोपाल

• मुद्रक

□ **नईदुनिया पब्लिकेशन्स प्रा. लि.**

२, इन्दिरा प्रेस कॉम्प्लेक्स, महाराणा प्रताप नगर

भोपाल (म.प्र.) फोन : ५५०९००

□ **प्रथम संस्करण : १९९३**

• मूल्य

□ ४० रुपए

□ १०० रुपए (सजिल्द)

भारतीय फिल्म वार्षिकी के इस अंक में प्रकाशित लेखकों/समीक्षकों/फिल्मकारों के विचार निजी हैं। उनसे प्रकाशक-सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है।

• **सौजन्य और आभार : (चित्र तथा सामग्री)**

* राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय (पुणे) * भारतीय फिल्म समारोह निदेशालय (नई दिल्ली)
* सिनेमा विजन * स्क्रीन * फिल्म फेअर * माधुरी * साप्ताहिक हिंदुस्तान
* मनमोहन चड्ढा (भारतीय सिनेमा का इतिहास) * धर्मयुग * फिल्म इंडिया
* टी.एम. रामचन्द्रन (सेवंटी फाइव इयर्स ऑफ सिनेमा) * फिरोज रंगूनवाला (बम्बई)
* अभय छजलानी (नई दुनिया, इन्दौर) * सिनेमा इन इंडिया * बद्रीप्रसाद जोशी (बम्बई)
* प्रीतम मेंघाणी (उल्लासनगर) * शशिकांत किणीकर (पुणे) * पी.के. नायर (पुणे)
* इंडियन फिल्म (एरिक बार्नो-कृष्णा स्वामी) * फिल्म इन्फरमेशन * स्क्रीन एण्ड ट्रेड इन्फरमेशन
* फिल्म कल्चर (इन्दौर)

सिनेमा शताब्दी की आहट ...

विश्व सिनेमा *अपनी शताब्दी के द्वार पर सतत दस्तक दे रहा है। दिसम्बर १९९५ से विश्व के विभिन्न देशों में सिनेमा के जादुई आविष्कार की शताब्दी को लेकर इन्द्रधनुषी कार्यक्रमों की श्रृंखलाओं का सिलसिला आरम्भ हो जाएगा। दुनिया भर के तमाम फिल्म निर्माण केन्द्रों पर स्थित फिल्म संस्थाओं और फिल्म अभिलेखागारों ने इस आशय की तैयारियाँ आरम्भ कर दी हैं कि 'सिनेमा के सौ साल' के कार्यक्रमों का स्वरूप क्या हो! इस वार्षिकी में भी हमने इस सवाल को उठाया है, जिस पर देशव्यापी बहस की आवश्यकता है।*

पिछले एक दशक में विश्व धरातल पर 'इलेक्ट्रानिक-मीडिया' ने अपने व्यापक पंख पसारे हैं। राज्य तथा राष्ट्रों की सीमाएँ इस हवाई सांस्कृतिक हमले से बेमानी हो गई है। एक नई 'कल्चरल-इंडस्ट्री' तेजी से उभर कर हमारे सामने वामन से विराट आकार में उपस्थित हो गई है। निश्चित ही इससे सांस्कृतिक-प्रदूषण और अप-संस्कृति के अनेक खतरे भी खड़े हो गए हैं। बीसवीं सदी की सर्वश्रेष्ठ कला के रूप में स्थापित एवं प्रचारित सिनेमा बड़े परदे से उतरकर छोटे परदे पर भी अपना प्रभुत्व कायम करने में कामयाब हो गया है। एशिया और यूरोप के आकाश में हवा में जो परछाइयाँ छोड़ी जा रही है, उनमें सिनेमा का प्रतिशत अधिक है।

सिनेमा की इस अहम् तथा महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकारते हुए उसके बारे में शोध/अध्ययन/गम्भीर मनन-चिंतन की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। आज भी निर्विवाद रूप से यह सत्य है कि 'मुद्रित-शब्द' की महिमा/गरिमा/गम्भीरता और प्रतिष्ठा हँसती-बोलती परछाइयों से अधिक है। 'मुद्रित-शब्द' सोच तथा विचार के धरातल पर जिस प्रकार से व्यक्ति/दर्शक को आन्दोलित कर उत्तेजना और उष्मा देता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह बात जोर देकर हम इसलिए कह रहे हैं कि भारतीय दर्शकों के लिए पिछले अस्सी सालों में हम हजारों फिल्में परोस चुके हैं। अब दर्शक को मानसिक-धरातल पर ऐसी सामग्री प्रदान करना है, जो उसे सिनेमा के समझदार और शोध-विद्यार्थी की तरह तैयार कर सके।

पिछले वर्षों से मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम ने हिन्दी सिनेमा के भारतीय पाठकों/दर्शकों के लिए सिनेमाई विषयों पर गम्भीर एवं सन्दर्भ साहित्य के सृजन एवं प्रस्तुति का एक विनम्र प्रयास किया है। निगम की पत्रिका 'पटकथा' आज 'फिल्म-सर्कल' में एक पहचाना और प्रतिष्ठित नाम है। सत्यजीत राय, श्याम बेनेगल, राजकपूर, बिमलराय, अशोक कुमार पर एकाग्र पुस्तकों के अलावा वर्ष १९९२ से भारतीय फिल्म वार्षिकी का प्रकाशन भी हाथ में लिया है। सिनेमा के शोधकर्ताओं और फिल्मों पर निरंतर लेखन कर्म में संलग्न समीक्षकों/पत्रकारों के लिए इसकी उपादेयता सन्दर्भ-ग्रंथ के रूप में बने ऐसी हमारी कोशिश रही है।

भारतीय फिल्म वार्षिकी के इस द्वितीय अंक (१९९३) में हमने आवरण चित्र सहित आवरण कथाओं के माध्यम से 'फर्स्ट लेडी ऑव इण्डियन स्क्रीन' देविकारानी, उनकी प्रकाश स्तम्भ जैसी संस्था बॉम्बे टॉकीज और उसके आधार स्तम्भों के बारे में सामग्री संयोजित की है। देविकारानी आज हमारे बीच मौजूद हैं और भारतीय सिनेमा की उम्र के बराबर उनकी उम्र और ऊँचाइयाँ हैं। इसके अलावा 'मूक-युग' पर एक 'फोकस' करते हुए इस कम ज्ञात 'युग' की जानकारियों और व्यक्तियों के बारे में हिन्दी में पहली बार इतनी विस्तृत सामग्री एक स्थान पर उपलब्ध कराई है। वर्ष १९९२ की अधिकृत फिल्मोग्राफी/राष्ट्रीय पुरस्कार/फिल्मफेअर, सण्डे आब्जर्वर, लता मंगेशकर अवार्ड के अलावा फिल्म समारोहों पर रोशनी डाली गई है। १९९२ में भारतीय भाषाओं में बनी फिल्मों का भाषावार विश्लेषण भी है। एक विशेष खण्ड उन प्रकाशनों पर है, जो सिनेमा के बारे में पिछले चार दशकों से अपने-अपने क्षेत्रों में प्रकाशित हुए हैं। फिल्म प्रकाशनों की सूचीकरण का यह पहला प्रयास है, जो निश्चित ही फिल्म के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी होगा।

भारतीय फिल्म वार्षिकी जिन उद्देश्यों को सामने रखकर प्रस्तुत की जा रही है, हम चाहते हैं उसका प्रकाशन सार्थक बने। इस प्रयास को और परिपूर्ण बनाने के लिए हम अपने सुधि पाठकों, स्नेहीजनों और शुभचिंतकों के सुझाव आमंत्रित करते हैं।

१८ मार्च १९९३

□ **आर.के.कश्यप**
प्रबंध संचालक

• प्रकाशक :

□ **आर.के. कश्यप**

प्रबंध संचालक
म.प्र. फिल्म विकास निगम मर्या. भोपाल

• मुद्रक

□ **नईदुनिया पब्लिकेशन्स प्रा. लि.**
२, इन्दिरा प्रेस कॉम्प्लेक्स, महाराणा प्रताप नगर
भोपाल (म.प्र.) फोन : ५५०९००

□ **प्रथम संस्करण : १९९३**

• मूल्य

□ ४० रुपए

□ १०० रुपए (सजिल्द)

• **सौजन्य और आभार : (चित्र तथा सामग्री)**

* राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय (पुणे) * भारतीय फिल्म समारोह निदेशालय (नई दिल्ली)
* सिनेमा विजन * स्क्रीन * फिल्म फेअर * माधुरी * साप्ताहिक हिंदुस्तान
* मनमोहन चड्ढा (भारतीय सिनेमा का इतिहास) * धर्मयुग * फिल्म इंडिया
* टी.एम. रामचन्द्रन (सेवंटी फाइव इयर्स ऑफ सिनेमा) * फिरोज रंगूनवाला (बम्बई)
* अभय छजलानी (नई दुनिया, इन्दौर) * सिनेमा इन इंडिया * बद्रीप्रसाद जोशी (बम्बई)
* प्रीतम मेंघाणी (उल्लासनगर) * शशिकांत किणीकर (पुणे) * पी.के. नायर (पुणे)
* इंडियन फिल्म (एरिक बार्नो-कृष्णा स्वामी) * फिल्म इन्फरमेशन * स्क्रीन एण्ड ट्रेड इन्फरमेशन
* फिल्म कल्चर (इन्दौर)

सिनेमा शताब्दी की आहट ...

विश्व सिनेमा *अपनी शताब्दी के द्वार पर सतत दस्तक दे रहा है। दिसम्बर १९९५ से विश्व के विभिन्न देशों में सिनेमा के जादुई आविष्कार की शताब्दी को लेकर इन्द्रधनुषी कार्यक्रमों की श्रृंखलाओं का सिलसिला आरम्भ हो जाएगा। दुनिया भर के तमाम फिल्म निर्माण केन्द्रों पर स्थित फिल्म संस्थाओं और फिल्म अभिलेखागारों ने इस आशय की तैयारियाँ आरम्भ कर दी हैं कि 'सिनेमा के सौ साल' के कार्यक्रमों का स्वरूप क्या हो! इस वार्षिकी में भी हमने इस सवाल को उठाया है, जिस पर देशव्यापी बहस की आवश्यकता है।*

पिछले एक दशक में विश्व धरातल पर 'इलेक्ट्रानिक-मीडिया' ने अपने व्यापक पंख पसारे हैं। राज्य तथा राष्ट्रों की सीमाएँ इस हवाई सांस्कृतिक हमले से बेमानी हो गई है। एक नई 'कल्चरल-इंडस्ट्री' तेजी से उभर कर हमारे सामने वामन से विराट आकार में उपस्थित हो गई है। निश्चित ही इससे सांस्कृतिक-प्रदूषण और अप-संस्कृति के अनेक खतरे भी खड़े हो गए हैं। बीसवीं सदी की सर्वश्रेष्ठ कला के रूप में स्थापित एवं प्रचारित सिनेमा बड़े परदे से उतरकर छोटे परदे पर भी अपना प्रभुत्व कायम करने में कामयाब हो गया है। एशिया और यूरोप के आकाश में हवा में जो परछाइयाँ छोड़ी जा रही है, उनमें सिनेमा का प्रतिशत अधिक है।

सिनेमा की इस अहम् तथा महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकारते हुए उसके बारे में शोध/अध्ययन/गम्भीर मनन-चिंतन की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। आज भी निर्विवाद रूप से यह सत्य है कि 'मुद्रित-शब्द' की महिमा/गरिमा/गम्भीरता और प्रतिष्ठा हँसती-बोलती परछाइयों से अधिक है। 'मुद्रित-शब्द' सोच तथा विचार के धरातल पर जिस प्रकार से व्यक्ति/दर्शक को आन्दोलित कर उत्तेजना और उष्मा देता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह बात जोर देकर हम इसलिए कह रहे हैं कि भारतीय दर्शकों के लिए पिछले अस्सी सालों में हम हजारों फिल्में परोस चुके हैं। अब दर्शक को मानसिक-धरातल पर ऐसी सामग्री प्रदान करना है, जो उसे सिनेमा के समझदार और शोध-विद्यार्थी की तरह तैयार कर सके।

पिछले वर्षों से मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम ने हिन्दी सिनेमा के भारतीय पाठकों/दर्शकों के लिए सिनेमाई विषयों पर गम्भीर एवं सन्दर्भ साहित्य के सृजन एवं प्रस्तुति का एक विनम्र प्रयास किया है। निगम की पत्रिका 'पटकथा' आज 'फिल्म-सर्कल' में एक पहचाना और प्रतिष्ठित नाम है। सत्यजीत राय, श्याम बेनेगल, राजकपूर, बिमलराय, अशोक कुमार पर एकाग्र पुस्तकों के अलावा वर्ष १९९२ से भारतीय फिल्म वार्षिकी का प्रकाशन भी हाथ में लिया है। सिनेमा के शोधकर्ताओं और फिल्मों पर निरंतर लेखन कर्म में संलग्न समीक्षकों/पत्रकारों के लिए इसकी उपादेयता सन्दर्भ-ग्रंथ के रूप में बने ऐसी हमारी कोशिश रही है।

भारतीय फिल्म वार्षिकी के इस द्वितीय अंक (१९९३) में हमने आवरण चित्र सहित आवरण कथाओं के माध्यम से 'फर्स्ट लेडी ऑव इण्डियन स्क्रीन' देविकारानी, उनकी प्रकाश स्तम्भ जैसी संस्था बॉम्बे टॉकीज और उसके आधार स्तम्भों के बारे में सामग्री संयोजित की है। देविकारानी आज हमारे बीच मौजूद हैं और भारतीय सिनेमा की उम्र के बराबर उनकी उम्र और ऊँचाइयाँ हैं। इसके अलावा 'मूक-युग' पर एक 'फोकस' करते हुए इस कम ज्ञात 'युग' की जानकारियों और व्यक्तियों के बारे में हिन्दी में पहली बार इतनी विस्तृत सामग्री एक स्थान पर उपलब्ध कराई है। वर्ष १९९२ की अधिकृत फिल्मोग्राफी/राष्ट्रीय पुरस्कार/फिल्मफेअर, सण्डे आब्जर्वर, लता मंगेशकर अवार्ड के अलावा फिल्म समारोहों पर रोशनी डाली गई है। १९९२ में भारतीय भाषाओं में बनी फिल्मों का भाषावार विश्लेषण भी है। एक विशेष खण्ड उन प्रकाशनों पर है, जो सिनेमा के बारे में पिछले चार दशकों से अपने-अपने क्षेत्रों में प्रकाशित हुए हैं। फिल्म प्रकाशनों की सूचीकरण का यह पहला प्रयास है, जो निश्चित ही फिल्म के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी होगा।

भारतीय फिल्म वार्षिकी जिन उद्देश्यों को सामने रखकर प्रस्तुत की जा रही है, हम चाहते हैं उसका प्रकाशन सार्थक बने। इस प्रयास को और परिपूर्ण बनाने के लिए हम अपने सुधि पाठकों, स्नेहीजनों और शुभचिंतकों के सुझाव आमंत्रित करते हैं।

१८ मार्च १९९३

□ **आर.के.कश्यप**
प्रबंध संचालक

भारतीय फिल्म वार्षिकी १९९३

अनुक्रम

खण्ड : एक : आवरण कथा

खण्ड : दो : मूक युग (फोकस)

खण्ड : तीन : फिल्म कल्चर

खण्ड : चार : फिल्म पुरस्कार

भारतीय फिल्म वार्षिकी १९९३

अनुक्रम

खण्ड : पाँच : फिल्म समारोह

खण्ड : छः : फिल्म सर्वेक्षण १९९२

खण्ड : सात : साक्षात्कार एवं विश्लेषण

खण्ड : आठ : फिल्म साहित्य

फर्स्ट लेडी ऑफ इण्डियन स्क्रीन : देविका रानी

खण्ड : एक   आवरण कथा (१)

देविका रानी :

भारतीय रजतपट की पटरानी

● रनवीर सक्सेना

बॉम्बे टॉकीज की **'अछूत कन्या'** मेरे दर्शक जीवन की पहली फिल्म थी। 'अछूत कन्या' के पहले एक-दो फिल्में और भी देखी थीं, इतना भर याद है पर 'अछूत कन्या' तो ऐसे लगता है जैसे कल या परसों ही देखी हो। हालाँकि उसे पहली बार देखे लगभग चौवन साल बीत चुके हैं। कितना सुखद संयोग है कि **'अछूत कन्या'** के नायक अशोक कुमार तथा नायिका देविका रानी आज भी हमारे बीच हैं।

इन चौवन सालों में एक से एक खूबसूरत, प्रतिभासम्पन्न तथा सुसंस्कृत महिलाएँ हिंदी फिल्मों में जगमगाई हैं। इन्होंने हिंदी सिनेमा को अपने अभिनय, व्यक्तित्व तथा सौंदर्य से नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया है। इन सबका हिंदी फिल्मों के इतिहास में ऊँचा स्थान है। पर जो स्थान देविका रानी ने हिंदी फिल्मों में बनाया, वैसा कोई और नहीं बना सका।

उन्नीस सौ तैंतीस में मुख्यतः लंदन में हिमांशु राय ने इंडो इंटरनेशनल टॉकीज लिमिटेड के बैनर तले बनी अंगरेजी फिल्म '**कर्म**' से देविका रानी को पहले पर्दे की रानी बनाया। हिमांशु राय द्वारा बंबई के मलाड उपनगर में सन् 1934 में स्थापित फिल्म निर्माण कंपनी बॉम्बे टॉकीज की पहली फिल्म **'जवानी की हवा'** में देविका नजमुल हुसैन के साथ पर्दे आईं। फिर बनी 'जीवन नैया' जिसमें अशोक कुमार तथा देविका रानी पहली बार नायक तथा नायिका के रूप में आए। **'अछूत कन्या'** (1936) अशोक कुमार तथा देविका रानी की दूसरी फिल्म थी और वह हिंदी सिनेमा का मील का पत्थर बन गई। सन् 1943 में देविका रानी अंतिम बार पर्दे पर आईं- बाम्बे टॉकीज की 'हमारी बात' में। अभिनेत्री के रूप में देविका रानी 1933 से 1943 तक महज दस साल तक पर्दे पर रहीं। पर इन दस वर्षों में वे बराबर शीर्ष पर ही रहीं। यह साधारण उपलब्धि नहीं है।

आज हेमा मालिनी को फिल्मी दुनिया की 'ड्रीम गर्ल' (स्वप्न सुंदरी) कहा जाता है। लेकिन फिल्मी इतिहासकारों के अनुसार देविका रानी भारतीय सिनेमा की पहली 'ड्रीम गर्ल' थीं। यह खिताब पहली बार देविका रानी को दिया गया था तीस के दशक में। अपने जमाने में नर्गिस को 'फर्स्ट लेडी ऑफ द इण्डियन स्क्रीन' की उपाधि दी गयी लेकिन पहली'फर्स्ट लेडी ऑफ द इंडियन स्क्रीन' यानी भारतीय चित्रपट की पहली पटरानी होने का श्रेय भी देविका रानी को ही जाता है। **'कर्म'** के प्रदर्शन के बाद से ही उन्हें 'फर्स्ट लेडी ऑफ द इंडियन स्क्रीन' का सम्मान प्रदान कर दिया गया था। एक साथ 'ड्रीम गर्ल' तथा 'फर्स्ट लेडी' कहना इस बात का प्रमाण है कि देविका रानी अपने जमाने की असाधारण नायिका थीं। दरअसल देविका रानी के जीवन में साधारण नाम की कोई चीज न पहले थी और न आई है। असाधारण सौंदर्य, असाधारण अभिनय क्षमता, असाधारण कला-बोध तथा असाधारण व्यक्तित्व की धनी अस्सी वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के बाद भी देविका रानी विलक्षण रूप से जीवंत, सक्रिय, जागरुक तथा ज्योतिर्मय हैं।

देविका रानी चौधरी का जन्म दक्षिण भारत में आंध्रप्रदेश के वाल्टेयर नगर में हुआ था। उनके पिता कर्नल एम.एन. चौधरी ऊँचे बंगाली खानदान के सुसंस्कृत व्यक्ति थे जो बाद में मद्रास के सर्जन-जनरल पद पर नियुक्त हुए। ननिहाल की ओर से वे बंगाल के ठाकुर परिवार से जुड़ी थीं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर उनके नाना लगते थे। नौ वर्ष की अल्पायु में ही देविका रानी को शिक्षा के लिए इंग्लैंड भेज दिया गया। यहाँ उन्होंने कुछ वर्ष रॉयल अकादमी ऑफ ड्रामेटिक आर्ट (नाट्य कला की शाही अकादमी) में विधिवत अभिनय कला का अध्ययन किया। इंग्लैंड में ही देविका रानी ने वास्तुकला में डिप्लोमा हासिल कर वास्तुविद बनने का विचार किया। ब्रूस वुल्फ नाम के फिल्म निर्माता ने देविका रानी को वास्तुशिल्प संबंधी योग्यता देखकर उन्हें अपनी कंपनी में डिजाइनर के पद पर नियुक्त कर दिया।

हिमांशु राय उन दिनों इंग्लैंड में ही थे। कलकत्ता तथा शांति निकेतन में उच्च शिक्षा प्राप्त हिमांशु राय, महात्मा गाँधी तथा रवीन्द्रनाथ से प्रभावित थे। आदर्शवाद से प्रेरित हिमांशु राय भारत को विश्व के फिल्मी नक्शे पर स्थान दिलाने को आतुर थे। ब्रूस वुल्फ ने हिमांशु राय के साथ मिलकर अंग्रेजी भाषा में 'थ्रो ऑफ डाइस' नाम से एक फिल्म की शुरूआत की। यहीं देविका रानी चौधरी की मुलाकात हिमांशु राय से हुई। दोनों में आयु का काफी अंतर होने के बावजूद, प्रेम के अंकुर फूटते देर नहीं लगी। उन्नीस सौ उनतीस में वे विवाह बंधन में बँध गए और देविका रानी चौधरी, देविका रानी राय बन गई। नव-दंपति ने अपना हनीमून (मधु मास) जर्मनी में मनाया। जर्मनी में रहकर देविका रानी ने विश्वविख्यात फिल्म टैक्नीशियनों से फिल्म शिल्प का ज्ञान प्राप्त किया। जर्मनी में उन्होंने प्रख्यात रंगमंच विशेषज्ञ तथा निर्माता मैक्स राइनहार्ट से मंच कला की शिक्षा ली।

मैथ्यू अर्नाल्ड की प्रख्यात कविता 'लाइफ ऑफ एशिया' के आधार पर इसी नाम की अवाक फिल्म बनाकर हिमांशु राय इंग्लैंड में नाम कमा चुके थे। गौतम बुद्ध के जीवन पर निर्मित लाइट ऑफ एशिया को बादशाह जार्ज पंचम तथा महारानी मेरी ने एक विशेष प्रदर्शन में देखा था और फिल्म में गौतम बुद्ध बने हिमांशु राय के अभिनय तथा फिल्म निर्माण की गरमजोशी से प्रशंसा की थी। यह फिल्म लंदन में लगातार नौ महीने चली थी। यह 1926 की बात है। फिर हिमांशु राय ने 'शिराज' तथा 'थ्रो ऑफ डाइस' नामक फिल्में बनाईं, जिन्होंने इंग्लैंड तथा योरप में नाम और पैसा कमाया। इसमे बाद आया सवाक् फिल्मों का क्रांतिकारी जमाना। अंगरेजी भाषा में **'कर्म'** बनाकर हिमांशु राय ने यह सिद्ध कर दिया कि बोलपट पर उनका उतना ही अधिकार है जितना मूकपट पर था। **'कर्म'** के नायक स्वयं हिमांशु राय थे और नायिका थीं

उनकी पत्नी देविका रानी। 'इसमें जरा भी शक नहीं कि **'कर्म'** की नायिका देविका रानी सवाक् फिल्मों की श्रेष्ठतम तारिकाओं में हैं। 'बर्मिंघम पोस्ट ने कहा- 'इस बारे में तो रायें नहीं हो सकतीं उनके (देविका रानी में) अभिनय में ऐसा गीतात्मक लालित्य तथा सम्मोहन है जिसने एक सरल पटकथा को अद्भुत सौंदर्य की वस्तु बना दिया है। वे स्वयं पर्दे पर आने वाली सबसे सुंदर नारी हैं। 'लंदन के 'द स्टार' ने एक कदम आगे बढ़कर कहा, "मिस देविका रानी द्वारा बोली गई अंगरेजी सुनिए। आपको न तो इससे बेहतर आवाज सुनने को मिलेगी और न इससे बेहतर चेहरा देखने को मिलेगा। देविका रानी का बेमिसाल सौंदर्य लंदन को चकाचौंध कर देगा।" **'कर्म'** देखकर भारत कोकिला सरोजनी नायडू ने जो कुछ कहा, 'वह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। उन्होंने कहा, "मैं **'कर्म'** को एक साहसपूर्ण प्रयास हीं नहीं, बल्कि एक उल्लेखनीय उपलब्धि मानती हूँ। यह चित्र अपने आप में एक ओर निर्माता हिमांशु राय के विलक्षण साहस, कल्पनाशीलता, धैर्य तथा सूझबूझ की प्रशस्ति है, वहीं दूसरी ओर वह फिल्म की नायिका, उस सुंदर तथा प्रतिभासंपन्न कृषकाय नारी, देविका रानी, की प्रशस्ति है, जो नाटक के हृदयस्थल से रोमांस के जादुई फल के रूप में कुसमित होती प्रतीत होती है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, **'कर्म'** की सफलता ने देविका रानी को 'द फर्स्ट लेडी ऑफ द इंडियन स्क्रीन' बना दिया। देविका रानी फिल्म की मायानगरी की पटरानी बन गईं।

जैसे हिमांशु राय तथा देविका रानी की फिल्म **'कर्म'** एक सीमाचिन्ह थी, उसी प्रकार बॉम्बे टॉकीज की तीसरी फिल्म **'अछूत कन्या'** भी एक सीमाचिन्ह थी। फिल्म शिल्प की दृष्टि से अछूत कन्या अत्यंत परिपक्व तथा समन्वित फिल्म थी। हिमांशु राय जर्मन टैक्नीशियन तथा श्रेष्ठतम उपकरण अपने साथ लाए थे। इनके संयोग से 'अछूत कन्या' का फिल्म शिल्प अन्य भारतीय फिल्मों से बहुत ऊपर उठा हुआ था। जर्मनी निर्देशक फ्रैंज आस्टिन के मार्गदर्शन में फिल्म का अभिनय पक्ष उभर आया। अशोक कुमार ने अभी फिल्मी दुनिया में कदम रखा ही था और **'अछूत कन्या'** उनकी दूसरी ही फिल्म थी। इसलिए उनके अभिनय में नौसिखियापन जहाँ-तहाँ झलक जाता है। यह साफ लगता था कि कि वे अभिनय कर रहे हैं। लेकिन देविका रानी का अभिनय प्राकृतिक और परिष्कृत था। अभिजात कुल की सुशिक्षित शहरी लड़की होने पर भी देविका रानी ने गाँव की गरीब हरिजन लड़की (कस्तूरी) की भूमिका इतनी सफलता से निभाई कि रातोंरात वे 'ड्रीम गर्ल' बन गईं। मद्रास के अंगरेजी दैनिक 'हिंदू' का कहना है कि **'अछूत कन्या'** देविका रानी की श्रेष्ठतम फिल्म थी। इस मत से बहुत लोग सहमत होंगे। यह उल्लेखनीय है कि यह सीमाचिन्ह फिल्म सिर्फ 90 दिनों में बनकर तैयार हो गई थी।

'अछूत कन्या' को सीमाचिन्ह फिल्म माने जाने का एक सामाजिक कारण भी था। गाँधीवाद से प्रभावित इस फिल्म ने हरिजन-सवर्ण प्रेम की कहानी पर्दे पर उतारी थी। कस्तूरी (देविका रानी) रेलवे के हरिजन गेटमैन की बेटी थी। उसका प्रेम हुआ गाँव के संपन्न ब्राह्मण परिवार के बेटे प्रताप (अशोक कुमार) के साथ। जाति और धर्म की दीवार कस्तूरी तथा प्रताप के बीच आ खड़ी होती है। दोनों के माता-पिता उनकी

भावनों के खिलाफ उनके विवाह करवा देते हैं। लेकिन एक दिन कस्तूरी के प्रति और प्रताप में ठन जाती है। दोनों लड़ते-लड़ते पटरियों पर आ जाते हैं उन्हें बचाने की कोशिश में कस्तूरी रेल से कट मरती है। जातिभेद की वेदी पर बलिदान की यह कहानी फ्लैश बैक में पर्दे पर आती है। जिस रेलवे समपार पर कस्तूरी ने अपने प्रेमी की जान बचाने लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिए थे उसके पास एक शिला पर यह वाक्य उत्कीर्ण कर लगवाया गया- 'उसने अपनी जान दी, दूसरों की जान बचाने के लिए'। कहानी इसी आलेख से शुरू होती है और इसी आलेख पर फोकस डालकर समाप्त हो जाती है।

तीस के दशक में बनी **'अछूत कन्या'** सामाजिक दृष्टि से क्रांतिकारी फिल्म थी। उस पर गाँधीजी का प्रभाव स्पष्ट था। अच्छे सामाजिक आदर्श के साथ अच्छे अभिनय, अच्छे संगीत, साफ सुथरी फोटोग्राफी तथा स्वाभाविक एवं सहज हिन्दी संवादों ने अछूत कन्या को लोकप्रियता की चोटी पर पहुँचा दिया। कहा जाता है कि अछूत कन्या देखकर जवाहरलाल नेहरू ने देविका रानी को प्रशंसा का वैसा भावनात्मक पत्र लिखा था जैसा कि एक दर्शक आमतौर पर अपनी चहेती तारिका को लिखा करता है। संभव है कि इसी कारण 25 अगस्त 1936 को बंबई में मौजूद कांग्रेस कार्यकारिणी के कुछ सदस्यों ने एक विशेष शो में **'अछूत कन्या'** को रॉक्सी सिनेमा में देखा। इन नेताओं में पंडित जवाहरलाल नेहरू के अलावा सरदार वल्लभभाई पटेल, आचार्य नरेन्द्रदेव तथा श्रीमती सरोजनी नायडू भी शामिल थे। यह **'अछूत कन्या'** की सामाजिक धर्मिता के साथ हिमांशु राय के फिल्म शिल्प तथा देविका रानी के व्यक्तित्व को राष्ट्रनेताओं की उच्चतम श्रद्धांजलि थी।

उन्नीस सौ तैंतीस तथा उन्नीस सौ तैंतालीस के बीच देविका रानी ने सोलह फिल्मों में काम किया। उनकी पहली फिल्म **'कर्म'** में हिमांशु राय नायक थे। बाद की फिल्मों में नजमुल हुसैन, अशोक कुमार, किशोर साहू, रामा शुक्ल और जयराम नायक बने। 1943 में बनी **'हमारी बात'** देविका रानी की अंतिम फिल्म थी। इसके बाद वे फिल्मों में नहीं आईं।

यह बात ध्यान खींचे बिना नहीं रहती कि इन दस वर्षों में बनी सोलह फिमों में देविका रानी की अभिनय कला का बराबर निखार होता गया। केवल दस वर्ष तक फिल्में में आने के बावजूद देविका रानी ने अपनी कला, सौंदर्य तथा व्यक्तित्व के द्वारा फिल्म जगत पर जो जादू किया था वह कम से कम पुरानी पीढ़ी पर आज भी बरकरार है।

हिमांशु राय की 1940 में आकस्मिक मृत्यु के बाद देविका रानी ने पुराने सहयोगियों की मदद से बॉम्बे टॉकीज को चलाया। हिमांशु राय के अवसान के बाद बॉम्बे टॉकीज ने नौ फिल्में बनाईं। इनमें से पुनर्मिलन, बंधन, कंगन, झूला, वसंत और किस्मत अत्यंत सफल हुईं। **'किस्मत'** ने तो कलकत्ता के एक सिनेमाघर में चार वर्ष लगातार चलकर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया था। हिमांशु राय की मृत्यु के पाँच वर्ष बाद (1945) में देविका रानी बॉम्बे टॉकीज से अलग हो गईं। 1952 में हिमांशु राय-देविका रानी की बॉम्बे टॉकीज ने फिल्में बनाना बंद कर दिया। यह पूछे जाने कि जब बॉम्बे टॉकीज फिल्में टिकट खिड़की पर सोना बरसा रही थीं तो वे बॉम्बे टॉकीज से बाहर क्यों हो गईं, देविका रानी ने कहा कि पैसा कमाना बॉम्बे टॉकीज का एक मात्र लक्ष्य नहीं था।, हिमांशु राय ने यह जरूर सिखाया था कि अगर फिल्में में अपने पैरों पर खड़ा होना है तो उन्हें व्यावसायिक दृष्टि से आकर्षक होना चाहिए। किन्तु यह सफलता कतिपय कलात्मक मूल्यों की बलि देकर हासिल नहीं की जाना चाहिए। देविका रानी ने आगे कहा, जिस पल मुझे लगा कि मैं इन मूल्यों की रक्षा नहीं कर सकती, उसी पल मैंने बॉम्बे टॉकीज छोड़ने और फिल्म निर्माण से निवृत्त होने का फैसला कर लिया।

सन् पैंतालीस में देविका रानी ने रूसी मूल के भारतीय चित्रकार स्व्यातोस्लाव रोएरिख से शादी की और कला तथा संस्कृति के नए जीवन में प्रवेश किया। देविका रानी तथा रोएरिख पहले हिमाचल प्रदेश में कुलू में रहते थे। आजकल के वे बंगलौर के निकट तत्गुनी ग्राम में अपने फार्म में रहते हैं। उनके कोई संतान नहीं है। उनका दो वृद्धजनों का छोटा सा परिवार है। रोएरिख दंपत्ति आपस में जर्मन भाषा में बात करते थे। हालाँकि देविका रानी को बंगला, हिंदी, अंगरेजी तथा फ्रेंच सहित अनेक भाषाएँ आती हैं।

भारत सरकार द्वारा स्थापित दादा साहेब फाल्के सम्मान 1969 में सर्वप्रथम देविका रानी को प्रदान किया गया। इसके पूर्व 1958 में उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया जा चुका था।

फिल्म जगत से हटने के बाद से देविका रानी शिक्षा, कला तथा संस्कृति के क्षेत्रों में कितनी व्यस्त रही हैं, इसका अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि अनेक वर्षों तक वे भारत सरकार के दृश्य-श्रव्य शिक्षा मंडल की सदस्य रहीं, संगीत नाटक अकादमी तथा ललित कला अकादमी की सदस्य रहीं। राष्ट्रीय हैंडीक्राफ्ट्स बोर्ड तथा इंडियन काउंसिल फॉर कल्चरल रिलेशंस की सभासद रहीं। 1978 में उन्हें बल्गारिया ने सम्मान पदक प्रदान किया। 1981 में उन्हें चलचित्र जगत की सेवाओं के लिए इंडियन अकादमी ऑफ मोशन पिक्चर द्वारा स्थापित तमगा श्रीमती इंदिरा गाँधी ने प्रदान किया। देविका रानी शायद एक मात्र ऐसी तारिका हैं जिन्हें देश ने रुपहले पर्दे से हट जाने के लगभग आधी शताब्दी बाद भी याद रखा है और सम्भव सम्मान से उनकी आरती उतारी है।

आठ वर्ष पूर्व फिल्म पत्रकार राजू भारतन ने बंगलौर जाकर देविका रानी से लंबी मुलाकात की थी। यह मुलाकात बंबई से प्रकाशित अँगरेजी साप्ताहिक द इलेस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया में प्रकाशित हुई थी (28 जुलाई 85)। शायद ही किसी और पत्रकार ने देविका रानी को इतने निकट से देखने- समझने की कोशिश की हो, जितनी राजू भारतन ने भारतीय चित्रपट की पहली पटरानी को समझने के लिए की। इस मुलाकात के कुछ अंश प्रस्तुत हैं-

* हिमांशु राय दूसरों से बिलकुल भिन्न थे। वे स्वप्नदृष्टा होने के साथ ही निर्माणकर्ता भी थे। (जवाहरलाल नेहरू की भाँति)। बॉम्बे टॉकीज उन्हीं का सपना थी। बॉम्बे टाकीज को भी फिल्म नगरी बनाना चाहते थे हॉलीवुड की भाँति। लेकिन अपना सपना पूरा करने के पूर्व ही उनका देहावसान हो गया।

* सब कला योग है। सब अभिनय योग है।

* अशोक कुमार के साथ (आठ फिल्मों में) काम करना अत्यंत सुखद था। वे कुशाग्र बुद्धि थे और समझने में उन्हें देर नहीं लगती थी। उनका अभिनय का तरीका पूर्णतः स्वाभाविक था। अशोक में वे लक्षण थे, जो अच्छे अभिनेता की पहचान होते हैं।

* दिलीप कुमार और अशोक कुमार की मैं तुलना नहीं करूँगी, क्योंकि ये कलाकार एक-दूसरे से बिलकुल जुदा हैं। अशोक कुमार हमेशा सहज तथा बेफिक्र रहते थे। दिलीप कुमार चिंतक थे। उनका अपना व्यक्तित्व था। अपने अलग सम्मोहन था।

देविकारानी का बहुआयामी, सक्रिय तथा सकारात्मक व्यक्तित्व मुझे आज भी वैसे ही आकर्षक लगता है जैसे छप्पन वर्ष पूर्व अछूत कन्या पहली बार देखने पर लगा था।

(परदे की परियाँ फिल्म विशेषांक से साभार)

आवरण - कथा (२)

हिन्दी सिनेमा का जगमग प्रकाश स्तम्भ : बॉम्बे टॉकीज

● प्रस्तुति : लोकेन्द्र चतुर्वेदी

इस वार्षिकी के मुख-पृष्ठ पर मुद्रित -छवि देविका रानी और बॉम्बे टॉकीज एक-दूसरे के पर्याय बन गए थे। भारतीय सिनेमा की इमारत को खड़ा करने में बॉम्बे टॉकीज। न्यू थियेटर्स (कलकत्ता) और प्रभात फिल्म कम्पनी (पुणे) के योगदान को कभी नकारा नहीं जा सकता। बॉम्बे टॉकीज का इतिहास मूकयुग से आरंभ होकर अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं को तोड़ता है। एक से एक उम्दा कलाकार तकनीशियन निर्देशक संगीतकार इस संस्था में तैयार हुए। दरअसल यह संस्था एक वट-वृक्ष साबित हुई, जिससे अनेक संस्थाएँ विकसित हुई। फिल्म निर्माण में एक एक संस्था किस प्रकार 'स्कूल' का रोल अदा करती है, यह जानने के लिए यह आवरण-कथा फिल्म के गंभीर विद्यार्थियों के लिए महत्वपूर्ण है।

बॉम्बे टॉकीज के स्वर्णिम इतिहास के प्रथम अध्याय के प्रथम पृष्ठ का पहला अक्षर उस दिन लिखा गया था जिस दिन हिमांशु राय का जन्म हुआ था। बंगाल के समृद्ध, सम्पन्न परिवार में जन्मे हिमांशु राय का थिएटर से पुश्तैनी रिश्ता था। कलकत्ता विश्वविद्यालय से कानून की उपाधि प्राप्त करने के बाद वे कुछ दिनों तक लंदन की बार काउंसिल में प्रशिक्षण पर रहे। इसी दौरान उनकी मुलाकात निरंजन पाल से हुई। पाल को भी थिएटर से प्यार था। वे भारतीय पृष्ठभूमि में लिखित अँगरेजी नाटक 'द गोडेस' को लंदन में मंचित करना चाहते थे। हिमांशु राय उन्हें नायक की भूमिका के लिए जँचे। इस प्रकार राय का कैरिअर नायक के रूप में शुरू हुआ। दोनों मित्रों ने मंच के साथ-साथ फिल्म निर्माण के क्षेत्र में उतरने की भी ठानी। अपनी म्युनिख यात्रा के दौरान राय ने जर्मन फिल्म कम्पनी 'इमेल्का' को ' लाइट ऑफ एशिया नामक फिल्म के निर्माण के लिए राजी कर लिया। सन 1924 में फिल्म का निर्माण शुरू हुआ। जर्मन भारत सहयोग से निर्मित यह फिल्म 1923 में प्रदर्शित हो गई। फिल्म में गौतम बुद्ध की भूमिका हिमांशु राय ने की थी तथा यशोधरा के रूप में रानी स्मिथ (फिल्मी नाम सीता देवी) पेश की गई। इसके बाद कई फिल्में भारत जर्मन सहयोग से राय ने बनाई। इनमें शिराज (1926) 'ए थ्रो ऑफ डाइस' (1928-29) प्रमुख थी। ए थ्रो आफ डाइस की नायिका देविका रानी थी, जिनका विवाह 1929 में हिमांशु राय के साथ हुआ।

देविका रानी के बिना शायद बॉम्बे टॉकीज का इतिहास अनरचा ही रह जाता। फौजी डॉक्टर तथा मद्रास के पहले सर्जन जनरल चौधरी की पुत्री देविका रानी का जन्म वाल्टेयर में हुआ था। उनके पिता कर्नल थे। विश्वकवि रवींद्रनाथ टैगोर के खानदान से जुड़ी देविका रानी शिक्षा प्राप्ति के लिए नौ वर्ष की आयु से ही ब्रिटेन भेज दी गई थी। ब्रिटेन के साउथ हेम्पस्टीड स्कूल में प्रारंभिक शिक्षा पाने के बाद वे रॉयल अकादमी ऑफ ड्रामा तथा रॉयल अकादमी ऑफ म्युजिक में भी प्रशिक्षण प्राप्त करती रहीं। इसके साथ ही वे 'वास्तुकला' तथा व्यावहारिक कला का भी प्रशिक्षण प्राप्त करतीं रहीं एवं टेक्सटाइल डिजाइनिंग में विशिष्टता प्राप्त की। राय से विवाह उपरांत उन्होंने जर्मनी जाकर मेकअप वेशभूषा अभिनय आदि विभिन्न फिल्म निर्माण विधाओं का प्रशिक्षण प्राप्त किया। अभिनय में उनके गुरु विख्यात जर्मन फिल्मकार पावेस्ट थे। हिमांशु राय की मैत्री ब्रिटेन में सर रिचर्ड टेम्पल से हुई तथा उनकी प्रेरणा से उन्होंने 'इण्डो -इंटरनेशनल टॉकीज' की नींव रखी तथा 'कर्मा' का निर्माण प्रारंभ किया। अँगरेजी एवं हिन्दी भाषाओं में निर्मित 'कर्मा' का अँगरेजी संस्करण मई 1934 में लंदन में प्रदर्शित किया गया। हिन्दी संस्करण 27 जनवरी 1934 को बम्बई में प्रदर्शित किया गया। देविका रानी ने इस फिल्म नायिका की भूमिका की थी तथा उनके अभिनय को व्यापक सराहना मिली। प्रीमियर -शो पर उपस्थित लार्ड इरविन ने उनके अभिनय की मुक्तकंठ से सराहना की तथा देविकारानी रातों रात स्टार बन गई। इसके बाद विदेशी धरती पर 26 फरवरी 1934 को बॉम्बे टॉकीज के शेयर जारी किए गए। सर रिचर्ड टेम्पल के सहयोग से इस पहली पब्लिक लिमिटेड फिल्म कम्पनी की स्थापना पच्चीस लाख रुपए की लागत की प्रारंभिक पूँजी से शुरू की गई। इस कम्पनी के बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स में सर रिचर्ड टेम्पल के प्रयास से तत्कालीन भद्र समाज के अति प्रतिष्ठित लोग शामिल हो गए। इनमें एफ.ई. दिनशा, सर चिमनलाल सीतलवाड़, सर चुन्नीलाल सी. मेहता, सर फिरोज सेठना तथा सर कावस जी जहाँगीर प्रमुख हैं। 'सर' उस जमाने की वह सर्वोच्च उपाधि (अलंकरण) थी, जो ब्रिटिश सरकार द्वारा चुनिन्दा भारतीयों को प्रदान की जाती थी। इन पाँचों को अपनी व्यावसायिक योग्यता के कारण यह अलंकरण मिला था। इस तरह पाँच सरों वाले संचालक मंडल वाली यह कम्पनी शानदार तरीके से अस्तित्व में आई। ब्रिटिश सरकार के आशीर्वाद तथा जयपुर और हैदराबाद जैसी रियासतों के खुले समर्थन के कारण प्रारंभ से ही इस कम्पनी को सारी सुविधाएँ उपलब्ध थीं।

राय साहब चुन्नीलाल इस निर्माण यूनिट के प्रबंधक नियुक्त किए गए। 'शिराज' तथा 'थ्रो ऑफ डाइस' के निर्देशक फ्रेन्ज ऑस्टेन निर्देशन के लिए चुने गए। जर्मनी में बत्तीस मूक तथा छः बोलती फिल्मों का निर्देशन करने वाले इस महान निर्देशन ने मूक युग की फिल्मों के निर्माण काल में नींव के पत्थर जैसी महत्वपूर्ण भूमिका की है। इस महान हस्ती ने 1935 से 1939 तक बॉम्बे टॉकीज के लिए सोलह फिल्मों का निर्देशन किया। एक अन्य विदेशी जो बाम्बे टॉकीज से सम्बद्ध थे तथा बाद में अन्तर्राष्ट्रीय हस्ती के रूप में विख्यात हुए थे जर्मन के कार्ल

वान स्वेटी। कार्लवान ने बाद में फिल्म उद्योग छोड़कर राजनीति से नाता जोड़ा तथा जर्मन संसद के सदस्य चुने गए। वे ग्वाटेमाला में जर्मन राजदूत नियुक्त हुए तथा 1970 में आतंकवादियों द्वारा उनका अपहरण कर बाद में हत्या कर दी गई। कैमरा मेन जोसेफ विराशींग तथा साउंड रेकार्डिस्ट लेन हार्टले थे। प्रयोगशाला तकनीशियन के रूप में जॉली की सेवाएँ ली गई थीं। बॉम्बे टॉकीज की प्रबंध व्यवस्था का भार 'इण्डो इण्टरनेशनल कम्पनी' को सौंपा गया जिसके सर्वे सर्वा हिमांशु राय थे। इस प्रकार राय बाम्बे टॉकीज के सर्वेसर्वा हो गये। निर्णय लिया गया कि बॉम्बे टॉकीज का कार्यालय एवं स्टुडियो चेम्बूर में स्थापित किया जाएगा। इसके लिए प्रारंभिक तैयारियाँ कर ली गईं तथा चेम्बूर में' जमीन भी पसंद कर ली गई।

इसी बीच संचालक मंडल के सदस्य एवं मलाड के जमीदार एफ.ई. दिनशा ने अपना ग्रीष्मकालीन आवास तथा उससे जुड़ी जमीन इस काम के लिए देने का प्रस्ताव किया। उस जमाने में मलाड़ तीन हजार की आवादी वाला छोटा सा गाँव था। इस आवास को दिनशा ने अपनी प्रिय पत्नी के लिए बनवाया था। पत्नी के निधन के बाद यह जगह बेकार पड़ी थी हिमांशु राय को प्राकृतिक सौंदर्य से भरभूर महाराष्ट्र की धरती का यह टुकड़ा बहुत पसंद आया। चेम्बूर योजना को रद्द कर दिया गया तथा मलाड़ में स्टुडियो का निर्माण कार्य प्रारंभ हो गया। साउण्ड तथा ईको प्रूफ स्टेज, ड्रेसिंग रूम्स, प्रयोगशालाएँ दफ्तर आदि आधुनिक तरीके से बनाए जाने लगे तथा विदेशों से बढ़िया से बढ़िया उपकरण मंगवाकर स्टुडियो को सज्जित किया जाने लगा। कई बढ़िया कैमरे मँगाए गए। साउण्ड रेकाडिंग के विश्व में उपलब्ध सर्वोत्तम उपकरण मँगवाए गए। ऑटोमेटिक फिल्म डेवलपिंग तथा प्रिंटिंग मशीन के तीन सेट मँगवाए गए। एडिटिंग टेबल, हाई पावर आई तथा नवीनतम एवं कुछ दिन पूर्व ही आविष्कृत पार्श्व गायन उपकरण भी मँगवाए गए। कर्मचारियों का चुनाव भी काफी सूझबूझ से किया गया। देश के सभी प्रांतों से इच्छुक उम्मीदवारों के आवेदन पत्र आमंत्रित किए गए। न्यूनतम योग्यता ग्रेजुएशन रखी गई, जो उन दिनों दुर्लभ मानी जाती थी। इसके बावजूद हजारों की संख्या में आवेदन पत्र आए। साक्षात्कार के बाद जिन लोगों को चुना गया उनमें शशधर मुकर्जी सावक वाचा, आर.के. वारीन्जा, अशोक के गांगुली (अशोक कुमार) आर.डी. माथुर जे.के. नन्दा, आर.सी. तलवार चन्द्रप्रभा (मानिक होकी) नजमुल हसन तथा जे.सी. काश्यप प्रमुख हैं। सन 1935 के अंत तक चार सौ कलाकारों एवं तकनीशियनों की टीम तैयार हो चुकी थी।
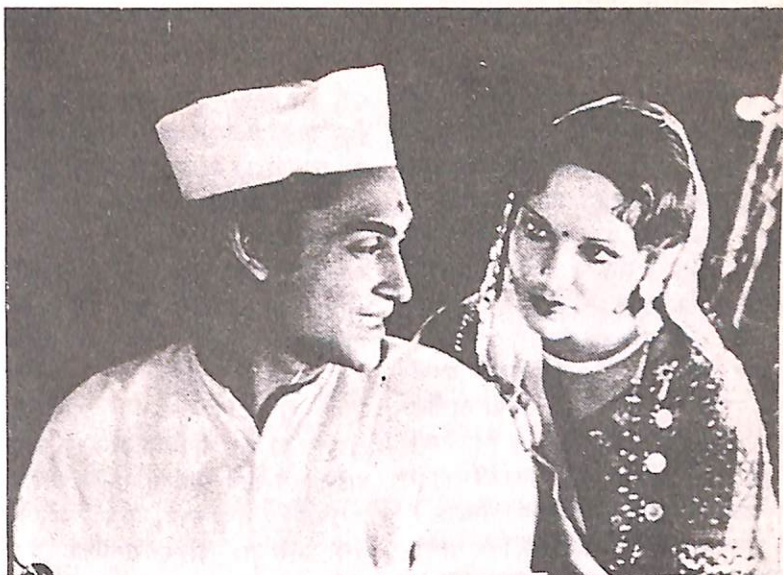
'अछूत कन्या' अशोक कुमार और देविका रानी

इसका अर्थ यह नहीं कि उस युग के अन्य निर्माण असफल पिछड़े हुए या अज्ञानी थे। कलकत्ता का न्यू थिएटर्स बंगाली तथा हिन्दी में देवदास (1935) का निर्माण कर रहा था। तथा पूना के प्रभात स्टुडियो में अमर ज्योति (1936) तथा संत तुकाराम (1936) जैसी फिल्में बन रही थी। ऐसे समय में प्रदर्शित हुई बॉम्बे टॉकीज द्वारा निर्मित पहली फिल्म 'जवानी की हवा'। इस फिल्म की कथावस्तु थी बेमेल शादी के निर्णय से अप्रसन्न हुई लड़की का घर छोड़कर भाग जाना। उस जमाने की सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए विषय काफी बोल्ड था। इस फिल्म में दो पारसी युवतियों के काम करने के कारण पारसी समाज काफी रुष्ट था। चन्द्रप्रभा अभिनेत्री के रूप में तथा सरस्वती देवी संगीत निर्देशिका का काम कर रही थी। दोनों ही पारसी बहनें थीं। जिनको होमजी बहनों के नाम से जाना जाता था। काफी विवादों के बीच यह फिल्म प्रदर्शित हुई। यह फिल्म संवाद अदायगी तथा घटनास्थल की भिन्नता के कारण अन्य तत्कालीन फिल्मों से काफी भिन्न थी। घटनाएँ प्रमुख रूप से चलती हुई ट्रेन में घटती हैं तथा वहीं कहानी विकसित होती है। इस काम के लिए जी.आई.पी. रेलवे से एक विशेष रेलगाड़ी किराए पर ली गई थी। संवाद लेखक काश्यप ने भी पारसी थिएटर की तर्ज पर क्लिष्ट उर्दू में संवाद लिखने के बजाए सामान्य बोलचाल की भाषा में संवाद लिखे थे।

'जवानी की हवा' के बाद हिमांशु राय ने दो प्रयोगात्मक फिल्मों का निर्माण किया। 'मिया बीवी' नौ रील की कॉमेडी फिल्म थी तथा 'ममता' तीन रील का कोर्ट रूम ड्रामा। लोगों ने इन फिल्मों का अपेक्षित स्वागत नहीं किया। इन दोनों ही फिल्मों में देविका रानी नायिका थीं। पटकथा निरंजन पाल ने लिखी थी। 'मियाँबीवी' का दूसरा नाम 'आलवेजटेल यूअर वाइफ' भी था। इसके नायक जे.एस. काश्यप थे। ममता के नायक नजमुलहसन थे। बॉम्बे टॉकीज की फिल्मों में तकनीकी उच्चता तो थी ही साथ ही सहज शब्दों वाले गीत और मधुर कर्णप्रिय संगीत भी इन फिल्मों की विशेषता थी। सरस्वती देवी ने 'जवानी की हवा में सर्वप्रथम पार्श्व गायन तकनीक का प्रयोग किया था। इस फिल्म का गीत 'सखी री मोहे प्रेम का सार बता दे' काफी लोकप्रिय हुआ था।

इसके बाद 'जीवन नैया' के निर्माण की तैयारियाँ शुरू हुई। प्रारंभिक तैयारियों के दौरान ही कम्पनी द्वारा चुने हुए नायक नजमुल हसन को अप्रिय विवाद के कारण निकाल दिया गया। हसन को बाद में न्यू थिएटर्स में नौकरी मिली। हिमांशु राय के सामने सबसे बड़ी समस्या यह थी कि हसन की जगह लेने के लिए नायक कहाँ से लाया जाए। दूर खोजने की बजाए उन्होंने अपने स्टुडियो की प्रयोगशाला के

तकनीशियन अशोक कुमार गांगुली को देविका रानी के साथ नायक की भूमिका करने का हुक्म दिया। इस प्रस्ताव से अशोक कुमार काफी घबराए। काफी टाल मटोल की। मगर उन्हें अभिनय के लिए विवश कर दिया गया। यह फिल्म 1936 में प्रदर्शित हुई तथा इसी वर्ष इसके बाद शुरू हुई फिल्म ' अछूत कन्या' का प्रदर्शन हुआ। सिर्फ आठ सप्ताह में बनकर तैयार हुई इस फिल्म ने सफलता के ढेरों कीर्तिमान स्थापित किए। भारत कोकिला श्रीमती सरोजनी नायडू ने पण्डित नेहरू के सामने इस फिल्म की इतनी अधिक प्रशंसा की कि वे स्वयं रॉक्सी टॉकीज बम्बई में इस फिल्म को देखने के लिए गए। निरंजन पाल द्वारा लिखित इस फिल्म की कहानी में तत्कालीन समाज में छुआछूत की समस्या के प्रति जागरूकता तथा इसके हल के लिए सार्थक प्रयासों की खोज की चेतना का पता चलता है।

इसके बाद देविका रानी तथा अशोक कुमार की जोड़ी काफी लोकप्रिय हो गई। यही जोड़ी 'जन्म भूमि (1936), इज्जत (1937), 'प्रेम कहानी' 1937 तथा 'सावित्री (1937) में आई। जन्मभूमि ग्रामीण विकास की पृष्ठभूमि पर आधारित थी। 'इज्जत' की कहानी जनजातियों के आपसी झगड़ों से जुड़ी थीं। 'प्रेमकहानी' का विषय निराश रोमांटिकता तथा 'सावित्री' की कहानी पौराणिक थी। इन चारों फिल्मों को खास सफलता नहीं मिली। इसके बाद जीवन प्रभात (1937)- सफल रही। यह फिल्म एक वर्णहीन अछूत नारी की कहानी पर आधारित थी।

इसी बीच हिमांशु राय तथा निरंजन पाल के बीच मतभेद पैदा हुए तथा पाल ने कम्पनी छोड़ दी। राय बंगाल के उपन्यासकार शरदेन्दु राय को लाए तथा उनकी कहानी पर 'भाभी' का निर्माण शुरू हुआ। 'भाभी' में जयराज तथा रेणुका देवी प्रमुख भूमिका में थे। बॉम्बे टॉकीज की यह पहली फिल्म थी जिसमें देविका रानी ने अभिनय नहीं किया था। इस फिल्म के निर्माण के दौरान अभिय चक्रवर्ती की प्रतिभा भी उभरी। अमिय जी केंटीन में बाबूगिरी करते थे तथा टाइपिंग का काम भी किया करते था। पटकथाएँ टाइप करते-करते वे फिल्म निर्माण की विद्या से परिचित हुए तथा स्वयं भी पटकथायें लिखने लगे। इसके बाद देविका रानी का युग ढलान की ओर सरकने लगा उनके द्वारा बाद में अभिनीत की गई तीनों फिल्में 'निर्मला' (1938) वचन (1939) तथा दुर्गा (1939) फ्लॉप हो गईं।

बॉम्बे टॉकीज की फिल्में फ्लॉप होती रही हो या हिट हों उसकी प्रतिष्ठा लगातार बढ़ रही थी। लगातार नए प्रतिभाशाली लोग इस संस्थान से जुड़ रहे थे जिनमें एस. मुकर्जी आर.डी. माथुर आगाजानी, नाना पलसीकर, प्रदीप, शाहनवाज, के.ए. अब्बास, दिलीप कुमार, राजकुमार, सुरैया, ज्ञान मुकर्जी आदि प्रमुख हैं। द्वितीय विश्व युद्ध का काफी बुरा असर इस प्रतिष्ठान पर हुआ। सारे कुशल जर्मन तकनीशियनों को ब्रिटिश सरकार ने देवलाली के नजरबंदी कैंप में भेज दिया। सारे तकनीकी विभागों के प्रमुख भारतीय तकनीशियन हो गए। 'कंगन' का निर्माण एन.आर. आचार्य ने पूरा किया। इस फिल्म में लीला चिटनीस ने भूमिका की थी। यह फिल्म 1940 में प्रर्दशित हो गई।

इसी बीच 'नवजीवन' (1939) आई, जो कॉमेडी थी मगर असफल रही। हिमांशु राय ने इसके बाद 'नारायणी' का निर्माण शुरू किया। इसकी उलझी पटकथा के कारण राय पर काफी तनाव रहा। यह मानसिक तनाव इस हद तक बढ़ गया था कि एक बार राय ने मामूली सी बात पर वाचा को जोरदार थप्पड़ जड़ दिया। बेचारे वाचा को जिस गाल पर थप्पड़ पड़ा था उस ओर के कान से वे बहरे हो गए थे। बढ़ते हुए मस्तिष्क विकार के कारण राय को अस्पताल में भरती किया गया। वाचा के नर्सिग होम में राय का निधन 19 मई 1940 को हो गया। सिर्फ 48 वर्ष की आयु में संसार से बिदा होने वाले इस महान फिल्मकार की बीमारी और मृत्यु अब तक रहस्य बनी हुई है। वे अपने पीछे पत्नी, तीन बहनों एवं बूढ़े पिता को बिलखता छोड़ गएथे। उनके निधन से सारे देश में शोक की लहर दौड़ गई ती।

हिमांशु राय की मृत्यु के बाद बॉम्बे टॉकीज के शेयर होल्डरों ने देविका रानी को नियंत्रक तथा रायबहादुर चुन्नीलाल को रोजमर्रा की गतिविधियों का संचालन करने के लिए प्रबंधक नियुक्ति किया। एस. मुखर्जी प्रोड्यूसर तथा ज्ञान मुखर्जी को लेखक के रूप में नियुक्त किया गया। देविका रानी तथा राय बहादुर चुन्नीलाल के मध्य मतभेद काफी बढ़ने लगे। किशोर साहू तथा स्नेहप्रभा को लेकर 'पुर्नमिलन' का निर्माण शुरू हुआ। रहस्यमय हत्याकांड की पृष्ठभूमि में निर्मित यह फिल्म अच्छे गीत, बढ़िया अभिनय तथा चुभने वाले संवादों के कारण सफल रही। इसके बाद बाम्बे टॉकीज में गुटबंदी पनप गई। एक गुट के प्रमुख राय बहादुर चुन्नीलाल तथा एस. मुकर्जी थे तथा दूसरा गुट देविका रानी एवं अमिय चक्रवर्ती का था।

इसमें बाद अमिय चक्रवर्ती के निर्देशन में अनजान (1941) जिसमें नायक अशोक कुमार तथा नायिका देविका रानी थी। एस. मुकर्जी एवं ज्ञान मुकर्जी ने झूला (1941) का निर्माण किया जिसमें अशोक कुमार के साथ लीला चिटनीस नायिका थी। 'झूला' दो भाइयों के एक ही लड़की

लहरें गिनते अशोक कुमार

*अशोक कुमार का अचानक नायक बन जाना संयोग था। लेकिन इसके बाद स्वयं को सशक्त एवं समर्थ अभिनेता बनाने के लिए उन्होंने कितना श्रम किया यह तथ्य बहुत कम लोगों को मालूम है। उन्होंने स्वयं लिखा है, "मैंने जब स्वयं को परदे पर अभिनय करते देखा तब पाया कि मेरा अभिनय मेरी खुद की कसौटी पर खरा नहीं उतर रहा है। 'अछूत कन्या' के बाद मुझे चौदह साल तक अभिनेता के रूप में काम नहीं दिया गया। इस दौरान मैंने बॉम्बे टॉकीज की लाइब्रेरी छान मारी। अभिनय के विषय में काफी कुछ पढ़ा। शाम के वक्त मैं मलाड के सागर तट पर पहुँच कर अकेला अभिनय का अभ्यास करता था। इस तरह मैंने सम्वाद अदायगी तथा मुख मुद्रा नियंत्रण का अभ्यास किया। मुझे सम्पादन में भी काफी रुचि थी। बॉम्बे टॉकीज में जब गुटबन्दी पनपने लगी तब मुझे काफी पीड़ा हुई। जब मैं 'किस्मत' का सम्पादन कर रहा था तब मुझे आदेश मिला कि मुझे बर्खास्त कर दिया गया है। फौरन स्टुडियो छोड़ने का आदेश है। इस लिखित नोट को पढ़कर मुझे क्रोध भी आया तथा असहनीय पीड़ा भी हुई। मैंने उसी क्षण प्रतिज्ञा की कि एक-बार फिर यहाँ वापस लौटूँगा। इसके छः वर्ष बाद मुझे प्रतिज्ञा पूरी करने का मौक मिला। एक निर्माता के रूप में मेरी वापसी हुई। हमने यहाँ 'महल' (1949) , मशाल (1950) का निर्माण किया। कुछ फिल्मों का निर्माण तो किया मगर उनमें अभिनय नहीं किया। ये फिल्में थीं मुकद्दर (1950) और माँ (1952)। अशोककुमार की अगाध श्रद्धा हिमांशु राय में थीं। उन्होंने जब देखा कि स्वर्गीय हिमांशु राय की प्रतिमा फ़िल्मिस्तान स्टुडियो में पड़ी धूल खा रही है, तब वे उस प्रतिमा को घर लाए तथा गर्व के साथ ड्राइंग रूम में सजाया।**

से प्यार की त्रिकोण कथा थी। एन.आर. आचार्य द्वारा निर्देशित यह फिल्म हिट रही। सरस्वती देवी का गीत 'मैं तो दिल्ली से दुल्हन लाया रे' आम लोगों की जुबान पर चढ़ गया। इसके बाद नया संसार का निर्माण शुरू हुआ। विख्यात लेखक के.ए. अब्बास द्वारा लिखित इस फिल्म में अशोक कुमार तथा रेणुका देवी प्रमुख कलाकार थे। अब्बास प्रचार अधिकारी के रूप में बॉम्बे टॉकीज से जुड़े थे। यह फिल्म स्वाधीनता का संदेश देने वाली थी। कहानी के साथ नाच-गाने काफी थे। यह फिल्म भी लोकप्रिय रही।

देविका रानी गुट भी सक्रिय था। लाहौर की मुमताज तथा उल्लास को लेकर बसंत (1942) का निर्माण किया गया तथा जयराज के साथ नायिका बनकर देविका रानी हमारी बात (1937) में आई। दोनों फिल्मों का निर्देशन अमिय चक्रवर्ती ने किया था। संगीत प्रधान होने के कारण दोनों फिल्में सफल रहीं तथा बाद में फार्मूला फिल्मों के लिए आदर्श बन गई। 'हमारी बात' के बाद देविका रानी ने अभिनय से नाता तोड़ लिया तथा सिर्फ निर्माण कार्य में जुड़ी रहीं। एस. मुखर्जी ने प्रतिष्ठान की गिरती आर्थिक दशा को सुधारने में महत्वपूर्ण योग दिया। 'किस्मत' (1942) जैसी सुपरहिट फिल्म बनाने के बाद अपने तत्कालीन वेतन में एक हजार रुपए मासिक में वृद्धि की माँग की। गुटबाजी के कारण उनकी माँग ठुकरा दी गई। इसके बाद विधिवत अलगाव की प्रक्रिया शुरू हो गई। एस. मुकर्जी रायबहादुर चुन्नीलाल,अशोक कुमार,ज्ञान मुकर्जी , प्रदीप सावक वाचा, दत्ताराम,पाई, आरा परेरा मार्शल ब्रिगेंजा ने बॉम्बे टॉकीज छोड़ दी। एस. मुकर्जी ने गोरे गाँव का शारदा स्टुडियो खरीदा तथा फिल्मिस्तान की नींव डाली।

इस अलगाव से देविका रानी काफी मुश्किल में पड़ गई। बॉम्बे टॉकीज की चार आँखें (1944) तथा 'ज्वार भाटा' (1944) आर्थिक दृष्टि से असफल रहीं। सुशील मजुमदार द्वारा निर्देशित चार आँखें में जयराज तथा लीला चिटनीस ने मुख्य भूमिका की थी। 'ज्वार भाटा' असफल तो रही मगर इस फिल्म के जरिए दो महान हस्तियों का प्रवेश उद्योग में हुआ। युसुफ खान, अपना फिल्मी नाम दिलीप कुमार रखकर इस फिल्म में महत्वपूर्ण भूमिका करते हुए अभिनय के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। राजकपूर ने अमिय चक्रवर्ती के सहायक के रूप में काम किया तथा फिल्म में चपरासी की छोटी भूमिका भी की थी। देविका रानी ने सन 1945 में रूसी चित्रकार रोरिख से विवाह कर लिया तथा अमिय चक्रवर्ती को स्टुडियो सौंप कर फिल्म निर्माण से विरक्त हो गई। उनके सारे शेयर फेमस स्टुडियो वाले शिराज अली हकीम ने खरीद लिए। 'ज्वार भाटा' के बाद प्रतिमा, मिलन, नतीजा आदि फिल्में बनी मगर इस दौरान काफी परिवर्तन हुए। हकीम ने बॉम्बे टॉकीज खरीदने के लिए सेठ गोविदराम सेक्सरिया तथा शापोट जी से काफी धन उधार लिया था। आर्थिक कठिनाइयों के कारण विभाजन के समय उन्होंने भारत त्याग कर पाकिस्तान की शरण ली। रूई के व्यापारी सेक्सरिया तारदेव स्टुडियो तथा बॉम्बे टॉकीज के मालिक बन गए। उन्होंने हितेन चौधरी को प्रबंधक बना दिया। हितेंन्द्र चौधरी के प्रयास से अशोक कुमार, सावक वाचा आदि लौटे तथा गुमनामी के अँधेरे में रह रहे निरंजन पाल की सलाह से 'मिलन ' के निर्देशन का काम नितिन बोस को सौंपा गया। 'नतीजा' मुस्लिम सामाजिक कहानी थी। इसके बाद श्याम एवं मुनव्वर सुलताना की प्रमुख भूमिका वाली फिल्म मजबूर (1948) प्रदर्शित हुई। यह फिल्म हिट रही। इसके बाद अशोक कुमार एवं सावक वाचा ने 'जिद्दी' का निर्माण किया। शाहिद लतीफ द्वारा निर्देशित इस फिल्म में देवानन्द एवं कामिनी कौशल प्रमुख भूमिका में थे। यह फिल्म भी काफी सफल रही। 'आशा' (1948) फ्लॉप हो गई मगर 'महल' (1949) ने सफलता के नए कीर्तिमान स्थापित किए। कमाल अमरोही द्वारा लिखित इस फिल्म में अशोक कुमार एवं मधुबाला प्रमुख भूमिकाओं में थे। इसके बाद वाचा ने ज्ञान मुकर्जी द्वारा निर्देशित 'संग्राम' (1950) का निर्माण किया जिसमें अशोक कुमार एवं नलिनी जयवंत की प्रमुख भूमिका थी। इसके बाद अशोक कुमार एवं वाचा ने बॉम्बे टॉकीज छोड़ दिया।

बॉम्बे टॉकीज की दशा दिनों दिन बिगड़ रही थी। मालिकों ने प्रबंध कामगारों की सहकारी संस्था को सौंप कर नया प्रयोग किया। हितेन चौधरी ने ऐसी विकट परिस्थितियों में नितिन बोस द्वारा निर्देशित 'मशाल एवं विमल राय द्वारा निर्देशित 'माँ' का निर्माण किया। फणि मजुमदार द्वारा निर्देशित तमाशा (1952) बनी मगर बॉम्बे टॉकीज की गिरती हालत संभल नहीं पाई। फणि मजुमदार ने कामगारों की ओर से अपील कर बिना पारिश्रमिक काम करने के लिए राजी कर लिया। इस प्रकार 'बादबान' (1954) बनी। इसमें अशोक कुमार, मीना कुमारी, देवानंद, उषा किरण एवं जयराज द्वारा अभिनीत यह फिल्म सफल रही। मगर 1953 में तोलाराम जालान ने फिल्मिस्तान तथा बॉम्बे टॉकीज खरीद कर इस महान प्रतिष्ठान का दरवाजा हमेशा के लिए बंद कर दिया।

इस तरह भारतीय फिल्म उद्योग के इतिहास का स्वर्णिम अध्याय समाप्त हुआ। बॉम्बे टॉकीज ने फिल्म वालों को आत्म सम्मान एवं गौरव का पाठ पढ़ाया। फिल्मकारों को सामाजिक स्तर पर प्रतिष्ठित किया। बॉम्बे टॉकीज की कई विशिष्टताएँ थी। उसका एक स्कूल था जिसमें कर्मचारियों के बच्चे पढ़ते थे। पुस्तकालय में फिल्म निर्माण से संबंधित तीन हजार पुस्तकें थीं। बढ़िया कैंटीन तथा क्लीनिक था। इसके साथ ही रोजमर्रा की चीजें कम कीमत में मुहैया करवाने वाली दुकान थी जहाँ से लिए गए माल की कीमत वेतन से कटती थी।

भाड़े के दर्शक और हमारी बात

बॉम्बे टॉकीज में निर्मित सभी फ़िल्में बम्बई के रॉक्सी तथा मैजेस्टिक सिनेमाओं में प्रदर्शित की जाती थीं। जब किन्हीं कारणों से ***हमारी बात*** *को इम्पीरियल में प्रदर्शित किया गया तब पाया कि इसे पर्याप्त लोकप्रियता नहीं मिल पा रही है। इसलिए इसे वहाँ हटवा कर "मैजेस्टिक" सिनेमा में शिफ्ट किया गया। जहाँ उसे भाड़े के दर्शक भेजकर 'जुबिली' फ़िल्म सिद्ध किया गया।*

फ़िल्म मुगले आजम के निर्माण की प्रारम्भिक तैयारियाँ बॉम्बे टॉकीज में ही हुई थीं। विभाजन के कारण योजना अधूरी रह गई। स्वर्गीय सिराज अली हकीम को उस जमाने में 27 लाख रुपयों का घाटा उठाना पड़ा था।

बॉम्बे टॉकीज का अपना निजी चिकित्सालय था। प्रत्येक कर्मचारी को निःशुल्क चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध थीं। प्रत्येक कर्मचारी को पन्द्रह दिन में अपना स्वास्थ्य परीक्षण अनिवार्य रूप से करवाना होता था।

बॉम्बे टॉकीज द्वारा निर्मित ***जिद्दी*** *(1948) में देवानन्द ने पन्द्रह सौ रुपए प्रतिमाह पर काम किया था। उन्हें यह काम निर्देशक शाहिद लतीफ की सिफारिश से मिला था।*

बॉम्बे टॉकीज : फिल्मोग्राफी

(1) **जवानी की हवा**- 1935 (सामाजिक) * निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टेन, * संगीत : सरस्वती देवी, * कलाकार : देविका रानी, नजमुल हसन, चन्द्र प्रभा, कामता प्रसाद, जे. एस. काश्यप, पी.एफ. पीठावाला, तलपदे मुखर्जी।

(2) **ममता और बीवी**- १९३६ (सामाजिक) * निर्देशक : फ्रेंज आस्टेन, * सगीत : सरस्वती देवी * कलाकार :

(अ) **ममता**- देविका रानी, एच. मसीह, जे.एस. काश्यप, पीठावाला, कामता प्रसाद।

(ब) **मियाँ बीवी**- देविका रानी, जे.एस. काश्यप, एच. मसीह, नजमुल, पीठावाला, चन्द्र प्रभा।

(3) **जीवन नैया**- 1936 (सामाजिक) * निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टेन, *संगीतः सरस्वती देवी, * कलाकारः देविका रानी, अशोक कुमार, कामता प्रसाद, अनवरी बेगम, एच. मसीह, मुमताज अली, सुनीता देवी, एस.एन. त्रिपाठी, प्रमिला, पीठावाला।

(4) **अछूत कन्या**- 1936 (सामाजिक) * निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टेन, * संगीत : सरस्वती देवी * कलाकार : देविका रानी, अशोक कुमार, पी.एफ. पीठावाला, कामता प्रसाद, किशोरी लाल, मुखर्जी, मुमताज अली, सुनीता देवी, चन्द्र प्रभा।

(5) **जन्मभूमि**- 1936 (सामाजिक) * निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टेन * संगीत : सरस्वती देवी * कलाकार : देविका रानी, अशोक कुमार, प्रमिला, पी.आई. पीठावाला, मुमताज अली, कामता प्रसाद, चन्द्र प्रभा।

(6) **इज्जत**- 1937 (सामाजिक) * निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टेन * संगीत : सरस्वती देवी * कलाकार : देविका रानी, अशोक कुमार, मुमताज अली, विमला, पीठावाला, कामता प्रसाद, मनोहर घटवई।

(7) **प्रेम कहानी**- 1937 (सामाजिक) * निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टेन * संगीतः सरस्वती देवी * कलाकार : अशोक कुमार, माया देवी, मधुरिका, एन.एम. जोशी, विमला देवी, पी.एफ. पीठावाला, सरोज बोरकर, मनोहर घटवई, मुमताज अली।

(8) **सावित्री**- 1937 (धार्मिक) * निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टेन * संगीत : सरस्वती देवी * कलाकार : देविका रानी, अशोक कुमार, सुनीता देवी, माया देवी, सरोज बोरकर, कामता प्रसाद, मुमताज अली, एम. नजीर, चन्द्र प्रभा, पीठावाला।

(9) **जीवन प्रभात**- 1937 (सामाजिक) * निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टेन, * संगीत : सरस्वती देवी * कलाकार : देविका रानी, किशोर साहू, मुमताज अली, माया देवी, रेणुका देवी, पृथ्वीराज, चन्द्र प्रभा, सरोज बोरकर, पीठावाला।

(10) **भाभी**- 1938 (सामाजिक) * निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टेन * संगीत : सरस्वती देवी * कलाकार : रेणुका देवी, जयराज, माया देवी, मीरा, व्ही. एच. देसाई, एम. नजीर, सरोज बोरकर, प्रतिमा, आगा जानी काश्मीरी, पीठावाला।

(11) **निर्मला**- 1938 (सामाजिक) * निर्देशक फ्रेंज ऑस्टेन * संगीत : सरस्वती देवी, * कलाकार : देविका रानी, अशोक कुमार, माया देवी कामता प्रसाद, मुमताज अली, पीठावाला, एस. नसीर, सरोज बोरकर, पी.आर. जोशी टकले गुलाब।

(12) **वचन**- 1938 * निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टेन * संगीत : सरस्वती देवी * कलाकार : देविका रानी, अशोक कुमार, एम. नजीर, मीरा, मुमताज अली, पीठावाला, कामता प्रसाद, माया देवी, सरोज बोरकर, आगा जानी काश्मीरी।

(13) दुर्गा- 1939 (सामाजिक) * निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टेन * संगीत : सरस्वती देवी * कलाकार : देविका रानी, राम शुक्ल, नाना पलसीकर, हंसा, मुमताज अली, एच. देसाई, पीठावाला।

(14) **कंगन**- 1939 (सामाजिक) * निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टेन * संगीत : सरस्वती देवी और रामचन्द्र पॉल * कलाकार : लीला चिटनीस, अशोक कुमार, व्ही. एच. देसाई, पी.एफ. पीठावाला, मुबारक, नाना पलसीकर, सरोज बोरकर, अरूण कुमार, अमिय।

(15) **नवजीवन**- 1939 (सामाजिक) * निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टेन * संगीतः सरस्वती देवी * कलाकार : हंसा, राम शुक्ल, मुमताज अली, व्ही. एच. देसाई, सरोज बोरकर, पीठावाला, एम. नजीर, प्रतिमा।

(16) **आजाद**- 1940 (सामाजिक) * निर्देशक : एन.आर. आचार्य *संगीत : सरस्वती देवी और रामचंद्र पॉल * कलाकार : लीला चिटनीस, अशोक कुमार, हंसा, राम शुक्ल, मुमताज अली, रामचन्द्र पॉल, नाना पलसीकर।

(17) **बंधन**- 1940 (सामाजिक) * निर्देशक : एन. आर. आचार्य * संगीत : सरस्वती देवी और रामचन्द्र पॉल * कलाकार : लीला चिटनीस, अशोक कुमार, व्ही. एच. देसाई, पी. एफ. पीठावाला, शाहनवाज, सुरेश, अरूण कुमार।

(18) **पुर्नमिलन**- (1940) (सामजिक) * निर्देशिक नजमा नकवी *संगीत रामचन्द्र पॉल, * कलाकार स्नेहप्रभा, किशोर साहू, शाहनवाज, अंजली देवी, मुमताज अली, पीठावाला, सुनलिनी देवी, एस.बाबूराव, मुमताज बेगम, मंगल।

(19) **अनजान**- 1941 (सामाजिक) * निर्देशक अमिय चक्रवर्ती * संगीत-पन्नालाल घोष * कलाकार देवीकारानी, अशोक कुमार, व्हीएच. देसाई,गिरीश, सुरेश पीठावाला, गुलाब डेविड, तरूर कुमार, अरूण कुमार, दीक्षित, ओम प्रकाश।

(20) **झूला**- 1941 (सामाजिक) * निर्देशक : ज्ञान मुखर्जी * संगीत : सरस्वती देवी * कलाकार : लीला चिटनीस, अशोक कुमार, शाहनवाज, व्ही.एच. देसाई, मुमताज अली, शहजादी, नाना पलसीकर, दुलारी।

(21) **नया संसार**- 1941 (सामाजिक) * निर्देशक : एन. आर. आचार्य * संगीत : सरस्वती देवी एवं रामचन्द्र पॉल * कलाकार : रेणुका देवी, अशोक कुमार, मुबारक, शाहनवाज, एच. देसाई, डेविड, सुरेश, अजूरी, महेश कौल, नाना पलसीकर, पीठावाला, अरुण कुमार, मंगल।

(22) **बसंत**- 1942 (सामाजिक) * निर्देशक : अमिय चक्रवर्ती * संगीत : पन्नालाल घोष * कलाकार : मुमताज शांति, उल्लास, प्रमिला, सुरेश, मुमताज अली, पीठावाला, जगन्नाथ, कनु रॉय, गंजू, बेबी मुमताज (मधुबाला)।

(23) **किस्मत**- 1943 (सामाजिक) * निर्देशक : ज्ञान मुखर्जी * संगीत

: अनिल विश्वास * कलाकार : अशोक कुमार , मुमताज शांति, .व्ही.एच. देसाई, डेविड, शाहनवाज, मुबारक, पी. एफ. पीठावाला, मोती, चन्द्रप्रभा, कनु रॉय।

(24) **हमारी बात**- 1943 (सामाजिक) * निर्देशक : एम. आई. धरमसी * संगीत : अनिल विश्वास * कलाकार : देविका रानी , जयराज, डेविड, शाहनवाज, मुमताज, प्रभा, मुमताज अली, कामता प्रसाद, दुलारी, अरूण कुमार, सुरैया, राजकपूर।

(25) **चार आँखे**- 1944 (सामाजिक) * निर्देशक : एम. आई. धरमसी * संगीत अनिल विश्वास * कलाकार देविका रानी, जयराज, आशालता, पीठावाला, पॉल, महेंद्र।

(26) **ज्वार भाटा**- 1944 (सामाजिक) * निर्देशक : अमिय चक्रवर्ती *संगीत अनिल विश्वास * कलाकार : मृदुला, शमीम, आगा, दिलीप कुमार, खलिल, विक्रम कपूर, मुमताज अली।

(27) **प्रतिमा**- 1945 (सामाजिक) निर्देशक जयराज * संगीत अरुण कुमार * कलाकार : स्वर्णलता, दिलीप कुमार, ज्योति, मुमताज अली, पीठावाला, मुकरी, जेबु, शाहनवाज।

(28) **मिलन**- 1946 (सामाजिक) * निर्देशक नितिन बोस * संगीत अनिल विश्वास * कलाकार : दिलीप कुमार, मीरा मिश्रा, रंजना, पहाड़ी सांन्याल, मोनी चटर्जी, श्याम लाहा, एस. नजीर।

(29) **नतीजा**- 1947 (सामाजिक) * निर्देशक नजम नकवी * संगीत राशीन अत्रा, * कलाकार : याकूब, शमीम, रेहाना, राधिका, माजिद, जिल्लू, माया देवी, रणधीर, खलिल, आफताब।

(30) **मजबूर**- 1946 (सामाजिक) * निर्देशक : नजीर अजमेरी * संगीत : गुलाम हैदर * कलाकार : मुनव्वर सुलताना, श्याम, सोहन, इन्दु, अमीर बानू, शिवराज।

(31) **जिद्दी**- 1948 (सामाजिक) * निर्देशक : शाहिद लतीफ * संगीत : खेमचंद प्रकाश * कलाकार : देवानन्द, कामिनी कौशल, वीरा, नवाब, कुलदीप, प्राण, प्रतिमा देवी, इन्दु, मोहसिन, चन्दा वाई, अमीर बानू, शिवराज।

(32) **आशा**- 1948 (सामाजिक) * निर्देशक : मेघानी * संगीत : खेमचन्द्र प्रकाश * कलाकार : शान्ता कुँवर, सोहन, सेमसन, शिवराज, तिवारी, उर्वशी।

(33) **महल**- 1949 (सामाजिक) * निर्देशक : कमाल अमरोही * संगीत : खेमचन्द्र प्रकाश * कलाकार : अशोक कुमार,, मधुबाला, विजयलक्ष्मी, कुमार, कुन रॉय, एस. नजीर, तारा पुरे, शीला नाईक, नीलम।

(34) **मशाल**- 1950 (सामाजिक) * निर्दोक : नितीन बोस, * संगीत : एस.डी. बर्मन और मन्ना डे * कलाकार : अशोक कुमार, सुमित्रा देवी, रूमा देवी, कनु रॉय, एस. नजीर, मोनी चटर्जी, जय मर्चेन्ट, नाना पलसीकर, नीलम, शिवराज, अरुण कुमार, कुक्कू।

(35) **मुकद्दर**- 1950 (सामाजिक) * निर्देशक : अरविंद सेन * संगीत : खेमचंद प्रकाश एवं बी. श्रेष्ठ * कलाकार : नलिनी जयवंत, सज्जन, किशोर कुमार, इफ्तिखार, सेमसन, राधाकृष्ण, सोफिया, गोगिया पाशा, नाना पलसीकर, नीलम, कृष्ण कांत।

(36) **संग्राम** -1950 (सामाजिक) * निर्देशक ज्ञान मुखर्जी * संगीत : सी. रामचन्द्र * कलाकार : अशोक कुमार, नलिनी जयवंत, नवाब, तिवारी, सज्जन, रामसिह, बेबी, तबस्सुम, शशिराज, हेमवती, सेमसन।

(37) **माँ**- 1952 (सामाजिक) * निर्देशक : विमल रॉय * संगीत : एस.के. पॉल * कलाकार : लीला चिटनीस भारत भूषण, श्यामा, नजीर हुसैन, पॉल महेंद्र, अचला सचदेव, बी.एम. व्यास, कुमुद मंजु, कुसुम देशपांडे, भूपेन कपूर, भरत व्यास, विक्रम कपूर, असित सेन।

(38) **तमाशा**- 1952 (सामाजिक) * निर्देशक : फणि मजूमदार * संगीत : खेमचन्द्र प्रकाश और मन्ना डे, * कलाकार : अशोक कुमार, देवानंद, मीना कुमारी, विपिन गुप्ता, कौशल्या, रणधीर ,सुनलिनी देवी, किशोर, एस.एन. बैनर्जी, हारून, शिवराज, अमित, कृष्ण कांत।

*** प्रस्तुति : सरला चतुर्वेदी**

लीला चिटनीस : सुनहरी यादें

बॉम्बे टॉकीज के माध्यम से हिन्दी फ़िल्मों में प्रवेश करने वाली लीला चिटनीस सन 1939 से 1942 तक "स्टार" रही। इस रूपवती नायिका की सफल फ़िल्मों में आजाद/कंगन/बंधन तथा 'झूला' प्रमुख है। देविका रानी के प्रति अगाध श्रद्धा रखने वाली इस नायिका ने मराठी में लिखे अपने संस्मरणों में बॉम्बे टॉकीज के कई भावुक प्रसंगों का उल्लेख किया है। वे लिखती है 'हिमांशु राय की मृत्यु के बाद देविका रानी बिल्कुल अकेली हो गई। अमिय चक्रवर्ती ने उन दिनों उन्हें काफी दिलासा दी। अमिय जी अविवाहित थे तथा उनका निवास भी देविकाजी के करीब था। दोनों का अधिकांश समय साथ ही कटता था। अमियजी के साथ देविका रानी की यह निकटता प्रहलाद राय तथा गोविन्दराम सेकसरिया को खटकती थी जो प्रबन्ध संचालकों में से थे। इन दोनों ने 1943 में 'ज्वारभाटा/प्रतिमा' तथा 'चार आँखों' की असफलता के बाद अमिय-देविका में फूट डालने की चाल चली। उन्होंने आत्मीय चर्चा करने के बहाने पहले अमियजी को अकेले बुलाया। उनकी तारीफों के पुल बाँधते हुए कहा, - "आप बताइए सफल फ़िल्में बनाने के लिए क्या उपाय किए जाएं?" अमियजी ने देविकाजी के सारे उपकार परे रखकर जवाब दिया - "मुझे सर्वेसर्वा बना दिया जाए तथा कम्पनी देविका रानी से छुटकारा पा ले।" इस वार्तालाप के बाद डाईरेक्टर्स ने देविका रानी को अकेले में बुलाकर यही सवाल पूछा। इस महान नारी का उत्तर था, - "अमिय की दो-चार फ़िल्में असफल होने का यह मतलब नहीं है तू उसमें प्रतिभा नहीं है। उसे मौका दिया जाना चाहिए। पूरी यूनिट को उनके साथ सहयोग करना चाहिए।" यह उत्तर सुनकर सेकसरिया ने फौरन देविका रानी को उनके बारे में अमिय जी द्वारा व्यक्त किए गए विचार अक्षरशः सुना दिए। देविका रानी स्तब्ध रह गई। उसी दिन अमिय जी को निकाल दिया गया। उनका सारा काम जयराम को सौंपा गया।

आवरण कथा (३)

बॉम्बे टॉकीज की संगीत परम्परा

उन्नीस साल की छोटी सी उम्र में असमय में ही अस्त हो जाने वाले बॉम्बे टॉकीज ने अपनी उनचालीस फिल्मों के तीन सैकड़ा गीतों के जरिए भारतीय सिने उद्योग के इतिहास में संगीत का अविस्मरणीय अध्याय रचा है। इस संस्थान के प्रमुख संस्थापकों की जीवन शैली पश्चिमी थी तथा अधिकांश को हिन्दी भाषा तथा लोकसंगीत का पर्याप्त ज्ञान भी नहीं था। दूसरी ओर न्यू थिएटर्स तथा प्रभात फिल्म कम्पनी से उसे मुकाबला करना था। वहाँ आर.सी. बोराल, पंकज मलिक, के.एल. सहगल, कानन देवी, के.सी. डे तथा पहाड़ी सान्याल जैसे दिग्गज गायक एवं संगीतकार मौजूद थे। बॉम्बे टॉकीज के संस्थापक हिमांशु राय अपनी टीम में युवा तथा शिक्षित लोगों को रखना चाहते थे। संगीतकार के लिए उपयुक्त पात्र का चुनाव करने की प्रक्रिया में उनका परिचय खुर्शीद मिनोखर होमजी से कराया गया। पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे की यह शिष्या पारसी परिवार की युवती थी। लखनऊ लार्ड मोरिस कॉलेज में शास्त्रीय संगीत की शिक्षा पा चुकी थी। खुर्शीद की प्रतिभा से वे प्रभावित हुए तथा खुर्शीद को नया नाम सरस्वती देवी दिया गया। वे बॉम्बे टाकीज की संगीत निर्देशिका बनीं। इसके साथ ही उसकी बहन मानेक ने भी चन्द्रप्रभा के नाम से अभिनय को कैरियर के रूप में चुना।

सरस्वती देवी ने पहली फिल्म **जवानी की हवा** में तबलासारंगी, सितार तथा जलतरंग का आर्केष्ट्रा बनाया। सरल शब्द तरल संगीत तथा देविका रानी और चन्द्रप्रभा की ताजी आवाज से 'सखी री मोहे प्रेम का सार बता दे' जैसे अमरगीत की रचना की। इसके बाद अगली फिल्म **'अछूत कन्या'** में एक साथ नौ गीतों को हिट बनाकर सरस्वती देवी छा गई। सभी गीत शास्त्रीय राग पर आधारित थे। 'कित गए हो खेवनहार (झिन्झोटी दादरा) सरस्वती देवी ने स्वयं गाया था। 'उड़ी हवा में जाती है' (राग देस) देविका रानी ने गाया था। अशोक कुमार तथा देविका रानी द्वारा गाया गया युगल गीत खेत की मूली बाग का आम' (राग दुर्गा)।

सरस्वती देवी की उपलब्धियों को आँकने के लिए इस तथ्य को जानना जरूरी है कि उन्होंने देविका रानी तथा अशोक कुमार जैसे नौसिखिए गायकों से गवाए गीतों को अपने संगीत के बल पर हिट बनाया। अछूत कन्या के बाद उसी वर्ष सरस्वती देवी ने चार अन्य फिल्मों को संगीत दिया। इनमें जन्मभूमि के दो गीत- 'दुनिया कहती मुझको पागल' तथा 'सेवा के हम व्रतधारी' काफी लोकप्रिय हुए। इसके बाद 'जीवन प्रभात' (1937) 'तुम मेरी, तुम मेरे साजन (देविका रानी- किशोर साहू) हिट हुआ। इसी फिल्म का राग काफी कहरवा में गाया गया। होली गीत, होली आई रे कान्हा, ब्रज के रसिया, सफलता के नए कीर्तिमान कायम करने में सफल रहा। **भाभी** (1938) तथा **निर्मला** के गीतों ने भी सफलता के नए कीर्तिमान स्थापित किए तथा रेणुका देवी, मिस मीरा तथा बलवंत सिंह जैसे नए गायकों को अवसर मिला।

** सखी री, मोहे प्रेम का सार बता दे*
** खेत की मूली बाग का आम*
** मैं बन की चिड़िया बन-बन डोलूँ रे*
** दुनिया कहती मुझको पागल*
** मैं तो आरती उतारूँ राधेश्याम की*
** चल-चल रे नवजवान*
** दूर हटो ऐ दुनिया वालों, हिन्दुस्तान हमारा है।*

बॉम्बे टॉकीज के संवाद लेखक जे.एस. काश्यप गीतकार भी थे अथा 'जवानी की हवा' के बाद बनी सारी फिल्मों के गीत उन्होंने ही लिखे थे। **वचन** (1938) के निर्माण के दौरान सरस्वती देवी बीमार पड़ गईं तब काश्यप ने 'हम पिंजरे की मैना' जैसे लोकप्रिय गीत को संगीतबद्ध किया।

'कँगन' (1939) ने बॉम्बे टॉकीज को नई गायिका, गायक एवं संगीतकार तथा नए फिल्मी गीत लेखक से परिचय कराया। सरस्वती देवी के सहयोगी के रूप में रामचंद्र पाल आए। कवि प्रदीप ने गीत लेखक के रूप में प्रवेश किया। अरुण कुमार गायक के रूप में। लीला चिटनीस गायिका के रूप में विख्यात हुईं। कवि प्रदीप ने गीत लिखा, गाया और संगीतबद्ध किया। यह गीत था 'मैं तो आरती उतारूँ राधेश्याम की'। इसके अतिरिक्त फिल्म के अन्य गीत 'मोरे राम जिलावे राम' 'सूनी पड़ी रे सितार मीरा की' हिट हुए। रामचंद्र पाल उस्ताद बदल खान के शिष्य थे तथा अंग्रेजी में एम.ए. एवं संगीत में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त कर चुके थे। वे बॉम्बे टॉकीज के संगीत को नया स्वरूप देना चाहते थे। उन्होंने हिमांशु राय से प्रार्थना की कि ट्रम्पेट, सेक्सोफोन, हवाइयन गिटार तथा मेलो जैसे पश्चिमी वाद्य यंत्र भी आर्केष्ट्रा में शामिल किए जाएँ। थोड़े बहुत विरोध के बाद बॉम्बे टॉकीज में पाश्चात्य संगीत वाद्य यंत्रों का प्रयोग शुरू हो गया। सन 1940 में हिमांशु राय के असामयिक निधन के बाद .एस. मुकर्जी ने **'बन्धन'** का निर्माण शुरू किया। अशोक कुमार, लीला चिटनीस तथा सुरेश द्वारा इस फिल्म के लिए गाया गया गीत 'चल चल रे नौजवान' काफी लोकप्रिय हुआ। इस गीत को रामचंद्र पाल ने संगीतबद्ध किया था। इसी फिल्म का अन्य हिट गीत 'रुक ना सको तो जाओ' सरस्वती की संगीत रचना का नमूना था। इसके बाद 'पुनर्मिलन' में पाल ने अरुण कुमार तथा स्नेहप्रभा तथा राजकुमारी से कई अमर गीत गवाए। इनमें 'नाचो नाचो प्यारे मन का मारे तथा सैयां तू एक बैरी' काफी लोकप्रिय हुए। इस दरम्यान संगीत का युग बीत रहा था तथा नया जमाना आने को बेताब था। सरस्वती देवी स्वयं को नए युग के अनुरूप डालने की पुरजोर कोशिश कर रही थीं। 'झूला' में उनके द्वारा संगीतबद्ध अशोक कुमार द्वारा गाया गया गीत 'ना जाने किधर आज मेरी नाव चली रे' इसी बदलाव का नतीजा था। इसी बीच पन्नालाल घोष भी बॉम्बे टॉकीज से जुड़ गए।

सरस्वती देवी ने अपने कैरियर में बीस फिल्मों के एक सौ पचास अमरगीतों को संगीतबद्ध किया। भारतीय फिल्म संगीत परम्परा को समृद्ध किया। **'झूला'** के बाद वे बॉम्बे टॉकीज से अलग हो गईं। केवल पाँच सौ रुपए प्रतिमाह वेतन पर काम करने वाली इस विदुषी ने इसके बाद किसी अन्य प्रतिष्ठान में 'काम नहीं किया' तथा अविवाहित रहीं।

सरस्वती देवी के बाद बॉम्बे टॉकीज की अगली फिल्म **'बसन्त'** के लिए अनिल विश्वास और पन्नालाल घोष ने संगीत दिया। पन्नालाल घोष विख्यात बाँसुरी वादक थे। अनिल विश्वास गीत की धुनें तैयार करते थे। पन्नालाल उन धुनों को आर्केष्ट्रा पर सजाते थे। वैसे रिश्ते में पन्नालाल घोष, अनिल विश्वास के बहनोई थे। पन्नालाल की पत्नी पारुल, अनिल विश्वास की बहन थी। वह स्वयं भी अच्छी गायिका थीं। बसन्त के लगभग सभी गीत हिट हुए। उम्मीद उनसे क्या थी और क्या कर रहे हैं, हमको हैं प्यारी हमारी गलियाँ, मो गोरी ओ से गंगा के पार मिलना। **बसन्त** की सफलता का पूरा श्रेय संगीत को मिला। संगीतकार के रूप में अनिल विश्वास भारतीय फिल्मी दुनिया में स्थापित हो गए। इसमे बाद किस्मत ने 'बॉक्स आफिस पर नया कीर्तिमान स्थापित किया। प्रदीप की रचना 'दूर हटो ऐ दुनियावालो घर घर में दीवाली है 'पपीहा रे, हिट हुए। इसके बाद 'हमारी बात' से सुरैया का बॉम्बे टॉकीज में प्रवेश हुआ 'ऐ बाद-ए सबा इठलाती ना जा' लोकप्रिय हुए। अगली फिल्म **'चार आँखें'** आर्थिक दृष्टि से असफल रहीं मगर इसका गीत 'मैं रोऊँ तू रुलाए जा' हिट रहा।

अनिल विश्वास का संगीत लोकप्रियता की कसौटी पर लगातार खरा उतर रहा था। **'ज्वार भाटा'** (1944) भजन भूला भटका पथ हारा मन्ना डे तथा पारुल की आवाज में गाया गया था। इसी फिल्म में सी. रामचंद्र ने अनिल विश्वास के सहायक के रूप में काम किया था। अगली फिल्म 'प्रतिमा' के संगीतकार अरुण कुमार थे। इसके बाद बॉम्बे टॉकीज के बुरे दिन शुरू हो गए। महायुद्ध की विभीषिकाएँ, देविका रानी का रोरिख से विवाह कर बॉम्बे टॉकीज से अलग होना आदि घटनाओं ने प्रतिष्ठान को आर्थिक संकट में डाल दिया। मुस्लिम सामाजिक फिल्म **'नतीजा'** के गीत लेखन का काम नक्शब ने किया। संगीतकार बने रशीद अत्रे। इसके बाद विख्यात संगीतकार गुलाम हैदर ने **'मजबूर'** में मजबूत संगीत देकर प्रतिष्ठान को नवजीवन देने का प्रयास किया। इस फिल्म में लता मंगेशकर का गाया गीत 'दिल मेरा तोड़ा, मुझको कहीं का न छोड़ा' तथा मुकेश के साथ लता का गीत 'अब डरने की कोई बात नहीं अंग्रेजी छोरा चला गया' काफी लोकप्रिय हुए।

अशोक कुमार तथा वाचा ने 1948 में बाम्बे टॉकीज के लिए **'जिद्दी'** का निर्माण शुरू किया। इस फिल्म में संगीतकार के रूप में खेमचंद्र प्रकाश को लाया गया। इसी फिल्म में किशोर कुमार ने पहली बार फिल्मों के लिए एक कोरस गीत में जनानी आवाज के तौर पर अपनी आवाज दी। सरस्वती देवी भी गायिका के रूप में आई, ये कौन आया रे करके सोलह सिंगार' तथा 'मरने की दुआएँ क्यों मांगू' काफी लोकप्रिय हुए। खेमचंद्र प्रकाश को संगीतकार के रूप में अमर करने का श्रेय फिल्म **महल** (1949) को है। लता की आवाज में उनकी धुनों पर नक्शब का गीत 'आएगा आने वाला' अमर हो गया। गीत तो अमर हो गया मगर संगीतकार खेमचंद्र इस फिल्म के प्रदर्शित होने के कुछ दिनों बाद ही चल बसे। उनके द्वारा संगीतबद्ध की गई अंतिम फिल्म **'मुकद्दर'** थी जो 1950 में प्रदर्शित हुई। इसमें 'मधुर प्यार का तार' (आशा- अरुण कुमार) एक दो तीन चार, बागों में आई बहार (आशा-किशोर) काफी लोकप्रिय हुए। इसी वर्ष प्रदर्शित फिल्म **'मशाल'** के संगीतकार थे एस.डी. बर्मन। इस फिल्म में कवि प्रदीप द्वारा लिखित ए गीत 'ऊपर गगन विशाल' मन्ना डे द्वारा गया गया था। दूसरा 'जब हम थे तुम्हारे' अरुण कुमार ने गाया था। दोनों ही गीत काफी प्रसिद्ध हुए।

इसके बाद बुरे दिन शुरू हुए तथा **बादवान** के साथ ही बाम्बे टॉकीज से गूँजने वाली संगीत ध्वनियाँ आहत मौन में बदल गई।

● **सी. लोकेन्द्र**

निरंजन पाल और जवानी की हवा

भारतीय फ़िल्मोद्योग के विकास में निरंजन पाल की भूमिका बहुमुखी रही है।

बॉम्बे टॉकीज के संस्थापकों में से तो वे हिमांशुराय के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। साथ ही विदेशों में रहकर भारतीय सिनेमा एवं रंगमंच के उत्थान एवं आधुनिकीकरण के लिए भी उनके प्रयास महत्वपूर्ण रहे। उन्होंने कई फ़िल्मों का निर्देशन/निर्माण/लेखन तथा सम्पादन किया। उनकी ब्रिटिश पत्नी लिली ब्राइट भी उनके साथ भारत थीं। वे अपने पुत्र कॉलिन को बंगला भाषा पढ़ाना चाहते थे इसलिए कलकत्ते से अमिय चक्रवर्ती को ट्यूटर के तौर पर बम्बई लाए थे। आमदनी कम न पड़े इसलिए उन्होंने अमिय को केन्टीन में नौकरी भी दिलवा दी थी। उन्हीं की लिखित कहानी ''मिडनाइट एक्सप्रेस'' पर बॉम्बे टॉकीज की पहली फ़िल्म **"जवानी की हवा"** *बनी थी।*

अपनी आत्मकथा में निरंजन पाल ने लिखा कि उन्हें तथा हिमांशु को हिन्दी या उर्दू का ज्ञान बहुत कम था। उन्होंने **"जवानी की हवा"** *के सम्वाद लेखक जे.एस.काश्यप तथा एस.आई.हसन से कहा था कि उनके द्वारा लिखित वे ही सम्वाद फ़िल्म में रखे जाएंगे जिन्हें वे तथा हिमांशु राय समझ सकें। इसी कारण* **"जवानी की हवा"** *में तत्कालीन क्लिष्ट उर्दू के सम्वाद नहीं रहे तथा फ़िल्म की सरल भाषा ने नई परम्परा डाली।*

बॉम्बे टॉकीज को छोड़कर कलकत्ते लौटने की घटना का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है, - ''मैंने कलकत्ते की साप्ताहिक पत्रिका 'दीवाली' में एक लेख लिखा जिसमें फ़िल्म निर्माताओं की कठोर आलोचना की गई थी। हिमांशु राय ने इसे व्यक्तिगत अपमान समझा। उन्होंने मुझे बुलाकर हिदायत की कि भविष्य में कभी ऐसे लेख न लिखूँ। मैंने साफ शब्दों में कहा कि मुझे पटकथा एवं कहानी लेखन के लिए रखा गया है मेरी कलम तथा जमीर को किसी ने खरीदा नहीं है। इस पर कहासुनी बढ़ गई तथा मैं बाहर आ गया। उसी समय मैंने बोरिया बिस्तर बाँधा तथा बॉम्बे टॉकीज से नाता तोड़कर कलकत्ता रवाना हो गया।

विवादों के घेरे में देविका रानी

भारतीय फिल्मोद्योग की आधार शिला रखने वाले बॉम्बे टॉकीज के संस्थापक हिमांशु राय की पत्नी देविका रानी अक्सर विवादों से घिरी रही हैं। भारतीय फिल्मों में स्टार परम्परा की शुरूआत भी उन्हीं के सौन्दर्यमय मादक व्यक्तित्व से हुई। वे भारतीय फिल्मों में प्रथम महिला (फर्स्ट लेडी) कही जाती हैं। भारत कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू ने उन्हें भारतीय 'शेरनी' की उपाधि दी थी। भारत की यही सुन्दर शेरनी अपने जीवन के संध्याकाल में नितान्त एकाकी है तथा आज भी उनका वृद्ध व्यक्तित्व विवादों से घिरा है। पति की मृत्यु के बाद उन्होंने अकेलेपन को दूर करने के लिए रूस में जन्मे विख्यात कलाकार डॉ. सेवेत्सोलाव रोरिख से विवाह कर लिया था और उनके साथ बंगलौर में रह रही थीं। वैसे तो बंगलौर के निकट करोड़ों रुपए की जमीन-जायदाद तथा सुख-सुविधाओं वाली कोठी थी मगर वे पिछले तीन वर्षों से पाँच सितारा होटल अशोका में रह रही थीं। इसी वर्ष 31 जनवरी के दिन 89 वर्ष की अवस्था में उनके पति का निधन हो गया। पति की मृत्यु के बाद से ही वे परेशानियों एवं विवादास्पद स्थितियों से गुजर रही हैं।

पति के निधन के बाद शोक ग्रस्त होने का समय भी उन्हें नहीं मिल पाया क्योंकि यह फैसला करना था कि पति का शरीर कहाँ दफनाया जाए। डॉक्टर सेवेत्सोलाव की इच्छा यह थी कि उन्हें सेंट्स पीटर्स वर्ग के वाल्डीमार केथेड्रल के निकट दफनाया जाए। दो वर्ष पूर्व रोरिख की पेंटिंग्स रूस में प्रदर्शन हेतु ले जाने के लिए रूसी सरकार ने विशेष विमान की व्यवस्था की थी। देविका रानी को पूरा विश्वास था कि पति का शव ले जाने के लिए भी विशेष विमान की व्यवस्था की जाएगी। रूसी दूतावास के वरिष्ठ अधिकारी एम. काडाकिन ने बंगलौर आकर श्रीमती देविका रानी को बताया कि इंडियन एयर लाइंस के वायुयान द्वारा दिल्ली ले जाया जाएगा तथा फिर सामान्य यात्री विमान से शव को रूस ले जाया जाएगा। डॉक्टर रोरिख की निजी सचिव ने यह भी कहा कि काडाकिन के अनुसार पीटर्सवर्ग में कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। इसलिए देविका रानी का वहाँ शव के साथ जाना स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित नहीं होगा। निजी सचिव मेरी पुनाचा के इस कथन को रूसी अधिकारी काडकिन ने पूर्णतः असत्य बताया। उनके अनुसार विशेष विमान की व्यवस्था की गई थी। श्रीमती देविका रानी ने डॉ. रोरिख का शव हाटगुनी में दफनाने की इच्छा व्यक्त की। यह स्थान डॉ. रोरिख की जायदाद का हिस्सा है तथा बंगलौर कनकपुरा राजमार्ग पर स्थित है। उनका आग्रह देखते हुए मास्को सन्देश भेजकर विशेष विमान की योजना रद्द करवाई गई।

इसके बाद डॉक्टर रोरिख की तथाकथित वसीयत का विवाद उठ खड़ा हुआ। अफवाह यह थी कि डॉ रोरिख ने मृत्यु से कुछ माह पूर्व वसीयत लिखवाई थी। श्रीमती देविका रानी एवं निजी सचिव पुनाचा ने कथित वसीयत की बात को निराधार बताया। कर्नाटक के विधि मंत्री को एल.जी. हवनार ने कहा कि यदि ऐसी किसी वसीयत का अस्तित्व है भी तब यह कतई जरूरी नहीं है कि उसे प्रेस को दिया जाए या रूसी अधिकारियों को दिखाया जाए।

रूसी अधिकारियों का कथन था कि ऐसी वसीयत का जाहिर होना जरूरी है क्योंकि श्रीमती देविकारानी के निकट कई ऐसे तत्व हैं जो डॉ. रोरिख की विशाल सम्पत्ति एवं अमूल्य कलाकृतियों की अफरातफरी करना चाहते हैं। रूसी अधिकारी यह भी जानना चाहते थे कि डॉ. रोरिख ने के.टी. प्लाण्टेशन को जो 141 एकड़ भूमि बेची थी उसकी कीमत के रूप में प्राप्त धन कहाँ है। रूसी दूतावास के अधिकारी श्री काडाकिन ने कहा कि रूसी चाहते हैं कि डॉ. रोरिख की सम्पत्ति, संग्रह एवं कलाकृतियों को सरकार अपने कब्जे में ले ले ताकि दुरुपयोग की सारी आशंकाएँ समाप्त हो जाएँ।

देविका रानी चाहती हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय रोरिख मेमोरियल ट्रस्ट की पुनर्स्थापना की जाए। ट्रस्टी के रूप में वे राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा, श्रीमती सोनिया गाँधी, श्री बोरिस येल्तसिन तथा भारत स्थित रूसी राजदूत एण्टोली डूकोव को रखना चाहती हैं। दूसरी ओर हाटगुनी की करोड़ों रुपए की जमीन पर लालची बिल्डरों एवं मुनाफाखोरों की गिद्धदृष्टि लगी है। वे येनकेन प्रकारेण इस भूमि को हड़पना चाहते हैं। बेचारी बूढ़ी शेरनी जीवन की गोधूलि में भी चैन से नहीं जी पा रही है।

कार की सुविधा और इन्दरराज आनन्द

इन्दरराज आनन्द नौकरी की बेताबी से तलाश कर रहे थे। उन्हें पता चला कि बॉम्बे टाकीज में पब्लिसिटी अधिकारी की जगह खाली है। अर्जी भेजने के बाद उन्हें साक्षात्कार के लिए बुलवाया गया। देविका रानी दफ्तर में अकेली बैठी थी। सिगरेट का पैकिट सामने रखा था। देविका रानी ने पूछा - "सिगरेट पीते हो? जवाब था - हाँ। फिर उन्होंने कहा "एक तुम लो और एक मुझे दो और सुलगाओ"। इन्दर ने वैसा ही किया। इसके बाद बातचीत शुरू हुई। नौकरी उन्हें मिल गई। इन्दरराज का बॉम्बे टाकीज में काफी सम्मान था। उन्हें स्टेशन तक पहुँचाने के लिए रोज कार जाया करती थी। यह सम्मान उस जमाने में सितारों को भी नहीं मिलता था। इन्दरराज को कार से स्टेशन जाना कितना अच्छा लगता था, इसका जिक्र करते हुए वे लिखते हैं कि मुझसे एक बार कहा गया कि अभिनय करूँ। "मुझे डर लगा कि अभिनय करने पर मैं एक्टर की श्रेणी में आ जाऊँगा तथा कार की सुविधा छिन जाएगी"। उन दिनों का जिक्र करते हुए वे कहते हैं कि जब **ज्वारभाटा** *बन रही थी तब किसी को भी उम्मीद नहीं थी कि दिलीपकुमार सफल अभिनेता होंगे। लोगों का ख्याल था कि नायिका मृदुला ज्यादा ज्यादा सफल होगी। समय ने इस धारणा को गलत सिद्ध कर दिया। राजकपूर को चपरासी की छोटी-सी भूमिका दिलवाने में भी इन्दरराज की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इन्दरराज आनन्द की आकांक्षा लेखक बनने की थी तथा उन्हें* **दीवार** *(नाटक) में जब पृथ्वीराज कपूर ने लेखक के रूप में काम दिया तब उन्होंने बॉम्बे टाकीज छोड़ दिया।*

खण्ड : दो

भारतीय सिनेमा का मूक-युग

● प्रस्तुति : हेमचन्द्र पहारे

सृजन और अभिव्यक्ति के माध्यमों में सिनेमा को सही मायनों में बीसवीं सदी का माध्यम कहा जा सकता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर प्रारंभ से ही आधारित होने के कारण बड़ी तेजी से यह, सारी दुनिया में जनसंचार तथा मनोरंजन का सबसे सशक्त माध्यम बन गया और वह एक साथ ही कला, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, उद्योग और व्यापार सहित जीवन के प्रत्येक पहलू को छू स्वयं भी यही सब बन गया। सिनेमा 19वीं सदी के अंतिम दशक में मानव के हाथों में एक खिलौने के रूप में आया था। वह बीसवीं सदी में पदार्पण करते ही प्रदर्शनकारी कलाकारों, तमाशागरों, समाजसुधारकों और प्रचारकों को भी आकर्षित करने लगा। लेकिन सिनेमा के इन सारे पक्षों के होते उसका तब भी और आज भी मनोरंजन ही सबसे प्रमुख उद्देश्य है। हाथ से चलाए जाने वाले कैमरों, पुते हुए परदों के सेट तथा आदिम उपकरणों से प्रारंभ हो सिनेमा का यह सफर भारत में किन- किन मुकामों से गुजरा उसका विवरण निश्चय ही एक रोमांचकारी और नॉस्टेलजिक (अतीतानुरागी) अनुभव होगा। यहीं से हम अपना 'फ्लेश- बैक' शुरू करते हैं।

सात जुलाई 1896 को बंबई की वॉट्सन होटल में शहर के श्रेष्ठ वर्ग के चुनिंदा प्रेक्षकों के समक्ष बीसवीं सदी के सबसे बड़े चमत्कार सिनेमा उर्फ बायस्कोप का प्रदर्शन हुआ। ल्यूमिएर ब्रदर्स के इस करिश्मे को तत्काल कामयाबी मिली और उससे उत्साहित हो इन फिल्मों का नियमित प्रदर्शन बंबई के ही नॉवेल्टी थियेटर में शुरू हो गया। जहाँ वॉट्सन होटल में तमाशे की प्रवेश दर एक रुपया थी, नॉवेल्टी में टिकिट दर चार आने रखी गई और संभवतः तभी से वह **'चवन्नी क्लास'** का विशिष्ट दर्शक-समूह बना, जिस पर आज भी किसी भी व्यावसायिक फिल्म की सफलता या असफलता निर्भर करती है। वैसे फिल्मों के बिल्कुल प्रारंभिक काल में दर्शक संख्या शिक्षित शहरी मध्यम वर्ग की ही अधिक होती थी।

भारतीय सिनेमा के इतिहास की सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि आज फिल्म उद्योग की स्थिति विश्व सिनेमा में कुछ भी हो, इस नई प्रौद्योगिकी को अपनाने में वह शेष विश्व से कभी नहीं पिछड़ा। ल्यूमिएर ब्रदर्स ने अपना पहला फिल्म प्रदर्शन पेरिस में दिसंबर 1895 में किया था। यानी उसके छह माह बाद ही भारत के दर्शकों को भी फिल्में देखने का मौका मिल गया। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि दिखलाई जाने वाली फिल्मों के विषय तथा वस्तु आवश्यक रूप से ब्रिटिश बल्कि विलायती होती थी। उन्होंने भारत के अग्रदूत फिल्म निर्माताओं तथा प्रदर्शकों की कल्पनाशक्ति को झंकृत करना शुरू कर दिया।

सन् 1902 के आसपास कलकत्ता में **जे. एफ. मदन** तथा बंबई में **अब्दुल अली यूसुफ अली** ने तंबुओं में इन विलायती फिल्मों का प्रदर्शन शुरू कर दिया था। इन दोनों अग्रदूतों ने आगे चलकर सिनेमा वितरण का जो साम्राज्य स्थापित किया वह बर्मा तथा सीलोन (श्रीलंका) तक फैला हुआ था। इन लोगों द्वारा प्रदर्शित फिल्मों के विषय मूलतः विदेशी होते थे। मसलन 'महारानी की शव यात्रा', 'राष्ट्रपति मैकिन्ले की

फोकस

भारतीय सिनेमा का मूक-युग एक ऐसी अंधी गुफा की तरह है, जिसमें जाकर रोशनी की मशाल जलाने और दुर्लभ सामग्री को उजागर करने के भगीरथ प्रयास की नितांत आवश्यकता है। इस युग के जो साक्षी तथा सहभागी रहे हैं, वे एक- एककर हमसे विदा ले रहे हैं। सिनेमा के शोधार्थियों को यह काम अपने हाथ में लेना चाहिए। इस 'फोकस' के जरिए मूक- युग की बिखरी एवं उपलब्ध सामग्री को हमने पहली बार हिन्दी में एक स्थान पर संकलित करने की कोशिश की है। हालाँकि यह प्रयास अपने आप में परिपूर्ण नहीं है। लेकिन धागे के खोए हुए सिरे को हमने थामा है, विश्वास है सिनेमा के गम्भीर विद्यार्थी इसे आगे बढ़ाएँगे।

राजा हरिश्चन्द्र (१९१३)

हत्या' आदि। इसीलिए भारतीय दर्शकों की दिलचस्पी इनमें कम होती गई और लोग उन्हें मात्र विज्ञान के एक चमत्कार की तरह लेने लगे। इन विदेशी विषयों को भारतीय दर्शकों के लिए रोचक बनाने के लिए प्रदर्शक उनके साथ नर्तकियों, नर-बाजीगरों तथा पहलवानी के करतब भी दिखलाने लगे।

लेकिन भारत के कुछ प्रदर्शकों तथा इस माध्यम की क्षमताओं का पूर्वानुमान रखने वाले लोगों को लगा कि भारतीय स्थलों तथा स्थानीय घटनाओं का चित्रण यहीं पर करना आयातित फिल्मों की अपेक्षा कहीं ज्यादा फायदे का सौदा होगा। इसी का नतीजा था कि 1897 से 1912 के बीच भारत में निर्मित लगभग सभी फिल्मों में सामयिक घटनाओं को फिल्माया गया। इनके अग्रदूत निर्माताओं में **एच. एस. भाटवड़ेकर** (सावेदादा), **हीरालाल सेन**, (कलकत्ता), बंबई में ही **एफ. बी. थाने वाला, प्रो. स्टिवेंसन** तथा एंडर्सन थे। कलकत्ता में हीरालाल सेन ने तो पहली फिल्म 1901 में ही बना ली थी। बहरहाल इन प्रारंभिक लघु चित्रों में प्रमुख सामयिक व ऐतिहासिक महत्व की घटनाओं का चित्रण किया जाता था और उनके शीर्षक ही इस तथ्य की ताकीद करते हैं।* सीनियर रेंगलर परांजपे का स्वागत समारोह (1902)*, ग्रेट बंगाल पार्टीशन मूवमेंट एंड प्रोसेशन (बंग-भंग आंदोलन व उसका जुलूस (1905)*, हैदराबाद की भयानक बाढ़ (1906)*, भगोड़े लामा का दार्जिलिंग पलायन व जुलूस (1910)*, महाराजा पंचम जार्ज तथा रानी मेरी की बंबई यात्रा (1911)*, दिल्ली दरबार तथा राज्याभिषेक (1911), (जिसे राजनीतिक कारणों से प्रतिबंधित कर दिया गया था।) तथा बंबई के कॉटन मार्केट में लगी आग (1912) आदि।

सावे दादा- हरिशचंद्र सखाराम भाटवड़ेकर ने 1901 में ही 21 गिन्नियों में एक चलचित्र कैमरा लंदन से आयात कर कुश्तियों तथा सर्कस के करतबों का फिल्मांकन प्रारंभ कर दिया था। उनके द्वारा प्रसिद्ध गणितज्ञ परांजपे के स्वागत समारोह के फिल्मांकन को भारत का पहला वास्तविक समाचार चित्र कहा जा सकता है। भाटवड़ेकर ने ही आठवें एडवर्ड का राज्यरोहण समारोह भी फिल्माया था।

हीरालाल सेन :- कलकत्ता में 1896 के अंत में तथा मद्रास में उसके अगले वर्ष फिल्मों का प्रदर्शन प्रारंभ हुआ। कलकत्ता में हीरालाल सेन ने क्लासिक थियेटर में खेले जाने वाले नाटकों को फिल्माना शुरू किया। सन् 1901 में कलकत्ता की अमृत बाजार पत्रिका ने 'अलीबाबा', बुद्ध तथा 'सीता-राम' जैसी फिल्मों के प्रदर्शन के विज्ञापन छापे।

जमशेद मदन : जैसा कि ऊपर कहा गया है कलकत्ता के जमशेदजी मदन जैसे बड़े वितरक प्रदर्शक अमेरिका एवं ब्रिटेन में बनी फिल्मों के अलावा डेनमार्क इटली और जर्मनी की फिल्मों का वितरण करते थे। लेकिन जमशेद सेठ का पहला शौक थियेटर था। वे कलकत्ता में एलिफिंस्टन थियेट्रिकल कंपनी चलाते थे। बाद में उन्होंने द न्यू अल्फ्रेड थियेट्रिकल कंपनी की स्थापना भी की और वहाँ मंच की दुनिया के सभी सितारे काम करते थे। ये सितारे मंच और सिनेमा दोनों में काम करते थे। विदेशी फिल्मों में दर्शकों की दिलचस्पी खत्म होने पर मदन ने अपने नाटकों को ही फिल्माना शुरू किया। देखा जाए तो 1912 के आते-आते पहले भारतीय कथा-चित्र के निर्माण के लिए स्थितियाँ पक चुकी थीं। यानी धुंडीराज गोविंद फालके (दादा साहब) के आगमन के लिए मंच लगभग तैयार था।

सन् 1912 में ही फालके की युग प्रवर्त्तक फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' (मई 3, 1913) के पूर्व आर. सी. तोरणे और एन. ए. चित्रे महाराष्ट्र के संत **'पुंडलिक'** पर फिल्म बना चुके थे। 'पुंडलिक' पहली 'कथा फिल्म' थी, जो कैमरे के लिए अभिनीत की गई थी।

दादा साहब फालके : जब दादा फालके चालीस बरस के हुए तो उनका फाइन प्रिंटिंग का धंधा अचानक बैठ गया। अवसाद की स्थिति में वे 1910 में एक 'क्रिसमस शो' देखने चले गए। वहाँ उस रोज का प्रमुख आकर्षण एक अमेरिकी मूक फिल्म लाइफ ऑफ क्राइस्ट थी। फालके के लिए फिल्म देखने का यह पहला मौका था। वे इस चमत्कार से अभिभूत हो उठे और उसी रोज उन्होंने तय कर लिया कि ऐसी ही एक फिल्म रामायण और महाभारत की कथाओं पर बनानी चाहिए। एक असली अग्रदूत की धुन और जोश के साथ वे अपने प्रयोगों में लग गए और संघर्ष का एक लंबा सिलसिला प्रारंभ हुआ।

शायद उस दौर में इस बीड़े को उठाने के लिए उनसे ज्यादा योग्य कोई अन्य ऐसा भारतीय नहीं था, जो फिल्म निर्माण को एक व्यवसाय के रूप में ले सके। वे ब्राह्मण पंडितों के परिवार में जन्मे थे। उनके पिता बंबई के विल्सन कॉलिज में संस्कृत पढ़ाते थे। उन्होंने अपने पुत्र को जे. जे. स्कूल ऑफ आर्टस में पढ़ाकर सृजनात्मक कलाएँ सीखने को प्रोत्साहित किया। वहाँ उन्होंने चित्रकला के अलावा मंच और थोड़ी बहुत जादूगरी भी सीखी। बाद में बड़ौदा के कला भवन में उन्होंने फोटोग्राफी का प्रशिक्षण भी लिया तथा फोटो कैमीकल मुद्रण में कई प्रयोग किए। यानी जिन हुनरों तथा कलाओं की जरूरत फिल्म निर्माण में पड़ती है, उनमें वे निष्णात थे। 'मुझे पूरा भरोसा था कि मैं यह कर सकता हूँ।' अगले सालभर तक वे लगातार सिनेमा गृहों में चक्कर लगा- लगाकर फिल्में देखते। उनकी तकनीक का विश्लेषण करते और अपने 5 डॉलर मूल्य के कैमरे से तस्वीरें खींचते। उनकी पत्नी (काकी फालके) ने उनके इन उपक्रमों में उन्हें पूरा सहयोग दिया।

एक वर्ष तक बीस- बीस घंटे काम करने के बाद उन्होंने **'मटर के बीज का विकास'** फिल्म (वृत्तचित्र) बना डाली। उन्होंने गमले में एक मटर का बीज बोकर प्रतिदिन एक 'फ्रेम' के हिसाब से उसकी तस्वीरें खींची। इस फिल्म के आधार पर उन्हें कुछ कर्ज मिल गया तथा शेष अपनी बीमा पॉलिसी रहन रखकर जुटाया। फरवरी 1912 में फिल्म निर्माण का साजो-सामान खरीदने इंग्लैण्ड रवाना हो गए। वहाँ से एक सप्ताह का गहन प्रशिक्षण तथा विलियम्सन कैमरा लेकर वे वापस लौटे। 'काकी' फालके के गहने गिरवी रख कुछ और पूँजी जुटाई और भारत की पहली फीचर फिल्म **'राजा हरिश्चंद्र'** का निर्माण शुरू कर दिया। (चालीस बरस बाद सत्यजीत राय ने भी अपनी पहली फिल्म 'पाथेर पांचाली' पूरी करने के लिए अपनी पत्नी की चूड़ियाँ गिरवी रखी थीं।)

काम मुश्किल था। खुद उन्हीं के शब्दों में 'सब-कुछ मुझे ही करना पड़ता था। लोगों को अभिनय सिखलाना। पटकथा लिखना। कैमरा संचालन करना तथा वास्तविक 'प्रोजेक्शन भी। खूबसूरत अभिनेताओं की जगह तीसरे दर्जे के मंच कलाकार तथा वेश्याएँ ही उपलब्ध थे। काफी तलाश के बाद उन्हें उनकी नायिका मिली, जो कि एक होटल के बावर्ची का सहायक सालुंके था। सन् 1912 की वर्षा ऋतु समाप्त होते ही फालके ने दादर मेन रोड पर अपना स्टुडियो बनाया। सेट खड़े किए और वास्तविक निर्माण प्रारंभ हुआ।

तीन हजार सात सौ फुट लंबी भारत की पहली फीचर फिल्म राजा हरिश्चंद्र का 21 अप्रैल 1913 को बंबई के ओलिंपिया सिनेमा में प्रथम प्रदर्शन हुआ। कुछ हफ्ते बाद कोरोनेशन थिएटर में जब फिल्म का व्यावसायिक प्रदर्शन शुरू हुआ, तो पश्चिमी फिल्मों के शौकीनों तथा अँगरेजी अखबारों ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। लेकिन फालके के दिमाग में एक अलग ही दर्शक वर्ग था- चवन्नी क्लास- और उसने "राजा हरिश्चंद्र" को हाथों-हाथ लिया। उसके पीछे-पीछे आई 'भस्मासुर मोहिनी' 'सावित्री 'लंका-दहन' तथा 'कृष्ण-जन्म'। इसके साथ ही फालके ने नासिक में लंबी-चौड़ी जमीन, जहाँ नदी- नाले पहाड़ियाँ खुला आसमान सब कुछ था, पर अपना स्टूडियो स्थापित किया। उनके स्टाफ में 100 से भी ज्यादा लोग थे तथा सब एक परिवार की तरह रहते थे। फालके ने 1914 में इंग्लैण्ड की यात्रा फिर की और अपनी बनाई फिल्में वहाँ के निर्माताओं को दिखलाई। नए उपकरण लेकर जब वे भारत लौटे तब तक प्रथम विश्व युद्ध छिड़ चुका था और फालके फिर आर्थिक कठिनाई में पड़ गए। किसी तरह अपने पुराने साथियों के साथ उन्होंने फिल्में बनाना जारी रखा।

इस दौर में उन्होंने अपनी बेटी मंदाकिनी को कृष्ण की भूमिका में ले कर 'कालिया मर्दन' बनाई। एक फिल्म 'हाऊ फिल्म्स आर मेड' बनाकर लोगों को इस विधा की तकनीकी जानकारी दी। फालके की धार्मिक फिल्मों का प्रमुख आकर्षण उनके चमत्कार के वे दृश्य होते थे, जिनका फिल्मांकन ट्रिक फोटोग्राफी से किया

ए थ्रो ऑफ डायस (१९३०)

जाता था। इसकी बानगी दिखलाने के लिए उन्होंने "द मेजिक ऑफ प्रो. केल्फा" (केल्फा यानी उलटा पढ़ने पर फाल्के) का निर्माण किया। उनकी अगली फीचर फिल्म 'लंका दहन' को तत्काल सफलता मिली। सन् 1917 में 'फाल्के फिल्म्स' के स्थान पर कुछ अन्य भागीदारों के साथ 'हिन्दुस्तान फिल्म कंपनी' स्थापित की। इस कंपनी द्वारा निर्मित 'श्री कृष्ण जन्म' भी सफल रही, लेकिन अपने भागीदारों से न पटने के कारण वे उससे अलग हटकर बनारस चले गए और एक मंच नाटक लिखना शुरू कर दिया। पाँच वर्ष बाद जब वे वापस बंबई लौटे तो मदन फिल्म उद्योग का स्वरूप एकदम बदल चुका था। कलकत्ता तथा बंबई में कोहिनूर तथा महाराष्ट्र कंपनियाँ धड़ल्ले से अमेरिकी फिल्मों की तर्ज पर फिल्में बना रही थीं। इस नए माहौल में फालके अपने आपको नहीं खपा सके। सन् 1932 में अपनी अंतिम मूक फिल्म 'सेतु बंधन' बनाकर वे फिल्म निर्माण से निवृत्त हो गए। लेकिन बीस कथा- चित्रों तथा 97 लघु फिल्में बनाने के बाद भी उनकी आर्थिक स्थिति खस्ता ही रही। चौसठ वर्ष की पकी उम्र में उन्होंने अपनी एक मात्र सवाक फिल्म गंगावतरण बनाई और 71 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया। जैसा कि इस उद्योग में हमेशा होता है। फालके के भी अंतिम वर्ष गुमनामी में बीते। फालके ने 1917 में अँगरेज सरकार द्वारा स्थापित पहले फिल्म आयोग के सामने दिए अपने बयान में जो रचनात्मक सुझाव दिए थे वे आज भी प्रासंगिक हैं। (उनका उल्लेख आगे किया गया है।)

अन्य अग्रदूत : रचनात्मक संतोष तथा लोगों को स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करने वाले फालके की सफलता के बाद शुद्ध व्यावसायिक उद्देश्यों से जो लोग इस उद्योग में आए उनमें से कलकत्ता के जमशेद जी मदन का पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। प्रारंभिक वर्षों में अपने नाटकों को ही फिल्माने के पश्चात मदन ने अपनी पहली मौलिक फिल्म 'बिल्व मंगल' बनाई। वैसे मदन में कलाभिरुचि भी थी और उन्होंने टैगोर के नाटकों तथा बंकिम के उपन्यासों को फिल्माने के अधिकार भी हासिल किए थे।

धीरेन गांगुली- इस बीच शांति निकेतन से निकले धीरेन गांगुली सुदूर हैदराबाद में कला अध्यापन कर रहे थे। उन्होंने अपनी कुछ तस्वीरें खिंचवाकर मदन को भेजीं। मदन ने उन्हें कलकत्ता आकर बातचीत करने को कहा। कलकत्ता आने पर उनकी मुलाकात पहले मदन के जनरल मैनेजर एन. सी. लाहिरी तथा अन्य धनी मित्र से हो गई। तीनों ने मिलकर इंडो- ब्रिटिश फिल्म की स्थापना की और एक व्यंग्य फिल्म 'इंग्लैण्ड रिटर्न्ड' (विलातफेरात) 1921 में बनाई। स्वयं धीरेन ने अँगरेजों की अंधी नकल तथा हर भारतीय चीज का तिरस्कार करने वाले नायक की भूमिका की। यह फिल्म कलकत्ता के उस एक मात्र सिनेमाघर में प्रदर्शित हुई, जिसके मालिक मदन नहीं थे। इस फिल्म को वहाँ तथा बंबई में तत्काल सफलता मिली। मदन ने भी जब देखा कि फिल्म अच्छी है, तो उन्होंने उसके कलकत्ता के बाहर के वितरण अधिकार खरीद लिए। इंडो- ब्रिटिश ने दो फिल्में और बनाई और फिर यह भागीदारी खत्म हो गई। धीरेन अपने टेक्निशियनों के साथ हैदराबाद लौट गए। वहाँ उन्होंने दो सिनेमा- हाल तथा एक प्रयोगशाला स्थापित की और लोटस फिल्म कंपनी के झंडे तले, निजाम के संरक्षण में 1923-27 के बीच दस फिल्में बनाईं। लेकिन जब ग्यारहवीं फिल्म 'रजिया सुल्तान' बनी, तो सांप्रदायिक एकता का उच्च आदर्श प्रदर्शित करने वाली इस फिल्म (जिसमें मुस्लिम मलिका एक हिन्दू युवक से मोहब्बत करती है।) से निज़ाम नाराज हो गए और उन्हें चौबीस घंटे के भीतर हैदराबाद से बाहर चले जाने की आज्ञा दी। कलकत्ता लौटकर धीरेन ने ब्रिटिश डोमिनियन फिल्म कंपनी की स्थापना की और बाजार में रूमाल बेचते देवकी बोस से उनकी मुलाकात हुई। जमींदार खानदान के देवकी बोस ने गाँधीजी के आह्वान पर कॉलिज की पढ़ाई छोड़ दी थी और रूमाल बेचकर अपना गुजारा कर रहे थे। खाली समय में वे राष्ट्रीय पत्रिका 'शक्ति' का संपादन भी करते थे। देवकी बोस ने गांगुली की पहली फिल्म 'फ्लेम्स ऑफ फ्लश' की पटकथा लिखी तथा अगली फिल्म 'पंचशर' (1929) का निर्देशन भी किया। इस फिल्म को उन्होंने एक ऐसी संवेदनशीलता तथा मानवीय प्रतिबद्धता से आपूरित किया जो आगे चलकर बंगाली फिल्मों की विशिष्टता बन गई। ब्रिटिश डोमिनियन कंपनी ने ही दिनेश रंजन दास प्रमथेश बरूआ तथा कृष्ण गोपाल जैसी आदर्शवादी विचारधारा को बढ़ावा देने वाली प्रतिभाओं को भी पहली बार मौका दिया।

स्टूडियो प्रणाली तेजी से बढ़ते औद्योगीकरण के चलते बंबई में आदर्शवाद की ज्यादा गुंजाइश नहीं थी। वहाँ के फिल्म निर्माता मोटा मुनाफा भी अर्जित करना चाहते थे। इसीलिए वहाँ ठेठ हॉलिवुड शैली के स्टूडियो (जिन्हें वास्तव में तब फैक्ट्रियाँ ही कहा जाता था) की स्थापना होने लगी। द्वारकादास संपत, मानेकलाल पटेल, भोगीलाल दवे तथा आर्देशिर ईरानी ने बंबई में जो फिल्म निर्माण का आधारभूत ढाँचा खड़ा किया वह आने वाले कई दशकों तक बरकरार रहा।

इस युग के अभिनेता और अभिनेत्रियों ने भी अपने आप को हॉलिवुड के सितारों जैसे लहजे और चाल- ढाल में ढाला। अभिनेत्रियाँ ज्यादातर एंग्लो इंडियन थीं, जो आँखें मिचमिचाती हुई अधखुले ओठों के साथ शार्कस्किन के सूट और फैल्ट हैट पहने नायकों की बाहों में समा जाती थीं। 1925 में डगलस फेयर बैंक्स अभिनीत **'थीफ ऑफ बगदाद'** की जब सारे देश में सफलता मिली, तो एक देशी फेयर बैंक्स की तलाश शुरू हुई। कोल्हापुर के गठीले बदन वाले **मास्टर विट्ठल** को इस रूप में पेश किया गया। उनके अलावा गणपत बाकरे, राजा सैंडो तथा जाल मर्चेंट भी यही सब करते रहे। अभिनेत्रियों में प्रमुख थीं- सुलोचना, जुबैदा तथा गौहर। वी. शांताराम तथा महबूब खाँ इन दिनों बड़े कठिन रास्ते पर चलते हुए इस माध्यम की बारीकियाँ पकड़ने में लगे हुए थे।

फिल्म निर्माण में सबसे बड़ी योग्यता इस दौर में कम से कम समय में फिल्म पूरी कर लेना माना जाता था। सही तारीख पर 'पिक्चर' पूरी करने में चंदूलाल शाह का कोई मुकाबला नहीं था। 'मिस गौहर' के साथ उन्होंने टिकट खिड़की पर सफल सामाजिक फिल्मों का ढेर लगा दिया। 'टाइपिस्ट गर्ल, 'गुण सुंन्दरी', 'एजुकेटेड वाइफ' तथा 'सुन्दरी ऑफ सिंध' जैसी फिल्मों ने मध्यम वर्ग के दर्शकों को खूब आकर्षित किया।

उन दिनों फिल्म कला और उसकी कारीगरी (शिल्प) सिख लाने के लिए कोई स्कूल नहीं थे। जो भी उत्साही युवक इस क्षेत्र में आते थे उन्हें 'पीर- बावर्ची, भिश्ती खर' के रूप में ठेठ निचली सीढ़ी से शुरूआत कर प्रशिक्षुओं के रूप में सारे पापड़ बेलने पड़ते थे। पौराणिक कथाएँ 'स्पेशल इफॅक्ट वाले' कैमरामैन के सामने नित नई चुनौतियाँ पेश करती थीं। पौराणिक कथाओं के विषय तो सदाबहार होते हैं तथा उन पर फिल्में लगातार बनती रहीं। बहरहाल सन् 1913 से 1923 के बीच बनने वाले कथा चित्रों में से अधिकांश पौराणिक ही थे। इस विषय की लोकप्रियता का उल्लेख करते हुए अग्रणी फिल्म निर्माता, निर्देशक जे. बी. एच. वाडिया अपने संस्मरणों में लिखते हैं कि सन् 1917 में जब उन्होंने दादा साहब फालके की 'लंका दहन'
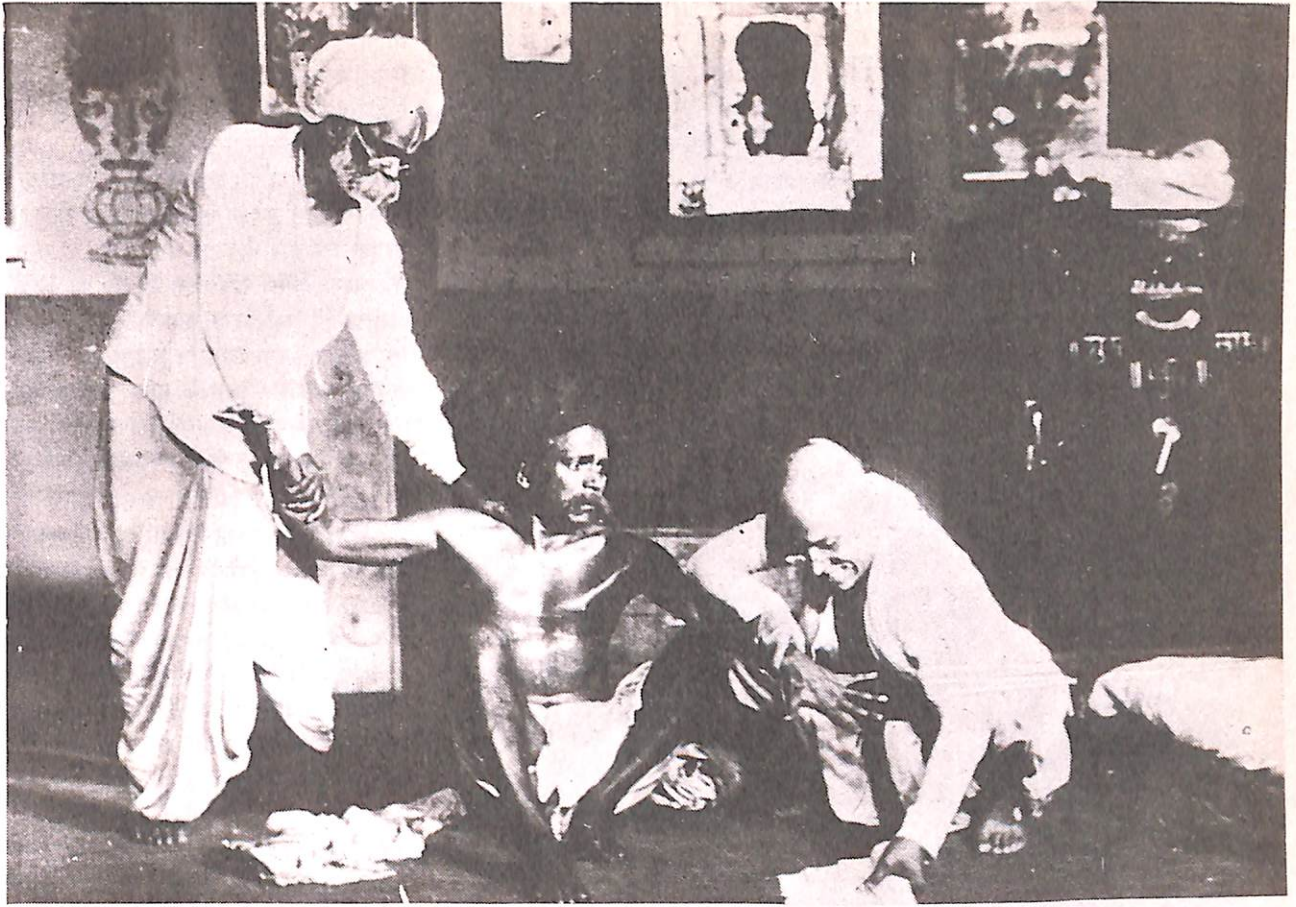
साहूकारी पाश (१९२५)

देखी, तो वे उसमें हनुमान द्वारा लंका को जलाए जाने का दृश्य जीवनभर नहीं भूल पाए। जबकि उसके साथ ही दिखलाई गई हॉलिवुड की एक फिल्म का उन्हें नाम तक याद नहीं रहा। "ज्यों-ज्यों हनुमान आकाश में ऊपर उठते जाते थे। उनकी आकृति क्रमशः छोटी होती जाती थी और 'ट्रिक' फोटोग्राफी के दादा जलती हुई लंका का जो दृश्य दिखलाया गया था। वह देख दर्शक दाँतों में उँगली दबा लेते थे। मुझे याद है, वाडिया लिखते हैं, "बंबई के गिरगाँव इलाके में स्थित वेस्ट एंड सिनेमा के बाहर उन श्रद्धालु ग्रामवासियों की सैकड़ों बैलगाड़ियाँ खड़ी रहती थीं, जो 'भगवान राम' के दर्शन करने दूर-दूर से आते थे और दूसरे दिन फिर 'लंका दहन' देखने के लिए अपनी बैलगाड़ियों में ही रात गुजार देते थे। बहरहाल, चर्चा इन प्रारंभिक मूक फिल्मों की तकनीक की कर रहे थे और इस सिलसिले में, पश्चिम भारत में सर्वोपरि नाम बाबूराव पेंटर का था।

बाबूराव पेंटर : अग्रदूत की हैसियत से दादा साहब फालके के योगदान को जरा भी कम न आँकते हुए कहना होगा कि उनके शिष्य बाबूराव पेंटर कई मामलों में अपने गुरू से आगे निकल गए। कोल्हापुर की महाराष्ट्र फिल्म कंपनी में उन्होंने फालके से इस धंधे के जो भी गुर सीखे थे उन्हें उन्होंने कभी छुपाया नहीं। उनके ही तीन शिष्यों शांताराम, दामले तथा तथा फत्तेलाल ने आगे चलकर पुणे में प्रभात स्टूडियो की स्थापना की। तकनीक के उस्ताद बाबूराव की फिल्मों में सामाजिक व राष्ट्रीय सरोकारों को भी उपेक्षित नहीं किया गया था। सन् 1924 में पेंटर ने शिवाजी के जीवन की एक घटना पर आधारित 'कल्याण खजीना' नामक फिल्म बनाई थी। उसमें शिवाजी के सैनिकों द्वारा पकड़कर लाई गई एक मुस्लिम युवती को ससम्मान मुक्त किया जाता है। बाद में इसी विषय को उन्होंने बोलती (सवाक) फिल्म के द्वारा भी प्रस्तुत कर उसमें हिन्दू- मुस्लिम एकता की भावना को रेखांकित किया। लेकिन बाबूराव अपनी कला के चरमोत्कर्ष पर पहुँचे। 1925 में बनी 'साहूकारी पाश' के द्वारा ग्यारह वर्ष बाद उन्होंने इसी फिल्म को फिर टॉकी के रूप में बनाया। भारतीय किसान की ऋण ग्रस्तता तथा रक्त शोषक साहूकार के चित्रण को अमर कर दिया था। इसी फिल्म में एक मौत के बाद झोपड़ी के बाहर सिर ऊँचाकर रूदन करते कुत्तों का जो दृश्य था, उससे वाडिया इतने प्रभावित हुए कि जब उनसे एक व्याख्यान में छः श्रेष्ठ टॉकी फिल्मों के नाम लेने को कहा गया, तो उन्होंने सबसे पहले बाबूराव पेंटर की 'साहूकारी पाश' का ही नाम लिया। वाडिया के अनुसार बाबूराव भारतीय फिल्मों की पहली मौलिक प्रतिभा और निर्देशकों के निर्देशक थे।

सेठ द्वारकादास नारायणदास संपत और कोहीनूर स्टूडियो:

बंबई के कोहीनूर स्टूडियो के मालिक द्वारकादास नारायणदास संपत कांग्रेस के चवन्नी सदस्य भी थे। सन् 1921 में उन्होंने 'भक्त विदुर' नामक फिल्म बनाई। मूक फिल्में धार्मिक और पौराणिक विषयों से मुक्त अब भी नहीं हुई थीं और इसका एक कारण यह भी था कि राष्ट्रीय भावना तथा आजादी से संबंधित विचार भी उस जमाने में इन्हीं के माध्यम से व्यक्त किए जाते थे। 'भक्त विदुर' की शीर्ष भूमिका स्वयं सेठ द्वारकादास ने की थी। ऊँचे पूरे द्वारकादास ने अपनी वेशभूषा हू-बहू गाँधीजी जैसी रखी। परिणाम स्वरूप राजनीतिक आधार पर फिल्म प्रतिबंधित कर दी गई। बड़ी मुश्किल से थोड़े बहुत रद्दोबदल के बाद वह कुछ ही स्थानों पर प्रदर्शित की जा सकी। जहाँ भी दिखलाई गई उसे भारी सफलता मिली। सन् 1924 में कोहीनूर ने 'काला नाग' उर्फ 'ट्रायंफ ऑफ जस्टिस' यानी 'कलियुग की सती' फिल्म प्रदर्शित कर सनसनी पैदा कर दी।

कल्याण खजीना (१९२४)

इस फिल्म का निर्देशन होमी मास्टर ने किया था और उन्हीं ने प्रमुख पात्र का अभिनय भी किया। इस फिल्म की कहानी एक सच्ची घटना पर आधारित थी, जिसमें एक युवक हरिदास चाप्सी पर एक युवती की हत्या के आरोप पर मुकदमा चल रहा था। इस फिल्म में होमी मास्टर ने 'काला नाग' का अभिनय इतना बढ़िया किया था कि उन्हें बाद में काफी समय तक इसी नाम से पुकारा जाता रहा। इस फिल्म का जिक्र इसलिए भी यहाँ किया गया है कि इससे मूक युग की उस प्रथा का पता चलता है, जिसके अनुसार एक ही फिल्म के तीन- तीन शीर्षक (अँगरेजी, हिन्दी तथा मराठी या गुजराती में) दिए जाते थे। फिल्म के उप- शीर्षक (टायटिल कार्ड) भी इतनी ही भाषाओं में होती थीं।

मूक फिल्मों की कहानी को और आगे बढ़ाने के पूर्व कोहीनूर स्टूडियो के बारे में जे. बी. एच. वाडिया, जिन्होंने फिल्म निर्माण की बारहखड़ी यहीं सीखी, के शब्दों में जानना दिलचस्प होगा। बंबई के दादर स्थित 'कोहीनूर' को उन दिनों भारत का हॉलिवुड कहा जाता था। बीस के दशक के उत्तरार्द्ध में उसकी वही स्थिति थी, जो तीस और चालीस के दशक में एम. जी. एम. की थी। इसी स्टुडियो में गौहर बाई, सुलोचना, पुतली बाई, पन्ना, हीरा, मोती, जिल्लो बाई, जुबैदा, सुल्ताना, शहजादी, खलिल, राजा सेन्डो, बहराम जैसे सितारे तथा चंदूलाल शाह, नारायण देवरे, मोहन भावनानी, मणिलाल जोशी, होमी मास्टर जैसे निर्देशक, नंदलाल जसवंत लाल, जे. एस. देवरे, वी. एम. व्यास जैसे कैमरामैन तथा मोहनलाल गोपालदास दवे तथा शैदा जैसे लेखक भारतीय मूक फिल्मों का इतिहास सेठ द्वारकादास नारायणदास संपत के संरक्षण में निर्मित कर रहे थे। संपत को ही व्यावसायिक फिल्मों की समूचे भारत में लोकप्रिय बनाने का श्रेय जाता है और वे सही मायने में बंबई के फिल्म उद्योग के जनक थे। वे पशु- पक्षियों के प्रेमी थे और उनका सबसे प्रिय- प्राणी उनका पालतू चीता था, जिसे देख अक्सर उनके मुलाकाती चौंक पड़ते थे। जे. बी. एच. की पहली फिल्म 'बंसत लीला' के निर्माण के दौरान उन्होंने उनकी जो भी मदद की थी, उसे वाडिया भूले नहीं और जब सारा उद्योग उन्हें भुला चुका था तब वाडिया मूव्हीटोन की रजत जयंती के अवसर पर उन्होंने उन्हें ससम्मान आमंत्रित कर मंच पर बैठाया था।

मूक युग के प्रथम दशक के दौरान निर्मित फिल्मों, उनके विषयों, निर्माण स्थलों (जिन्हें

तब वाकई कारखाना कहा जाता था) तथा बिंदास माहौल के कुछ बहुत ही जीवंत दृश्य जे. बी. एच. वाडिया ने अपने संस्मरणों में खींचे हैं। आगे के दशक (जिसके समाप्त होते- होते टॉकी (सवाक) फिल्मों का आगमन हो चुका था।) का सफर जारी करने के पूर्व मूक फिल्मों के इन कुछ पहलुओं पर एक नजर डालना मौजू होगा।

"ना कोई बंदा था न बंदा नवाज"

समूचे मूक फिल्म युग तथा द्वितीय विश्व युद्ध पूर्व तक की बोलती फिल्मों के जमाने तक भी निर्माता और उसके कर्मचारियों (जिनमें स्टार भी शामिल थे) के बीच पूरी तरह भाई- चारे की भावना रहती थी। वे सभी वेतनभोगी होते थे और केवल उसी के लिए काम करते थे। आजकल की 'फ्री लांस' प्रणाली का तब किसी ने नाम भी नहीं सुना था। हर फिल्म कंपनी एक परिवार की तरह होती थी। निर्देशक, नायक तथा नायिका भी सेट पर शारीरिक श्रम द्वारा भी मदद करते थे। श्रम की गरिमा सभी के लिए थी। जिस समय फिल्म निर्माण चल रहा होता था, 'न कोई बंदा था न कोई बंदा नवाज।'

फायदे 'ध्वनि' के न होने के

फिल्म निर्माण या शूटिंग के दौरान 'ध्वनि' न होने से काम बड़ी फुर्ति से होता था। निर्देशक अभिनेताओं को 'सीन' के चलते लगातार, चीख- चीखकर मजे से हिदायतें देता था। 'साइलेंस' चिल्लाने की कोई जरूरत नहीं होती थी। निर्देशक ही नहीं बल्कि कैमरामैन या कोई भी अन्य व्यक्ति जो 'शॉट' में दिलचस्पी ले रहा होता था, चिल्लाकर हिदायतें दे देता था। इसका नतीजा यह होता था कि जहाँ 'टेक' के पूर्व सेट पर 'अमन- चैन' होता था। कैमरा चालू होते ही वहाँ एक तरह से कयामत टूट पड़ती थी। इस माहौल में आठवाँ आश्चर्य यह होता था कि कलाकार अपना संतुलन नहीं खोते थे। वे पूरी एकाग्रता से अपने चेहरों पर वांछित उतार- चढ़ाव लाते रहते थे। यहाँ तक कि यदि नायक और नायिका में किसी कारण से अनबन होती थी और उन्हें यदि किसी प्रणय दृश्य का अभिनय करना होता था, तो नायक, नायिका से 'प्रिये मैं तुमसे प्यार करता हूँ' कहने के बजाए यह भी कह देता था 'चुड़ैल, मैं तुमसे नफरत करता हूँ' या नायिका भी नायक से कह देती थी "नामुराद, तू जहन्नुम में जाए।" मगर मजे की बात यही थी कि बाद में परदे पर जब वह दृश्य आता था तो वे 'एक- दूसरे के प्यार में पागल तोता- मैना' ही नजर आते थे।
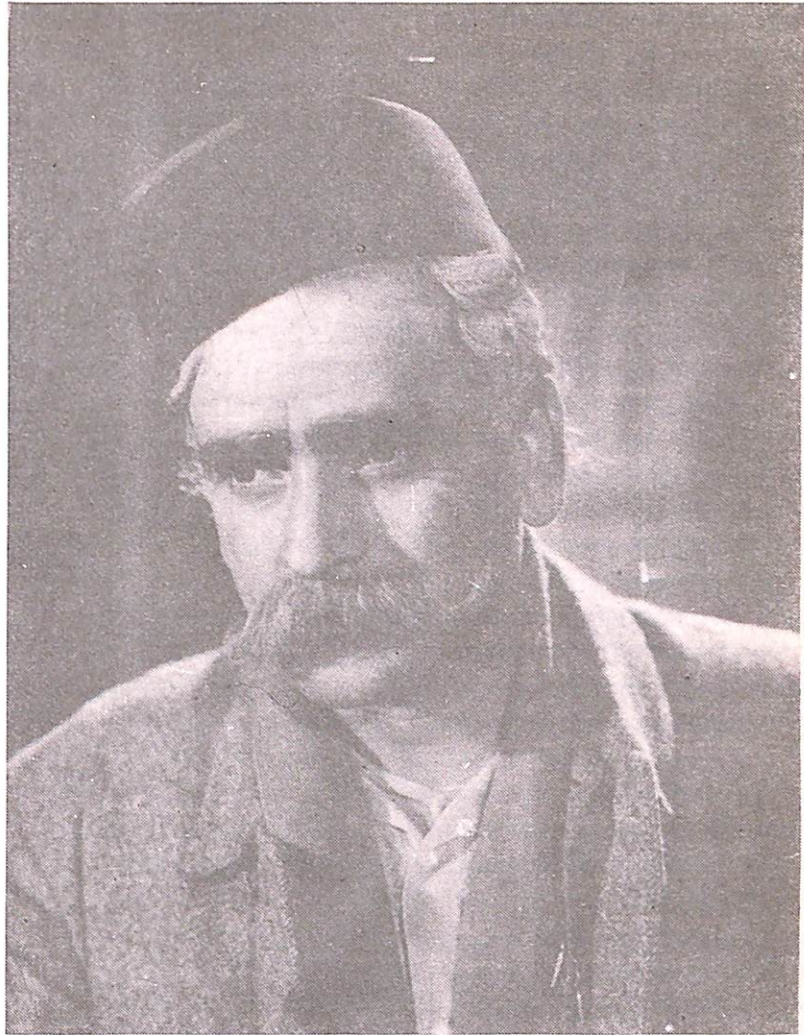
मूक फिल्में और सेंसरशिप

ब्रिटिश सरकार ने जहाँ अपने देश में फिल्मों में 'नग्नता' और ईसा- मसीह का चेहरा दिखलाने पर प्रतिबंध लगाया वहीं भारत के अर्द्धशिक्षित लोगों के सामने पश्चिमी सभ्यता की गलत तस्वीर पेश करने वाली अमेरिकी फिल्मों को प्रतिबंधित करने के लिए 1917 का सेंसरशिप अधिनियम पारित कर सेंसर बोर्ड की स्थापना कर दी। भारत की ओर से इसका विरोध किया गया, क्योंकि इन बोर्डों की नीति एक जैसी नहीं थी (एक क्षेत्र में तो फिल्म प्रमाणित कर दी जाती थी, लेकिन अन्यत्र उसे या तो रोक दिया जाता था या उसमें बुरी तरह काट- छाँट कर दी जाती थी।) जहाँ नियम यह था कि बलात्कार, नारी- नग्नता तथा वेश्यावृत्ति के दृश्य नहीं दिखलाए जाएँगे, वहीं मुख्य पूर्व आग्रह राजनीतिज्ञ थे। 'भक्त विदुर' नामक फिल्म को इसलिए पास नहीं किया गया कि उसमें विदुर की पोशाक गाँधीजी जैसी दर्शाई गई थी। ब्रिटिश सरकार की शिक्षा नीतियों की आलोचना करने वाली फिल्म 'वंदेमातरम् आश्रम' (1927) को भी प्रतिबंधित कर दिया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद तो गाँधी या अन्य कांग्रेसी नीतियों का परोक्ष रूप से भी उल्लेख करने वाले दृश्य काट दिए जाने लगे। लेकिन कई भारतीय निर्माता बड़ी चतुराई से स्थानीय लोककथाओं का उपयोग करते हुए ब्रिटेन विरोधी भावनाओं को व्यक्त करने में सफल हो जाते थे। के. सुब्रमण्यम की फिल्म 'मान संरक्षणम्' युद्ध प्रचार की फिल्म बतलाई गई थी, लेकिन उसमें उन्होंने- जापान विरोधी संवादों के बीच ब्रिटेन विरोधी भावनाएँ भी शामिल कर दी थीं।

सेक्स चलेगा : नेता नहीं

सन् 1917 तक सेंसर कोड जैसी कोई चीज नहीं

थी, कौन- सी फिल्म प्रदर्शन योग्य है और कौन- सी नहीं यह तय करने का अधिकार पुलिस आयुक्त को था। यदि राजनीतिक रूप से आपत्तिजनक कोई बात फिल्म में नहीं होती थी, तो उसकी तरफ से कोई हस्तक्षेप नहीं होता था। हॉलिवुड के असर के कारण मूक फिल्मों में चुंबन, आत्मीय प्रणय दृश्यों तथा अंग- प्रदर्शन का भरपूर इस्तेमाल किया जाता था। उस जमाने की एक फिल्म में ललिता पवार को नायक को बेझिझक ओठों पर चूमते देखा जा सकता था। कलकत्ता के मदन थियेटर्स ने 1922 में जो 'पति भक्ति' फिल्म बनाई थी, उसमें खल नायिका का अभिनय 'भरी- पूरी' इतालवी अभिनेत्री सिनोश मिनैली ने किया था तथा ऐसी उत्तेजक पोषाखें पहनी थीं, जिन्हें बाद में अशोभनीय माना गया था। 'अ थ्रो ऑफ डायस' में भी चारू रॉय ने सीता देवी के ओठों का चुंबन किया था।

इन दिनों न तो दर्शकों को, न उनके नेताओं को इन दृश्यों में नैतिक दृष्टि से कुछ आपत्तिजनक लगता था। वे फिल्मों को मनोरंजन का साधन मानते हुए इन दृश्यों को सहज भाव से लेते थे और वे थियेटरों में अपनी पत्नियों और पुत्रियों के साथ ही इन फिल्मों को देखते थे, जबकि आजकल की फिल्मों में वास्तविक चुंबन के दृश्य न होते हुए भी अनेक दृश्य फूहड़ और भद्दे होते हैं कि उन्हें परिवार के साथ नहीं देखा जा सकता।

फिल्म विधाएँ :

प्रारंभ से लेकर वर्ष 1933 तक जो कुल 1250 मूक फिल्में बनीं उनका गहराई से अध्ययन करने पर यह दावा किया जा सकता है इन्होंने लोगों के मन में उनकी धर्मकथाओं, इतिहास, साहित्य तथा सामाजिक समस्याओं के प्रति दिलचस्पी जगाने में उत्प्रेरक का काम किया। इतना ही नहीं स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जनता का मनोबल बनाए रखने में भी उन्होंने अपना योगदान किया।

सन् 1923 के पूर्व बनने वाली अधिकांश फिल्में पौराणिक तथा आख्यानों पर आधारित थीं। उन्होंने भारत की प्राचीन विरासत के प्रति जहाँ लोगों में दिलचस्पी पैदा की वहीं उन्हें संतों के जीवन तथा शिक्षाओं से भी परिचित करा गया। अधिकांश लोग अब भी धार्मिकता में ढले थे। इन फिल्मों को देख उन्हें एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक संतोष भी प्राप्त होता था। (शायद, आधी सदी बाद सही काम दूरदर्शन पर प्रसारित 'रामायण' तथा 'महाभारत' धारावाहिकों ने भी नई पीढ़ी के लिए किया है।)

ऐतिहासिक फिल्मों ने अशोक, चंद्रगुप्त तथा हर्षवर्द्धन से लेकर अकबर तथा शिवाजी तक के युग की यशस्वी गाथाओं को परदे पर प्रस्तुत किया। पेशवाओं तथा राजपूतों की शौर्यगाथाओं ने स्वतंत्रता संग्राम के उन जोशीले दिनों में परोक्ष रूप से लोगों में राष्ट्रीयता तथा आत्म- सम्मान की भावनाएँ भरीं। जहाँ तक राष्ट्रीय भावनाएँ तथा स्वतंत्रता की भावना का सवाल है। इन्हें जगाने में हमेशा से बदनाम की जाती रही 'स्टंट' (मारधाड़ वाली) फिल्मों ने भी अपना जो योगदान किया उसे नकारा नहीं जा सकता। आजकल की एक्शन फिल्मों के विपरीत उस जमाने की 'स्टंट' फिल्मों में कई सकारात्मक मूल्यों को भी प्रस्तुत किया जाता था। इन फिल्मों में हिन्दू- मुस्लिम एकता, छुआछूत उन्मूलन तथा स्वतंत्रता जैसे विषयों पर भी सार्थक टिप्पणियाँ होती थीं।

'सामाजिक' फिल्मों के माध्यम से भी कई प्रगतिशील बल्कि क्रांतिकारी विचारों को बढ़ावा दिया जाता था। इनमें भी नारी- शोषण के विरोध, उन्हें समाज में समानता एवं सम्मान का दर्जा देने, अछूतों के साथ न्याय करने तथा सांप्रदायिक सद्भाव आदि विषयों को बेहिचक प्रस्तुत किया जाता था। जहाँ तक राजनीतिक विषयों का संबंध था, ब्रिटिश सरकार स्वतंत्रता की अमूर्त हिमायत पर तो एतराज नहीं करती थी, लेकिन साम्राज्य के विरुद्ध बगावत का खतरा पैदा करने वाले विचारों को बरदाश्त नहीं किया जाता था। कुल मिलाकर एक बात मूक फिल्मों के बारे में निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि मनोरंजन का पलड़ा भारी होने के बावजूद उनमें सामाजिक या शैक्षिक सरोकारों को भी पूरी तरह नजरंदाज नहीं किया जाता था। इस मामले में मूक फिल्मों का यह यशस्वी युग मनोरंजन और समाज शिक्षण के बीच आज की व्यावसायिक फिल्मों की अपेक्षा कहीं बेहतर संतुलन स्थापित कर सका था।

उत्तरार्द्ध

कोनिनूर स्टुडियो ने 1926 में सिनेमा क्विन या 'लव्ज सैक्रिफाइस' नाम की जो फिल्म बनाई, उसकी नायिका एक यहूदी अभिनेत्री रुबी मायर्स थी। सुलोचना के नाम से परदे पर चमकने वाली यह अभिनेत्री पहली स्टार थी और उसकी यह हैसियत आगे सवाक फिल्मों के आने के बाद भी बरकरार रही। अपने तीखे नैन- नक्शों तथा बाँकी चितवन तथा भरपूर बदन के कारण वह हर कैमरामैन की पहली पसंद थी। उसे किसी भी कोण से फिल्माने पर सेल्यूलाइड पर उसकी खूबसूरती कई गुना बढ़ कर ही उभरती थी। सुलोचना की अन्य उल्लेखनीय मूक फिल्में थी 'टेलिफोन गर्ल', 'माधुरी' तथा 'अनारकली'।

उन्नीस सौ छब्बीस का वर्ष एक अन्य फिल्म के कारण भी यादगार बन गया था। इसी वर्ष हिमांशु रॉय ने भारत- जर्मन संयुक्त निर्माण में 'लाइट ऑफ एशिया' नामक फिल्म बनाई। बुद्ध के जीवन पर आधारित इस फिल्म में हिमांशु रॉय के साथ सीता देवी (असली नाम रैनी स्मिथ) और मधु बोस थे। फिल्म का निर्देशन जमीन फ्रेंज ऑस्टिन ने किया था। मधु बोस स्वयं भी एक अच्छे निर्देशक थे और उनकी सुसंस्कृत पत्नी साधना बोस मणिपुरी शैली की निपुण नृत्यांगना थीं। स्वयं नृत्य कराने के अलावा साधना नृत्य निर्देशन भी करती थीं। इन दो कलाओं के बल पर साधना बोस भी आगे चलकर 'स्टार' अभिनेत्री बनीं। मधु तथा साधना बोस ने मिलकर जे. बी. एच. वाडिया की कंपनी वाडिया मूव्हीटोन के लिए बाद में भारत की पहली संपूर्ण अँगरेजी फिल्म 'कोर्ट डांसर' केवल भारतीय तकनीशियनों तथा कलाकारों की मदद से बनाई थी।

रंजीत स्टुडियो

उन्नीस सौ छब्बीस के साल में चंदूलाल शाह ने गौहरजान को प्रमुख नायिका की भूमिका में लेकर दो गुजराती फिल्में 'भणेली भामिनी' और 'गुण सुंदरी' बनाई। चंदूलाल शाह जो कि आगे चलकर फिल्म उद्योग के सरदार बने गौहरबाई के साथ मिलकर ऐसी अनेक अलग हट कर सामाजिक फिल्में बनाईं, जो नारी को अपनी आजादी के लिए संघर्ष करती प्रस्तुत करती थीं। बाद में चंदूलाल शाह ने अपनी खुद की रंजीत फिल्म कंपनी स्थापित की और गौहर के साथ सार्थक तथा प्रगतिशील विचारों की मूक तथा सवाक फिल्में बनाईं। इनमें सबसे ज्यादा उल्लेखनीय 'अछूत' फिल्म थी।

इसी वर्ष नवल गाँधी नामक एक साहसी युवक ने 'सेक्रिफाइस' (बलिदान) फिल्म बनाई, रवीन्द्रनाथ ठाकुर की लघु नाटिका पर आधारित इस फिल्म को उस युग की 'मल्टी स्टार' फिल्म कहा जा सकता है, क्योंकि उसमें जुबैदा सुलोचना, मास्टर विट्ठल तथा धर्मगुरू की भूमिका में जाल खंबाटा थे। जाल उस युग में भारत में शेक्सपियर के नाटकों के सबसे निपुण मंच कलाकार माने जाते थे।

बंगाल : सामाजिक फिल्में

कलकत्ता में अमित बोस द्वारा निर्देशित 'कृष्णकांतेर विल' (कृष्णकांत की वसीयत) के

साथ बेहतर सामाजिक फिल्मों की शुरूआत हुई। इसी श्रेणी की एक अन्य फिल्म 'चंडीदास' थी, जो भगवान कृष्ण के एक अछूत भक्त के जीवन पर आधारित थी। यही फिल्म बाद में बी. एन. सरकार ने नितिन बोस के निर्देशन में सवाक फिल्म के रूप में 1934 में फिर बनाई और सहगल के अभिनय तथा गीतों ने उसे यादगार बना दिया था। कलकत्ता में ही मदन ने पी. एन. गांगुली के निर्देशन में 'कपाल कुंडला (1929) बनाई। पेशेंस कपूर अभिनीत यह फिल्म कलकत्ता में लगातार 25 हफ्ते चली तथा इसे भारत की पहली रजत जयंती मनाने वाली फिल्म होने का श्रेय प्राप्त है। बंगाल की ही प्रतिभा हिमांशु रॉय ने 1930 में भारत की दूसरी अंतरराष्ट्रीय फिल्म भारत- ब्रिटिश- जर्मन संयुक्त उपक्रम के रूप में बनाई। महाभारत की एक कथा पर आधारित 'अ थ्रो ऑफ डाइस' (पांसे का खेल) में फिर हिमांशु रॉय तथा सीता देवी ने अभिनय किया तथा उसका निर्देशन फ्रेंज ऑस्टेन ने किया।

इसी वर्ष (1930) में पुणे की प्रभात फिल्म्स ने एक यादगार फिल्म 'उदयकाल' (थंडर ऑफ द हिल्स) प्रदर्शित की। वी. शांताराम ने निर्देशन के अलावा शिवाजी महाराज की शीर्षक भूमिका भी की। इसी वर्ष मोहन भावनानी ने फिल्म क्षेत्र में तीन ऐसी शिक्षित सुसंस्कृत महिलाओं को पेश किया, जो अपनी विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों के कारण समाज में पहले से सुपरिचित थीं। ये थीं कमलादेवी चट्टोपाध्याय, नलिनी तरखड़ तथा खुद भावनानी की पत्नी इनाक्षी रामाराव।

वाडिया-बंधु :

मूक फिल्मों की यह कथा जे. बी. एच. वाडिया तथा होमी वाडिया के योगदान का उल्लेख किए बगैर पूरी नहीं हो सकती। दरअसल मूक युग की कीर्ति कथा का सुव्यवस्थित रोचक वृतांत हमें जमशेद यानी वाडिया बंधुओं में वरिष्ठ के संस्मरणों से ही प्राप्त होता है। पहले ईस्ट इंडिया कंपनी तथा बाद में भारत (ब्रिटिश) सरकार के लिए जलयानों का निर्माण करने वाले लवजी वाडिया के पुत्र जमशेद ने अँगरेजी साहित्य में बी. ए. ऑनर्स तथा अवेस्ता पहलवी में एम. ए. किया तथा आई. सी. एस. की भी जोर- शोर से तैयारी की। लेकिन जब कमजोर आँखों के कारण उन्हें उसके लिए शारीरिक रूप से अयोग्य करार दे दिया गया तो बंबई के सेंट जेवियर कॉलिज में प्रोफेसर हो गए। लेकिन वाडिया को फिल्म तथा खासतौर से फिल्म लेखन आकर्षित कर रहा

मूक युग की सुन्दरी : गौहर मामाजीवाला

था। पारसी परंपराओं का विरोध कर फिल्म पटकथा लेखन के साथ उन्होंने फिल्मों के मूक युग के अंतिम चरण यानी 1922 में कोहिनूर कंपनी के माध्यम से इस क्षेत्र में प्रवेश किया। बहुमुखी प्रतिभा और व्यक्तित्व के धनी जमशेद वाडिया की पहली फिल्म 'बसंत लीला' थी। वे अभी संघर्ष ही कर रहे थे कि उनके छोटे भाई होमी ने भी घोषणा कर दी कि वे अपने भाई के साथ फिल्मों में ही अपनी तकदीर आजमाएँगे। काफी पारिवारिक विरोध के बाद जमशेद को अपने छोटे भाई को भी कैमरामैन की हैसियत से अपने साथ लेना पड़ा। कोहिनूर के लिए ही जे. एम. देवरे के निर्देशन में उनकी पटकथा पर आधारित फिल्म बनी 'बांडेज' यानी 'प्रतिज्ञा बंधन' उर्फ 'अफलातून अबला' वाडिया की वास्तविक रूप से स्टंट फिल्म के रूप में प्रचारित इस ढंग की पहली फिल्म थी 'थंडर बोल्ट' (दिलेर डाकू)। जैसा कि बतलाया जा चुका था जे. बी. एच. के कनिष्ठ भ्राता होमी उनके साथ शामिल हो चुके थे। 'दिलेर डाकू' की कथा, पटकथा तथा सिनेमेटोग्राफी का श्रेय होमी वाडिया को दिया गया था। मात्र दस शिफ्टों में फिल्माई गई इस फिल्म की प्रेरणा हॉलीवुड की सफल फिल्म 'मार्क ऑफ़ जोरो' से ली गई थी और उसमें 'रॉबिनहुड' (अमीरों को लूटकर गरीबों का भला करने वाला किंवदंती पात्र) के भी कुछ तत्व थे।

'एक्शन' और साहसिक कारनामों से भरपूर वाडिया बंधुओं की अगली फिल्म भी हालीवुड से प्रेरित थी। जे. एफ. मैकगोवन तथा उनकी पत्नी हैलन मैकगोवन द्वारा निर्मित रेलगाड़ियों पर बनी रोमांचकारी फिल्मों से प्रेरित 'तूफान मेल' एवं सिग्नल कैबिन मैन तथा एक सेवानिवृत्त स्टेशन मास्टर की बेटी की इस प्रेमकथा में नायक ट्रेन लुटेरों की कोशिश को नाकामयाब करता है। इस फिल्म की खासियत यह थी कि इसमें चलती रेलगाड़ी पर कई सनसनी खेज वास्तविक आउट डोर शॉट्स लिए गए थे। इन फिल्मों के अलावा वाडिया ने 'लायन मैन' (सिंह गर्जना' 1932)व्हिर्लविंड (बेटोलियो, 1933) तथा 'द अमेजान' (दिलरुबा डाकू' 1933) जैसी मूक फिल्में भी बनाई। इस समय तक तो 'टॉकी' का आगमन हो चुका था और 'दिलरुबा डाकू' के द्वारा वाडिया ने अपनी नादिया जान काव्स की उन हैरत अंगेज स्टंट फिल्मों का पूर्वाभास दे दिया था, जो आगे चलकर किंवदंती स्टार जोड़ी बन गई।

धारावाहिक फिल्में

मूक युग में स्टंट फिल्मों के बाहुल्य का बचाव इसी आधार पर किया जाता है कि उन दिनों ध्वनि, संवाद तथा संगीत यानी आधुनिक काल की 'टॉकियों' के तीन सबसे ज्यादा आकर्षक घटकों के न होने पर दर्शकों को बाँधे रखने के लिए दो ही तत्व महत्वपूर्ण हो जाते थे। कहानी तथा 'चल' चित्र होने के नाते 'एक्शन' की भरपूर गुंजाइश। पौराणिक फिल्मों में भी इन दोनों तत्वों का समावेश आसानी से होता था और यही सुविधा 'स्टंट' फिल्मों में भी रहती थी। तीसरे, भारतीय मूक फिल्मों पर भी हालीवुड का असर प्रारंभ से ही रहा। अमेरिकी सीरियलों (जी हाँ, उन दिनों फिल्में भी धारावाहिक बनती थीं और आज भी बनती हैं। (कपोला के 'गॉड फॉदर' का तीसरा भाग हमने अभी- अभी देखा है।) स्टंट फिल्मों तथा 'वेस्टर्नों' का प्रभाव भारतीय फिल्मों पर इतना निर्णायक था कि उस जमाने के कलाकारों को 'भारतीय एडी पोलो' या 'भारतीय डगलस फेयर बैंकूस' या 'भारतीय पर्ल व्हाइट' के रूप में प्रचारित किया जाता था। यदि कोई कलाकार हास्य अभिनय अच्छा करता था तो उसे चैपलिन के नाम पर चार्ली कहा जाने लगता था। बाद के वर्षों में सर्वगुण संपन्न अभिनेता को 'एराल फ्लिन' का खिताब मिल जाता था। यह प्रथा भारतीय फिल्मों के काफी परिपक्व होने पर ही बंद हुई। देव आनंद के ग्रेगरी पैक तथा दिलीप को 'पॉल मुनी' कहने तक तो यह जारी रही ही। भारतीय निर्माताओं के द्वारा अपनी फिल्मों की कीमत टिकट खिड़की पर बढ़ाने की इस भोली- भाली कोशिश के खिलाफ आज के वे निर्माता या आलोचक भला ज्यादा कुछ क्या कह सकते हैं, जो एक ही अमेरिकी फिल्म या संगीत के कई- कई हिन्दी संस्करण एक साथ एक ही समय में देख रहे हैं।

मूक युग की स्टंट फिल्मों के बारे में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी था कि उस युग के सितारे स्वयं वास्तविक 'स्टंट मैन' हुआ करते थे तथा 'डुप्लिकेट' का इस्तेमाल वे अपनी निजी तौहीन मानते थे। 'राजा सेंडो, जैसे कलाकार तो खैर थे ही, स्वयं जमशेद वाडिया तक अपने कॉलिज जीवन में भारोत्तोलक रह चुके थे। 'दिलरुबा डाकू' के नायक उस्ताद अब्दुल हक राष्ट्रीय लाठी तथा तलवारबाजी चैम्पियन थे। मजे की बात यह थी कि यदि 'स्टंट' स्वयं अभिनेता द्वारा किए जाते थे, तो दर्शक इस बात की परवाह नहीं करते कि यह कारनामा 'संभव' है या नहीं। दर्शक दिल से ही 'कल्पनाशील' होते हैं और 'वास्तविकता' को लेकर ज्यादा परेशान नहीं होते।

'हालीवुड' से कौन ज्यादा डरता था- ब्रिटिश सरकार या भारतीय दर्शक? इस बीच अँगरेज सरकार को फिल्मों के बढ़ते प्रभाव ने दो कारणों से चिंतित किया। एक, राष्ट्रवादी विचारों का असर फिल्मों पर पड़ने लगा था और इसके लिए उसे सेंसरशिप को सख्त बनाने की जरूरत महसूस हुई। लेकिन इससे भी ज्यादा चिंता का विषय उसके लिए यह था कि देशी फिल्मों ने अमेरिकी फिल्मों के साथ ब्रिटिश (साम्राज्य में बनी) फिल्मों को भी बाजार बाहर कर दिया था। उपनिवेशीय सरकार हड़बड़ाकर चौकन्नी हुई और उसने दक्षिण भारत के एक प्रतिभाशाली वकील टी. रंगाचारी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन भारतीय फिल्म उद्योग की व्याधियों का निदान करने के लिए कर दिया।

फिल्म "बैरिस्टर की बीवी" में ई.बिलिमोरिया और गौहर

हीरो को कुत्ता बनाने का जादू और होमी मास्टर

कोहीनूर कंपनी के लिए एक मर्तबा निर्देशक, कैमरामैन, अभिनेता होमी मास्टर एक परीकथा फिल्मा रहे थे। अचानक 'हीरो' का 'मूड' बिगड़ गया। उसने 'शॉट' देने से इंकार कर दिया। बजाए 'नायक' को खुश करने के होमी मास्टर ने खालिस पारसी गुजराती में उसके खिलाफ चुनिंदा विशेषणों का इस्तेमाल करते हुए उसे 'सेट' से निकाल बाहर किया। स्टूडियो के मालिक संपत सेठ घबराकर अपने कमरे से बाहर निकल आए। होमी मास्टर ने बड़े इत्मीनान से उन्हें आश्वस्त कर दिया 'सेठ, जरा भी मत घबराओ। तमाशा जारी रहेगा। 'मगर कैसे', संपत ने पूछा- 'यह तो प्रणय दृश्य है। नायक के बगैर तुम इसे कैसे फिल्माओगे?"

होमी मास्टर ने कहा बहुत ही आसानी से। मैंने कहानी ही बदल दी है।" अपने सहायक की तरफ मुड़ उसे आदेश दिया, 'पांड्या कहाँ है, जाओ उसे ले आओ।" पाण्ड्या स्टूडियो का लावारिस कुत्ता था, जिसे कर्मचारी अक्सर लाड़- लड़ाते रहते थे। मास्टर ने इसी कुत्ते को नायक की जगह खड़ाकर दिया और नायिका से कहा इससे प्यार करो। स्वाभाविक ही नायिका और अन्य लोग भौचक्के रह गए। होमी मास्टर ने स्पष्ट किया "दोस्तों, यह बिल्कुल ठीक है। दुष्ट जादूगरनी के प्यार को नायक ने ठुकरा दिया है और उसने ईर्ष्यावश नायक को अपनी जादुई छड़ी घुमाकर कुत्ता बना दिया है। नायिका को यह पता चल गया है और नायक की बदकिस्मती पर वह आँसू बहाते हुए उसे प्यार कर रही है। नतीजा यह कि बेचारी नायिका ग्लिसरीन के आँसू बहाते हुए, श्वान रूपी प्रेमी को बाहों में भर उसे चूमती है। (याद रहे वे दिन स्टुडियो मालिकों की दादागिरी के थे। अभिनेता- अभिनेत्री निर्देशक के इशारों पर नाचते थे, क्योंकि वे स्टुडियो के वेतनभोगी कर्मचारी होते थे।)

पाण्ड्या भी इस अप्रत्याशित प्रेम प्रदर्शन से प्रसन्न हो, दुम हिलाने लगता है और प्रेमिका का मुँह सूँ.घने लगा। इस बीच 'हीरो' की अक्ल भी यह सब देख सुन ठिकाने आ गई। वह नौकरी जाने के भय से सेट पर आ खड़ा हुआ। होमी मास्टर ने जादूगरनी द्वारा जादू की छड़ी घुमाने का एक अलग शॉट लिया और कैमरे पर एक सामान्य डिजाल्व के साथ नायक श्वान में बदल जाता है।

चूँकि नायक का 'मूड' दुरुस्त हो गया था, होमी मास्टर की 'जादूगरनी' का दिमाग भी बदलता है और वह सोचती है कि जिस एक मात्र मानव से उसने प्यार किया उसे क्यों बाकी जिंदगी कुत्ते की जिंदगी जीने को बाध्य किया जाए। फिर जादू की घूमती छड़ी का डिजाल्व कैमरा 'कैद' करता है और श्वान नायक वापस अपने पूर्व मानव रूप में आ जाता है। मजे की बात यह है कि यह पूरा दृश्य बाद में फिल्म में इसी रूप में शामिल किया गया और दर्शकों ने उसे पसंद भी किया।

इंडियन सिनेमेटोग्राफ कमेटी

भारतीय फिल्मों के इतिहास का सबसे बड़ा व्यंग्य यह है कि जहाँ मूक- युग के भौतिक प्रमाण बहुत ही कम मात्रा में उपलब्ध हैं। इस युग के बारे में लिखित वृत्त उतनी ही ज्यादा मात्रा में उपलब्ध हैं। इस लिखित वृत्त में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है उक्त रंगाचारी समिति की ३३०० पृष्ठ की रिपोर्ट (१९२७- २८) जिसमें उस युग में फिल्म निर्माण के हर पहलू का विस्तार से अध्ययन किया गया था। इस प्रतिवेदन में प्रस्तुत जानकारी में भारत में तब कैसी फिल्में प्रदर्शित होती थीं। दर्शकों के विभिन्न वर्ग तथा उनकी पसंदगियाँ फिल्मों के निर्माण, वितरण तथा प्रदर्शन की सुविधाओं में सुधार के उपाय। सरकारी नियंत्रण। सेंसरशिप तथा उससे संबंधित समस्याओं आदि पर विस्तार से चर्चा की गई थी। प्रतिवेदन में यह भी बतलाया गया था कि किन- किन क्षेत्रों में सरकारी सहायता या हस्तक्षेप से फिल्म उद्योग लाभान्वित हो सकता है।

लेकिन रंगाचारी समिति की नियुक्ति सरकार ने जिस खास उद्देश्य से की थी, उसका समर्थन उसने बिल्कुल नहीं किया। वास्तव में ब्रिटिश सरकार चाहती थी कि समिति यह सिफारिश करे कि अमेरिकी फिल्मों को देश में प्रदर्शित होने से रोक कर 'साम्राज्य' में बनी यानी ब्रिटिश फिल्मों को प्रोत्साहित किया जाए। रंगाचारी के समक्ष में यह चाल जल्दी ही आ गई। उन्होंने उसे पूरी तरह नाकाम करने का निश्चय कर लिया। समिति के समक्ष बयान देने वालों में फिल्म उद्योग से जुड़ी सभी हस्तियाँ थीं- फालके धीरेन गांगुली जे. जे. मदन अमेरिकी कंपनियों के प्रतिनिधि बंबई मद्रास कलकत्ता के वितरक प्रदर्शक, हिमांशु राय जैसे प्रतिष्ठित निर्देशक तथा रूबी मायर्स पेशेंस कपूर तथा रैनी स्मिथ जैसी अभिनेत्रियाँ इन सभी ने एक मत से यही राय व्यक्त की कि भारतीय दर्शक भारत में निर्मित भारतीय विषय की फिल्में ही पसंद करेंगे न कि हालीवुड या ब्रिटेन में निर्मित फिल्में। हिमांशु राय ने कहा था 'मुझे यह देख बहुत अफसोस होता है कि हमारे अभिनेता को अभिनय कला इंग्लैण्ड या अमेरिका से सीखनी पड़ती है। हमारा अभिनय भारतीय होना चाहिए तथा वह हमारे भीतर से आना चाहिए।" रंगाचारी ने इस बात पर भी आपत्ति प्रकट की कि भारतीय फिल्में तो गंदे तथा घटिया थियेटरों में प्रदर्शित होती हैं, लेकिन विलायती फिल्में उनके दर्शक कम होने के बावजूद ठाठदार सिनेमाओं में प्रदर्शित होती हैं।

प्रतिवेदन में सेंसरशिप के विषय पर भी काफी विस्तार से चर्चा की गई। सांप्रदायिक तनाव, राजनीतिक जागरुकता (अँगरेजों से विद्रोह) राष्ट्रवाद, अपराध आदि को ध्यान में रखते हुए सेंसरशिप का समर्थन अधिकांश गवाहों ने किया, लेकिन वे इस तर्क से सहमत नहीं थे कि अमेरिकी फिल्मों से ब्रिटिश फिल्मों में 'सैक्स' (चुंबन आदि) कम आपत्तिजनक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। गुजराती अखबार 'जामे जमशेद' के संपादक ने कहा कि चुंबन के दृश्य नहीं दिखलाए जाने चाहिए, क्योंकि भारतीय ऐसा सार्वजनिक रूप से नहीं करते। -

भारत में फिल्म उद्योग के विकास के लिए रंगाचारी ने जो कई सिफारिशें कीं, उनमें से कई आज पचास- साठ वर्ष बाद भी वक्त से इतना आगे लगती हैं कि किसी भी सरकार के लिए उन्हें लागू करना एक चुनौती होगी। उसने सरकार में एक सिनेमा विभाग (जो कि फिल्म उद्योग को परामर्श, सहायता तथा मार्गदर्शन दे) की स्थापना और अधिक सिनेमाघरों का निर्माण सरकार द्वारा शैक्षिक वृत्तचित्रों का निर्माण, फिल्म संग्रहालय की स्थापना तथा सबसे बढ़कर फिल्म उद्योग को सभी तरह के करों से मुक्त रखने की सिफारिशें की थीं। जैसी कि उम्मीद थी, रंगाचारी रपट को इस समिति के ब्रिटिश

सदस्यों की असहमति की टिप्पणी के साथ ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। एक तरह से यह बंद भी हुआ, क्योंकि जिस रोज यानी ६ अक्टूबर १९२७ को उसे नियुक्त किया गया था, ठीक उसी दिन न्यूयार्क में पहली बोलती फिल्म 'द जाज सिंगर' का प्रदर्शन हो गया था और उससे जो क्रांति इस उद्योग में आई उससे भारत भी अछूता नहीं रहा।

हालीवुड का अवदान

हालीवुड की जिन फिल्मों को ब्रिटिश सरकार ने रंगाचारी समिति के माध्यम से भारत के दर्शकों से दूर करने की असफल कोशिश की थी, उनका व्यापक असर भी भारतीय फिल्म उद्योग के इतिहास का एक अमिट सत्य है। जमशेद वाडिया के अनुसार तो "हमारी फिल्में अमेरिकी फिल्मों के प्रभाव से कभी उऋण नहीं हो सकतीं।" वे कहते हैं, "इससे लज्जित होने की भी कोई बात नहीं है। यह सिनेमा इतिहास का एक तथ्य है और तथ्य जिद्दी होते हैं। अलैक्जेंडर ड्यूमा, पैरे, एंथनी होप (हॉकिन्स' की कृतियों पर आधारित तथा डगलस फेयर बैंक्स सीनियर की हालीवुड में निर्मित फिल्मों के जादुई असर से भारत ही नहीं बल्कि अन्य देशों की फिल्में भी अछूती नहीं रह पाई थीं। ड्यूमा के 'थ्री मस्केटियर्ज', 'द मैन इन द आमर न मास्क', 'कोर्सिकान ब्रदर्स', 'द कैप्टेन ऑफ द गार्ड, 'द काउंट ऑफ मान्टे क्रिस्तो', 'द क्वीनज नैकलेस' तथा एंथनी होप के 'प्रिजनर ऑफ जेंडा' तथा 'सुपर ऑफ हेंतजाड' तथा डगलस फेयर बैंकस की 'द मार्क ऑफ जोरो', 'डॉन क्यू', 'द थीफ ऑफ बगदाद' तथा 'द ब्लैक पाइरेट' के विषयों पर बारंबार फिल्में बनाई गईं। उनमें, बेशक काफी फेर-बदल भारतीय संदर्भों के मुताबिक किया जाता था।

महान साहित्य तस्कर मोहनलाल दवे

मोहनलाल दवे मूलतः 'मोहनलाल दवे एंड कं' नामक आभूषणों की दुकान के मालिक थे। हीरे जवाहरातों के पारखी होने के नाते सिनेमा के नए माध्यम की क्षमता को भाँपने में भी उन्हें ज्यादा वक्त नहीं लगा। लेकिन उन्होंने सिनेमा को अपने लिए सोने की खदान बनाया बजरिए अपनी कलम। मोहन दवे अपने जमाने के सबसे ज्यादा लोकप्रिय फिल्म कथा लेखक थे। मूक युग से लेकर 'टॉकी' युग के भी पहले दो दशकों के दौरान उन्होंने औसतन हर महीनों एक के हिसाब से फिल्मों की कहानियाँ लिखीं। सफेद झख धोती, गुजराती कोट तथा सौराष्ट्रीय ढंग की पगड़ी पहने मोहनलाल जब कोहीनूर स्टूडियो में शान से प्रवेश करते तो सब चौकन्ने हो उनकी लच्छेदार बातें सुनने में लग जाते थे। दवे की फिल्म कथा तथा माध्यम पर पकड़ के द्वारकादास संपत भी पूरी तरह कायल थे।

मोहनलाल दवे की फिल्म कथा लेखक के रूप में इस सफलता का लेकिन एक राज था। गहनों के व्यापारी तथा फिल्म कथा लेखक होने के अलावा दवे अमेरिकी फिल्मों की गुजराती में प्रचार सामग्री भी तैयार करते थे। उन्हें ये फिल्में काफी पहले ही देखने को मिल जाती थी और वे अखबारों के लिए उनके विज्ञापन विभिन्न प्रारूपों में लिखते थे। इसके साथ ही उन्हें शहरों- कस्बों में बाँटने के लिए वे परचे (हैंडबिल्ज) भी लिखने होते थे, जिनमें उक्त अँगरेजी फिल्म का गुजराती में कथा- सार दिया होता था। उनकी अधिकांश कहानियाँ इन्हीं विलायती फिल्मों पर आधारित होती थीं। दवे को गुजराती साहित्य की भी अच्छी जानकारी थी और उपलब्ध सामग्री को भारतीय पृष्ठभूमि के अनुकूल ढालने का गुर भी उन्हें मालूम था। वे किसी भी कथा- सामग्री को किसी भी फिल्म विधा ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक या कल्पना (फेन्टेसी) के मुताबिक ढाल देते थे।

कोहीनूर स्टूडियो द्वारा निर्मित फिल्मों के वितरण का कार्य जसवंतलाल मेहता देखते थे। मोहन दवे के अलावा वहाँ लेखन का कार्य हरजी लवजी दामाणी अर्थात् शैदा भी करते थे। वे कवि और साहित्यिक गुजराती साप्ताहिक 'वे घड़ी मौज' के संपादक थे। इस पत्र में एक खंड भारतीय फिल्मों का भी होता था। शैदा को गुजराती कविता में उर्दू गजल को लोकप्रिय और उच्च स्थान प्रदान करने का श्रेय प्राप्त है।

बीस के दशक के उत्तरार्द्ध में कोहीनूर स्टुडियो में वाडिया देवरे तथा सैक्सन के साथ फिल्म निर्माण की भागीदारी में बाद के जमाने में सूरत के विख्यात मजदूर नेता के रूप में उभरे इंदुलाल याज्ञनिक भी शामिल हुए थे। वाडिया की 'वसंत लीला' की भागीदारी से तो उन्होंने भी अन्य भागीदारों की तरह अपना हाथ खींच लिया था, लेकिन अपने बल पर उन्होंने एक महत्वाकांक्षी फिल्म 'पावागढ़नु पतन' बनाई। लेकिन इस फिल्म की असफलता से याज्ञिक का फिल्मों के प्रति मोह भंग हो गया और उन्होंने राजनीति को ही अपना कर्म क्षेत्र बना लिया।

"इस कहानी के सारे पात्र व घटनाएँ काल्पनिक हैं"

जे. बी. एच. वाडिया की पहली फिल्म 'वसंत लीला' की कहानी एक आदर्शवादी उद्योगपति और उसके बिगड़ैल बेटे से संबंधित थी। फिल्म की पृष्ठभूमि में एक बाँध की जरूरत थी, क्योंकि बिगड़े हुए युवक का पिता एक बाँध का ही प्रबंध निदेशक था। वाडिया ने अपने पारसी संपर्कों का उपयोग कर टाटा घराने के बरजोर सेठना से टाटा हाइड्रोइलेक्ट्रिक संयंत्र में 'बाँध' की शटिंग करने की इजाजत हासिल कर ली। जब फिल्म के प्रदर्शन को मात्र एक सप्ताह ही था, वाडिया बरजोर सेठना के पास फिल्म के 'पास' लेकर पहुँचे और उन्हें उनके सहयोग के लिए धन्यवाद दिया। 'पासों' के अलावा वाडिया ने उन्हें फिल्म की परिचय पुस्तिका भी भेंट की और फिल्म के 'प्रीमियर' पर अवश्य आने का अनुरोध किया।

लेकिन जैसे ही युवा वाडिया वापस अपने दफ्तर पहुँचे बरजोर सेठना का फोन आया और गुस्से से काँपती आवाज में उन्होंने जमशेद से तत्काल उनसे आकर मिलने को कहा। जैसे ही वे सेठना के दफ्तर में पहुँचे उन्होंने साफ कह दिया कि वे किसी भी हालात में फिल्म को प्रदर्शित नहीं होने देंगे ("पारसियों को मदद करने का नतीजा यही होता है" लालची होते हुए उन्होंने जोड़ा।) कारण पूछने पर बतलाया गया कि फिल्म के पिता और पुत्र के पात्रों के नाम और टाटा इलेक्ट्रिक के मालिक और पुत्र के नाम एक ही हैं तथा गुण भी। बरजोर सेठना ने साफ कह दिया कि जब तक कहानी के प्रमुख पात्रों के नाम नहीं बदले जाएँगे वे फिल्म 'रिलीज' नहीं होने देंगे। बेचारे जमशेद ने उन्हें समझाने की कोशिश की कि एक सप्ताह में ही फिल्म 'रिलीज' होनी है तथा उसके परिचय शीर्षक तीन- तीन भाषाओं में 'शूट' किए जा चुके हैं, जिन्हें अब बदला नहीं जा सकता। बरजोर टस से मस नहीं हुए।

अचानक स्वयं वाडिया को एक बीच का रास्ता सूझा। उन्होंने अमेरिकी फिल्मों में शुरू में एक सूचना छपी देखी थी 'इस कहानी के सारे पात्र तथा घटनाएँ काल्पनिक हैं तथा यदि किसी व्यक्ति के साथ वे मिलते हों तो वह मात्र संयोग है।" उन्होंने सेठना से कहा कि वे ऐसी ही सूचना फिल्म के प्रारंभ तथा उसकी सारी प्रचार सामग्री में छाप कर लगा देंगे। बड़ी मान- मनुव्वल के बाद सेठना इस शर्त पर फिल्म को प्रदर्शित होने देने के लिए राजी हुए। बाद में प्रथम प्रदर्शन के दिन सेठना स्वयं तो फिल्म देखने नहीं आए, लेकिन उनके जासूस जरूर भारी संख्या में वहाँ यह सुनिश्चित करने के लिए उपस्थित थे कि

सारी हिदायतों का पालन वाडिया ने किया है या नहीं।

बहरहाल भारतीय मूक सिनेमा तीस के दशक के आते- आते परिपक्व हो चुका था। यहाँ तक कि देश का उच्च भ्रू तथाकथित श्रेष्ठी वर्ग भी उनमें दिलचस्पी लेने लगा था। साहित्य, कला, संगीत तथा विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के प्रति वचनबद्ध देवकी बोस, नितिन बोस, देविका रानी, जे. बी. एच. वाडिया, शांताराम, बाबूराव पेंटर, बी. एन. सरकार जैसी प्रतिभाएँ जब इस माध्यम के प्रति आकर्षित हो उसे व्यवस्था की नजरों में और ऊँचा उठाने के लिए तकनीक और कथ्य दोनों के लिहाज से नए- नए प्रयोग करने को तत्पर हो रहे थे। तभी मूक सिनेमा, जिसे चार्ली चैप्लिन ने सच्चा सिनेमा कहा था, के विरुद्ध निर्माता ने अपना खेल खेल दिया। भारत में १९३१ में आदेशिर ईरानी ने १८ मार्च को अपने मैजेस्टिक सिनेमा में भारत की पहली बोलती फिल्म आलमआरा प्रदर्शित कर सनसनी पैदा कर दी। रातों- रात दर्शकों की मूक फिल्मों में दिलचस्पी समाप्त हो गई और उसने मनोरंजन के इस नए माध्यम को अपना लिया। यह सही है कि बोलते चित्रपट के लिए मूक फिल्मों को रास्ते से हटना पड़ा, लेकिन इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि सवाक फिल्मों की ऊँची इमारत की बुनियाद मूक फिल्मों तथा उनके साहसी तथा प्रयोगधर्मी निर्माताओं द्वारा ही रखी गई है। इन उपाय- कुशल अग्रदूतों की इन कृतियों के प्रति हम जितना भी सम्मान और कृतज्ञता व्यक्त करें, वह कम ही होगा।

इस आलेख को प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने इन संदर्भग्रंथों की सहायता ली है : लुकिंग बेक (फिल्म निदेशालय की पुस्तिका) भारतीय चलचित्र का इतिहास (फिरोज रंगूनवाला) हिन्दी सिनेमा का इतिहास (मनमोहन चड्ढा) इंडियन फिल्म (एरिक बार्नो एवं एस. कृष्णा स्वामी) स्क्रीन में प्रकाशित जे. बी. एच. वाडिया के संस्मरण।

श्रीकृष्ण जन्म (1918)

(एक दुर्लभ फिल्म की शोधपरक व्याख्या)

● पी.के. नायर

भारतीय फिल्मों के आदि पुरुष दादा साहेब फालके की 1918 में निर्मित फिल्म 'श्रीकृष्ण जन्म' के कुछ अंश राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार में उपलब्ध हैं। इस फिल्म के निर्माण निर्देशन संपादन छायांकन और कथा के प्रस्तुतिकरण को लेकर अभिलेखागार के पूर्व संचालक पी. के. नायर का शोधपरक विश्लेषण।

दादा साहब फालके ने जब पहली बार विलायत से आई फिल्म 'द लाइफ ऑफ क्राइस्ट' देखी तब से भगवान कृष्ण की कथा उनका प्रिय विषय बन गई थी। सिनेमा के नए माध्यम के जरिए भगवान कृष्ण का चरित्र जन- जन के बीच पहुँचाने की उन पर एक धुन सवार हो गई थी। वास्तव में 'श्रीकृष्ण जन्म' (1918) तथा उसी के आगे की कथा को 'कालिया मर्दन' (1919) में फिल्माकर उन्होंने अपनी इसी धुन को साकार रूप प्रदान किया था।

इन दोनों फिल्मों का बारीकी से अध्ययन करने पर हमारे सामने न केवल फालके के कृतित्व बल्कि भारतीय सिनेमा के कुछ उजले पक्ष उभरते हैं। 'कालिया मर्दन' की तो लगभग संपूर्ण प्रति फिल्म संग्रहालय के पास है। दुर्भाग्यवश 'श्रीकृष्ण जन्म' के साढ़े पाँच हजार फुटों में से केवल वही 500 फुट भारतीय राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय में उपलब्ध है, जिनमें फिल्म के प्रारंभिक और अंतिम दृश्य प्रस्तुत किए गए हैं। इस फिल्म के बाकी हिस्से संग्रहालय के अस्तित्व में आने के पूर्व ही कहीं गायब हो गए थे। अध्ययन के दौरान मात्र उन्हीं हिस्सों से संतोष करना पड़ता है। मैं कहना चाहूँगा कि वे भी हमारी जानकारी बढ़ाने के लिए अपने आप में पर्याप्त हैं।

फिल्म के परिचय शीर्षकों में दादा साहब फालके को 'पूरब के अग्रदूत सिने कलाकार' के रूप में निरूपित किया गया है। यह बात फालके की भावना को रेखांकित करते हुए उनकी स्पृहणीय हैसियत का संकेत भी देती है। जिसके हकदार वे किसी और को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। खुद फिल्म की घोषणा 'हिन्दुस्तान फिल्म कंपनी' की 'पहली अजीम पेशकश' के रूप में की गई है। फिल्म का शीर्षक पहले अँगरेजी में आता है। उसके साथ 'शंख चक्र, गदा, पद्म' के चित्र बने हुए हैं। इसके बाद शीर्षक के खोखले एनिमेशन की पुरातन तकनीक स्टॉप मोशन फोटोग्राफी' के जरिए फूलों से सजा दी जाती है। घूमते चक्र की छवि फ्रेम के लगभग बीचों- बीच एक अँगूठी की शक्ल इख्तियार कर लेती है और इसके भीतरी वृक्ष के बीचों- बीच, धीरे- धीरे, शिशु- कृष्ण का चित्र उभरता है। बाल कृष्ण का यह मुस्काता मुख फालके की पुत्री मंदाकिनी का है, जिसने इस फिल्म में कृष्ण की भूमिका की है।

चमत्कार के साथ भ्रम

फालके अपने दर्शकों के समक्ष चमत्कार का सटीक भ्रम उत्पन्न करते हैं। अपनी पहले की फिल्मों की अपेक्षा इस मर्तबा वे यह प्रभाव शायद अधिक चित्रात्मकता के साथ पैदा करते हैं। फिल्म एक नदी के 'शॉट' के साथ शुरू होती है। मंच भ्रम की तकनीक के साथ दाएँ से बाएँ बहती नदी दिखलाई देती है, जबकि कैमरे के सामने, लेकिन दर्शकों की तरफ पीठ किए, शोकाकुल, गोकुलवासी तथा भक्तजन हाथ ऊपर उठाए ईश्वर का आह्वान कर रहे हैं। उप- शीर्षक कार्ड पर लिखा है 'सारे मानवीय प्रयास व्यर्थ हो जाने पर सर्वशक्तिमान ईश्वर हमसे कभी दूर नहीं होता। यदि हम सच्चे मन से तथा श्रद्धा से उसकी प्रार्थना करते हैं।" भक्तजन, जिनके सिर फ्रेम के लगभग पूरे निचले भाग को ढँके हुए हैं, एक तरह से फ्रेम में दर्शकों की जगह ले लेते हैं। हमें उनके सिरों का पिछले भाग तथा ऊपर उठाए जुड़े हुए हाथ फ्रेम के निचले हिस्से में, बीच के हिस्से में बहता पानी तथा ऊपरी भाग में सफेद तथा स्याह बादल नजर आते हैं।

इसके बाद चमत्कार दिखलाई देता है। नीचे बहते जमना के जल में से उठे हुए फन वाले शेषनाग पर आराम से लेटे भगवान विष्णु, उनके चरणों में बैठी देवी लक्ष्मी तथा उनकी नाभि से निकले कमल पर आसीन ब्रह्मा, पैरों की तरफ खिलता सूरज मुरली तथा दाहिने हाथ में विजयी दर्प से घूमता सुदर्शन चक्र सभी एक साथ धीरे- धीरे ऊपर आते दिखलाई देते हैं। पूरा दृश्य ठेठ

श्रीकृष्ण जन्म (१९१८) : कालिया मर्दन करते कृष्ण

रवि वर्मा के चित्रों की शैली में प्रस्तुत है। यह तस्वीर धीरे- धीरे लुप्त होती है और उसी में से राक्षस कालिया नाग की फन पर बाँसुरी बजाते भगवान कृष्ण की छवि उभरती है। एक सौ अस्सी डिग्री का कोण बनाता कैमरा 'कट' कर भक्तजनों के चेहरों की एक झलक दिखलाता है। बाँसुरी बजाते कृष्ण की निगाह से चित्रित यह दृश्य दर्शकों को भी उन त्राण इच्छुक भक्तों के चेहरे पहली बार दिखला जाता है।

इसके बाद सामने उभरती है भीड़ जिसमें सभी पुरुष हैं। काली तथा सफेद दाढ़ी व केशों वाले, कुछ साफ- सफाचट चेहरे वाले, कुछ उत्तरीय पहने तो कुछ खुले सीने के साथ। शिशु कृष्ण धीरे- धीरे, बाँसुरी बजाते हुए लेटे हुए कालिया के दूसरे छोर तक पहुँचते हैं। फिर वे अपने आसन के सिरे पर आ जाते हैं। झुकते हैं और बैठ जाते हैं। पैर पर पैर चढ़ा, बाँसुरी को अधरों पर आड़ा रख बजाना शुरू कर देते हैं। पहले वे सीधे कैमरे के भीतर देखते हैं फिर अपनी निगाह बाईं ओर घुमाते हैं। फिर सीधे सामने देखते हैं फिर बारी-बारी से दोनों तरफ। बाँसुरी बजाना बंद कर बाँसुरी को नीचे लाते हैं और सीधे कैमरे में झाँकते हैं। फिर कैमरा उसी कोण से 'कट' करता है और हम कृष्ण की नजर से लोगों को फ्रेम में तथा अपनी ओर देखते पाते हैं। वे हाथ हिला-हिलाकर कृष्णावतार पर अपना हर्ष व्यक्त कर रहे हैं। इसके बाद कैमरा अपनी धूरी पर ही आगे-पीछे 'कट' करता है और कभी उस मूर्तिवत आकृति के करीब आ जाता है, जो अब वंशी से खिलवाड़ करते उसे अपने होंठों तक ला रहा है। नीचे सामने की तरफ लोग प्रशंसा भाव से अपने सिर और हाथ हिला रहे हैं। धीरे- धीरे शिशु कृष्ण तिरोहित होते हैं और एक धीमे 'डिजाल्व' के साथ फिर विष्णु उभरते हैं और दर्शकों को हाथ के इशारे से आशीर्वाद देते नजर आते हैं। पहले दर्शकों को स्मित हास्य से आश्वस्त करते हैं फिर लक्ष्मी की तरफ मुड़ मुस्कराते हैं और दाहिनी अँगुली में चक्र बदस्तूर घूमते चले जाते हैं। छवि शब्दश दाहिने से बाएँ घूमती है और धीरे- धीरे गायब हो जाती है।

देवता कृष्ण

अगला दृश्य दर्शकों को यशोदा के करीब ले आता है। वह कैमरे की तरफ पीठ किए फर्श पर बैठी है तथा जिस पलने में देव- शिशु सोया है उसे हिलाते उसके हाथ तथा पैर आंशिक रूप से नजर आते हैं। फालके इसके बाद कल्पनालोक का वातावरण जारी रखने के लिए यशोदा का माध्यम के रूप में उपयोग करते हैं। अब हम वह सब देखते हैं, जो वह सोच रही है। गोपाल के रूप में कृष्ण गौ माता के सामने खड़े वंशी बजा रहे हैं। हिलता पलना गायब हो जाता है तथा ठेठ महाराष्ट्रीय ढँग से साड़ी पहने यशोदा लकड़ी के पीठे पर बैठी दिखलाई पड़ती है। गोपाल कृष्ण की मूर्तिवत छवि को वे विस्फारित नेत्रों से देख रही हैं। कृष्ण एक पैर पर खड़े हैं और आड़ी वंशी उनके ओठों से लगी है। यह अवतरण की आगे चलकर दुष्ट कंस के लिए भय ग्रंथि बन जाता है। आगे आने वाला दृश्य, जिसमें वह अपनी कल्पना में कृष्ण को अपने जीवन के लिए खतरे के रूप में देखता है। कई एक जैसी छवियों में जिस तरह दिखलाया गया है वह फालके की कल्पना शक्ति और 'ट्रिक' प्रभावों पर उनकी पकड़ की पुष्टि करता है।

दानव का पूर्व संकेत

हमारे सामने तत्काल राजा कंस आता है। वह फ्रेम की दाहिनी बाजू से आता दिखलाई देता है। वह दूसरे सिरे से आती हुई ध्वनि को ध्यान से सुन रहा है (यह बात अभिनेता इशारे से सुझाता है, क्योंकि फिल्म मूक है।) अब वह 'फ्रेम' के बाएँ कोने में आता है। अपने केशों को दोनों

हाथों से संवारकर सीधा बैठ जाता है। वह सोचता है कि उसका सिर उसके धड़ से कट कर अलग हो गया है। वह ऊपर जाते हुए फ्रेम से बाहर हो जाता है। धड़ और सिर के बीच धुएँ का एक टुकड़ा नजर आता है। बाद में यह धुएँ का टुकड़ा उल्टी गति के साथ गायब हो जाता है। पहली बार जब यह फिल्म प्रदर्शित हुई थी तब इस धुएँ को लाल रंग दे दिया गया था। संभवतः इसका उद्देश्य बहते रक्त का प्रभाव पैदा कर दर्शकों को चौकाना था। वह (कंस) आधा उठ खड़ा होता है तथा अंदाज लगाने की कोशिश करता है कि गर्दन कितनी दूर तक चली गई है। फिर हाथ नीचे ला कर सुनिश्चित करता है कि गर्दन सही सलामत है और फिर मदद के लिए चिल्लाता है। उसकी दोनों पत्नियाँ उसकी पुकार सुनकर आती हैं तथा 'फ्रेम' में अलग-अलग, दोनों, तरफ से प्रवेश करती हैं। वह इशारे से इन स्त्रियों को अपने भयानक स्वप्न के बारे में बतलाता है, लेकिन वे उसके इस विचित्र व्यवहार को न समझकर ऊपर देखती हैं। यहाँ फिर शीर्षक कार्ड पर लिखा जाता है 'श्रीकृष्ण जैसे कि वे दुष्ट कंस को दिखते हैं।'

सत् और असत् का संघर्ष

राजा कंस अपने शयनकक्ष में आराम कर रहे हैं। दीवार के विभाजकों तथा स्तंभों को चतुराई से जमाकर त्रि-आयामी प्रभाव पैदा किया गया है। 'फ्रेम' के बीचों- बीच स्थित 'स्तंभ' में कंस को कोई अशुभ खतरा नजर आता है। वह अपनी आँखें मींचने की कोशिश करता है। वह खतरा एक 'डिजाल्व' के द्वारा वास्तविकता बन जाता है जब हम देखते हैं कि खंभे के स्थान पर कृष्ण रूपी एक गुड़िया रखी है। गुड़िया को देख कंस चौंकता है। वह फिर अपना चेहरा देखने की कोशिश करता है, लेकिन जाग कर देखता है कि वह गुड़िया बँसी बजाते मयूर पंखधारी जीवंत कृष्ण में बदल गई है। बालक कृष्ण अपनी बँसी से कंस को धमकाते हैं और कंस वापस लड़खड़ाता हुआ अपने पलंग पर जा गिरता है। बँशी एक लटकती हुई कटार बन जाती है और भयभीत कंस को उत्पीड़ित करती है। कृष्ण की छवि, आकार और ज्यादा बढ़ता है तथा कटार एक घूमते चक्र में बदल जाती है। दया की याचना करता कंस अपने पलंग पर जा गिरता है। जैसे ही उसकी आँख लगती है। एक धीमे 'डिजाल्व' के द्वारा पहले वाला स्तंभ अपने मूल स्थान पर वापस लौट आता है।

जब वह जागता है तो कैमरा उसे ठीक सामने से फिल्मांकित करता है। 'सेट' एक विभाजक दीवारों में थोड़े से फेरबदल कर, त्रि- आयामी भ्रम बनाए रखते हुए फालके कंस के अगले 'पीड़ादाई अनुभव' की भूमिका तैयार करते हैं। धीमे 'डिजाल्व' के साथ बंशी बजाते कृष्ण की आकृति फिर उभरती है, लेकिन इस बार वह कंस के सामने की तरफ है। एक ओर चक्रधारी कृष्ण दूसरी तरफ दिखलाई देते हैं तथा साथ ही पहली वाली आकृति भी नजर आती रहती है।

कंस को समझ में नहीं आता कि वह किस तरफ देखे। वह जैसे ही अपने हाथों से अपनी आँखें ढँकने की कोशिश करता है एक कोने से हाथ में तलवार लिए तीसरा 'कृष्ण' सामने आता है। चकराया हुआ कंस इस नए 'आकार' की तरफ उँगली का इशारा करता है कि सामने वाले कोने से एक चौथी छवि उभरती है और उसके हाथों में एक लंबा बाँस है। पाँचवीं आकृति माला लिए, छठी गदा लिए तथा सातवीं कृष्ण छवि तीरकमान लिए। एक के बाद एक, फ्रेम में दाखिल होती है। एक ही फ्रेम की विभिन्न स्थलीय स्थितियों में कृष्ण को ये तलवार चलाते कंस के इर्द- गिर्द बहुत सी छवियाँ 'सुपर इम्पोजीशन' प्रक्रिया के बहुत ही सोच- समझकर किए गए इस्तेमाल द्वारा हासिल की गई है। आखिर थक कर कंस अपनी शायिका पर गिर जाता है। इस तरह फिल्म के शुरूआती खंड में ही इस पूर्वाभास को भलिभाँति स्थापित कर दिया गया है कि इस दुष्ट राजा का भविष्य क्या है। इस बात से फालके कतई चिंतित नहीं थे कि कथा- कथन के इस तरीके से वे कहानी में उत्सुकता के उस तत्व को नष्ट कर रहे हैं, जो उनके दर्शकों की दिलचस्पी इस फिल्म में बनाए रखता। ऐसा प्रतीत होता है उन्हें अपने दर्शकों पर पूरा भरोसा था।

ईश्वर की शरण में

दुर्भाग्यवश फिल्म का मुख्य शरीर तो अनुपलब्ध है। ऐसे कोई प्रामाणिक दस्तावेज भी नहीं हैं, जिनसे हम पता लगा सकें कि फालके ने बाकी फिल्म का निर्वाह किस तरह किया था। हमें अब फिल्म के उस अंतिम खंड पर नजर डालनी होगी जिसे हम 'उत्तर राग' कह सकते हैं। संयोगवश, यह खंड अपने हाथ में संपूर्ण है तथा उसे राष्ट्रीय एकता तथा विश्वजनीत भ्रातृत्व के सामयिक विषय पर बनाई गई एक सुचिंतित लघु फिल्म भी कहा जा सकता है। फिल्म के इस अंश में सभी जाति के लोगों को जिस तरह देवता का नमन करते दिखलाया गया है, उससे यह तथ्य रेखांकित होता है कि सभी धर्म एक हैं।

इसके बाद भगवद् गीता का यह श्लोक धीरे-धीरे परदे पर फेड- इन होकर कुछ देर के लिए वहाँ ठहर जाता है "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।" (सभी धर्मों को त्याग केवल मेरी शरण में आ जाओ) इस शीर्षक के लुप्त होने के पहले ही हम भगवान विष्णु, जिनके एक हाथ में घूमता चक्र तथा दूसरे में गदा है, की छवि सामने आती है। सारे भक्त उनके चरणों में एकत्र हो जाते हैं। यह झाँकी, जिसमें झाड़ू हाथ में लिए एक हरिजन भगवान के सामने बैठा है तथा उसकी झाड़ू लगभग उनके चरणों को छू रही है। अद्भुत है। उस फिल्मकार, जो स्वयं परंपरावादी हिन्दू परिवार में पला बढ़ा है, के लिहाज से यह छवि बहुत ही साहसी प्रयोग है।

सोचा जाए तो फालके फिल्म का समापन दुष्ट राजा कंस के वध के साथ भी कर सकते थे। लेकिन इस फिल्म में वे मात्र एक पौराणिक कथा सुनाने से भी कहीं आगे बढ़े हैं। एक कथाकार के अलावा वे एक प्रतिबद्ध सामाजिक आंदोलनकारी भी थे। यह चीज उनकी छोटी-सी पूर्व भूमिका तथा उत्तरकथन से स्पष्ट जाहिर होती है, जिनमें वे पौराणिक कथा के साथ देवी-देवताओं का वास्तविकतावादी प्रस्तुतिकरण भी समाविष्ट कर देती हैं।

जिस समय उन्होंने यह अंतिम दृश्य अपने मन में गढ़ा होगा तब सभी धर्मों की एकता तथा जातियों से विभाजित समाज में मानव की समानता का विचार उनके दिमाग में सर्वोपरि रहा होगा। एक सच्चे राष्ट्रवादी के रूप में वे सिनेमा माध्यम का उपयोग जनता को सकारात्मक कर्म की तरफ उन्मुख करने के लिए करना चाहते थे। विभिन्न जातियों के लोगों द्वारा भगवान की वंदना की यह झाँकीनुमा प्रस्तुति कुछ लोगों को बचकाना लग सकती है, लेकिन यदि हम इस फ्रेम में स्थान की व्यवस्था तथा उसके भीतर की क्रियाओं, चरित्रों के प्रवेश करने का ढंग, उनके हाव- भाव, उनकी निगाह की दिशा, बाहर जाने का तरीका तथा उनके द्वारा उपयोग किए ताम- झामों का बारीकी से अध्ययन करें, तो हमें फिल्मकार के सैद्धांतिक सोच की तार्किकता स्पष्ट हो जाएगी। खुली आँखों से देखने वाले प्रेक्षक की नजर उनके परस्पर संपर्क पहचानने में चूक नहीं सकती।

* श्रीकृष्ण जन्म (1918)
* हिन्दी तथा अँगरेजी उप-शीर्षकों सहित मूक फिल्म
* निर्माण : हिन्दुस्तान फिल्म कंपनी
* निर्देशन, कहानी और कैमरा : डी.जी. फालके
* पात्र डी.डी. दाबके (वसुदेव), पुरुषोत्तम वैद्य (देवकी)
* मंदाकिनी फालके (शिशु कृष्ण) भागीरथी बाई (लक्ष्मी)।
* मूल लम्बाई : 5,500 फुट संपादित 476 फुट

हिन्दी रूपांतरण : हेमचंद्र पहारे द्वारा 'सिनेमा इन इंडिया' के आलेख पर आधारित

बंबई फिल्म उद्योग के जनक :

द्वारकादास नारायणदास संपत

भारतीय सिनेमा के जनक के रूप में दादा साहब फालके का नाम सर्वज्ञात है, किंतु उनके ही एक समकालीन द्वारकादास संपत को आम तौर पर लोग कम जानते हैं। देश में सिनेमा की आधार भूमि तैयार करने में उन्होंने दादा साहब जितनी ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मूक फिल्मों के दौर में द्वारकादास जी ने सौ से भी अधिक फिल्मों का निर्माण किया। उनके द्वारा स्थापित कोहीनूर स्टूडियो देश की सबसे पुरानी फिल्म संस्थाओं में गिना जाता है। उसी की बदौलत प्रमुख फिल्म केन्द्र के रूप में बंबई की पहचान बनी। सिनेमा की आद्य तकनीक को विकसित बनाने के लिए नवीनतम प्रयोग करने में संपत अपने समकालीनों से काफी आगे थे। उन्हें स्त्री कलाकारों को सबसे पहले परदे पर लाने का भी श्रेय प्राप्त है।

मूलतः एक गुजराती व्यवसायी परिवार में जन्मे द्वारकादास- नारायणदास संपत ने फिल्म निर्माण की शुरूआत शौकिया तौर पर की थी। 1904 में अमेरिका की एडिसन केलिडोस्कोप कंपनी से कैमरा खरीदकर उन्होंने एक लघु फिल्म बनाई और 30- 40 दर्शकों के समक्ष इसका निःशुल्क प्रदर्शन किया। कई टुकड़ों में निर्मित इस फिल्म के स्वरूप से वह संतुष्ट नहीं थे। 1916 में दादा साहब फालके की फिल्म 'लंका दहन' देखने के बाद सिनेमा की ओर उनका रुझान काफी बढ़ा। इसे महज शौक तक सीमित न रखने की बजाए उन्होंने प्रख्यात सिने- शिल्पी पाटनकर के साथ मिलकर 1917 में एक फिल्म निर्माण कंपनी की स्थापना की। पाटनकर वे व्यक्ति थे, जिन्होंने फालके से भी पहले एक फिल्म 'सावित्री' का निर्माण किया था। लेकिन तकनीकी बाधाओं की वजह से यह फिल्म प्रदर्शित नहीं हो पाई और भारतीय फिल्मों के जनक की उपाधि पाने से पाटनकर वंचित रह गए। द्वारकादास संपत ने उन्हीं के साथ 'पहली फिल्म 'सती मदालसा' बनाई।

सन् 1918 में संपत विश्व प्रसिद्ध 'बेल- हावेल' कैमरा खरीद कर लाए और तत्कालीन भारतीय सिने- तकनीक को नया आयाम दिया। इस कैमरे से उन्होंने एक श्रृंखलाबद्ध फिल्म 'राम बनवास' बनाई थी। इसे बंबई के मैजेस्टिक सिनेमा में क्रमानुसार सात दिनों तक प्रदर्शित किया गया। संपत इसी बीच अपनी अगली फिल्म 'कच देवयानी' की रूपरेखा बना चुके थे। इस फिल्म के लिए उन्होंने पहली बार दो स्त्री कलाकारों 'उषा' और 'गाई' को चुना। दरअसल फिल्मों में पुरुष पात्रों द्वारा स्त्री भूमिकाएँ निभाए जाने की परंपरा से संपत काफी क्षुब्ध थे। उन्होंने अपनी फिल्म में जब वास्तविक नायिकाओं को परदे पर उतारा तो कट्टरपंथी उनसे नाराज हो गए। यहाँ तक कि अपने परम मित्र और सहयोगी पाटनकर से भी उनके संबंधों में तनाव आ गया। तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद संपत अपने क्रांतिकारी कदम को अंजाम देकर ही माने। आगे चलकर उनकी फिल्मों में जुबैदा, सुलोचना, शहजादी और फातिमा जैसी अभिनेत्रियों ने काम किया।

1919 में पाटनकर से अलग होकर द्वारकादास संपत ने कोहीनूर फिल्म कंपनी बनाई। इस नए बैनर की पहली फिल्म थी 'कटोरा भर खून'। उस वक्त जबकि फालके की धार्मिक फिल्मों का बोलबाला था, संपत ने सामाजिक विषय वाली यह फिल्म बनाकर एक बार फिर अपने साहस का परिचय दिया। लेखक मोहनलाल दवे के साथ वह लगातार सामाजिक फिल्में बनाते रहे। इनमें नवी शेठानी, मनोरमा, हृदय तृप्ति, आदि प्रमुख थीं। संपत ने 'गल्प कायली' नामक एक फँतासी फिल्म का भी निर्माण किया था, जिसे उस दौर की सर्वाधिक सफल फिल्म माना जाता है। बंबई के सिनेमाघरों में यह लगातार चौदह हफ्तों तक चली थी।

मूक फिल्मों के स्वरूप में डी. एन. संपत ने कई अभिनव प्रयोग किए। दर्शकों को संगीत का आनंद देने के लिए उन्होंने परदे के सामने सिनेमाघरों में ही संगीतकारों की व्यवस्था की, जो गानों के दृश्य पर वाद्ययंत्र बजाते थे। इसके अलावा संपत ने अपनी फिल्मों के चार भाषाओं में उपशीर्षक (टायटल कार्ड) तैयार करवाए। अँगरेजी, गुजराती, मराठी और उर्दू में लिखे होने के कारण इन उपशीर्षकों को लगभग पूरे देश के दर्शक समझ सकते थे। फिल्म रील के रासायनिक प्रक्रियण (प्रोसेसिंग) हेतु संपत काफी उन्नत तरीके अपनाते रहे। उनके कोहीनूर स्टूडियो में अत्याधुनिक मशीनें उपलब्ध थीं।

सन् 1921 में संपत ने अपनी सर्वाधिक चर्चित फिल्म 'भक्त विदुर' का निर्माण किया। इसे भारत की पहली राजनीतिक फिल्म कहा जा सकता है। इसका कथानक 'महाभारत' के प्रसिद्ध चरित्र विदुर पर आधारित था, किंतु संपत ने इसे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से जोड़ दिया। उन्होंने 'विदुर' की भूमिका पर महात्मा गाँधी की छवि आरोपित की। इस भूमिका में वह स्वयं थे। फिल्म में अँगरेजों को कौरवों के रूप में चित्रित किया गया था। काफी विवादों के बाद यह फिल्म प्रतिबंधित कर दी गई। लेकिन अँगरेज संपत को उनकी राजनीतिक प्रतिबद्धता से विमुख नहीं कर सके। उन्होंने राष्ट्रीय घटनाओं पर वृत्तचित्रों का निर्माण शुरू कर दिया। संपत द्वारा निर्मित वृत्तचित्रों में लोकमान्य तिलक की शव यात्रा, अली बंधुओं के जुलूस, अहमदाबाद में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन, महात्मा गाँधी द्वारा विदेशी कपड़ों की होली जलाने की घटनाएँ शामिल की गई थीं।

डी. एन. संपत पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने अपनी फिल्मों के लिए व्यावसायिक निर्देशकों और छायाकारों की सेवाएँ लीं। उनके साथ कांजी भाई राठौड़, होमी मास्टर, नारायण देवरे, मोहन भावनानी, मणिलाल जोशी, चंदूलाल शाह और आर. एस. चौधरी जैसे निर्देशकों ने काम किया। संपत की फिल्मों के प्रमुख अभिनेता थे खलील, राजा सैण्डो, बुलबले और बच्चू भाई। द्वारकादास जी को फिल्मों में पहली बार जानवरों के इस्तेमाल का भी श्रेय प्राप्त है। अपनी फिल्म 'मालती माधव' में उन्होंने एक असली बाघ को लेकर कुछ खतरनाक दृश्य फिल्माए। पशु- पक्षियों से उन्हें विशेष स्नेह था। अपने लोनावाला स्थित कोहीनूर स्टूडियो में उन्होंने कई जंगली जानवर पाल रखे थे।

1918 से 1928 तक के एक दशकीय कैरियर में डी.एन.संपत ने प्रचुरता से फिल्म निर्माण किया। उन्होंने प्रति वर्ष 10 की औसत से लगभग सौ फिल्में बनाईं। सवाक सिनेमा की शुरूआत के बाद भी संपत ने दो फिल्मों 'घर जमाई' और 'अक्कलनो वरदान' का निर्माण किया था। उनके अत्यंत सक्रिय फिल्म सृजन से हिन्दुस्तानी सिनेमा का शैशवकाल समृद्ध होता रहा। दुर्भाग्यवश उनकी फिल्मों का संग्रह कोहीनूर स्टूडियो में लगी आग के कारण नष्ट हो गया। संपत को भारत का 'कार्ल लेम्मले' कहा जाता है, जो हालीवुड के विश्व विख्यात फिल्म निर्माता थे। लेकिन 'लेम्मले' को जहाँ आज भी दुनिया भर में लोगों ने याद रखा है, वहीं द्वारकादास संपत भारत में ही बिसराए जा चुके हैं। 24 अक्टूबर 1884 को जन्में संपत का निधन 4 नवंबर 1958 को हुआ था। ●

दादा फालके और तात्या साहेब आप्टे विवाद

नेशनल फ़िल्म आर्काइव पुणे के सेवा निवृत्त संचालक पी.के. नायर ने "भारतीय फ़िल्मोद्योग के इतिहास पर भाषण देते हुए बताया था कि भारतीय फ़िल्मों के पितामह दादा साहब फालके के साथ फाइनेंसरों ने शोषक के रूप में व्यवहार किया। इस सिलसिले में उन्होंने वामन श्रीधर आप्टे के नाम का खासतौर पर उल्लेख किया था। इस भाषण को सुनने वालों में सी.एण्टनी लुइस भी थे। लुइस की मुलाकात बाद में संयोग से वामन श्रीधर आप्टे के पुत्र लक्ष्मण वामन आप्टे से हो गई। जब पुत्र को पता चला कि उनके पिता पर शोषण का आरोप लगाया जा रहा है। तब उन्होंने लुइस को विस्तार से पूरा प्रसंग सुनाया। फालके आप्टे की पहली मुलाकात से लेकर उनके अन्तिम संयुक्त प्रयासों का जो लेखाजोखा लक्ष्मण वामन आप्टे ने दिया वह संक्षिप्त में इस प्रकार है -

सन् 1918 के आसपास डी.जी.फालके का परिचय वामन श्रीधर आप्टे से हुआ था। फालके अपने प्रतिष्ठान "फालके फ़िल्म्स" के लिए फाइनेंसर चाहते थे। वे डॉ. भाण्डारकर के माध्यम से लोकमान्य तिलक का पत्र लेकर आप्टे से मिले जो तात्यासाहब के नाम से भी विख्यात थे। तात्यासाहब ने तिलक का पत्र पढ़ा तथा अपने अन्य सहयोगियों सहित फालके ने सिर्फ साठ हजार रुपयों की मांग की तथा तात्यासाहब एवं उनके सहयोगी पूरी रकम लगाने के लिए राजी हो गए। प्रारम्भिक चर्चाओं के बाद निर्णय लिया गया कि फालके साहब फौरन नासिक रवाना हो जाएं तथा वहाँ अपने स्टुडियों में "कालियामर्दन" नामक फ़िल्म की शूटिंग शुरू कर दें। फालके ने काम शुरू तो कर दिया मगर इस फ़िल्म की तीन-चार रीले बनने के बाद वे इस प्रोजेक्ट को अधूरा छोड़कर "कृष्णजन्म" नामक फ़िल्म के निर्माण में लग गए। अपने इस निर्णय के बारे में उन्होंने न तो तात्या साहब से सलाह ली और न ही उन्हें सूचित किया। जब "कृष्णजन्म" का निर्माण पूरा हो गया, तब उन्होंने "कालियामर्दन" को पूरा किया। मामले की खबर लगने पर तात्यासाहब एवं अन्य फाइनेंसरों ने दादा साहब फालके को बम्बई बुलाकर जवाब तलब किया। इस मुलाकात में काफी गर्मागर्मी हुई तथा दादा साहब ने "हिन्दुस्तान फ़िल्म कम्पनी" से नाता तोड़ने की घोषणा कर दी। यह नाम आर्थिक समझौता होने के बाद रखा गया था। दादा साहब अपने परिवार को लेकर बनारस चले गए। तात्यासाहब ने स्टुडियो का काम सम्भाला। दादा साहब द्वारा प्रशिक्षित तकनीशियनों का उन्हें पूरा सहयोग मिला। नई यूनिट द्वारा पहली फ़िल्म की "अहिल्योद्धार" तथा दूसरी "उषा स्वप्न"। इस बीच दादा साहब की बनारस में रहने तीन वर्ष हो गए थे। "कृष्णजन्म" एवं "कालियामर्दन" बॉक्स ऑफिस पर हिट रहीं। कम्पनी को भारी मुनाफा हुआ। तात्यासाहब एवं अन्य फाइनेंसरों को तब फालके का ख्याल आया, जो आर्थिक तंगी से गुजरते हुए बनारस में दिन काट रहे थे। यह निश्चय किया गया कि कम्पनी द्वारा प्रतिमाह पाँच सौ रुपए का मनीऑर्डर दादा फालके को भेजा जाएगा। पहला मनीऑर्डर भेजा गया मगर स्वाभिमानी कलाकार ने इसे लौटा दिया। कुछ दिनों बाद दादा साहब सपरिवार नासिक लौटे तथा तात्यासाहब के साथ ठहरे। नासिक के अल्पप्रवास के दौरान उन्होंने हिन्दुस्तान फ़िल्म कम्पनी के क्रिया कलापों में सक्रिय भाग लिया। तकनीकी मार्गदर्शन दिया। ट्रिक फोटोग्राफी के सम्बन्ध में उन्होंने कई गुप्त गुर कम्पनी के छायाकारों को सिखाए। बनारस लौटने पर वे वहाँ अधिक दिनों तक नहीं रह पाए क्योंकि हिन्दुस्तान फ़िल्म कम्पनी ने उन्हें "भक्त प्रहलाद" के निर्माण में सहयोग देने के लिए बुलवा लिया। इस फ़िल्म के निर्माण में फालके ने बहुमूल्य तकनीकी मदद की। खासतौर से स्तंभ फोड़कर नरसिंह के प्रकट होने का दृश्य उन्होंने जिस खूबी से कैमरे के जरिए फ़िल्माया वह फ़िल्म निर्माण के इतिहास की अविस्मरणीय घटना बन गया।

दादा साहब फालके लगभग आठ-नौ वर्ष बनारस रहे तथा इस दौरान हिन्दुस्तान फ़िल्म कम्पनी ने लगभग बीस फ़िल्मों का निर्माण किया। फ़िल्में या तो पौराणिक थी या ऐतिहासिक कुछ फ़िल्में तात्कालिक सामाजिक समस्याओं पर भी केन्द्रित थी। तात्यासाहब संयोग से ही फ़िल्म निर्माण के क्षेत्र में आए थे। इसलिए जब बोलती फ़िल्मों का जमाना आया तथा प्रोसेसिंग क्रिया काफी जटिल हो गई। उन्होंने इस व्यवसाय से किनारा करने का फैसला किया। उन्होंने स्टुडियो बन्द कर दिया। एक मूविंग कैमरे के अतिरिक्त सारे उपकरण बेच दिए। इस कार्यवाही के समापन के थोड़े समय बाद ही दादा साहब फालके उनसे मिले स्वरचित नाटक "रंगभूमि" का मंचन करने के लिए एक रिवाल्विंग थिएटर के निर्माण की योजना प्रस्तुत की। इस प्रोजेक्ट में फाइनेंस करने के लिए भी तात्यासाहब तैयार हो गए। हालांकि इसमें उन पर तथा अन्य फाइनेंसरों पर प्रत्यक्ष रूप से काफी फब्तियाँ कसी गई थीं। उन्हें घूमने थिएटर का विचार काफी पसन्द आया था। देश को इस नई एवं मौलिक विधा से परिचित कराने के लिए उन्होंने धन लगाने का फैसला किया। इस प्रोजेक्ट में नब्बे हजार रुपए की रकम खर्च हुई मगर योजना पूरी तरह से असफल सिद्ध हो गई। तात्यासाहब इतना बड़ा नुकसान चुपचाप सह गए।

इस प्रसंग के दो वर्ष बाद फालके ने पुनः तात्यासाहब से सम्पर्क किया। इस बार वे अपनी फ़िल्म की आय से वे अपनी निजी जिन्दगी को खुशहाल बनाना चाहते थे। तात्यासाहब के हृदय में दादासाहब की प्रतिभा के प्रति अगाध विश्वास था। उन्होंने वित्तीय सहायता देने का वचन दे दिया। फ़िल्म दो वर्ष में दो लाख रुपए की लागत से बनकर तैयार हुई। उस समय तक मूक फ़िल्मों का स्थान सवाक् फ़िल्मों ने ले लिया था इसलिए कोई भी प्रदर्शक इस मूक फ़िल्म को प्रदर्शित करने के लिए तैयार नहीं हुआ विवश होकर फ़िल्म डब करवा कर वाणी दी गई। फ़िल्म तभी प्रदर्शित हो पाई। यह फ़िल्म भी सफल नहीं रही। तात्यासाहब एवं दादा साहब के आपसी सहयोग से निर्मित यह अन्तिम फ़िल्म थी। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि दादासाहब की गैर व्यावसायिक योजनाओं के कारण तात्यासाहब को बारम्बार घाटा उठाना पड़ा। पुत्र द्वारा पिता की छवि सुधारने के लिए सुनाई गई इस कहानी की सत्यता की परख अभी की जानी है। ●

● प्रस्तुति : लोकेन्द्र चतुर्वेदी

इतिहास के अंधेरों में खोया एक पन्ना :

सौराष्ट्र फिल्म कम्पनी

उषाकांत मेहता

सौराष्ट्र फिल्म कम्पनी की गणना भारत की सबसे पुरानी फिल्म संस्थाओं में की जाती है। इस कम्पनी की फिल्म 'समुद्र मंथन' के 'स्पेशल-इफेक्ट्स' की विदेशियों ने जी खोलकर प्रशंसा की थी। काठियावाड़ की महारानी ने इस कम्पनी के शेअर खरीद कर इसे डूबने से बचाया था।

देश में फिल्म-निर्माण के आरंभिक केंद्रों के रूप में बंबई, नासिक और पुणे का नाम आमतौर पर लिया जाता है। लेकिन बहुत कम लोगों को जानकारी होगी कि गुजरात के राजकोट में सौराष्ट्र फिल्म कम्पनी द्वारा जिस वक्त फिल्म बनाने का सिलसिला शुरू किया गया था, तब दादा साहब फालके की 'हिन्दुस्तान फिल्म कम्पनी' और 'ओरियंट फिल्म्स' को अस्तित्व में आए ज्यादा समय नहीं हुआ था। १९२३ में दो भाइयों विजेशंकर पाटनी और चम्पकराय पाटनी द्वारा स्थापित सौराष्ट्र फिल्म कम्पनी की गणना भारत की सबसे पुरानी फिल्म-निर्माण संस्थाओं में होती है। राजकोट के पास लोधवाड़ स्थित इसके स्टुडियो में कई महत्वपूर्ण फिल्में बनी है।

सौराष्ट्र फिल्म के बैनर में बनी पहली फिल्म 'समुद्र मंथन' इसके विशेष दृश्य-प्रभावों (स्पेशल इफेक्ट्स) के लिए याद की जाती है। मूक सिनेमा के दौर में इस फिल्म का छायांकन सचमुच अद्भुत था। इंग्लैंड और जर्मनी जैसे देशों में भी इसकी चर्चा हुई थी। ब्रिटेन की रॉयल फोटोग्राफिक सोसायटी द्वारा फिल्म के छायाकार चम्पकराय को उनके श्रेष्ठ काम के लिए संस्था की मानद सदस्यता प्रदान की गई थी। चम्पकराय सौराष्ट्र फिल्म कम्पनी शुरू करने से पहले छायांकन में काफी रुचि रखते थे। अपनी पहली ही फिल्मे में उन्होंने इस क्षमता का ठोस प्रमाण दिया। स्पेशल इफेक्ट दृश्यों के कारण पाटनी बंधुओं की पहली फिल्म 'समुद्र मंथन' का खर्च काफी बढ़ गया था, इसलिए उन्होंने अपनी अगली फिल्में 'शरीफ बदमाश'/ चरखा और 'अनाथ अबला' अपेक्षाकृत कम बजट में बनाई। यह सभी फिल्में सामाजिक समस्याओं पर आधारित थीं, जिनसे दर्शक काफी प्रभावित हुए। इस बीच सौराष्ट्र फिल्म कम्पनी की फैलती प्रसिद्धि से प्रभावित हो कर बंबइ में सिने-कर्म से जुड़े कई लोग राजकोट आने लगे।

१९२४ में सौराष्ट्र कम्पनी ने गाँधीजी के साबरमती आश्रम पर एक वृत्तचित्र 'स्व आश्रय' का निर्माण किया। इसे कम्पनी द्वारा ही निर्मित फिल्म 'चरखा' के साथ ही दिखाया जाता था। गाँधीजी की महिमा मंडित करने वाली इन दोनों फिल्म कृतियों के कारण पाटनी बंधु अंग्रेज सरकार की आँख में खटकने लगे। इसके पहले अंग्रेज इन पर विशेष प्रसन्न थे, क्योंकि उनकी पूर्व फिल्मों में तकनीक के प्रभावी उपयोग की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा हो चुकी थी। गाँधीजी के अलावा पाटनी बंधुओं के पंडित नेहरू से भी मधुर संबंध थे। बहनोई रंजीतराम पंडित ने उनकी कम्पनी के लिए काफी समय तक कानूनी सलाहकार का काम किया था।

सौराष्ट्र फिल्म्स द्वारा निर्मित अगली दो फिल्में थीं, 'सनम नी शोध मा' (१९२५) और कलाबाज आशिक (१९२६)। इन फिल्मों में अपने जमाने की मशहूर अभिनेत्री 'एर्मलिन' ने काम किया था। यह फिल्में व्यावसायिक दृष्टि से कम्पनी को अधिक लाभ नहीं दे सकीं और कुछ समय बाद बढ़ते घाटे के कारण इसे बंद करने की नौबत आ गई। संस्था की कमजोर आर्थिक स्थिति का जब काठियावाड़ की महारानी और कुछ अन्य प्रतिष्ठित गुजराती परिवारों को पता चला, तो उन्होंने पाटनी बंधुओं को कम्पनी बंद करने की बजाए इसके शेअर बाजार में बेचने की सलाह दी। स्वयं महारानी काठियावाड़ ने संस्था के काफी शेअर खरीदे थे।

आर्थिक धरातल पर आश्वस्त होने के बाद पाटनी ने एक बार फिर तेजी से फिल्म-निर्माण शुरू कर दिया। इस दौर की प्रमुख फिल्में थीं, 'प्रेम अने वासना' (१९२६), 'संसार' (१९२७), 'मोहब्बत या मुसीबत' और 'सुधरेल इंसान' ! सौराष्ट्र फिल्म कम्पनी के बैनर में कुल नौ फिल्में और नौ वृत्तचित्र निर्मित हुए।

इन फिल्मों ने भारतीय फिल्म-उद्योग की जुड़े मजबूत करने का काम तो किया ही इसके अलावा ब्रिटिश सरकार के अधिकारवादी रवैए को भी चुनौती दी, जो उस वक्त सिने-व्यवसाय पर हावी हो रहा था। निश्चित रूप से सौराष्ट्र फिल्म कम्पनी देश के फिल्म-इतिहास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अध्याय था। उसके पन्नों पर दुर्भाग्यवश अब धूल जम चुकी है। ●

● हिन्दी प्रस्तुति : राहुल शर्मा

खण्ड - तीन

फिल्मोग्राफी : 1992 में निर्मित हिन्दी फिल्में

संकेत :

बे - बेनर, नि - निर्माता, नि* - निर्देशक, क - कथा,
प - पटकथा, सं - संवाद, गी - गीतकार, सं* - संगीतकार,
छा - छायाकार, पा - पात्र, गी* - गीत,
प्रमाण-पत्र : यू - यूनिवर्सल (सामान्य)
यू ए - यूनिवर्सली एडल्ट (सामान्यतः वयस्क)
ए - एडल्ट (वयस्क)

सेंसर बोर्ड से प्रमाण-पत्र जारी होने पर अँग्रेजी वर्णमाला के क्रम से यह फिल्मोग्राफी यहाँ दी जा रही है।

ए

अधर्म ए 18 रील
बे नेहा आर्टस्
नि नितिन मनमोहन
नि* अज़ीज सेज़वाल
क तालुकदार
सं जावेद सिद्दीकी
गी समीर
सं* आनन्द-मिलिन्द
छा अरविन्द लाड़
पा शबाना आज़मी। अनिता राज़। साहिला चड्ढा। संजय दत्त। शत्रुघ्न सिन्हा (अतिथि)। शक्ति कपूर। परेश रावल। गुलशन ग्रोवर। विक्रम गोखले। अवतार गिल। तेज सप्रू। मेक मोहन। दिनेश हिंगू। अरुण बक्षी। किरण कुमार। विकास आनन्द। मास्टर रिंकू।
गी* तुन्ना तुन्ना ता-ता तुन्ना, आसमाँ को धरती पे लाने वाला चाहिए।

आज की रात ए 14 रील (मलयालम से डब)

अन्तर्नाद यू 17 रील
बे सुहेतु फ़िल्मस्
नि* श्याम बेनेगल
प शमा ज़ैदी। सुनील शान बाग
गी वसन्त देव। ईला अरुण
सं वनराज भाटिया
पा शबाना आज़मी। ईला अरुण। ऋतु बज़ाज। दीना पाठक। कुलभूषण खरबंदा। ओमपुरी। के.के रैना। रवि झाँकल। ललित तिवारी। अनंग देसाई। वीरेन्द्र सक्सेना। किशोर कदम (नया चेहरा)। जॉन डेविड (नया चेहरा)। पवन मल्होत्रा।

आज का गुण्डाराज यूए 15 रील
('गेंग लीडर' तेलगु फ़िल्म का हिन्दी निर्माण)
बे एन.एन.सिप्पी प्रोडक्शन
नि एन.एन.सिप्पी
नि* रवि राजा
क सं अनीस बज़्मी
गी समीर
सं* आनन्द-मिलिन्द
छा पी.एस. प्रकाश
पा मीनाक्षी शेषाद्री। कुनिका। गीता। दीना पाठक। स्नेहा। चिरंजीवी। राज़बब्बर। प्रेम चोपड़ा। परीक्षित साहनी। राकेश बेदी। सतीश शाह। टीनू आनंद। दिलीप ताहिल। शरद सक्सेना। बब्बन। डेन धनोआ। शशि किरण। दिनेश कौशिक। रवि तेजा।
गी* तोता मेरे तोता मैं तो तेरी हो गई

अंगार यूए 18 रील ('गॉड फादर' फ़िल्म से प्रेरित)
बे आरीशा इन्टरनेशनल
नि जैयशा। एस.एम. आरिफ
नि* के.. शशिलाल नायर
क प सुजीत सेन
सं कादर खान
गी आनन्द बक्षी
सं* लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल
छा ईश्वर बिदरी
पा डिम्पल कपाड़िया। नीना गुप्ता। सुलभा देशपाण्डे। लीना कामथ। जैकी श्राफ। नाना पाटेकर। मज़हर खान। किरण कुमार। कादर खान। ओमपुरी। अच्युत पोत्दार। सिद्धार्थ। जहीर। अज़ीत वाच्छानी। वीरेन्द्र सक्सेना। चन्द्रकान्त गोखले।
गी* कितनी जल्दी ये मुलाकात गुजर जाती है ...

आ जा सनम यू 16 रील (सिनेमास्कोप)
बे इन्द्रजीत फ़िल्मस्
नि नि* के पप्पू
क राज कँवर

प रनवीर पुष्प
सं एम. परवेज़
गी इंदीवर। हरसत जयपुरी। समीर। फ़ैज़ अनवर। रानी मलिक।
सं* अरुण पौड़वाल
छा श्रीपाद् नातू
पा चाँदनी। सबहा। तनूज़ा। रीता भादुड़ी। कुनिका। अविनाश वाधवान। मोहनीश बहल। कुलभूषण खरबंदा। आलोक नाथ। अनुपम खेर। परेश रावल। राजेश पुरी। दीप ढिल्लो। ब्रह्मचारी।
गी* हमने तुमको चुन लिया, नज़र, नज़र की बात है।

अमन के फरिश्ते यूए 17 रील
वे सोहन आर्टस इन्टरनेशनल
नि सोहन भाटिया। प्रवीण कोटक
नि* क कादर काश्मीरी
प सं एस.खान
गी सोहन भाटिया
सं बप्पी लाहिरी
पा हेमा मालिनी। रोहिणी हट्टंगड़ी। रुपा गांगुली। एकता। अरुणा ईरानी। देव आनंद। जावेद जाफरी। आसिफ। ओमप्रकाश। इशरत अली। बल्ली ग्रोवर। सुधीर। मेक मोहन। फिरोज़ ईरानी। किरण कुमार। कादर खान।

अपराधी यूए 18 रील
बे रतन इन्टरनेशनल
नि एन.आर. पचिसिया
नि* के.रविशंकर
प करण राज़दान। चित्रार्थ
सं अनीस बज़मी
गी आनन्द बक्षी
सं* लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल
छा मनमोहन सिंह
पा विजया शांति। शिल्पा शिरोड़कर। एकता। किरण जुनेजा। अपराजिता। अंजना मुमताज़। उर्मिला भट्ट। बेबी प्रिंसी। अनिल कपूर। चंकी पांडे। सुरेश ओबेरॉय। अनुपम खेर। आसिफ शेख। रजा मुराद। प्रदीप रावल। सुब्बीराज़। ए.के.हंगल। गोगा कपूर। डेन धनोआ।
गी* दर्दे-ए-दिल जीने का मरने का मजा देगा

अनाम यू 16 रील
बे हीरा कम्बाइन
नि विनोद एस.चौधरी
नि* क रमेश मोदी
गी समीर
सं* नदीम-श्रवण

छा के.वी.रमन्ना
पा आयशा जुल्का। रेशमा सिंह। अंजना मुमताज़। अरमान कोहली। किरण कुमार। सदाशिव अमरावपुकर। लक्ष्मीकांत बेर्डे। कुलभूषण खरबंदा। अजीत वाच्छानी। अनंत महादेवन। तेज सप्रू। मुश्ताक खान। अरुण बक्षी। युनूस परवेज़। अनिल सक्सेना।
गी* चूड़ी बोले, पायल बोले, बोले कंगना, आ जा डोली लेके आ जा सजना मेरे अंगना।

अभी अभी यू 16 रील सिनेमास्कोप
बे कपिल मुवीज़ (हैदराबाद)
नि जगदीश महाशेट्टीवार। अशोक कामले
नि* एस.पी.राजाराम
क प सं सूरज सनीम
गी समीर
सं* आनन्द-मिलिन्द
छा के.पी.नाम्बियार्थी
पा तनूजा। अंजना मुमताज़। डिस्को शांति। स्वाति। गीतांजली श्रुति। रूबैना खान (नया चेहरा)। सूरज चड्ढा (नया चेहरा)। सुरेश ओबेरॉय। मोहनीश बहल। बीरबल। सतीश शाह। राकेश वेदी। जावेद खान। सुत्ती वेलू। गोपी भल्ला। उदय श्रीवास्तव।
गी* हम दोनों हैं प्रेम दीवाने

बी

बेटा यू 19 रील (सिनेमास्कोप) ("इंगे चिन्ना राजा" तमिल फ़िल्म से प्रेरित)
बे त्रिमूर्ति इन्टरनेशनल
नि इन्द्रकुमार। अशोक थाकेरिया
नि* इन्द्रकुमार
क नोशीर खटाऊ। के.भाग्यराज़
प ज्ञानदेव अग्निहोत्री
सं कमलेश पांडे
गी समीर
सं* आनन्द-मिलिन्द
छा बाबा आज़मी
पा माधुरी दीक्षित। अरुणा ईरानी। कुनिका। भारती अचरेकर। रीता भादुड़ी। अनिल कपूर। अनुपम खेर। आकाश खुराना। लक्ष्मीकांत बेर्डे। अजितेश। सत्येन कप्पू।
गी* कोयल सी तेरी बोली

बसन्ती तांगेवाली यूए 16 रील (सिनेमास्कोप)
बे मंगला फ़िल्मस्
नि नि* क प कांति शाह
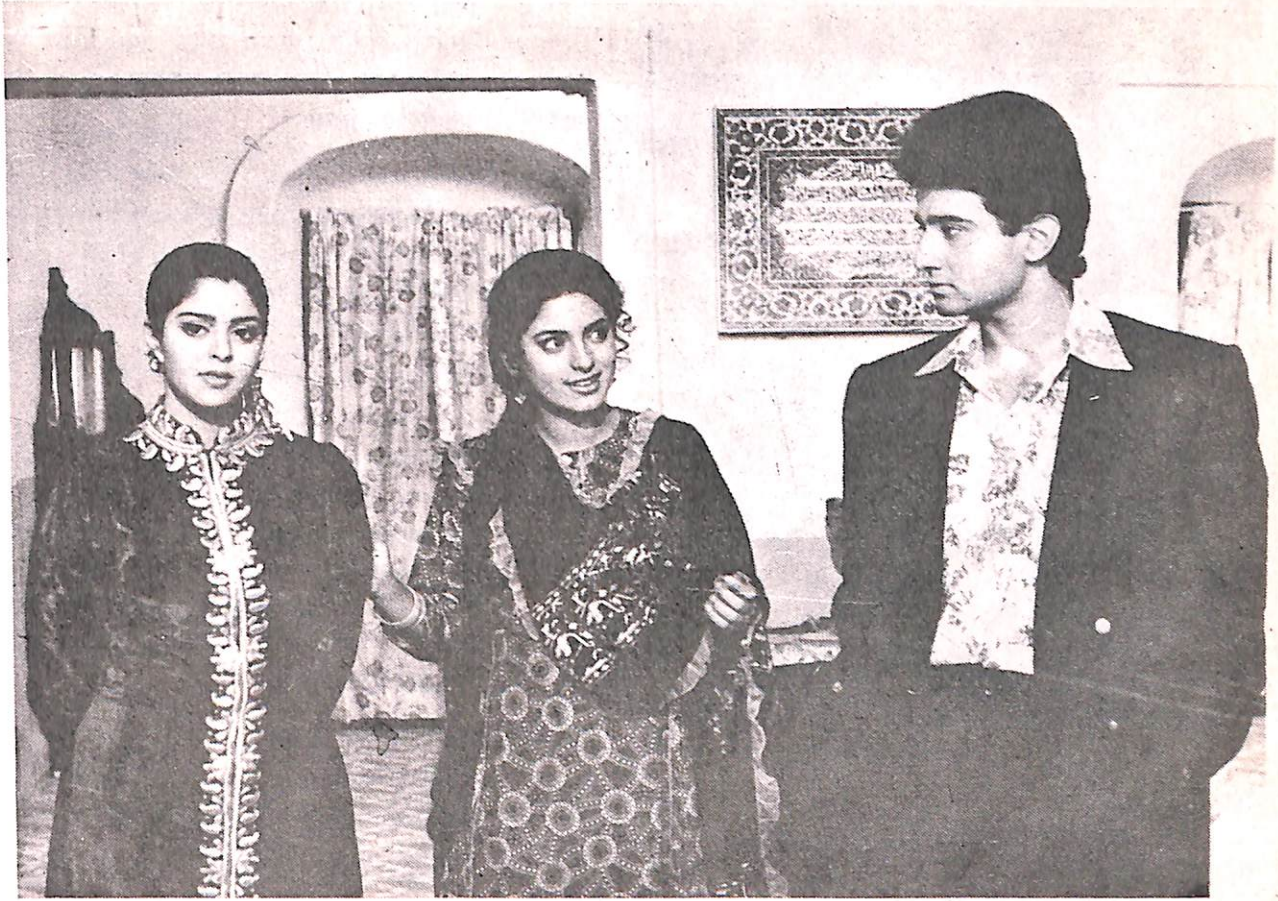
स बशीर बब्बर

गी महेन्द्र देहलवी। दिलीप ताहिर

सं* दिलीप सेन-समीर सेन

छा विनोद बारोट

पा एकता। अपराजिता। रीता भादुड़ी। संजीवनी। शबनम। विजयकुमार सक्सेना। किरण कुमार। अवतार गिल। किशोर भानुशाली। शत्रुबीन सिन्हा। दिलीप ताहिल। शक्ति कपूर। अरुण माथुर। सदाशिव अमरापुरकर। कादर खान। राजेश विवेक। इशरत अली। हलवादास। फिरोज़ ईरानी। बलवीर। भक्ति कपूर।

बोल राधा बोल यू 19 रील

बे नेहा आर्टस्

नि नितिन मनमोहन

नि* डेविड धवन

क प संजीव दुग्गल

सं अनीस बज़्मी

गी समीर

सं* आनन्द-मिलिन्द

छा राजन किनागी

पा जूही चावला। सुषमा सेठ। सुनन्दा। जमुना। इशा। नफीसा। निशा। नीलम मेहरा। ऋषि कपूर (डबल रोल)। मोहनीश बहल। आलोक नाथ। शक्ति कपूर। किरण कुमार। हरीश पटेल। कादर खान। टीकू तलसानिया। पेंटल। अरुण बक्षी। अंजन श्रीवास्तव।

गी* तू तू तू तू तू तारा, ओ तोड़ो न दिल हमारा

बेवफा से वफा यू 20 रील

बे सावन कुमार प्रोडक्शन

नि नि* क गी - सावन कुमार

प सचिन भौमिक

सं अनवर खान

सं* उषा खन्ना

छा हरमीत सिंह

पा जूही चावला। नगमा। अरुणा ईरानी। कुनिका। विवेक मुशरान। प्रेम चोपड़ा। प्राण। मेहमूद (अतिथि)। ललित तिवारी।

गी* वैसे तो जमाने में प्यार के काबिल

फिल्म बलमा : आयशा जुल्का और अविनाश वाधवान

बलमा यू 14 रील

वे रोहिताश मुवीज़

नि सुरेश ग्रोवर

नि* छा लॉरिन्स डि सूजा

क प सं तलत रेखी

गी समीर

सं* नदीम-श्रवण

पा आयशा जुल्का। अंजना मुमताज़। शम्मी। अविनाश वाधवान। सईद जाफरी

गी* अगर जिन्दगी हो तो तेरे संग, अगर मौत हो तो वह तुझसे पहले

बेखुदी यू 17 रील

वे ड्रीम मर्चेन्टस्

नि रीता रावेल। महरुखी जोक्ही

नि* राहुल रावेल

क प इंदिरा। गौतम राजाध्यक्ष

सं मदन जोशी

गी अनवर सागर। सिकन्दर भारती। सुरेन्द्र साथी। समीना नदीम।

सं* नदीम-श्रवण

छा कमलाकार राव

पा काजोल। फरीदा जलाल। तनूज़ा। रूबीना। कमल सदाना (नया चेहरा)। अजय मानकोटिया (नया चेहरा)। कुलभूषण खरबंदा। विजयेन्द्र घाटगे। राजेन्द्र नाथ। संजीव चित्रे। जगदीश राज़। विकास आनंद। अजयसिंह।

गी* खत तेरे नाम लिखा

बलवान यूए 16 रील

वे जयराज प्रोडक्शनस्

नि राजू मेवानी

नि* दीपक आनन्द

क ललित महाजन

गी देव कोहली। गौहर कानपुरी। अनवर सागर।

सं* महेश-किशोर

छा मनीष भट्ट

पा दिव्या भारती। अंजना मुमताज़। नीना गुप्ता। श्रद्धा वर्मा। गुड्डी मारुति। किम। सुनील शेट्टी। पंकज बेरी। टीनू आनन्द। डेनी डेंग्जोप्पा। इशरत अली। अरुण बक्षी। राजू श्रेष्ठ। विक्रम गोखले। घनश्याम। अंकुश मोहिते। अवतार गिल (अतिथि)। भरत कपूर। युनूस परवेज़। मुश्ताक मर्चेन्ट।

गी* धिन ताक धिन ताक

बहू, बेटा और माँ यू 16 रील

वे कला-प्रेमी फ़िल्म

नि के.एल.बत्रा

नि* पवन देव

क -

प -

सं गी सं सुरिन्दर कोहली

छा -

पा रमा विज़। आशा चन्द्रा। आशा शर्मा। सतीश कौल। योगेश छावड़ा। राजन हक्सर। टीकू तलसानिया। बबलू मुखर्जी।

बाज़ यू 16 रील

वे लता फ़िल्मस्

नि सुरेश जी जेठानी

नि* एस.सुभाष

क प सं सतीश जैन

गी समीर

सं* आनन्द-मिलिन्द

छा प्रमोद पाठक

पा सोनम। रेशमा सिंह। अर्चना पूरणसिंह। अंजना मुमताज़। शशिकिरण। गोविन्दा। अभिनव चतुर्वेदी। टीनू आनन्द। लक्ष्मीकांत बेर्डे। दिलीप ताहिल। अनिल धवन। दिनेश हिंगू। के.के.राज़। कीर्तिकुमार। सुधीर। यास्मिन खान।

गी* रेशम जैसे रंग देखो

बागी सुल्ताना ए 14 रील

बे ओम् नमः शिवाय प्रोडक्शन

नि आर.सिंह। श्रीमती मंगला

नि* आर.ठाकुर

सं गी सरूर लखनवी

सं* अजय स्वामी

छा पा सीमा वाज़। कीर्ति सिंह। जया मायुर। विद्याश्री। श्री प्रदा (अतिथि)। तुषार वोरा। विजयकुमार सक्सेना। किरण कुमार। रजा मुराद। राजेश पुरी। कुणाल सिंह। युनुस परवेज़। हर्षद खान। किशोर भानुशाली। शत्रुबीन सिन्हा। महेश राज। आरिफ खान। बब्बन।

सी

केप्टन प्रभाकर ए 15 रील (सिनेमास्कोप) तमिल से डब

बे वरुण फ़िल्मस्

नि नंदू आहुजा। राजकुमार बज़ाज

नि* क प सेल्वामणी

सं राज जोशी

गी इंदीवर

सं* इल्या राज़ा

पा रुपिणी। विजयकांत। रमैय्या। मंसूर अली खान।

चमत्कार यू 18 रील

बे ईगल फ़िल्म

नि परवेश सी.मेहरा

नि* राजीव मेहरा

क शौकत बेग

सं लिलीपुट

गी आनन्द बक्षी

सं* अन्नू मलिक

छा पीटर परैरा। कार्लटन डि मेलो

पा उर्मिला मांतोडकर। अंजना मुमताज़। मालविका तिवारी। गुड्डी मारुति। नसीरुद्दीन शाह। परेश रावल। जॉनी लिव्हर। मलय चक्रवर्ती। अंजन श्रीवास्तव। राजेश पुरी। आशुतोष गवारीकर। अविनाश खरशीकर। सुहास। टीनू आनन्द। अमरनाथ मुखर्जी। अरुण बक्षी। महेश राज।

गी* यूँ प्यार से मेरी तरफ ना देखो, प्यार हो जाएगा

चेलुवी यू 10 रील

बे सादिर मीडिया प्रा.लि.

नि गिरीश कर्नाड

चूड़ियाँ यू 6 रील (लघु कथाचित्र)

बे सई परांजपे फ़िल्म प्रा.लि.

डी

दिल का क्या कसूर यू 16 रील

बे प्रिंस एण्ड प्रिंस इन्टरनेशनल

नि मुकेश दुग्गल

नि* छा लॉरेंस डि'सूजा

क प सं तलत रेखी

गी समीर। मदन पॉल। अनवर सागर। नवाब आरज़ू

सं* नदीम-श्रवण

पा दिव्या भारती। शहनाज़ कुडिया। शशि किरण। पृथ्वी (नया चेहरा)। सनम। सुरेश ओबेरॉय। सत्येन कप्पू। सुब्बीराज़। राजू श्रेष्ठ। लक्ष्मीकांत बेर्डे। मनज़ीत खुल्लर। अरुण बक्षी। विजय सक्सेना (अतिथि)। किशोर भानुशाली। शशि कुमार। किशोर आनन्द। छोटू दादा।

गी* दिल ज़िगर नज़र क्या हैं

दीवाना आशिक यू 15 रील

बे इन्टरटेंमेंट कम्पनी

नि नि* गुलशन अरोरा

क -

प सं -

गी फारुख कैसर। भूषण वनमाली

सं* बप्पी लाहिरी

छा -

पा फरहा। बिन्दू। नूतन। अरुणा ईरानी। मोहनीश बहल। प्राण। गुलशन अरोरा। विकास आनन्द। जॉनी व्हिस्की।

दीवाना यू 18 रील (सिनेमास्कोप)

बे मयंक आर्टस्

नि गुड्डु धनोआ। ललित कपूर। राजू कोठारी

नि* राज कँवर

क सागर सरहदी। राज कँवर

प सं सागर सरहदी

गी समीर

सं* नदीम-श्रवण

छा हरमीत सिंह

पा दिव्या भारती। सुषमा सेठ। आशा सचदेव। ऋषि कपूर। शाहरुख खान। मोहनीश बहल। देवेन वर्मा। अमरीश पुरी। सईद जाफरी। आलोक नाथ। ब्रह्मचारी। दिलीप ताहिल। अंकुश मोहित। डेन धनोआ।

गी* सोचेंगे तुम्हें प्यार

दिल ही तो है यू 18 रील

बे	मेग्नम फ़िल्म इन्टरनेशनल
नि	हनीफ कदावाला। समीर हिंगोरा
नि*	असरानी
क	संजीव दुग्गल
प	-
सं	कादर खान
गी	आनन्द बक्षी
सं*	लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल
छा	वी.दुर्गाप्रसाद
पा	दिव्या भारती। शिल्पा शिरोड़कर। कुनिका। अंजना मुमताज़। जैकी श्राफ (डबल रोल)। अमज़द खान। कादर खान। परेश रावल। अशोक सराफ। गुलशन ग्रोवर। रज़ा मुराद। बृज गोपाल। सुधीर पाण्डे। विजु खोटे। युनुस परवेज़। बीरबल। अंजन श्रीवास्तव। अवतार गिल।

दो हँसों का जोड़ा यू 17 रील

बे	बरखा सिल्की कम्बाइनस्
नि	जी.डी. तलवार
नि*	अनूप मलिक
गी	महेन्द्र देहलवी। दिलीप ताहिल। गोहर कानपुरी
सं*	दिलीप सेन - समीर सेन
छा	यू.एस. श्रीवास्तव
पा	कंचन। रीमा लागू। सुलभा देशपाण्डे। वीना (अतिथि)। पूनम शेट्टी। रजनी बाला। अनुपम। राजन पुरोहित। मोहन कुमार। अनिल सक्सेना। अजीत वाच्छानी। प्राण। किरण कुमार। राजेन्द्र नाथ। के.के.पुरी।
गी*	कैसी बिताई पहली रात

दीदार यू 17 रील

बे	प्रमोद फ़िल्म
नि नि*	प्रमोद चक्रवर्ती
क प	सचिन भौमिक
गी	समीर
सं*	आनन्द-मिलिन्द
छा	वी.के.मूर्ति

पा	करिश्मा कपूर। प्रिया अरुण। तनूजा। अंजना मुमताज़। सीमा देव। अक्षय कुमार। अनुपम खेर। राजीव वर्मा। अजीत वाच्छानी। लक्ष्मीकांत बेर्डे। विजू खोटे। डेन धनोआ। दिनेश हिंगू। गुरुबचन। जगदीश राज।

गी*	मेरे सनम यूं ही अगर मिलते रहे हम, दिन पे दिन मोहब्बत बढ़ती जाएगी।

दिल आशना है	यू 18 रील

बे	एच.एम.क्रिएशन

नि नि*	हेमा मालिनी

क प	इम्तियाज़ हुसैन

सं	इकबाल दुर्रानी। सूरज सनीम

गी	मजरूह सुल्तानपुरी

सं	आनन्द-मिलिन्द

छा	पीटर परैरा

पा	डिम्पल कपाड़िया। अमृता सिंह। सोनू वालिया। दिव्या भारती। फरीदा ज़लाल। सुषमा सेठ। सुलभा देशपांडे। बीना। रोहिणी हट्टंगड़ी। माधवी। नासीर अब्दुल्ला (नया चेहरा)। शाहरुख खान। जितेन्द्र। मिथुन चक्रवर्ती। कबीर बेदी। मोहन अगाशे। रजा मुराद। बबलू मुखर्जी। मोहसिन खान। पंकज उधास (अतिथि)।

गी*	किसी ने भी तो न देखा निगाह भर के मुझे

दिल वाले कभी ना हारे	यू 16 रील (सिनेमास्कोप)

बे	समीर प्रोडक्शनस्

नि	बाबूभाई थिबा

नि*	वी.मेनन

क सं गी	महेन्द्र देहलवी

सं*	नदीम-श्रवण

छा	मंगेश व्ही.सावंत

पा	नगमा। श्री प्रदा। वर्षा उसगाँवकर (अतिथि)। सुधाचन्द्रन। राहुल रॉय। पृथ्वी। गिरजाशंकर। सतीश शाह। राकेश बेदी। पंकज बेरी। जोगेन्दर परवेज़। दिनेश आनन्द। दीपू सहर। देवेन्द्र पण्डित। गजेन्द्र चौहान (अतिथि)। बलजीत बालगन। कोका कोला।

गी*	दिल वाले कभी ना हारे
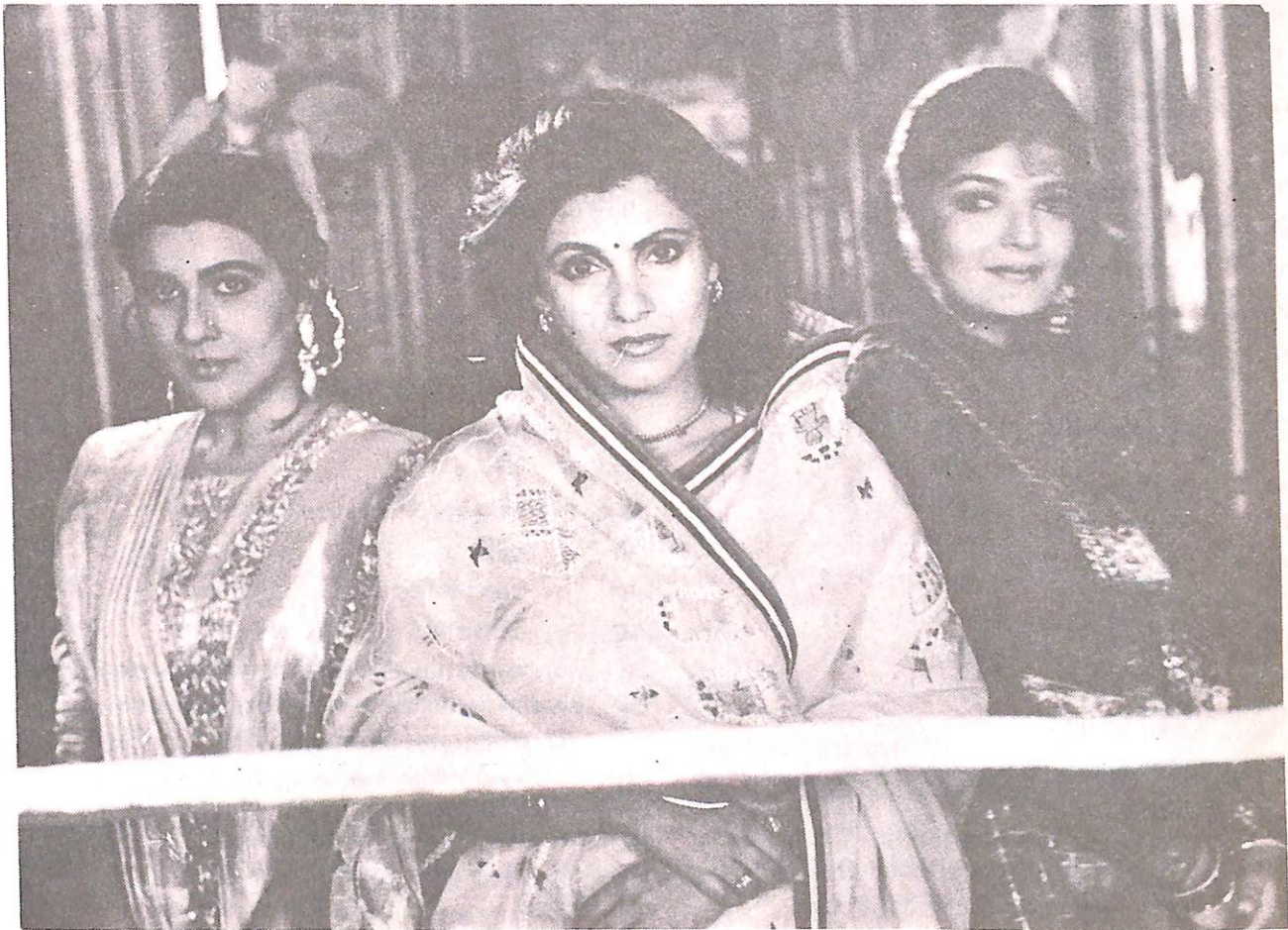
फिल्म दिल आशना है : अमृता सिंह, डिम्पल और सोनू वालिया

दुश्मन जमाना यू 16 रील

बे	मातुश्री फ़िल्म
नि	विजय शर्मा
नि*	जगदीश ए. शर्मा
क प	एस. खान
सं	नईम एज़ाज
गी	अनवर सागर
सं*	महेश-किशोर
छा	जो.डि.'सूजा
पा	दिव्या भारती। अरमान कोहली। परेश रावल। गुलशन ग्रोवर। इशरत अली। फिरोज़ ईरानी। भूषण दर। महेन्द्र वर्मा। शिवा। किरण कुमार।
गी*	मोहब्बत की किताबों में

देवी और दुर्गा यू 14 रील (तेलगु फ़िल्म नागवाला से डब)

बे	विजया लक्ष्मी प्रोडक्शन
नि	पी.शांताकुमारी
नि*	रामा नारायणन्
स*	उमेश शर्मा
पा	बेबी शामली (अंजली फेम) (डबल रोल)

द्रोही ए 14 रील

बे	दृश्य क्रिएशन
नि नि*	रामगोपाल वर्मा
गी	जावेद अख्तर
सं*	आर.डी.बर्मन
छा	तेज़ा
पा	उर्मिला मातोण्डकर। नागार्जुन। डेनी डेंग्जोप्पा। सलीम गौस।
गी*	तुम जो मिले तो लगा है जैसे मिली जिन्दगी

धार ए 15 रील

बे	शिवालय आर्टस्
नि	जेठा भाई.चौहान
नि* क प	अमर भट्टाचार्य
सं	बृजभूषण
गी	नक्श लायलपुरी
सं*	संजय चक्रवर्ती
छा	गौरंग साह
पा	चन्ना रुपारेल। अलका कुबुल। सुलभा देशपाण्डे। आशा सिंह। लीना कामथ। टीना घई (अतिथि)। संजीव चौहान (नया चेहरा)। जीत उपेन्द्र। प्रदीप रावत। दीपक शिरके। प्रेम ऋषि। स्वामी पाठक। अमर त्रिपाठी। देव दत्ता।

इ

एक लड़का एक लड़की यू 19 रील

बे	डी.डी. फ़िल्म
नि	डी.डी. यान्दे
नि*	विजय सदाना
क	सलीम आगा
गी	मजरूह सुल्तानपुरी। विजय सदाना
सं*	आनन्द-मिलिन्द
छा	एस.एल. शर्मा
पा	नीलम। शुभा खोटे। सलमान खान। असरानी। सुब्बीराज़। अनुपम खेर। टीकू तल्सानिया। जावेद खान। सलीम। मास्टर सुमित। मास्टर मोंटी। मास्टर विक्की। बन्दर। ब्राऊनी डॉग। हीरा घोड़ा।
गी*	फूल ये नहीं अरमाँ हैं तेरा

एक साँस जिन्दगी यू 9 रील

बे	बासु भट्टाचार्य
नि	मध्यप्रदेश फ़िल्म विकास निगम
नि*	बासु भट्टाचार्य

एफ

फौलादी टक्कर यू 15 रील

बे	आशुतोष शुक्लाज़

जी

गजब तमाशा यू 15 रील (सिनेमास्कोप)

बे	रणजीत
नि नि*	रणजीत
क सं प	तरूण घोष
गी	समीर
सं*	आनन्द-मिलिन्द
छा	नंदो भट्टाचार्य
पा	अनु अग्रवाल। स्नेह। तनूजा। अरुणा ईरानी। नलिनी। गुड्डी मारुति। राहुल रॉय। दीपक तिजोरी। कुलभूषण खरबंदा। रणजीत। सत्यजीत। चन्द्रशेखर। सत्येन कप्पू। प्रेम बेदी।
गी*	लड़की गली की देखो, बन गई मेम

गंगा बनी शोला यूए 16 रील (सिनेमास्कोप)

बे	अंबिका मुवीज़
नि	पी.एल.आहूजा। एच.पी. त्रिवेदी।
नि*	कांति शाह

क प गी	महेन्द्र दहेलवी
सं*	दिलीप सेन-समीर सेन
छा	विनोद बारोट
पा	जमुना। श्री प्रदा। यास्मिन। नंदिता ठाकुर। विजयकुमार सक्सेना। दिलीप ताहिल। गोगा कपूर। जोगिन्दर। शक्ति कपूर। अनुपम खेर। कादर खान। किरण कुमार।
गी*	बालम धीरे-धीरे

घर जमाई यू 16 रील
बे	निर्मल पिक्चर्स
नि	विश्वनाथ प्रसाद शाहबादी। राजकुमार शाहबादी। अशोककुमार अग्रवाल।
नि*	अरुण भट्ट
प	के.बी. पाठक
सं	कादर खान
गी	समीर
सं* गी	समीर
सं*	आनन्द-मिलिन्द
छा	दिलीप दत्ता
पा	वर्षा उसगाँवकर। बीना। शम्मी। सुस्मिता मुखर्जी। रीता भादुड़ी। अमिता नांगिया। मिथुन चक्रवर्ती। विक्रम गोखले। प्रेम चोपड़ा। शक्ति कपूर। अंजन श्रीवास्तव। पेन्टल। रामसिंह। कादर खान। शैल चतुर्वेदी।
गी*	दिल लगा के देखो, अपना बना के देखो, घर बसा के देखो

गंगा का वचन यूए 16 रील
बे	वरदान फ़िल्मस्
नि	मनीष विमल
नि*	गुलशन अष्ट
क	वाजिद शेख
प	मुश्ताक जलीली
सं	बशीर बब्बर
गी	रानी मलिक। योगेश। सामी मलिक।
सं*	निखिल-विनय
छा	अनिल ढंढा
पा	उपासना सिंह। जमुना। सिद्धार्थ। सुधीर दलवी। मंगल ढिल्लो। अवतार गिल। महावीर शाह। शहज़ाद खान। राम सखारे। दिनेश हिंगू। गुलशन ग्रोवर। शक्ति कपूर। कादर खान। तारिक शाह (अतिथि)।
गी*	दिलबर जानिए

गहरा राज ए 14 रील
बे	देवी दयाल प्रोडक्शन
नि	श्रीमती उषा बेदी
नि* गी	मेहमूद सरदार

फिल्म घर जमाई : मिथुन चक्रवर्ती और वर्षा उसगाँवकर
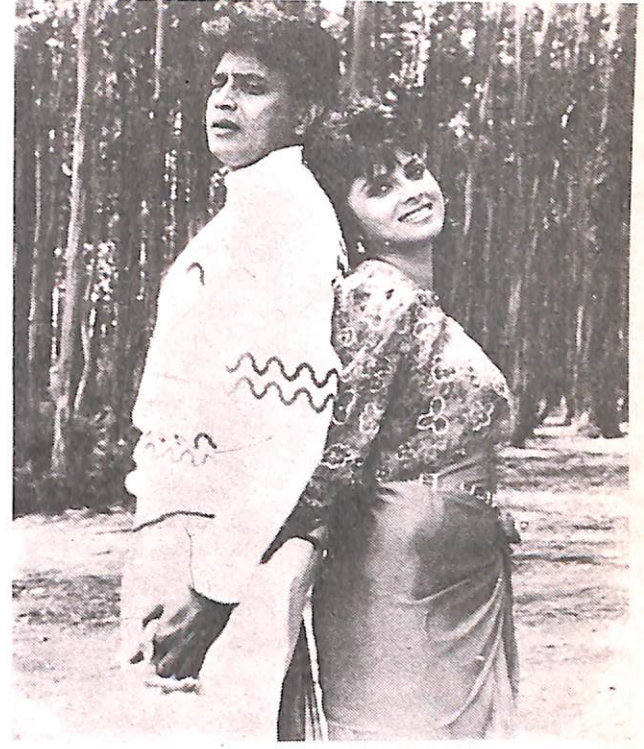
सं	दीपक खनूजा
पा	सलमा आगा। अनिता राज। जमुना। राज बब्बर। सुधीर पाण्डे। जगदीप। अशोक सराफ।

गीत यू 18 रील (सिनेमास्कोप)
बे	विशाखा फ़िल्मस्
नि	नीलिमा पॉल
नि*	पार्थो घोष
क	डॉ. अचला नागर
गी	इंदीवर। अन्जान।
सं*	बप्पी लाहिरी
छा	युसूफ खान
पा	दिव्या भारती। श्रावणी गोस्वामी। मेघना। बेबी सरोज। अविनाश वाधवान। शक्ति कपूर। लक्ष्मीकांत बेर्डे। दिशा घई।
गी*	आप जो मेरे मीन न होते, जीवन में मेरे गीत न होते।

घर आया मेरा परदेसी यू 17 रील
बे	पीपट फ़िल्म इन्टरनेशनल
नि	रवीन्द्र पीपट
नि* प सं	रवीन्द्र पीपट
गी	देव कोहली। रवीन्द्र पीपट
सं*	विजय सिंह

छा

पा वर्षा उसगाँवकर। भाग्यश्री (अतिथि)। अविनाश वाधवान। गुलशन ग्रोवर। दिलीप ताहिल।

गी* इक सुख का इक दुःख का मौसम

एच

हैरत ए 16 रील

बे स्वीटी फ़िल्मस्

नि नि* कीर्ति रावल

गी योगेश

सं* उषा खन्ना

पा सोनिका गिल। विद्या श्री। सोमराज। अनिल धवन।

हमला यू 19 रील (सिनेमास्कोप)

बे सेवन आर्टस् पिक्चर्स

नि मदन मोहला

नि* क एन.चन्द्रा

प सचिन भौमिक। एन.चन्द्रा

सं डॉ. राही मासूम रज़ा

गी आनन्द बक्षी

सं* लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल

छा राजन किनांगी

पा मीनाक्षी शेषाद्रि। किमी काटकर। आशालता। शुभा खोटे। सुलभा देशपाण्डे। धर्मेन्द्र। अनिल कपूर। अनुपम खेर। अशोक कुमार। शफी इनामदार। ओम शिवपुरी। अच्युत पोद्दार। जॉनी लिवर। प्रवीण कुमार। सुधीर। मेक मोहन। जे.के.गौड़। दिनेश हिंगू। सरवर हुसैन। घनश्याम।

गी* अब तुम आए हो तो जाने नहीं देंगे

हनीमून यू 18 रील

बे सुरेन्द्र मोहन प्रोडक्शन

नि श्रीमती विजय अनेजा

नि* सुरेन्द्र मोहन

क प रनवीर पुष्प

सं कादर खान

गी मजरुह सुल्तान पुरी। एम.जी.हशमत

सं* आनन्द-मिलिन्द

छा एच.लक्ष्मीनारायण

पा वर्षा उसगाँवकर। अश्विनी भावे। बिन्दू। सुप्रिया चौधरी। शम्मी। गुड्डी मारुति। किम। ऋषि कपूर। मोहनीश बहल। शक्ति कपूर। परेश रावल। कादर खान। गिरिजा शंकर। दिनेश हिंगू। महेश राज़।

गी* यूँ ना देखो तसवीर बन के

हमशक्ल यू 15 रील (सिनेमास्कोप)

बे फ़िल्म इन्टरनेशनल

नि रूप कादर। ए.पी. जितेन्द्र रेड्डी

नि* कल्पतरु

गी मजरुह सुल्तानपुरी

सं* लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल

पा मीनाक्षी शेषाद्रि। निरुपा राय। किरण जुनेजा। कामि[illegible] कौशल। जमुना। बेबी शम्पा। शम्मी कपूर। विनोद [illegible] (डबल रोल)। शफी ईमानदार। अशोक सराफ। गु[illegible]न ग्रोवर। कादर खान। परेश रावल। शरद सक्सेना। तेज सप्रू। गिरिजा शंकर। विकास आनन्द। महेश राज़। सुनील धवन।

गी* पिंकी मेरी जान है

हीर - राँझा यू 17 रील

बे ईस्टर्न फ़िल्मस्

नि नि* हरमेश मल्होत्रा

क मंगल ढिल्लों

गी आनन्द-बक्षी

सं* लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल

छा डब्ल्यू.बी.राव

पा श्रीदेवी। सुषमा सेठ। आलोका मुखर्जी। कुनिका। प्रीति सप्रू। पुष्पा वर्मा। अनिल कपूर। शम्मी कपूर। अनुपम खेर। मोन्टी। मयूर। मुहास खांडके। गिरिजा शंकर। सत्येन कप्पू। गुफी पेन्टल। पंकज धीर। राकेश बेदी। मंगल ढिल्लों। राम मोहन।

गी* रब ने बनाया तुझे मेरे लिए, तुझे मेरे लिए

आय

इन्सान बना शैतान ए 15 रील

बे रामकृ[illegible] फ़िल्म

नि* मोहन भाकरी

गी समीर

सं* नरेश शर्मा

पा मीठी। उपासना सिंह। श्रीप्रदा। अपराजिता। नीलम मेहरा। दीपक पाराशर। जावेद खान। जगदीप। [illegible] खान। अनिल धवन। भरत कपूर। तेज सप्रू। शिवा।

आय लव यू यू 16 रील

बे बी.वी.कम्बाइन

नि प्रवीण शाह। इकबाल खान

नि* वारा प्रसाद

क राधा भारती

प शणमुघम सुन्दरम्

सं फैज़ सलीम

गी रवीन्द्र रावल। देव कोहली। रानी मलिक

सं*	राम-लक्ष्मण
छा	हरमीत सिंह
पा	सवहा (नया चेहरा)। तनूजा। रीमा लागू। बीना। सुलभा देशपाण्डे। गुड्डी मारुति। प्रशांत (नया चेहरा)। असरानी। लक्ष्मीकांत बेर्डे। विजू खोटे। बबलू मुखर्जी। अशोक सराफ। अमरीश पुरी। देवेन वर्मा। रानी रेड्डी। चरण राज।
गी*	तू मेरे आगे मैं तेरे पीछे

इश्क का तूफान ए 15 रील (मलयालम से डब)

बे	व्ही.जी. अंबालानीज़

इन्तहा प्यार की यू 10 रील

बे	क्रिस्टल फ़िल्मस् (बंगलौर)
नि	शोहरेत भगत
नि* क	जे.के. बिहारी
सं	जगदीश कंवल
गी	समीर
सं*	आनन्द-मिलिन्द
छा	श्यामराव
पा	भाग्यश्री। रुखसार। अपराजिता। सुषगा सेठ। सुधा चन्द्रन। ऋषि कपूर। इमरान खान (नया चेहरा)। शफ़ी ईनामदार। असरानी। तेज सप्रू। प्राण। सत्येन कप्पू। विकास आनन्द।
गी*	जाने से पहले सोच लो इतना, एक दिन वापस आओगे

इसी का नाम जिन्दगी यू 16 रील (सिनेमास्कोप)

बे	राज लक्ष्मी पिक्चर्स
नि	रतन मुखर्जी
नि*	कालीदास
प सं	रमेश पंत
गी	इंदीवर। रमेश पंत
सं*	बप्पी लाहिरी
छा	रवीकांत रेड्डी
पा	फरहा। बीना। जमुना। आमीर खान। प्राण। असरानी। अंजन श्रीवास्तव। भरत कपूर। शक्ति कपूर (3 रोल में)। तेज सप्रू। तरुण घोष। गुलशन ग्रोवर। राजेश पुरी। बबलू मुखर्जी। शिबा।
गी*	गोलई गोलई गो मिले, कोई अन्जाना जो लगे जाना पहचाना

इश्क खुदा है यू 18 रील

बे	एस.पी.एम. प्रोडक्शन
नि नि* क	पी.डी.मेहरा। दिलीप ताहिर
सं*	दिलीप सेन-समीर सेन
छा	के.राव
पा	सुरभि (नया चेहरा)। सनम। शर्मीली। रीता भादुड़ी। आशा सचदेव। अरुणा ईरानी। अपराजिता। बीना। आशा शर्मा। यास्मिन। टीना घई। सरोज़ शर्मा। रज़नी काला। शंकर (नया चेहरा)। मुकेश खन्ना। शशि कपूर। पंकज कपूर। सुधीर दलवी। ऋषभ शुक्ला। सत्येन कप्पू। कुलभूषण खरबंदा। गोगा कपूर। सुब्बीराज। जोगिन्दर। पेन्टल। राजेश पुरी। सुरेन्द्र पॉल। अमृत पॉल। कुणाल। गजेन्द्र चौहान। दिलीप ताहिल। युनूस परवेज़। अजय ठाकुर। टीनू आनन्द। अनिल नागरथ। कुणाल। डेन धनोआ। रजा मुराद। गुलशन गाँधी। शहज़ाद।
गी*	मैं फकीर, इश्क मेरा

जे

जिया बेकरार है ए 11 रील (मलयालम से डब)

बे	रेशमा इन्टरप्राइजेस्

जान तेरे नाम यू 14 रील

बे	मनीष आर्टस्
नि	जिमी निरूला
नि* क	दीपक बलराज़ विज
प	धर्मवीर राम
सं	धर्मवीर राम। नवाब आरजू
गी	समीर। अज़ीज खान। सहानी। नवाब आरजू। रानी मलिक। गोहर कानपुरी। सैय्यद राही। सुरेन्द्र साथी।
सं*	नदीम-श्रवण
छा	किशोर कापड़िया
पा	फरहीन (नया चेहरा)। गीता खन्ना। अंजू महेन्द्रू। सुलभा देशपाण्डे। शहनाज। रोनित रॉय (नया चेहरा)। बलविन्दर धर्मा। विजय अरोरा। अली। राना। अविनाश। सचिन माने। अजीत वाच्छानी।
गी*	हम लाख छुपाए प्यार मगर

जंगल का बेटा ए 16 रील (सिनेमास्कोप)

बे	जे.आर. फ़िल्मस्
नि	ए. जयरामी रेड्डी
नि* क	वा.आर.इशारा। भूषण बनमाली
गी	नक्श लायलपुरी
सं*	आर.डी.बर्मन
छा	हुसैन शेख
पा	फरहा। स्वप्ना। राज बब्बर। सुमीत सहगल। सदाशिव अमरापुरकर। शफ़ी ईनामदार।

जय शिव शंकर यू 18 रील

बे	राजेश खन्ना प्रोडक्शनस्
नि	राजेश खन्ना
नि*	एस.ए.चन्द्रशेखर

गी आनन्द बक्षी

सं* आर.डी.बर्मन

पा डिम्पल कपाड़िया। पूनम ढिल्लो। संगीता बिजलानी। जितेन्द्र। राजेश खन्ना। चंकी पाण्डे। ओम शिवपुरी। पेन्टल। शफी ईनामदार। असरानी। अजीत वाच्छानी। अनुपम खेर।

गी* तू अन्दर कैसे आया, चोर दरवाजे से

जो जीता वही सिकन्दर यू 17 रील (उर्दू)

वे नसीर हुसैन फ़िल्मस् प्रायव्हेट लिमिटेड

नि सं नसीर हुसैन

नि क प मन्सूर खान

गी मज़रुह सुल्तानपुरी

सं* जतिन-ललित

पा पूजा बेदी। आयशा जुल्का। किरण जवेरी (नया चेहरा) शहनाज़। सनम ओबेरॉय। आमीर खान। दीपक तिजोरी। कुलभूषण खरबंदा। मामिक हरमीत (नया चेहरा)। देव मुखर्जी। अजीत वाच्छानी (अतिथि)। अंजन श्रीवास्तव (अतिथि)। असरानी (अतिथि)। देवन भोजनानी। आदित्य लखिया। सूरज थापर। प्रकाश। मिकी खान। बॉबी खन्ना। शिराज। अहमद खान।

गी* जवान हो यारो ए तुमको हो जाग

जय हो मैहर धाम की यू 15 रील (हिन्दी सह भोजपुरी)

वे मिश्रा फ़िल्म इन्टरनेशनल

नि नि* सूर्यमणि मिश्रा

गी नगेन्द्र ठाकुर

सं* मधु कृष्णा

पा बंदिनी मिश्रा। रानी सिंह। बाला गांगुली। संगीता। बीनारॉय। ललितेश। सुरेशसिंह। अशोक सेठ। चाहेलाल मिश्रा।

जान से प्यारा यू 18 रील

वे फ़िल्म ग्रुप कम्बाइन

नि नि* क प - आनन्द

गी समीर

सं* आनंद-मिलिन्द

छा शशि कात्रे

पा दिव्या भारती। अरुणा ईरानी। गोविन्दा (डबल रोल)। सुरेश चटवाल। रजा मुराद। नसीर शेख। हरीश वासन। किरण कुमार। राजेन्द्र गुप्ता।

गी* राज दुलारा तू मेरी

जय काली यू 14 रील

वे भाग्य लक्ष्मी चित्र मन्दिर

नि* निखिल सैनी

सं* उषा खन्ना

पा हेमा। अरुणा ईरानी। जीतेन्द्र (अतिथि)। राजेश विवेक। भरत कपूर।
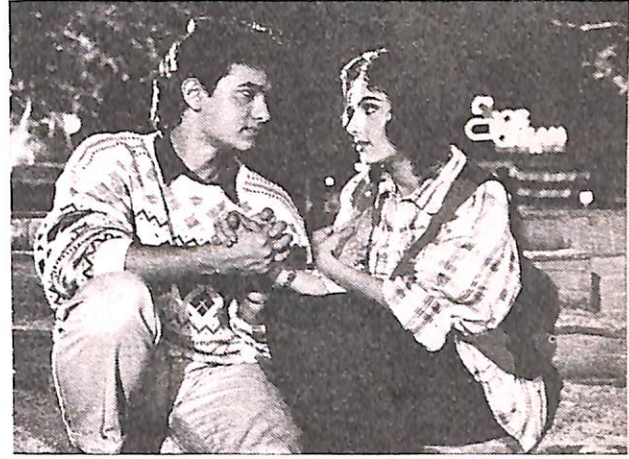
फिल्म जो जीता वहीं सिकन्दर : आमिर और आयशा

जागृति यूए 15 रील

वे शेट्टी फिल्म एसोसिएशनस्

नि श्रीमती एस.आर.शेट्टी

नि* सुरेश कृष्णा

क सलमान खान

प सं अनवर खान

गी समीर

सं* आनन्द-मिलिन्द

पा करिश्मा कपूर। बीना। रीना पाठक। किशोरी भानुशाली। सलमान खान। अशोक सराफ। ए.के.हंगल। पंकज धीर। अवतार गिल। पुनीत इस्सर। बबलू मुखर्जी। सलीम खान। सुनहरा (नया चेहरा)। रजा मुराद (अतिथि)। प्रेम चोपड़ा। किरण कुमार। जावेद खान। किशोर चार्ली। मोहन जोशी। सत्यजीत। सुरेश भागवत। दिनेश हिंगू। शिव। राजा दुग्गल। श्रीधर। फिरोज़। गवीन पेकार्ड।

गी* आएगा आएगा बिछड़ा यार हमारा

जेठा यूए 15 रील

वे जे.प्रोडक्शनस्

नि श्रीमती जूलियट रिबेलो

नि* -

सं* कमलकांत

पा सलमा आगा। सुपर्णा। बेबी दक्षा। सुमीत सहगल। विक्की कुमार। रणजीत। रजा मुराद। प्राण। शिवा। अमजद खान। गोगा कपूर।

जंगल में मस्तियाँ ए 11 रील (मलयालम से डब)

वे ओम् विजयालक्ष्मी प्रोडक्शन

जुनून ए 15 रील ('केट पीपुल' अँगरेजी फिल्म से प्रेरित)
वे विशेष फ़िल्म्स्
नि मुकेश भट्ट
नि* महेश भट्ट
क प रोबिन भट्ट। सुजीत सेन
सं रॉबिन भट्ट
गी समीर। सुरेन्द्र साथी
सं* नदीम श्रवण
छा प्रवीण भट्ट
पा पूजा भट्ट। शुभा खोटे। शोभा माणिक। अविनाश वाधवान। राहुल रॉय। राकेश बेदी। अनंग देसाई। अवतार गिल। टॉम अल्टर। मुश्ताक खान। जावेद खान। भूषण पटेल। के.डी. चंद्रन। होमी वाडिया।
गी* दीवारों पे लिखा है, मीनारों पे लिखा है-
शहर की इन गलियों चौबारों पर लिखा है तेरा नाम

जंगल की चाँदनी ए 17 रील (मलयालम से डब)
वे गोल्डन ईगल कम्बाइन

ज़िगर यूए 18 रील
वे आफताब म्यूज़िक इंडस्ट्रीज
नि सलीम
नि* फारुख सिद्दीकी
क ललित महाजन
सं तनवीर खान
गी समीर फारुख सिद्दीकी
सं* आनंद- मिलिंद
छा अकरम खान
पा करिश्मा कपूर। सुकन्या कुलकर्णी। जमुना। अरुणा ईरानी। अजय देवगन। अर्जुन। परेश रावल। हुसैन खान। सलीम।

फिल्म काकी : हंगल, राजेन्द्र गुप्ता और मनोहर सिंह

जॉन। इशरत अली। अजीत। गुलशन ग्रोवर। यजनीश चीता। बजरंगी। जाहिद। गुरुवचन सिंह।
गी* लोग बरसों जुदा हो के जीते हैं

जवानी की खुशबू ए 14 रील तमिल फिल्म से डब
वे लियो इंटरनेशनल्स
नि जे. व्ही. रुक्मणदम
पा राजू ईश्वरन। युवराज। टी. जी. मुथू

जादू भरे नैन 12 रील
वे चम्पा फ़िल्म्स

के

कसक यू 16 रील (तमिल फिल्म मौनरागम् से प्रेरित)
वे श्री जगदम्बा मूव्ही कम्वाइन्स
नि रतन ईरानी
नि* के. बापैया
क मणिरत्नम्
गी इंदीवर
सं* राजेश रोशन
छा ए. वेंकट
पा नीलम। अपराजिता। अरुणा ईरानी। गीता सिद्धार्थ। जया मायुर। बेबी गुड्डू। ऋषि कपूर। चंकी पांडे। कादरखान। लक्ष्मीकांत बेर्डे। सत्येन कप्पू। जे. के. गौड़।
गी* एक बार प्यार का मौका तो हमें दीजिए

काकी यू 9 रील
वे के.जी. फ़िल्म्स
नि के.जी. दीक्षित
नि*क संतोष जैन
प ज्ञानकुमार सत्संगी
सं प्रभुनाथ सिंह "आजमी"
सं* तृण चक्रवर्ती
छा -
पा कामिनी कौशल। राजश्री सांवत। कोमल कल्याण जैन। वंदना दुबे। राजेन्द्र गुप्ता। ए. के. हंगल। मनोहर सिंह। बालेन्दू दीक्षित। सुरेश खन्ना। विनोद तिवारी। कीर्ति जैन। रवीन्द्र शर्मा। वीरेन्द्र शर्मा। डी. के. जैन। बिरत। डॉ. कमल दीक्षित। विजय मोडक। सुनील उघल।

खेल बदनामी के ए 12 रील (मलयालम से डब)
वे गोपाल इंटरनेशनल
नि गोपाल चाँदनी
नि* के. एस. गोपाल कृष्णन

फिल्म खुदा गवाह : अमिताभ बच्चन और श्रीदेवी

कसम कानून की ए 14 रील (तमिल से डब)

वे श्री साण्हरेन कॉम्प्लेक्सस्

नि* शशि मोहन

पा गौतमी डिस्को शांति त्यागराज।

कल की बातें यू 8 रील

वे बाबा मजगांवकरस

खुले आम यूए 18 रील

वे गुरुदत्त फ़िल्म्स प्रा.लि.

नि अरुण दत। स्वर्गीय तरुणदत

नि*क अरुण दत

सं मोहम्मद इशाक

गी इंदीवर

सं* आर. डी. बर्मन

छा वी. के. मूर्ति

पा नीलम मौसमी चटर्जी (अतिथि) धर्मेन्द्र। शम्मी कपूर। चंकी पांडे। डैनी। सदाशिव अमरापुरकर। युनूस परवेज।

गी* पहले पहर दीदार हुआ।

खुदा गवाह यू 19 रील (सिनेमास्कोप)

वे ग्लेमर फ़िल्म्स

नि मनोज देसाई। नज़ीर एहमद

नि* मुकुल, एस. आनंद

गी आनंद बक्षी

सं लक्ष्मीकांत प्यारेलाल

छा डब्ल्यू. वी. राव

पा श्रीदेवी। शिल्पा शिरोड़कर। अंजना मुमताज। शम्मी। बीना। मिनी तब्बसुम। अमिताभ बच्चन। डैनी डेंग्जोपा। नागार्जुन। विक्रम गोखले। किरण कुमार। सुरेन्द्र पाल। भरत कपूर। अरविंद राठौड़। अंजना श्रीवास्तव। भूषण जीवन। अली खान। दीपक शिरके।

गी* खुदा गवाह * तू मुझे कबूल

खिलाड़ी यू 18 रील

वे यूनायडेट सेवन

नि गिरीश जैन

नि* अब्बास मस्तान

क प एस. खान

सं नईम एजाज। अदेश के. अर्जुन

गी अनवर सागर। श्याम राज। महेन्द्र देहलवी। देव कोहली।

सं जतिन ललित

छा थामस जेवियर

पा	आयशा जुल्का। सबहा। कुनिका। बीना। गुड्डी मारुति। अक्षय कुमार। दीपक तिजोरी। प्रेम चोपड़ा। शक्ति कपूर। अमृत पटेल। टीनू आनंद। संजीव चित्रे। घनश्याम। जॉनी लीवर। शरद सक्सेना। अनंद महादेवन।
गी*	वादा रहा सनम

किसमें कितना है दम यू 15 रील

बे	संधू फिल्म प्रोडक्शन
नि*	आर. पी. स्वामी
गी	समीर
सं*	बप्पी लेहरी
पा	स्वप्ना। अरुणा ईरानी। मिट्ठी। महेन्द्र संधू। सुरेश ओबेराय। सदाशिव अमरापुरकर। ओमशिवपुरी। शक्ति कपूर। डैनी। सुधीर। श्रीराम लागू। रमण कपूर। डेन धनोआ।

काल भैरव ए 15 रील

बे	कादम्बिनी फ़िल्म्स
नि नि*क	राकेश परमार
गी सं*	रवीन्द्र जैन
छा	श्रीपद नातू
पा	-

खेल यू 16 रील

बे	शिव-भक्ति फ़िल्म्स
नि	सुजीत कुमार
नि*	राकेश रोशन।
क	जावेद अख्तर
सं*	राजेश रोशन
छा	पुष्पल दत। नदीम खान
पा	माधुरी दीक्षित। सोनू वालिया। माला सिन्हा। भारती। अपराजिता। अनिल कपूर। अनुपम खेर। प्रेम चोपड़ा। दिनेश हिंगू। सत्येन कप्पू। सुजीत कुमार। मैक मोहन। आलोकनाथ। विजयेन्द्र घाटगे। सतीश कौल।
गी*	खत लिखना है पर सोचती हूँ

कल की आवाज यू 17 रील

बे	बी. आर. फ़िल्म्स
नि नि*	बी. आर. चोपड़ा। रवि चोपड़ा
क	डॉ. राही मासूम रजा। सतीश भटनागर
प	डॉ. राही मासूम रजा। सतीश भटनागर। कुलवन्त जानी।
सं	डॉ. राही मासूम रजा।
गी	समीर
सं*	नदीम श्रवण
छा	धरम चोपड़ा
पा	प्रतिभा। अमृता सिंह। नीना गुप्ता। राधा सेठ। फरीदा जलाल। पूजा भट्ट। अर्चना। धर्मेन्द्र। राज बब्बर। रोहित भाटिया (नया चेहरा)। पुनीत इस्सर। अर्जुन। गिरिजा शंकर। गुफी पेंटल। कृश मालिक। सुषमा प्रकाश। सागर सालुंके। अमीन। पंकज धीर।
गी*	तुम्हारी नजरों में हमने देखा अजब की चाहत झलक रही है

कमसिन ए 16 रील

बे	एस. एस. मूवीज
नि	श्रीमती रानी खान। इसरार एहमद।
नि*	उस्मान खान। राजे खान।
क	राजे खान
गी	इंदीवर। महेश शर्मा। रमेश मोदी। रानी मलिक। बलदेव प्रसाद
सं*	महेश किशोर
छा	राजन लायनपुरी
पा	कीर्ति सिंह। दीपन्ति। टीना घई। आरती। रीता भादुड़ी। पद्मा खन्ना। सूरज। अनंत महादेवन। कादर खान। डेन धनोआ। जू. मेहमूद।
गीत*	मेरे दिल पर हाथ रखकर।

क्षत्रिय यूए 18 रील

बे	पुष्पा मूवीज
नि	सुन्दरदास सोनकिया
नि*	जे.पी. दत्ता
सं	ओ.पी. दत्ता
गी	आनंद बक्षी
सं*	लक्ष्मीकांत- प्यारेलाल
छा	निर्मल जॉनी
पा	राखी। मीनाक्षी शेषाद्री। रवीना टंडन। दिव्या भारती। सुमालता। डॉली मिन्हास। धर्मेन्द्र। विनोद खन्ना। संजय दत्त। सलीम। प्रेम चोपड़ा। कबीर बेदी। सन्नी देओल। नफीसा अली। पुनीत इस्सर। विजयेन्द्र घाटगे।
गी*	दिल न किसी का जाए, जान जाए तो जाए

कभी धूप कभी छाँव यू 11 रील

बे	कान्स्टेलेशन पिक्चर्स (दो दशक पहले निर्मित दिसंबर 92 में सेंसर हुई)
नि	एहसान खान
पा	राकेश पांडे

किंग अंकल यू 17 रील

बे	फ़िल्म्स क्रॉफ्ट्स
नि नि*	राकेश रोशन
क प	रवि कपूर। महेश कौल
सं	अनीस बज्मी
गी	इंदीवर। जावेद अख्तर
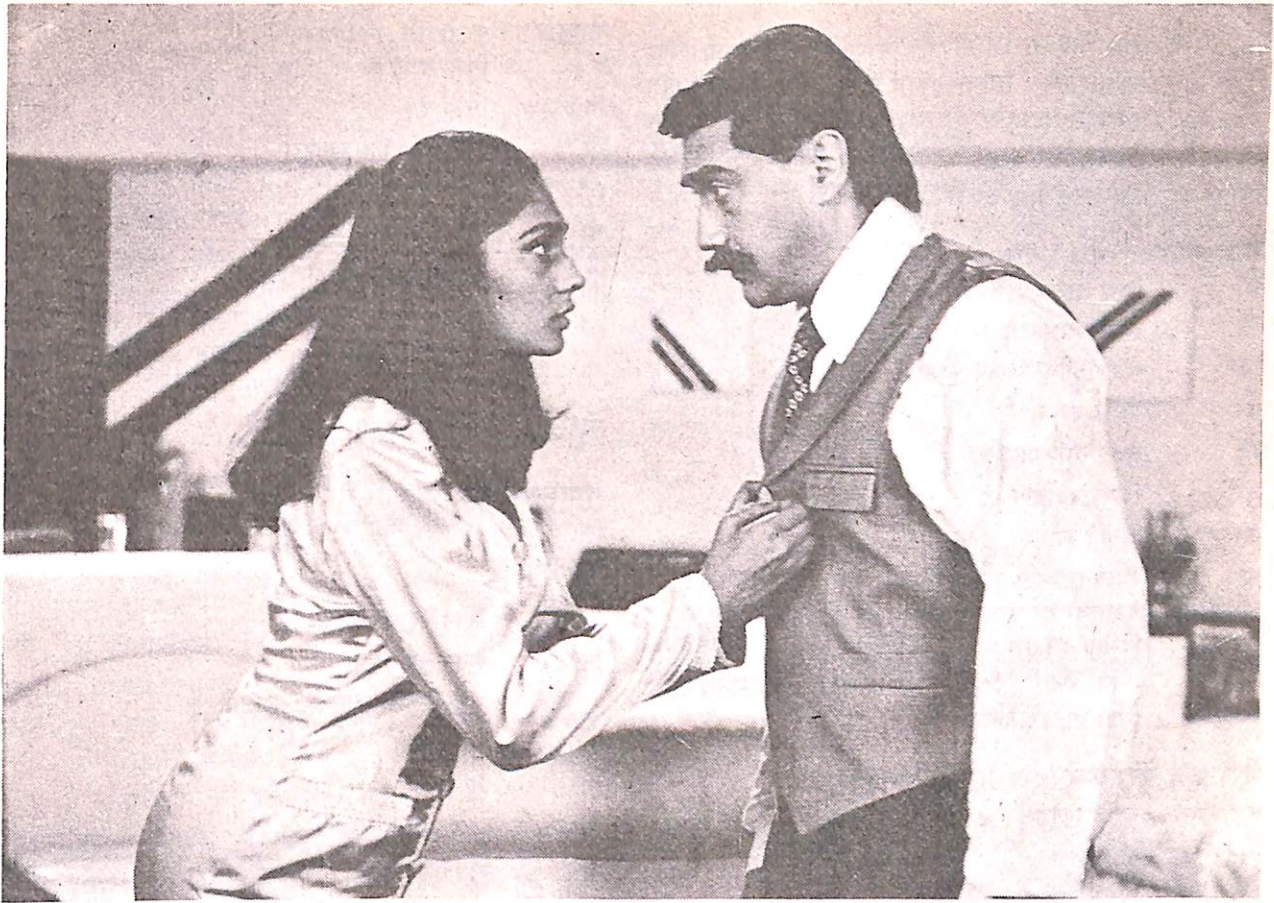
फिल्म किंग अंकल : अनु अग्रवाल और जैकी श्रॉफ

सं*	राजेश रोशन
छा	पुष्पल दत
पा	अनु अग्रवाल। बेबी पूजा (नया चेहरा)। सुस्मिता मुखर्जी। नगमा। निवेदिता जोशी। मधु मल्होत्रा। जैकी श्राफ। शाहरुख खान। अनुपम खेर। देवेन वर्मा। परेश रावल। विवेक वासवानी। दिलीप ताहिल। के. एस. रमेश। दिनेश हिंगू। घनश्याम। कैलाश बोरा। डेत धनोआ।
गी*	इस जहाँ की नहीं है तुम्हारी आँखें, आसमाँ से किसने उतारी ये आँखें

एल

लाट साहब यू 15 रील

बे	मल्टी ब्राडकास्ट मीडीयाज फ़िल्म्स
नि नि*	सुनील अग्निहोत्री
क प	सबीर मुस्तफा
सं	मुश्ताक मर्चेन्ट
गी	गुलशन बावरा
सं*	अन्नू मलिक
छा	अशोक बहल
पा	नीलम। सुषमा सेठ (अतिथि)। जैकी श्राफ। मोहसिन खान। असरानी (अतिथि)। इशरत अली। सईद जाफरी। ए. के. हंगल। भरत कपूर। के. एन. सिंह। बी. स्वामी पाठक। वृज गोपाल। टी. पी. जैन।
गी*	दे दो, दे दो, मुझे दिल

एम

मैं फिर आऊँगा यू 10 रील (मलयालम फ़िल्म्स अभयम् से डब)

बे	भारतीय बाल चित्र समिति

मेरे सजना साथ निभाना यू 16 रील (सिनेमास्कोप)

बे	बी. एल. बी. प्रोडक्शन्स मद्रास
नि	के. सी. बोकाडिया
नि*	राजेश वकील
क	एम. एस. मधु
प	आर. बी. उदयकुमार
सं	मेहबूब सरवर
गी	समीर
सं*	आनंद- मिलिंद

छा पीटर परेरा
पा जूही चावला। शांतिप्रिया। अपराजिता। निरुपामा रॉय। नफीसा शर्मा। जुगनू। अरुणा ईरानी। बेबी रेशमा। मिथुन चक्रवर्ती। कुलभूषण खरबंदा। टीनू आनंद। आलोकनाथ। शिवा। शक्ति कपूर। चरणराज। प्रेम चोपड़ा।
गी* "कंगना कुँवारा कंगना"

मैं हूँ गीता ए 15 रील
बे प्रिया आर्टस
नि किशन शाह
नि* यश चौहान। विजय बटालवी।
प सं वशीर बब्बर
गी सनम् गाजियापुरी
सं* विजय बटालवी
छा विनोद बारोट
पा उपासना सिंह। अरुणा ईरानी। जया माथुर। रजनीबाला। मेहनाज। रघु खोसला। इशरत अली। संजीव। सूरज चड्डा। दिलीप ताहिल। अजीज वाच्छानी। अवतार गिल। गिरिजा शंकर। फिरोज ईरानी। युसूफ। किशोर भानुशाली। शक्ति सिंह। मास्टर जावेद।

मेरा फर्ज मेरा कर्ज ए 16 रील (तेलगू से डब)
बे रायल पिक्चर्स
नि बी. राजेश
नि* कोदंदरामी रेड्डी
पा राधा। सिल्क स्मिता
सं कमलाकर दाते
गी सलीम
सं* बप्पी लाहिरी

मेरे साथ चल यू 13 रील
बे सुरेश शर्माज

मि. बांड ए 16 रील
बे डी. एम. एस. फ़िल्म्स
नि कविता रामसे। केशु रामसे
नि* राज सिप्पी
कप मोहिन्दर आशीष
सं इकबाल दुर्रानी
गी समीर
सं* आनंद मिलिन्द
छा एस. प्रभु
पा शीबा। साथी गांगुली। रुचिका पांडे। डॉली मिन्हास। पूनमदास गुप्ता। आशा शर्मा। अक्षय कुमार। पंकजधीर। मनजीत खुल्लर। बॉब क्रिस्टो। सुब्बीराज। मैक मोहन। राम मोहन। शशि किरण।

माशूक यू 16 रील (सिनेमास्कोप)
बे मिर्जा ब्रदर्स फिल्म प्रा.लि.
नि नि*क मिर्जा बंधु
गी इन्दीवर। गौहर कानपुरी
सं* श्याम सुंदर
छा दीपक दुग्गल
पा आयशा जुल्का। बीना
अय्यूब खान (नया चेहरा)। प्राण। किरण कुमार। अनिल कोचर। सईद जाफरी। लक्ष्मीकांत बर्डे। अशोक सराफ। अमजद खान।
गी* "तुम्हे दिल तो दे चुके हैं"

माया मेम साब ए 14 रील
(भारत-ब्रिटेन- फ्रांस का सह निर्माण- फ्रेंच उपन्यास मेडम बावेरी पर आधारित)
बे केतन मेहता फ़िल्म्स
नि* केतन मेहता
कप सितांशु यशस्चंद्र। केतन मेहता
सं हृदय लानी
गी गुलजार
सं* हृदयनाथ मंगेशकर
छा अनूप जोतवानी
पा दीपा साही। सुधा शिवपुरी। राज बब्बर। शाहरुख खान। फारुख शेख। रघुवीर यादव। श्रीराम लागू। परेश रावल। श्री वल्लभ व्यास। सत्यदेव दुबे। आनंद वैद्य। इदरीस मल्लिक। राजेश विवेक। मनीष नागपाल- (नया चेहरा)।
गी* इक हसीन निगाह का दिल पे साया है, जादू है जुनून है कैसी माया है

मेहबूब मेरे मेहबूब यू 15 रील
बे गोल्डन मुवीज
नि गुरदीप सिंह
नि* एच.एस. रवेल
प विजय कौल
सं अजीज कैसी
गी देव कोहली। दिलीप ताहिल। नूर कश्कर। रवीन्द्र रावल।
सं* राम-लक्ष्मण
छा मुनीर खान
पा प्रतिभा (नया चेहरा)। रीमा लागू। बीना। इशिता। आशा सिंह। बाय मुखर्जी (नया चेहरा)। मोहनीश बहल। विश्वजीत। आलोकनाथ। अजीत वाच्छानी। गुलशन ग्रोवर।
गी* छुप-छुप के दुनिया से कब तक मिलें

मैं हूँ शेरनी ए 16 रील (सिनेमास्कोप)

वे मीनाक्षी फिक्चर्स

निनि* सुरेश बोहरा

गी अशद् अजमेरी

सं* आनंद-लक्ष्मण

छा चंद्रकांत देसाई

पा अर्चना पूरण सिंह। पिंकी। श्रीप्रदा। मीनाक्षी नाइक। अशफाफ खान। किरण कुमार। दारा सिंह। साजिद खान। रजा मुराद। जॉनी लीवर। अजीत वाच्छानी। हुमाखान। ब्राऊनी।

मुस्कुराहट यू 20 रील (किलकम् मलयालम फिल्म की हिन्दी)

वे प्रतिभा फ़िल्म्स

नि* प्रियदर्शन (मलयालम निर्देशक का प्रथम हिन्दी प्रयास)

प भूषण बनमाली।

संगी सूरज सनीम

सं* राम-लक्ष्मण

छा एस. कुमार

पा रेवती। किम साबा। अंजू महेन्द्रू। ललिता पवार। आशा शर्मा। उमा कामेश। अनु धवन। जय। आरिफ खान। अन्नू कपूर। अमरीश पुरी। जगदीप। दर्शन बग्गा। महेश आनंद। शरद सक्सेना। अनिल धवन।

गी* बंदा नवाज, इज्जत नवाज, आली जनाद, पीछे मत आ पीछे मत आ''

मुझसे दोस्ती करोगे यू 10 रील

वे भारतीय बाल चित्र समिति

नि गोपी देसाई

मार्ग यू 15 रील

वे स्वराज्यश्री मूवीज

नि पी. रघुनाथ

नि* महेश भट्ट

क सूरज सनीम

गी आनंद बक्षी

सं* अन्नू मलिक

छा -

पा हेमा मालिनी। डिम्पल कपाड़िया। विनोद खन्ना। अनुपम खेर। आकाश खुराना। अच्युत पोत्दार। अवतार गिल। परेश रावल।

फिल्म मुस्कुराहट : जय मेहता, अमरीश पुरी और रेवती

नाइट क्वीन ए 15
बे हेल्म मूवीज इंटरनेशनल
नि नि* किरण अरोरा
गी योगेश। किरण मिश्रा
सं* कीर्ति अनुराग
पा रीता भादुड़ी। जयश्री टी.। जावेद खान। किरण अरोरा। रणजीत। भरत कपूर। इशरत अली।

नागिन और लुटेरा यू 16 रील
बे देवी फिल्म्स
निनि* मोहन टी. गेहानी
गी महेन्द्र देहलवी। अशद अजमेरी।
सं आनंद-लक्ष्मण
पा जया भारती। नीलिमा अजीम। राजेश खट्टर। अनुपम खेर। शक्ति कपूर। कादर खान। गोगा कपूर। अनंद महादेवन। सलीम सेठ। राजेश विवेक।

निश्चय यू 16 रील
बे भप्पी सोनी प्रोडक्शन
नि भप्पी सोनी
नि* इस्माइल श्राफ
कप सचिन भौमिक
सं डॉ. राही मासूम रजा
गी कमर जलालाबादी। नूर देवासी।
सं* ओ.पी. नैयर
पा करिश्मा कपूर। सोनू वालिया। मौसमी चटर्जी। रूपा गांगुली (अतिथि)। सुधा चंद्रन। विनोद खन्ना। सलमान खान। सईद जाफरी। राजीव वर्मा। गोगा कपूर। महेश आनंद। अवतार गिल। जावेद खान।
गी* सुन मेरे सजना

ओ

इस अक्षर पर आधारित कोई फिल्म नहीं बनी।

पी

पैसे के पीछे यू 14 रील
बे एन. जी. फ़िल्म्स

पनाह यूए 18 रील
बे लामा प्रोडक्शन्स
नि दिनेश गाँधी। लारेंस डिसूजा। मनोहर पंड्या
नि* कृष्णकांत पंड्या
पसं सतीश जैन
गी पं. विश्वेश्वर शर्मा
सं* नदीम श्रवण
छा किशोर कापड़िया
पा पल्लवी जोशी। सृष्टि (नया चेहरा)। नसीरुद्दीन शाह। सिद्धार्थ। जीत उपेन्द्र। प्रवीण कुमार। प्राण। रमेश तिवारी। हरीश पटेल। किरण कुमार। मास्टर मोहसिन।
गी* कभी लागे की ये सारा सच है

परदा है परदा यूए 15 रील (मलयालम फिल्म का हिन्दी निर्माण)
बे भारती क्रिएशन्स
नि के. वेंकटरत्नम
नि* के. बापैया
सं अनवर खान
गी समीर
सं आनंद मिलिंद
छा ए. वेंकट
पा मीना (नया चेहरा)। रीमा लागू। मालविका तिवारी। शुभा खोटे। चंकी पांडे। राज जुत्शी। वीरेन्द्र सिंह। लक्ष्मीकांत बेर्डे। पंकज धीर। किरण कुमार। अजतेश। शिवपुरी।
गी* आवारा गलियों के हम बिगड़े शहजादे

पारसमणि यू 16 रील
बे देवी फिल्म्स
निनि* मोहन टी. गेहाणी
गी महेन्द्र देहलवी। अशद अजमेरी
सं* आनंद-लक्ष्मण
छा मंगेश सांवत
पा माधुरी सिंह (नया चेहरा)। आयशा जलील। सोनिया गुप्ता। सिद्धांत। अनुपम खेर। शक्ति कपूर। कादरखान। गोगा कपूर। राजेश विवेक। अनंत महादेवन। सलीम सेठ।

प्यार दीवाना होता है यू 14 रील
बे रुक्मणी आर्टस
नि सुरेश शर्मा
नि*क आनंद वर्धन
गी रवीन्द्र रावल। मदन पॉल। राजेश जोशी
सं* बाबुल बोस
छा एम. अंसारी
पा साथी गांगुली। बीना। शबनम। अंचल। बिन्दु कामथ। भावना। मधु आचार्य। पंकज बेरी। जहीर रिजवी। सुनील डॉन। समीर खख्खर। अजीत वाच्छानी। पूनम शेट्टी। नरेन्द्र बेदी। जॉनी काउंट्री।
गी* प्यार दीवाना होता है
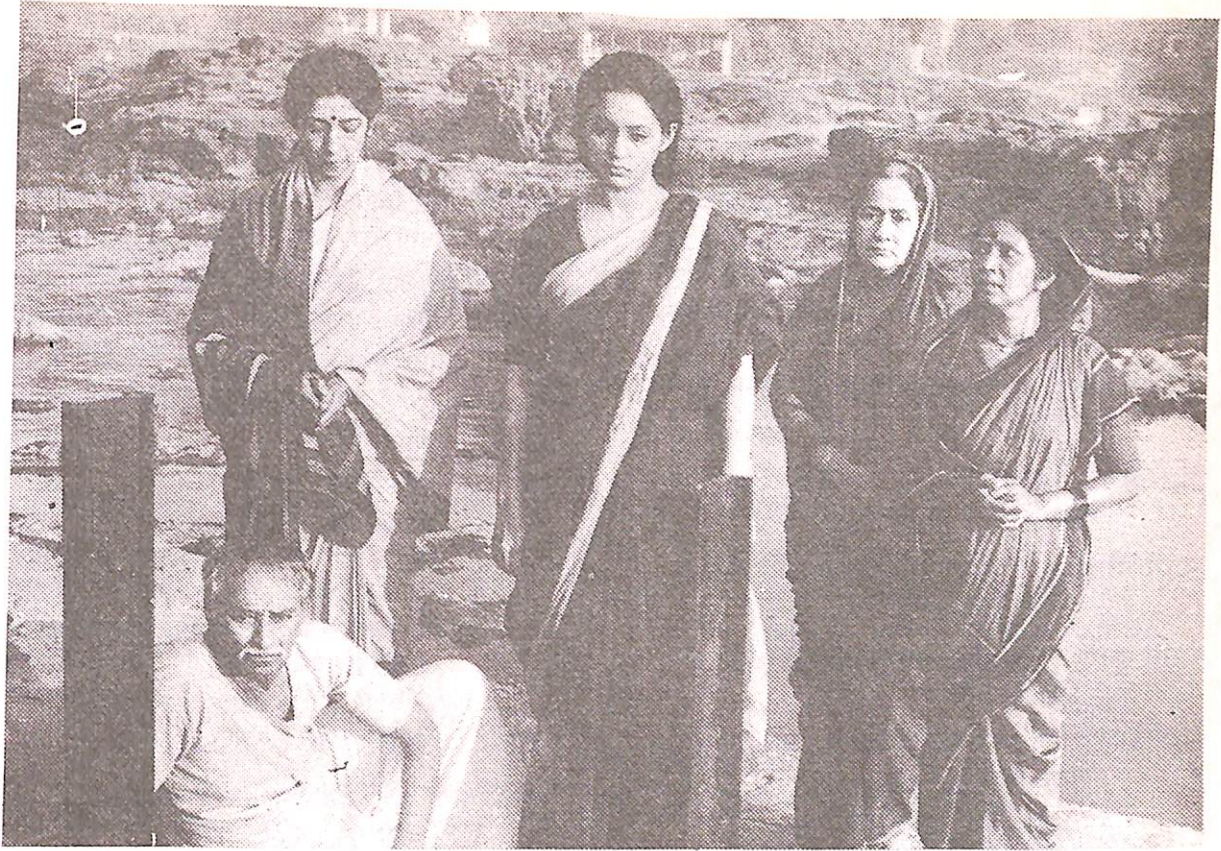
फिल्म पुरुष : चन्द्रकांत गोखले, नीना कुलकर्णी, अश्विनी भावे, मंगला सांझगिरी और नील प्रभा

पुरुष ए 14 रील (मराठी नाटक पुरुष पर आधारित)

वे नियो फिल्म एसोसिएट्स

नि शिवानंद शैट्टी

नि* राजन कोठारी।

क जयंत दलवी

पसं शैवाल

छा राजन कोठारी

पा अश्विनी भावे। मीना कुलकर्णी। ओमपुरी। उषा नाडकर्णी। चंद्रकांत गोखले। इरफान। चंदू पारखी। मधुकर।

पुलिस आफीसर यूए 18 रील

वे आफताव पिक्चर्स प्रा.लि.

नि सलीम

नि* अशोक गायकवाड़

कपसं संतोष के. सरोज। सलीम।

गी आनंद बक्षी

सं* अन्नू मलिक

छा अनवर सिराज

छा अनवर सिराज

पा करिश्मा कपूर। अरुणा ईरानी, जैकी श्राफ (डबल रोल)। गुलशन ग्रोवर। सदाशिव अमरापुरकर। रजामुराद। अजीत। राजा बुन्देला। असरानी। इशरत अली। जोगिन्दर। टीनू आनंद। परेश रावल। जय कालगुटकर। विकास आनंद। बीरबल। गोगाकपूर। मैक मोहन। दिनेश हिंगू।

गी* लड़की करंट मारती है

पायल यू 15 रील

वे रूपा फ़िल्म्स

निनि* महेन्द्र साह

गी समीर

सं* नदीम श्रवण

छा राजेश पाटनी

पा भाग्यश्री। मुनमुन सेन। फरीदा जलाल। सुनन्दा। आशा शर्मा। बेबी रूपल। हिमालय। मोहनीश बहल। सुरेश चटवाल। अन्नू कपूर। शक्ति कपूर। इशरत अली (अतिथि)। राजू श्रेष्ठ। अरुण बक्षी। परम तापोरीकर। संतोष। बीरबल। रणजीत। टीकू तलसानिया।

गी* मेरी दुनिया में आना ना जाना सनम

प्रेम दीवाने यू 16 रील (सिनेमास्कोप)

वे सुनेह आर्टस

नि अशोक घई

नि* सचिन
प राम केलकर
सं कमलेश पांडे
गी आनंद बक्षी
सं* लक्ष्मीकांत प्यारेलाल
छा देवू देवघर
पा माधुरी दीक्षित। रीमा लागू। पूजा भट्ट। जैकी श्राफ। विवेक मुशरान। प्रेम चोपड़ा। मनोहर सिंह। अशोक सराफ। दारा सिंह। पेंटल।
गी* पी पी पी पी पिया, जी जी जी जिया, पिया तूने मेरा जिया ले लिया

पहली भूल ए 10 रील (डब)
बे सुपर रिलायन्स इंटरप्राइज

प्यासी मोहब्बत यूए 14 रील (मलयालम से डब)
बे क्लासिक इमेज प्रोडक्शंन्स

प्यासा युवा ए 14 रील (मलयालम से डब)
बे रुचि पिक्चर्स

प्यार का मजा ए 12 रील (मलयालम से डब)
बे ममता प्रोडक्शन

पुलिस और मुजरिम ए 16 रील
बे बी.एम.बी. प्रोडक्शन्स मद्रास
नि नि*क के. सी. बोकाड़िया
सं अनवर खान
गी अंजान। इंदीवर। दिलीप ताहिर।
सं* बप्पी लहरी
छा पीटर परैरा
पा मीनाक्षी शेषाद्री। नगमा। सीमा देव। विनोद खन्ना। राजकुमार। सदाशिव अमरापुरकर। अविनाश वाधवान। चरण राज। जोगिन्दर। शेरखान। राजू श्रेष्ठ। गोगाकपूर। त्याग राजन। ब्राउनी डाग।
गी* दिल घबराता है, आँख भर आती हैं, तू जो रूठे तो मेरी जान निकल जाती है

प्रायश्चित यू 10 रील (पहाड़ी हिन्दी में)
बे कंवर शोरीज

प्यास बुझती नहीं ए 12 रील (मलयालम से डब)
बे एस. बी. इंटरप्राइजेज

प्रेमदान यू 16 रील
बे दूरदर्शन एवं मधु वीडियो टेक
निनि* सावन कुमार
पसं कमलेश्वर
गी रवीन्द्र जैन। सावन कुमार
सं* रवीन्द्र जैन
छा वेंकटेश नायक
पा नितेश भारद्वाज। अभिनव चतुर्वेदी।

फूलवती यूए 16 रील (सिनेमास्कोप)
बे निशा मनीष आर्ट्स
नि मोहनजी प्रसाद। बी. के. जायसवाल
नि*क मोहनजी प्रसाद
पसं शब्द कुमार
गी एम.जी. हशमत। देव कोहली। रवीन्द्र रावल
सं* राम-लक्ष्मण
छा प्रताप सिन्हा
पा उपासना सिंह। अंचना। सुधाचंद्रन। अरुणा ईरानी। राज किरण। श्रीराम लागू। अनुपम खेर। सत्येन कप्पू। हरीश पटेल। कादरखान। सदाशिव अमरापुरकर। सतीश शाह। अनंत महादेवन। जगदीप। सुधीर दलवी। इशरत अली। भरत कपूर। शशिपुरी। सी. एस. दुबे। बीरबल। मनमौजी। दिनेश हिंगू। सुनील धवन। बृजेश। सूरज चड्ढा। रामसिंह।
गी* कुरता जालीदार पायजामा तंग मेरा

प्यासी पत्नी ए 11 रील मलयालम फिल्म से डब
बे श्री कुन्गुमा देवी फ़िल्म्स

फूलन हसीना रामकली यूए 16 रील
बे मंगला फ़िल्म्स
निनि*क कांति शाह
प महेन्द्र देहलवी
गी महेन्द्र देहलवी
सं* दिलीप सेन- समीर सेन
छा -
पा कीर्ति सिंह। सुधा चंद्रन। समीना। संजीवनी विडकर। अपराजिता। विजय कुमार सक्सेना। अनुपम खेर। ताहिर खान। शक्ति कपूर। रजा मुराद। किरण कुमार। राजेश विवेक। अवतार गिल। फिरोज ईरानी। सदाशिव अमरापुरकर। किशोर भानुशाली। शत्रुबीन सिन्हा।

परम्परा यूए 16 रील
बे ए.जी. फ़िल्म्स प्रा.लि.
नि फिरोज ए. नाडियादवाला
नि* यश चोपड़ा
कप हनी ईरानी
सं डॉ. राही मासूम रजा
गी आनंद बक्षी
सं* शिव हरि
छा मनमोहन सिंह

पा नीलम। रवीना टंडन। अश्विनी भावे। रमैया कृष्ण। आमीर खान। सैफ अली खान। सुनील दत्त। विनोद खन्ना। अनुपम खेर।

गी* तू सावन मैं प्यास पिया

पछतावा यू 14 रील

बे मान सरोवर

नि रघु भूषण

पंडित भीमसेन जोशी यू 7 रील (वृहद् वृत्तचित्र)

बे मुवीज हाउस

क्यू

कैद में है बुलबुल यू 18 रील (सिनेमास्कोप)

बे पीपट फ़िल्म्स इंटरनेशनल्स

नि नि*क रवीन्द्र पीपट

सं ए.के. श्रीवास्तव

गी समीर

सं* आनंद मिलिन्द

छा श्रीपद् नातू

पा भाग्यश्री। अरुणा ईरानी। सुधाचंद्रन। रीमा लागू। गुड्डी मारुति। सबीना। रूबीना। हिमाचलय। गुलशन ग्रोवर। अजीत वाच्छानी। विक्रम गोखले। अवतार गिल। अंजन श्रीवास्तव। डेन घनोआ। राणा जंग बहादुर। क़िरण कुमार। गविन। संतोष गुप्ता। प्रकाश अग्रवाल। पंकजघीर (अतिथि)। गुफी पेंटल (अतिथि)

गी* तेरे दिल में हूँ मैं, मेरे दिल में है तू

आर

रात ए 14 रील

बे वर्मा क्रिएशन्स

निनि*क रामगोपाल वर्मा

पसं विनय शुक्ला

सं* किरवाणी

छा तेजा

पा रेवती। रोहिणी हटंगड़ी। जया मायुर। अनंत नाग। ओमपुरी। आकाश खुराना। तेज सप्रू। शान्तनु। कुशांत (नया चेहरा)।

रिश्ता हो तो ऐसा यू 16 रील

बे मार्को इंटरप्राइजेस

नि एम.एम.सी. कपूर

नि* कल्पतरू

गी मजरूह सुल्तानपुरी

सं* लक्ष्मीकांत प्यारेलाल

पा जूही चावला।सुजाता मेहता। स्वप्ना। शम्मी। बेबी शम्पा। जितेन्द्र। ऋषि कपूर। परेश रावल। अशोक सराफ। कादरखान। दिनेश हिंगू। शरद सक्सेना। सी. एस. दुबे। सत्येन कप्पू। विजू खोटे। महेश राज। सुनील धवन। विकास आनंद। माणेक ईरानी। केवल शाह। अंकुर। आलोक। बिट्टू डॉग।

राधा का संगम यू 17 रील

बे श्री निर्मला देवी प्रोडक्शन्स

निनि* कीर्ति कुमार

गी हसरत जयपुरी

सं* अन्नू मलिक

छा थॉमस. ए. जेवियर

पा जूही चावला। माला सिन्हा। डिस्कोशांति। गोविंदा। किरण कुमार। कीर्ति कुमार। अभिमन्यु (नया चेहरा)। सुधीर दलवी। सत्येन कप्पू। सी. एस. दुबे।

गी* ओ राधा तेरे बिना

रूदाली यू 14 रील

बे राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम

नि राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम

नि* कल्पना लाजमी

पसंगी गुलजार

सं डॉ. भूपेन हजारिका

छा संतोष सिवन

पा डिम्पल कपाड़िया। राखी। सुस्मिता मुखर्जी। दीना पाठक। राज बब्बर। अमजद खान। रघुवीर यादव। मनोहर सिंह। सुनील सिन्हा।

राऊडी इंस्पेक्टर ए 15 रील सिनेमास्कोप (तेलगू फ़िल्म से डब)

बे सालगिया एंड कंपनी

नि दिनेश सालगिया

नि* बी. गोपाल

गी बृज बिहारी

सं* बप्पी लहेरी

पा विजय शांति। बालकृष्ण (एनटीआर)। हरीश।

राजू बन गया जेंटलमैन यू 16 रील

बे सिप्पी फिल्म्स

नि जी.पी. सिप्पी। विवेक वासवानी

नि अजीज मिर्जा

सं चरणदास शोख

फिल्म राजू बन गया जेन्टलमैन : शाहरूख खान और अमृता सिंह

गी	देव कोहली। महेन्द्र देहलवी। विनू महेन्द्र। मदन पाल। मनोज बर्मन।
सं*	जतिन ललित
छा	विनोद प्रधान
पा	अमृता सिंह। जूही चावला शाहरुख खान। नाना पाटेकर। नवीन निश्चल। अजीत वाच्छानी। अंजन श्रीवास्तव। ललित मोहन तिवारी। समीर चित्रे। विवेक वासवानी। अमृत पटेल।
गी*	दिल है मेरा दीवाना यारों मैं तो चला

एस

सनम तेरे हैं हम यू 16 रील (सिनेमास्कोप)

वे	विकार्ड प्रशांत फ़िल्म्स इंटरनेशनल
नि	इंदर मोहन सिंह
नि*	बी. मेनन
पगी	महेन्द्र देहलवी
सं*	बप्पी लहरी
छा	मंगेश बी. सांवत
पा	उपासना सिंह। अमिता नांगिया। रीता भादुड़ी। अरुणा ईरानी। विनी मलिक। कुलभूषण खरबंदा। आलोकनाथ। किरण कुमार। प्रेम चोपड़ा। राकेश बेदी। गुरबचन। राजा दुग्गल। सुनील धवन।
गी*	सनम तेरे हैं हम

सियासत ए 15 रील

वे	शैल इंटरनेशनल्स
नि	शशिरंजन। विनोद ठक्कर।
नि*	सुखवन्त ढंढा
क	शशि रंजन
प	हुमायूँ मिर्जा। शशि रंजन
संगी	हसन कमाल
सं*	आर. डी. बर्मन
छा	विनोद प्रधान
पा	किमी काटकर। दीपा साही। कुनिका। कुमार गौरव। शशि रंजन। कुलभूषण खरबंदा। शक्ति कपूर। राजहंस। गुलशन

ग्रोवर। आलोकनाथ। ए. के. हंगल। राजेश पुरी।

सातवाँ आसमान यू 15 रील (सिनेमास्कोप)

वे	प्रतिमा मूवीज
नि	प्राणलाल मेहता
नि*	महेश भट्ट
कपसंगी	सूरज सनीम
सं*	राम-लक्ष्मण
छा	प्रवीण भट्ट
पा	पूजा भट्ट। तन्वी आजमी। शम्मी। मंजू मिश्रा। विवेक मुशरान। शेखर कपूर। अवतार गिल। तेज सप्रू। मुश्ताक खान। अमृत पटेल। सुहास जोशी।
गी*	तुम क्या मिले जाने जां, प्यार जिंदगी से हो गया

शोला और शबनम यू 19 रील

वे	चिराग दीप इंटरनेशनल्स
नि	पहलाज निहलानी
नि*	डेविड धवन
कप	राजीव कौल। प्रफुल्ल पारीख
सं	अनीस बज्मी
गी	अंजान
सं*	बप्पी लहरी
छा	सिबा मिश्रा
पा	दिव्या भारती। सुधाचंद्रन। रीमा लागू। बिन्दू। शकीला मजीद। गुड्डी मारुति। गोविंदा। मोहनीश बहल। अनुपम खेर। गिरीश मलिक। आलोकनाथ। हरीश पटेल। गुलशन ग्रोवर। राजा बुन्देला। सत्यजीत। नामदेव। महावीर शाह।
गी*	जाने दे, जाने दे, मुझे जाने दे

सूर्यवंशी यूए 18 रील

वे	साईनाथ फ़िल्म्स इंटरनेशनल्स
नि	विजय कुमार गलानी
नि*क प	राकेश कुमार
सं गी	कुलवन्त जानी
सं*	आनंद मिलिंद
छा	एच. लक्ष्मीनारायण
पा	अमृता सिंह। शीबा। सुषमा सेठ। सलमान खान। सईद जाफरी। अजीत वाच्छानी। पुनीत इस्सर। शक्ति कपूर। अभिनव चतुर्वेदी। कादर खान। परवीन दस्तूर।
गी*	जोगी तेरे प्यार में लुट जाएगी, मिट जाएगी, मर जाएगी

फिल्म सातवाँ आसमान : पूजा भट्ट और विवेक मुशरान

साँसों की सरगम यू 14 रील

बे परदेसी फ़िल्म्स
नि जे.पी. परदेसी
नि*क एस. के. चाँद। आनंद त्रिपाठी
पसं अमृत आर्यन
गी आनंद त्रिपाठी। प्रकाश मक्कर।
सं एस. सुरेन्दर
छा के.सी. राजा
पा रीना। सलमा चरणजीत। नेहा कपूर। रक्षा मेहता। अर्जुन थापर। जितेन्द्र सहानी। एम. एल. राही। अशोक पंथिया। भूपेन्द्र। संजय सिंह।

साहबजादे यू 16 रील (सिनेमास्कोप)

बे शिवकला मंदिर
निक के.के. तलवार
नि* अजय कश्यप
पसं रनवीर पुष्प
गी हसन कमाल
सं* लक्ष्मीकांत प्यारेलाल
छा गुरू
पा नीलम। अंजना मुमताज। बीना वर्मा। बेबी रुचिका। संजय दत्त। आदित्य पंचोली। कुलभूषण खरबंदा। गुलशन ग्रोवर। शक्ति कपूर। राममोहन। आलोकनाथ। गुरुवचन। मास्टर बंटी। मास्टर स्वप्नेश।
गी* मेरा लोंग खो गया

शहजादी ए 16 रील

बे एच. एम. प्रोडक्शन्स
नि नि*गी ए. हबीब
क फिरोज हबीब
सं* अमर उप्पल
छा एफ.आर. खान
पा योगिता सिंह (नया चेहरा)। पुष्पा वर्मा। आशा सिंह। बेबी नगमा। सूरज (नया चेहरा)। टीनू आनंद। गिरिजा शंकर। अबीद शा। अरुण बक्षी। इसरार एहमद। फिरोज हबीब। राज किशोर

सरफिरा यू 18 रील

बे खैतान प्रोडक्शन्स
नि बी.एल. खैतान
नि* अशोक गायकवाड़
कसं जेड डी. लारी
प ज्योति स्वरूप
गी फारुख कैसर
सं* आर.डी. बर्मन
छा अनवर सिराज
पा माधवी। किमी काटकर। किरण जुनेजा। सुषमा सेठ। संजय दत्त। सुमीत सहगल। विनोद मेहरा। अनुपम खेर। हरीश पटेल। अशोक सराफ। शक्ति कपूर। श्रीराम लागू।

सीता-सलमा-सूज़ी यू 16 रील

बे मेरिट फ़िल्म्स
नि परवेज आलम
नि*क कमर नारवी
गी कमर नारवी। परवेज आलम
सं* अनवर उस्मान
पा मुनमुन सेन। सुधा चंद्रन। अर्चना पूरण सिंह। रीता भादुड़ी। शेखर सुमन। राजकिरण। जीत उपेन्द्र।

सनम आप की खातिर यू 16 रील

बे मुक्ति आर्टस
नि प्रकाश मेहता
नि*क काका शर्मा
गी सुरूर लखनवी
सं* अजय स्वामी
पा दीपिका। सीमा देव। कानन कौशल। भूपेन्द्र। सुधीर दनवी। सत्येन कप्पू। राकेश वेदी। शिवा। गुरुवचन।

शिव महिमा यू 16

बे सुपर कैसेट्स इंडस्ट्रीज
नि गुलशन कुमार
नि* शांतिलाल सोनी
सं* अरुण पोडवाल
पा किरण जुनेजा। रेशमा सिंह। बरखा पंडित। रोमा माणिक। अरुण गोविल। राजेन्द्र चौहान। केवल शाह। गुलशन कुमार। मूलराज राजदान।
गी* सुबह-सुबह ले शिव का नाम

शादी से पहले तबाही ए 12 रील (मलयालम से डब)

बे चाइस ऑफ इंडियाज

सपने साजन के यू 18 रील

बे दिव्या फ़िल्म्स कंबाइन प्रा.लि.
नि सुधाकर बोकाड़े
नि* छा लारेंस डिसूजा
क सुनील खोसला
प सलीम तारीक
सं मुश्ताक मर्चेंट
गी समीर। अनवर सागर। सुरेन्द्र साथी।
सं* नदीम श्रवण

पा करिश्मा कपूर। अरुणा ईरानी। अंजना मुमताज। रीमा लागू। शुभा खोटे। डिम्पल कपाड़िया (अतिथि)। राहुल रॉय। जैकी श्राफ। सत्येन कप्पू। राजा दुग्गल। ब्रह्मचारी। दिनेश हिंगू। गुलशन ग्रोवर। आलोकनाथ। मुश्ताक मर्चेंट। राजकुमार।

गी* कभी भूला कभी याद किया

शादी के सपने ए 12 रील (मलयालम से डब)

बे सालगिया एंड कंपनी

सपनों की रातें ए 12 रील (मलयालम से डब)

बे टोपाज प्रोडक्शन्स

नि* पी.के. राधाकृष्णन

कसं शिव कुमार

सोने की लंका यू 17 रील (सिनेमास्कोप)

बे आर. एस. फ़िल्म्स

नि राजेन्द्र पटेल

नि*क अजय कश्यप

गी समीर

सं* आनंद मिलिंद

छा आलोकदास गुप्ता

पा जयाप्रदा। वर्षा उसगाँवकर। रीमा लागू। कुनिका। अपराजिता। मंजू मिश्रा। जितेन्द्र। चंकी पांडे। शक्ति कपूर। सदाशिव अमरापुरकर। पंकज धीर। सुब्बीराज। टीकू तकसानिया। बॉब क्रिस्टो। विशाल दत्त। दिलीप सिन्हा। सत्येन कप्पू। बिनू खोटे। अनिल नागरथ।

गी* सनम प्यार करने का मौसम

सूरजमुखी यू 16 रील

बे कलाकुंज चित्रम्

संगीत यू 16 रील

बे सुपर कैसेट्स इंडस्ट्रीज

नि गुलशन कुमार

नि* के. विश्वनाथ

कपसं चित्रार्थ। जैनेन्द्र जैन

गी संतोष आनंद। ईला अरुण।

सं* आनंद- मिलिंद

छा बी. दुर्गाप्रसाद

पा माधुरी दीक्षित। अरुणा ईरानी। जैकी श्राफ। नितेश भारद्वाज। शफी ईनामदार। परीक्षित सहानी। भोरू खान। अंजन श्रीवास्तव। राजेन्द्र गुप्ता। सतीश शाह।

गी* जो गीत नहीं जनमा वो गीत बनाएँगे, तेरे प्यार का सुर लेकर संगीत बनाएँगे

शौकीन हसीना यू 14 रील (तमिल से डब)

बे शारदा फ़िल्म्स इंटरनेशनल्स

सपनों की रानी ए 12 रील (डब)

बे नायर इंटरप्राइज

शिव तेरी महिमा न्यारी यू 16 रील

बे ओमः शिवाय इंटरनेशनल्स मूवीज

निनि*कप सुरेश्वर सिंह गोहील

गी उदय खन्ना

सं* ऋषि राज

छा सुरेश्वर सिंह

पा बीना। ललिता पवार। नगीना। मिनी तब्बसुम। शर्मीली। विजयेन्द्र घाटगे। बी. एम. व्यास। राजेन्द्रनाथ। सुनील श्राफ। चरण देव। तुषार बोरा।

सोने की सीता यू 15 रील

बे मानव धर्म प्रतिष्ठान

नि नि* के.एन. आचार्य

क लक्ष्मीनारायण

प केशव राठौड़

गी सं* कमल आनंद

छा दिलीप दत्ता

पा किशोरी कुलकर्णी (नया चेहरा)। सुधाचंद्रन। नीना गुप्ता। रोहिणी हटंगढ़ी। शीला मिश्रा। अपराजिता। विरत (नया चेहरा)। पंकज बेरी। सुधीर दलवी। राजेन्द्र चौहान। सी. एस. दुबे। राकेश बेदी। देव मल्होत्रा। आलोकनाथ। अजीत वाच्छानी।

तन्हाई की आग ए 14 रील (मलयालम से डब)

बे अर्चन फ़िल्म्स

त्यागी यू 16 रील (सिनेमास्कोप) तमिल फ़िल्म्स का हिन्दी निर्माण

बे देवयांक आर्टस

नि दिलीप कांकरिया

नि* के.सी. बोकाड़िया

क एम.डी. सुन्दर

प शणमुधम सुन्दरम्

सं के.सी. बोकाड़िया। अनिरुद्ध तिवारी।

गी अंजान। इंदीवर। के.के. वर्मा। काशिक मुजफ्फर नगरी। के. सी. बोकाड़िया।

सं* बप्पी लाहरी

छा बाबू

पा जयाप्रदा। भाग्यश्री। सुजाता मेहता। रजनीकांत। हिमालय। गुलशन ग्रोबर। शक्ति कपूर। कादर खान। महेश राज। के. के. राज। देव मल्होत्रा। प्रेम चोपड़ा। विजू खोटे। बीरबल। विवेक मुशरान। मनमौजी।

गी* टेंशन- टेंशन- टेंशन

तहलका यू 20 रील (अँग्रेजी फ़िल्म "व्हेअर इगल डेअर" से प्रेरित)

बे शांत केतन फ़िल्म्स

नि के.सी. शर्मा

नि*क अनिल शर्मा

गी मनोज कुमार। हसरत जयपुरी। संतोष आनंद।

सं* अनू मलिक

छा अनिल ढंढा

पा सोनू वालिया। पल्लवी जोशी। शिखा स्वरूप। एकता। सुधा चंद्रन। गुड्डी मारुति। जया प्रदा (अतिथि)। धर्मेन्द्र। नसीरुद्दीन शाह। आदित्य पंचोली। जावेद जाफरी। मुकेश खन्ना। ओमपुरी। गुलशन ग्रोवर। अमरीशपुरी। राजेन्द्रनाथ। दिलीप धवन। टॉम अल्टर। शम्मी कपूर। बॉब क्रिस्टो। डेन धनोआ। सुधीर। बजरंगी। भूषण तिवारी। प्यारे मोहन। परीक्षित साहनी। भूषण जीवन। गौतम सरीन। प्रेम चोपड़ा (अतिथि)।

गी* आपकी टोपी, आपका चश्मा, अल्ला ही अल्ला, मौला ही मौला

तिलक ए 17 रील (सिनेमास्कोप)

बे शोविर फ़िल्म्स

नि वीरेन्द्र बनेजा। शोभन चौहान।

नि* यश चौहान

कप अमृत आर्य

सं बशीर बब्बर

गी समीर

सं* आनंद मिलिंद

छा दामोदर नायडू

पा तपस्या। शिल्पा शिरोड़कर। श्रीप्रदा। रीता भादुड़ी। अपराजिता। प्रियंका। सिद्धार्थ। अजीत वाच्छानी। परेश रावल। किरण कुमार। अनुपम खेर। रंजन। लक्ष्मीकांत बेर्डे। अरुण माथुर। सतीश शाह। जॉनी लीवर। गोगा कपूर। शिवा। राजतिलक।

गी* कटता नहीं है दिन

तेरी पायल मेरे गीत यू 16 रील

बे वीतराग फिल्म्स लिजेंड प्रा.लि.

नि प्रेम. एस. ललवानी

नि* रहमान नौशाद

कसं* नौशाद

पसं अबरार अलवी

गी हसन कमाल

छा नारायण राव

पा मीनाक्षी शेषाद्री। शालू। शुभा खोटे। रेणुका इसरानी। प्रेरणा सिंह। बीना। गोविंदा। नवीन निश्चल। भारत- भूषण। शक्ति कपूर। कादर खान। अली खान। जानी लीवर। शहजाद खान। मोहन चोटी।

गी* मोहब्बत- सा एक देवता मिला, खुदा तो नहीं खुदा- सा मिला

यू

उमर पचपन की दिल बचपन का यू 17 सिनेमास्कोप

बे वैष्णव फ़िल्म्स

नि के अक्षय अजय मेहरा राजीव गाँधी

नि* अजय मेहरा

क अजय मेहरा कादरखान

प प्रयागराज

सं कादरखान

गी योगेश

सं* दिलीप सेन-समीरसेन

छा राजन किनांगी

पा रुचिका पांडे। स्वप्ना। श्रीप्रदा। चाँदनी। श्रद्धा वर्मा। अक्षय आनंद। कादरखान। शक्ति कपूर। गुलशन ग्रोवर। अनुपम खेर। टीकू तासानिया। दिनेश हिंगू।

गी* जब से मिला है मुझे प्यार

फिल्म उमर पचपन की दिल पचपन का : अक्षय आनन्द और रूचिका पाण्डे

वी

विश्वात्मा यू 19 रील (सिनेमास्कोप)

वे त्रिमूर्ति फ़िल्म्स
नि गुलशन रॉय
नि*कप राजीव रॉय
सं के.के. सिंह
गी आनंद बक्षी
सं* वीजू शाह
छा रोमेश भल्ला
पा सोनम। दिव्या भारती। ज्योत्सना सिंह (नया चेहरा)। अपराजिता। नसीरुद्दीन शाह। अमरीशपुरी। आलोकनाथ। रजामुराद। चंकी पांडे। सनीदेओल। गुलशन ग्रोवर। विजय अरोरा। युनूस परवेज। किरण कुमार (अतिथि)।
गी* सात समन्दर पार से

वंश यू 17 रील (तमिल फ़िल्म्स का हिन्दी निर्माण)

वे वर्मा फ़िल्म्स कंबाइन
नि नि* पप्पू वर्मा
प राजीव कौल। प्रफुल्ल पारीख
सं श्याम गोयल
गी समीर
सं आनंद मिलिंद
छा ईश्वर बिदरी
पा एकता। प्रियंका। रीमा लागू। बीना सुषमा सठ। सुदेश बेरी। अनुपम खेर। अमरीश पुरी। सिद्धार्थ। कादरखान। असरानी। सईद जाफरी। अंजन श्रीवास्तव। युनूस परवेज।
गी* मैं तो दीवानी हुई

विरोधी ए 19 रील

बे शंकर मुवीज
निनि* राजकुमार कोहली
क ललित महाजन
गी देव कोहली
सं* अन्नू मलिक
छा थॉमस ए. जेवियर
पा हर्षा। अनिताराज। रूपा गांगुली। अरमान कोहली। सुनील दत्त। धर्मेन्द्र। अमजद खान। प्रेम चोपड़ा। परेश रावल। शक्ति कपूर। गुलशन ग्रोवर। राजीव आनंद। शरद सक्सेना। भरत कपूर। रजा मुराद। किरण कुमार।
गी* नैन कबूतर

डब्ल्यू

वक्त का बादशाह यू 14 रील

वे सुरेश इंटरनेशनल्स
नि सुरेश चौधरी
नि*क मनमोहन के. सबीर
प श्रीमती सुदेश
गी नक्श लायलपुरी। शैलेन्द्र शैले।
सं* अमर उत्पल
छा अख्तर सिराज
पा मुनमुन सेन। अर्चना पूरण सिंह (अतिथि)। रेखा राव (अतिथि)। आकाश दीप। नवीन निश्चल। मेहमूद। जानकीदास। जॉनी लीवर। भूषण। बीरबल। जूनियर मेहमूद। इम्तियाज। चंद्रशेखर। प्रवीण कुमार। बब्बन। गोगा कपूर। धर्मेन्द्र। राजबब्बर। परीक्षित साहनी। विनोद खन्ना (अतिथि कलाकार)।

एक्स

इस अक्षर के लिए कोई फिल्म नहीं बनी

वाय

ये प्यास कब बुझेगी ए 12 रील (मलयालम से डब)

वे एस.टी.सी. कम्बाइन

युद्ध पथ यूए 16 रील

वे फ्रेंड्स कम्बाइन्स
नि जावेद रियाज
नि*कप रवी खान
सं बाबा खान
गी रानी मलिक। हर्षवर्धन किन्नू।
सं* दिलीप सेन-समीर सेन
छा दीपक दुग्गल
पा एकता। अरुणा ईरानी। अंजना मुमताज। शम्मी। रीता भादुड़ी। सिद्धार्थ। सुदेश बेरी। राकेश बेदी। कुलभूषण खरबंदा। रजामुराद। टीनू आनंद। इशरत अली। किरण कुमार।

याद रखेगी दुनिया यू 16 रील ('गीतांजलि' तमिल फिल्म का हिन्दी निर्माण)

बे पारस फिल्म इंटरनेशनल
नि नन्दू जी. तोलानी
नि* दीपक आनंद
क अनीस बज्मी
गी समीर
सं* आनंद-मिलिंद
छा मनमोहन सिंह
पा रुखसार (नया चेहरा) राधा सेठ। दीना पाठक। अंजना मुमताज। आदित्य पंचोली। टीनू आनंद। युनूस परवेज। अरुण बक्षी। विकास आनंद। विक्रम गोखले।
गी* तुझे रब ने बनाया किस लिए

यलगार यू 18 रील

बे एफ. के. इंटरनेशनल्स
नि नि* फिरोज खान
कप राजीव कौल। प्रफुल्ल पारीख
सं कमलेश पांडे
गी सुदर्शन फकीर
सं* चन्नी सिंह
छा एस.एम. अनवर
पा दीप्ति नवल। मनीषा कोईराला। नीना गुप्ता। माया अलग। नगमा। फिरोज खान। संजय दत्त। मोहन भंडारी। मुकेश खन्ना। कबीर बेदी। विश्वजीत। हरीश पटेल। प्रधान। दीप ढिल्लो। प्रदीप चौधरी। मनजीत खुल्लर। राणा जंग बहादुर। अमर कुन्नें। सुनील रानडे। अरुण बाली। नरेश सूरी। हरीश सूरी। विक्की अरोरा। तरकेश चौहान।
गी* हो जाता है कैसे प्यार न जाने कोई ना जाने कोई

ये रात फिर ना आएगी यूए 15 रील

बे जाकिर हुसैन फ़िल्म्स
नि जाकिर हुसैन। शब्बीर हुसैन
नि*क नुसरत सैय्यद
गी पयाम सईदी। राज तिलक। इब्राहिम अश्क
सं* राजेश रोशन
छा रूसी बिलीमोरिया
पा मीनाक्षी शेषाद्री। अरुणा ईरानी। नीलम मेहरा। शर्मीली (नया चेहरा) किशोर भानुशाली। मास्टर अली अकबर।
गी* टू बी टु आय लव यू

झेड

जिंदगी एक जुआ यूए 20 रील (सिनेमास्कोप)

बे प्रकाश मेहरा पिक्चर्स प्रा.लि.
निनि* प्रकाश मेहरा
क सतीश भटनागर। डॉ. राही मासूम रजा
गी अंजान। प्रकाश मेहरा
सं* बप्पी लाहीरी
पा माधुरी दीक्षित। स्वप्ना। आशा लता। अनिल कपूर। अनुपम खेर। सुरेश ओबेराय। शक्ति कपूर। मंगल ढिल्लो। सागर सालुंके। जिंदर [illegible]िया। बी. एस. थापा। राम सिंह. जी. पी. सिंह। अनंत जोग। भरत कपूर। दिनेश हिंगू।
गी* ये जिंदगी है एक जुआ, कभी कुछ पाया, कभी कुछ खोया

जख्मी रूह ए 16 रील

बे हिमांशु फिल्म कम्बाइन
नि बलवेन्द्र संधू
नि* पवन कुमार
गी दिलीप ताहिर
सं* नंदी दुग्गल
पा मुनमुन सेन (डबल रोल)। सीमा वाज। पुष्पा वर्मा। उर्मिला भट्ट। जावेद जाफरी। राजकिरण। पुनीत इस्सर। शिवा। मैक मोहन। कमल कपूर। मास्टर हिमांशु। जल कालगुटकर (अतिथि)।

जुल्म की हुकूमत यूए 18 रील

बे नाड़ियादवाला थिएटर प्रोडक्शन
नि साजिद नाड़ियादवाला। स्वर्गीय कमलेश चुग
नि* भरत रंगाचारी
प फैज सलीम। अनीस बज्मी
सं अनीस बज्मी
गी समीर
सं* दिलीप सेन-समीर सेन
छा निर्मल जॉनी
पा मौसमी चटर्जी। किमी काटकर। बीना। रूमी जाफरी। नीता गुप्ता। अमिता नांगिया। अर्चना पूरण सिंह। गोविंदा। नवीन निश्चल। शक्ति कपूर। रजा मुराद। महेश आनंद। जी. पी. सिंह। शरद सक्सेना। अरुण शर्मा। परेश रावल। कादर खान। ब्रह्मचारी। मुश्ताक खान। सलीम गौस। ओमशिवपुरी। अमृतपाल। धर्मेन्द्र (अतिथि)
गी* काठमंडू- काठमंडू, ओ मुंडू दमभर के प्यार का तू बोलके शिवशंभू

● **प्रस्तुति : पी. आर. जोशी**

प्रमाणित फिल्मों की माहवार तालिका १९९२

अँग्रेजी वर्ण-माला क्रमानुसार

जनवरी
* आज की रात
* अधर्म
* दिल का क्या कसूर
* इंसान बना शैतान
* आय लव यू
* जिया बेकरार है
* जान तेरे नाम
* कसक
* मैं फिर आऊँगा
* मेरा फर्ज मेरा कर्ज
* परदा ही परदा
* पैसे के पीछे
* रात
* सनम तेरे हैं हम
* सियासत
* शोला और शबनम
* साँसों की सरगम
* तन्हाई की आग
* विश्वात्मा
* वंश
* याद रखेंगी दुनिया
* ये प्यास कब बुझेगी

फरवरी
* दीवाना आशिक
* इश्क का तूफान
* जंगल का बेटा
* जनम से पहले
* मेरे सजना साथ निभाना
* नाइट क्वीन
* पनाह
* सूर्यवंशी

मार्च
* अन्तर्नाद
* बेटा
* कैप्टन प्रभाकर
* गजब तमाशा
* इन्तेहा प्यार की
* काकी
* खेल बदनामी के
* कसम कानून की
* मैं हूँ गीता
* कैद में हैं बुलबुल
* रिश्ता हो तो ऐसा
* साहेबज़ादे
* शहज़ादी
* सरफिरा
* विरोधी
* युद्धपथ

अप्रैल
* बसंती तांगेवाली
* हैरत
* जय-शिवशंकर
* जो जीता वो ही सिकन्दर
* जय हो मैहर धाम की
* कल की बातें
* खुलेआम
* खुदा गवाह
* मेरे साथ चल
* मि. बांड
* नागिन और लुटेरे
* पारसमणि
* सातवाँ आसमान
* वक्त का बादशाह
* जिंदगी एक जुआ

मई
* गंगा बनी शोला
* गंगा का वचन
* हमला
* जान से प्यारा
* जय काली
* जंगल में मस्तियाँ
* खिलाड़ी
* लाट साहब
* प्यार दीवाना होता है
* पहली भूल
* प्यासा युवा
* प्यार का मजा
* प्यासी मोहब्बत
* पुलिस ऑफीसर
* शादी से पहबे
* शादी के सपने
* त्यागी

जून
* चेलुवी
* दीवाना
* दो हंसों का जोड़ा
* एक लड़का एक लड़की
* गहरा राज
* हनीमून
* हमशक्ल
* इसी का नाम जिंदगी
* जागृति
* जेठा
* जंगल की चाँदनी
* किस में कितना है दम
* काल भैरव
* माशूक
* प्रेम दीवाने
* सीता सलमा सूज़ी
* सपनों की रातें
* सनम आपकी खातिर
* शिव महिमा
* तहलका
* जख्मी रूह
* जुल्म की हुकूमत

जुलाई
* आज का गुंडाराज
* बोल राधा बोल
* बेखुदी
* चमत्कार
* दीदार
* जुनून
* खेल
* माया मेमसाब
* निश्चय
* प्यास बुझती नहीं
* पुलिस और मुजरिम
* प्रायश्चित
* राधा का संगम
* सपने साजन के

अगस्त
* बलवान
* दिल वाले कभी ना हारे
* दुश्मन जमाना
* फौलादी टक्कर
* हीर राँझा
* इश्क खुदा है
* जादू भरे नैन
* कल की आवाज
* महबूब मेरे महबूब
* मैं हूँ शेरनी
* मुस्कुराहट
* प्रेम दान
* पुरुष
* सोने की लंका
* शौकीन हसीना

सितंबर
* अंगार
* आजा सनम
* बेवफा से वफा
* बहू बेटा और माँ
* एक साँस जिंदगी
* जिगर
* मुझसे दोस्ती करोगे
* फूलवती
* प्यासी पत्नी
* रुदाली
* सपनों की रानी
* सूरजमुखी
* संगीत

अक्टूबर
* अमन के फरिश्ते
* अपराधी
* चूड़ियाँ
* देवी और दुर्गा
* द्रोही
* दिल आशना है
* गीत
* जवानी की खुशबू
* कमसिन
* तिलक
* यलगार
* ये रात फिर ना आयेगी

नवंबर
* अनाम
* अभी- अभी
* बाज
* धार
* घर जमाई
* घर आया मेरा परदेसी
* क्षत्रिय
* फूलन हसीना रामकली
* राजू बन गया जेंटलमैन
* राऊडी इंस्पेक्टर
* शिव तेरी महिमा न्यारी
* सोने की सीता
* उमर पचपन की दिल बचपन का

दिसम्बर

* बागी सुल्ताना
* बलमा
* दिल ही तो है
* कभी धूप कभी छाँव
* किंग अंकल
* मार्ग
* परम्परा
* पछतावा
* पंडित भीमसेन जोशी
* तेरी पायल मेरे गीत

● प्रस्तुति : पी. आर. जोशी

१९९२ में अपराध फिल्मों की संख्या घटी

फिल्मी क्षेत्रों में यह आशा की जा रही थी कि सन् 1992 में भारत में प्रति वर्ष एक हजार फिल्मों के निर्माण का कीर्तिमान कायम हो जाएगा। इस आशा के विपरीत 1992 में सिर्फ 836 फीचर फिल्में बनीं, जबकि 1991 में 910, फीचर फिल्में बनी थीं। इस प्रकार 1991 एवं 92 के मध्य निर्माण की गति 8 प्रतिशत कम हो गई। हिन्दी फिल्में सन् 91 में 215 बनी थीं, जबकि 92 में सिर्फ 189 बनीं। आँकड़ों का अध्ययन करने से यह भी ज्ञात होता है कि सामाजिक फिल्मों के निर्माण के प्रति रुझान बढ़ रहा है। अपराध फिल्मों का बनना कम हो रहा है। सन् 91 में सामाजिक विषयों पर 730 फिल्में बनी थीं। इनकी संख्या घटकर 92 में 677 रह गई। कमी का प्रतिशत सात रहा। अपराध फिल्में 91 में 108 बनीं तथा 92 में 94 बनीं। यहाँ कमी का प्रतिशत 18 रहा।

भाषा के अनुसार सर्वाधिक फिल्में हिन्दी (189) इसके बाद तमिल (180) तथा तृतीय क्रम पर तेलगु (153) में बनी। सन् 1991 में यह संख्याएँ क्रमशः 215, 186 तथा 174 थीं। मलयालम भाषा की फिल्में सन् 92 में 90 बनीं, जबकि 91 में इनकी संख्या 94 थी। कन्नड़ फिल्में 91 में 91 बनी थीं तथा 92 में इनकी संख्या बढ़कर 92 हो गई है। पंजाबी फिल्मों की संख्या भी बढ़ी। 91 में 9 फिल्में बनी थीं, जबकि 92 में 12 बनी।

सन् 92 में चार ऐसी भाषाओं में फिल्में बनीं, जिनमें 91 में एक भी फिल्म नहीं बनी थी। ये हैं उर्दू (2), गढ़वाली, नागपुरी एवं संस्कृत प्रत्येक में एक। इस प्रकार 91 में 18 भाषाओं में फिल्म निर्माण हुआ था तथा 92 में यह संख्या बढ़कर 21 हो गई। भाषावार फिल्मों की संख्या सन् 1992 में इस प्रकार रही। कोष्ठक की संख्याएँ सन् 1991 की है। बंगाली 42 (51) मराठी 25 (29) उड़िया 11 (11) नेपाली 9 (8) भोजपुरी 8 (8) अँग्रेजी 5 (1) राजस्थानी 3 (5) हरियाणवी 2 (1) मणिपुरी 1 (1) गुजराती एवं असमी भाषा की फिल्मों में अपेक्षाकृत निर्माण की गति कम रही। गुजराती 5 (16) तथा असमी 4 (9) रही।

सर्वाधिक फिल्में इस वर्ष भी मद्रास में बनीं, 280 । जबकि बंबई में यह संख्या 210 रही। सन् 91 में यह संख्याएँ क्रमशः 296 तथा 224 थी। इस बार पहली अँग्रेजी फिल्म दिल्ली स्थित सेंटर बोर्ड ऑफ फ़िल्म सर्टिफिकेशन के क्षेत्रीय कार्यालय में प्रमाणित होने के लिए प्रस्तुत की गई। इसी प्रकार मद्रास में बंगाली मराठी उड़िया तथा अँग्रेजी भाषा की फिल्में प्रमाण पत्र प्रगति हेतु प्रस्तुत की गईं।

सामाजिक एवं अपराध विषयक फिल्मों के अतिरिक्त फेंटेसी पर आधारित 12 फिल्में सन् 92 में बनीं। विषय के अनुसार सन् 1992 में थ्रिलर (1) ऐतिहासिक (2) बाल फेंटेसी (1) बाल फीचर पौराणिक (6 प्रत्येक) हास्य तथा जीवनी (3 प्रत्येक) सस्पेंस, सामाजिक अपराध, (एक प्रत्येक)।

सन् 1992 में 80 विदेशी फिल्मों को प्रमाण पत्र मिले, जबकि 1991 में यह संख्या 124 थी। इनमें (कोष्ठक की संख्या 91 की)। सामाजिक 34 (43) अपराध 15 (28) एक्शन 9 (9) रही।
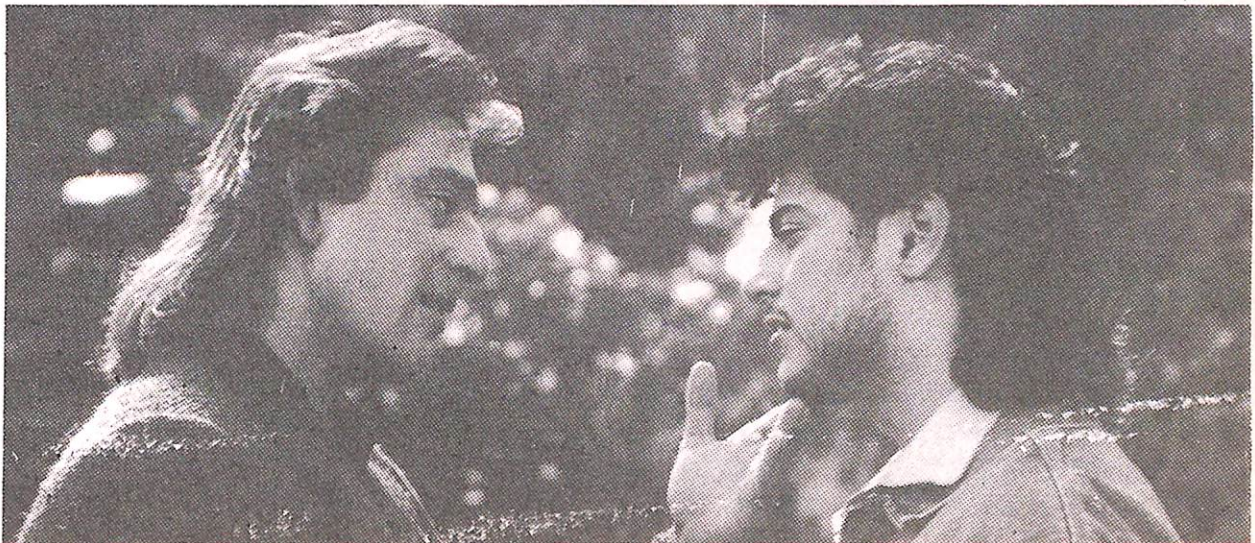
फिल्म यलगार : संजय दत्त और विक्की अरोरा

भारतीय फ़िल्म जगत की प्रमुख घटनाएं : १९९२

* 5 जनवरी 1992। फ़िल्म 'शहादत' के मुहर्त के साथ एक नया अध्याय जुड़ा। जाने-माने रंगमंच, टी.वी. सिनेमा के कथा-पटकथा लेखक कलाकार लिलिपुट ने फिल्म निर्देशन के क्षेत्र में एक बड़े कदम की शुरूआत की। संसार में लिलिपुट ही पहले बौने फिल्म निर्देशक होंगे, जिनका नाम गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रेकार्ड में सुशोभित हों।

* केन्द्रीय फ़िल्म सेंसर बोर्ड द्वारा 1951 से 1991 अंत तक के 4 दशक में 20,499 भारतीय एवं 7389 विदेशी फिल्मों को प्रदर्शन हेतु प्रमाणित किया है। विगत एक वर्ष की अवधि में भारतीय फीचर फिल्मों की 16791.58 फ़िल्में सहजता से बनाई जा सकती थीं।

* प्रसाद-कलिंग (सह प्रयास) प्रथम रंगीन फिल्म लेबरेटेरी का 29 जनवरी को उड़ीसा में मुख्यमंत्री द्वारा शुभारंभ। साढ़े छः करोड़ लागत की इस लेब से उड़िया-बंगला फ़िल्म निर्माण लाभान्वित होगा।

* 1992 के पद्मश्री अलंकरण को संगीतकार सलिल चौधरी ने नकार दिया। उनसे जूनियर कई संगीतकार पूर्व में पुरस्कृत किये जा चुके हैं। ऐसी स्थिति में अब उन्हें पुरस्कृत करना उन्हें दुखद लगा।

* डॉ. वी. शांताराम मोशन पिक्चर्स साइंटिफिक रिसर्च एंड कल्चरल फाऊन्डेशन द्वारा श्रेष्ठ फीचर फिल्म तथा श्रेष्ठ बाल चलचित्र के लिए दो वी. शांताराम अवार्ड संस्थापित किए हैं। 1992 से ये प्रतिवर्ष प्रदान किये जायेंगे। संस्था 17 नवम्बर 1977 में स्थापित की गई थी। संस्था ने 4 ट्रेक साउंड सिस्टिम, मेगनेटिक टेप, इलेक्ट्रानिक फूटेज काउंटर, आडियो कैसेट टेपरेकॉर्डर विकसित किए हैं।

* 6 फरवरी 1992। मराठी चित्रपट की हीरक जयंती (1932-1992) शिवाजी मंदिर दादर बम्बई में मनाई गई। यह संयोग है कि 6 फरवरी 1932 को वी. शांताराम द्वारा निर्मित प्रथम मराठी फ़िल्म अयोध्या चा राजा का मैजेस्टिक सिनेमा बम्बई में प्रथम प्रदर्शन हुआ था। इस समय मराठी सिनेमा के पुराने कलाकारों को स्मृति चिन्ह प्रदान कर सम्मानित किया गया। ललिता पवांर। शाहू मोडक। सुमति गुप्ते। अनंत मराठे। राजा गोसावी। मीनाक्षी शिरोड़कर। पी.एल. देशपांडे। विश्राम वेडेकर। वसन्तराव जोगलेकर। सुधीर फड़के। अनंत मामले। मधु आम्टे। जयश्री गड़कर। स्नेह प्रभा प्रधान उल्लेखनीय व्यक्तित्व थे मराठी चित्रपट महामंडल ने इसका आयोजन किया था।

* आवाज की दुनिया में क्रांति। राजश्री संस्था द्वारा मैंने प्यार किया फ़िल्म का स्टीरियोफोनिक प्रिंट तैयार किया है। राजश्री ने डेढ़ करोड़ की लागत से आप्टिकल प्रिंट के लिये अपने परिसर में आयातित साधन स्थापित किए हैं।

* लास एंजिलिस में अस्वस्थतावश उपस्थिति नहीं होने से आर्टस् एवं मोशन पिक्चर्स अकादमी ने अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से सत्यजीत राय को कलकत्ता नर्सिंग होम में 16 मार्च 92 को सर्वोच्च फ़िल्म सम्मान 'विशेष ऑस्कर अवार्ड' प्रदान किया। इस घटना को 64 वें आस्कर अवार्ड उत्सव में 30 मार्च को प्रदर्शित किया गया।

* नंदन फ़िल्म परिसर कलकत्ता में पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु द्वारा सत्यजीत राय अभिलेखागार सह कला संग्रहालय का शुभारंभ किया। परिसर की ऊपरी मंजिल में स्थित इस संग्रहालय में फिल्मों के मूल प्रिंटस, फोटोज। फ़िल्म पोस्टर्स। सत्यजीत राय द्वारा लिखे गये पत्र। उनके द्वारा रचित साहित्य का केटलॉग। फ़िल्म निर्माण की योजना।

* फ़िल्म नेत्री नूतन के पुत्र मोहनीश बहल एवं अभिनेत्री एकता 24 अप्रेल को विवाह-सूत्र में बंध गये।

* फिल्म जगत में तीन पीढ़ी - मुराद, रजा मुराद और अली मुराद 7 वर्षीय रजा मुराद के पुत्र ने फिल्म चोर और चाँद में आदित्य पंचोली की बाल भूमिका के लिए कैमरे का सामना दादाजी के फिल्म प्रवेश के 50 वर्ष बाद किया। मुराद ने 1942 में उनके लड़के रजामुराद ने 1972 में और पोते ने 1992 में कैमरे से दोस्ती की।

* रौरिक मेमोरियल ट्रस्ट। भारती फ़िल्म जगत की प्रथम महिला अभिनेत्री देविकारानी ने बेंगलोर स्थित अपनी 243 एकड़ सम्पत्ति का 15 जून 1992 को इन्टरनेशनल रौरिक मेमोरियल ट्रस्ट का गठन कर शुभारंभ किया। ट्रस्ट में भारतीय एवं रशियन प्रमुख हस्तियाँ ट्रस्टी बनाये गये हैं।

* मनमोहन देसाई एवं नंदा ने विवाह-सूत्र में बँधने का निश्चय किया। 17 जून को सगाई की रस्म पूरी हुई।

* गैर फ़िल्मी समाचार पत्र नई दुनिया (इंदौर) की 46वीं वर्षगाँठ के अवसर पर फ़िल्म संसार से संबंधित चतुर्थ संग्रहणीय फ़िल्म विशेषांक 'नायक-महानायक' का अभिनेता अनिल कपूर द्वारा लोकार्पण किया गया। पूर्व में 75 साल का भारतीय सिनेमा (1988) सरगम का सफर (1989) परदे की परियाँ (1990) विशेषाँक प्रकाशित हुए हैं।

* म्युजियम ऑफ मुव्हींग इमेजेस, लंदन के समान द साऊथ इंडियन फ़िल्म चेम्बर ऑफ कामर्स ने (मद्रास) में सिनेमा म्युजियम स्थापित करने की 10 करोड़ रुपए की योजना स्वीकार की है। 1995 में तक म्युजियम पूर्ण हो जाने की आशा है। इस दिशा में चेम्बर ने दक्षिण भारतीय फ़िल्म उद्योग का प्रमाणिक रेकॉर्ड एकत्र कर लिया है, जिसकी लागत 5 लाख रुपए है।

* कलकत्ता में प्रस्तावित भारतीय फ़िल्म एवं टेलीविजन संस्थान की आधारशिला प्रधानमंत्री नरसिंह राव द्वारा 10 अक्टूबर 92 को रखी गई। इस संस्थान को प्रख्यात फ़िल्मकार स्वर्गीय सत्यजीत राय का नाम दिया गया। इसका स्वरूप शोध व प्रशिक्षण केंद्र का रहेगा। 114 शिक्षार्थी 10 पाठ्यक्रमों में प्रवेश पायेंगे। प्रथम वर्ष में सामान्य एकीकृत पाठ्यक्रम रहेगा। बाद के वर्ष विभिन्न फ़िल्म आयाम के विशेषज्ञता के पाठ्यक्रम रहेंगे। यह वर्ष 1996-97 से कार्यरत हो जाएगा। प्रारंभिक तौर वर्ष 1993-94 से सत्र प्रारंभ होंगे। यह कलकत्ता विश्वविद्यालय से संबद्ध होगा। प्रारंभिक 4 (तीन वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम) और 5 (2 वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम) होंगे। निर्देशन, छायांकन, वीडियोग्राफी, सम्पादन, ध्वनि-अंकन, अभिनय, कला निर्देशन, कम्प्यूटर ग्राफिक्स, एनीमेशन, सिस्टीम इंजीनियरिंग एवं व्यवस्थापन, रंगभूषा, वस्त्र विन्यास और स्पेश अपलिंक एवं दूरदर्शन में प्रशिक्षण लिया जा सकेगा।

* बंगला-देश सरकार ने भारतीय फ़िल्मों के आयात पर विगत दो दशकों से लगी बंदिश उठा ली है। अब भारतीय फ़िल्में बंगला-देश के सिनेमाघरों में प्रदर्शित होने लगी हैं।

* मेहबूब खान द्वारा निर्मित छः सुपर हिट फ़िल्में जो 1965 से पाकिस्तान में भारतीय फ़िल्मों के

प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगाने से प्रतिबंधित हो गई थी, पाकिस्तान सुप्रीम कोर्ट के निर्णय अनुसार अब दिखाई जा रही हैं। ये फ़िल्म हैं- अनमोल घड़ी, आवाज, नज़मा, अन्दाज, आन और अनोखी अदा।

* लता मंगेशकर ने अपने फ़िल्मी पार्श्व-गायन की स्वर्ण जयंती पूरी की। इस अवसर पर एच.एम.वी. ग्रामोफोन कम्पनी ने 'श्रद्धांजलि' शीर्षक से विशेष ऑडियो कैसेट जारी किया।

* 'जुलाई 92' को शपथ लेने के साथ दिल्ली संसदीय सीट से विजयी राजेश खन्ना के लोकसभा में प्रवेश के साथ सांसद फ़िल्मी सितारों की संख्या 4 हो गई है।

* 'पाथेर पांचाली' सत्यजीत राय की फ़िल्म इस युग की प्रथम 10 श्रेष्ठतम फ़िल्मों में चुनी गई। ब्रिटिश फ़िल्म इन्स्टीट्यूट की पत्रिका साइट एन्ड साउंड द्वारा इस सदी की 23 फ़िल्मों को संसार की सर्वकालिक श्रेष्ठतम कृतियाँ माना है।

	फ़िल्म	निर्देशक	वर्ष
*	**सिटीजन केन**	ऑरसन वेलेस	1941 प्रथम 10 में सर्वश्रेष्ठ
*	**एल. एवेन्चुरा**	एन्टोनिओनी	1960
*	**लॉ रीगल डु जेऊ**	रैने	1939
*	**ग्रीड**	वॉन स्ट्रोहम	1924
*	**उजेत्सु मोंटगोमरी**	मिझोगुची	1953
*	बेटल शिप पोटेमकिन	आयजेंसस्टिन	1925
*	**बायसिकल थीफ**	विटोरियो द सीका	1949
*	**इवान द टेरीबल**	आयजेंस्टिन	1943-46
*	**पाथेर पांचाली**	सत्यजीत राय	1955
*	लॉ टेर्रा ट्रेमा	विस्कौंटी	1948
*	एल अटलांटे	विगो	1933
*	एट एन्ड हॉफ	फेलिनी	1963
*	परसोना	बर्गमेन	1967
*	द पेंशन ऑफ जॉन ऑफ आर्क	ड्रेयर	1928
*	द जनरल	कीटन	1926
*	द मेग्नीफिसेंट एम्बरसम्स	वेलेस	1942
*	वाइल्ड स्ट्राबेरीज़	बर्गमेन	1957
*	सेवन समुराई	कुरूसोवा	1954
*	सिंगींग इन द रेन	डोनेन एन्ड केली	1952
*	वर्टिगो	हिचकॉक	1957
*	द सर्चरर्स	फोर्ड	1956
*	टोकियो स्टोरी	ओझु	1953
*	2001, ए स्पेस ओडेसी	कुब्रिक	1968

विश्व की दस सर्वोत्तम फिल्मों में से एक : पाथेर पांचाली का एक दृश्य

निधन : 1992

तुम हमें भुला ना पाओगे ....

जनवरी

एक जनवरी : अस्सी वर्षीय चंदूभाई, अनुभवी स्थिर फोटोग्राफर का बम्बई में निधन, के.एल. सहगल से हावड़ा ब्रिज, जाली नोट, इंसान जाग उठा, फूल और काँटे तथा लक्ष्मण रेखा फ़िल्मों का स्थिर छायांकन किया।

चौदह जनवरी : साठ वर्षीय नामांकित कला निर्देशक नागेश्वर राव। दक्षिण भारतीय तथा हिन्दी की 150 से भी अधिक फ़िल्मों में अपनी कलात्मकता का परिचय दिया। 'सीता कल्याणम्, फ़िल्म 1978 के लंदन तथा शिकागो अन्तरराष्ट्रीय फ़िल्मोत्सव में प्रदर्शित हुई थी।

सोलह जनवरी : मोहन कौल फ़िल्म लेखक का पूना में निधन। रवि कपूर के साथ कहानी एवं पटकथाएँ लिखीं। रमेशा मल्होत्रा की 'नगीना' सबसे सफल फ़िल्म। खुदगर्ज तथा हम, की पटकथाओं की प्रशंसा हुई।

"भारत की एक सन्नारी की कथा सुनाते है" और "बीना-मधुर-मधुर' कछु बोल फ़िल्म राम राज्य के इन गीतों ने देश में हलचल मचा दी थी। इन्हीं के गीतकार रमेश गुप्ता का 77 वर्षीय उम्र में अहमदाबाद में निधन। गाँधीजी की हत्या के पश्चात जो गीत राष्ट्र व्यापी लोकप्रिय हुआ "अपने ही हाथों से अपना बापू खोया" इन्हीं की देन हैं। मुकेश द्वारा जाए इनके कई गुजराती गी आज भी श्रोताओं की पहली पसंद हैं।

25 जनवरी : कथा-पटकथा, गीत लेखक जी.एल. रावल (81 वर्षीय) का बम्बई में निधन। दिल ही तो है दिल ने फिर याद किया, आबरू, लड़की पसंद है, चोरमंडली उल्लेखनीय फ़िल्में। नयी लाइन सत्ताइस जनवरीः भक्त कबीर के चरित्र को लगन के साथ अभिनित करने वाले, रोमांटिक कवि-शायर अभिनेता भारत-भूषण का बहत्तर वर्ष की उम्र में बम्बई में निधन। 1919 में जन्में मेरठ वासी भारतभूषण कला स्नातक थे। दो सौ अधिक फ़िल्मों में ऐतिहासिक। पौराणिक एवं साहित्यिक चरित्र को सरकार करने वाले भारत भूषण मधुर भाषी, संगीत व साहित्य के शौकीन थे। पुस्तकों एवं कैसेट्स का विशाल संग्रह, बैजू बावरा, मिर्जा गालिब, चैतन्य महाप्रभु, संगीत सम्राट तानसेन, आनंदमठ, बसंत-बहार, बरसात की एक रात, सोनी महिवाल, फागुन, उल्लेखनीय फ़िल्म।

तीस जनवरी : लगभग 200 हिन्दी एवं भोजपुरी फिल्मों के चरित्र अभिनेता भगवान सिन्हा (73 वर्षीय) का बम्बई में निधन। 'गंगा मैय्या तोहे पियरी चड़ाइबो', शोले, ज्वेल थीफ, टेक्सी ड्रायवर, हाउस नं. 44, खुशबू, आपके अभिनय की फ़िल्में हैं।

फरवरी

एक फरवरी : हास्य कलाकार मोहन चोटी। (मोहन सखाराम देशमुख) (53 वर्षीय) का बम्बई में निधन। 'शिकस्त' में बला कलाकार से उभरे 'हम पंछी एक डाल के' में अभिनित भूमिका से मोहन चोटी ने अपनी पहचान बनाई। सहगल तथा दिलीप कुमार अभिनीत 'देवदास' फ़िल्म में अभिनय करने वाले मोहन ने तकरीबन 450 फ़िल्मों में विभिन्न हास्य व चारित्रिक भूमिका की हैं। फर्ज। माँग भरो सजना। ब्रह्मचारी। शराफत। विक्टोरिया नं. 203। दो बीघा जमीन। चलती का नाम गाड़ी, उल्लेखनीय फ़िल्में धोती लोटा और चौपाटी, हन्टरवाली चाबी चोर के हाथ, सांध्य तारा (उड़िया) इन 4 फ़िल्मों का निर्माण भी किया। आर्थिक तंगाई के दिनों में 'किस्सा रोटी का ढाबा चोटी का, भी भी चलाया।

तीन फरवरी : रामायण धारावाहिक के कुंभकरण- नलिन दवे (44 वर्षीय) का 'श्री नाग कृपा' गुजराती फिल्म की शूटिंग के दौरान बड़ोदा में निधन। 150 से अधिक गुजराती फ़िल्मों में अभिनय।

छः फरवरी : 1983 से फ़िल्मी कैरियर शुरू कर थोड़े से समय में ही स्वयं को स्थापित कर लेने वाले असमी फिल्म निर्देशक 37 वर्षीय अरदेन्दू भट्टाचार्य का गौहाटी में निधन। वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य के ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त उपन्यास "मृत्युन्जय" पर आधारित धारावाहिक बना रहे ते।

दस फरवरी : अमीन सयानी के सहयोगी के रूप में आकाशवाणी व रेडियो सीलोन के उद्घोषक से जीवन प्रारंभ करने वाले लेखक निर्देशक 55 वर्षीय सुंदर दर का बम्बई में निधन । रूठा ना करो फ़िल्म की कहानी एवं निर्देशन। आँगन की कली और आपकी खातिर फ़िल्म की पटकथा लिखी।

तेरह फरवरी : शिमला में किग अंकल की शूटिग के दौरान छायाकार पुष्पल दत्त (56 वर्षीय) का निधन। कैरियर की शुरूआत फ़िल्म अपना देश से भगवान दादा, आपके दीवाने, जाग उठा इन्सान, काम चोर, खेल तथा राकेश रोशन की सभी फ़िल्में छायांकित की।

बीस फरवरी : 77 वर्षीय नृत्य निर्देशक पं. गौरीशंकर का बम्बई में निधन। चुरू (राजस्थान) जन्मे पंडित जी ने 1938 से फ़िल्मों में थे। 1974 के संगीत नाटक अकादमी अवार्ड से पुरस्कृत 'पाकीजा' तथा 'तीन सौ बत्ती चार रास्ते' जैसी फ़िल्में नृत्य कला की उदाहरण हैं।

पच्चीस फरवरी : दो सौ से अधिक हिन्दी व गुजराती फ़िल्मों के अभिनेता मनहर देसाई (74 वर्ष) का बम्बई में निधन। राजकोट के रहवासी इस प्रोटेस्टेंट ईसाई को नायक बनने की अभिलाषा बम्बई ले आई। विल्सन कॉलेज से स्नातक। फ़िल्मों में स्टंट फिल्म " तूफानी सवार" से प्रवेश 'गुण सुन्दरी' गुजराती फिल्म ने मनहर को स्थापित किया। निरुपा राय, हिन्दी व गुजराती अधिकांश फिल्मों में सहनायिका रही। मंगल केरा। गाढ़ा नो बैल। चुनड़ी (गुजराती)। जनम-जनम के फेरे नागपंचमी। सम्पूर्ण रामायण। मदारी। जबक। सल्तनत। सती मदालसा। राजकन्या। मदहोश।

उल्लेखनीय फ़िल्में। गंभीर आवाज तथा मधुरता मनहर की विशेषता थी। अँग्रेजी साहित्य के गंभीर पाठक।

मार्च

पाँच मार्च हास्य कलाकार मुंदर का 78 वर्ष की उम्र में बम्बई में निधन। फ़िल्मों में श्री गणेश 'शुक्रिया'व से। जन्म सियाल कोट। विभाजन पश्चात एच.एस. रवैल के साथ कलकत्ता और फिर फ़िल्मों की नगरी बम्बई आए। चरित्र अभिनेता ओमप्रकाश के अजीज दोस्त। 300 से भी अधिक फ़िल्मों में अपना हास्य बिखेरते रहे।

पन्द्रह मार्च : कथा पटकथा, व संवाद लेखक साहित्यकार डॉ. राही मासूम रज़ा (64 वर्षीय) का बम्बई में निधन। वकील के पुत्र। 1926 में गाजीपुर में जन्म। अलीगढ़ यूनिवर्सिटी से उच्च शिक्षा व साहित्य में डॉक्टरेट प्राप्त। व्याख्याता भी रहे। अल्पकाल के लिए कम्युनिस्ट आंदोलन की ओर आकर्षित। तकरीबन 100 से अधिक फिल्म तथा धारावाहिक के संवाद लिखे। लम्हें। मैं तुलसी तेरे आँगन की। मिली। गोलमाल। कर्ज। प्रेम कहानी आदि। बी.आर. चोपड़ा के धारावाहिक महाभारत में इनके संवादों ने दूरदर्शकों को मोह लिया था। राही जी का उर्दू एवं हिन्दी दोनों भाषा पर समान अधिकार। अनुशासन व धर्मनिरपेक्षता के पक्षधर आखिरी समय तक फ़िल्म कल की आवाज। गीतांजलि। हमला तथा धारावाहिक सौदा के लिए संवाद लिखते रहे।

अप्रैल

दो अप्रेल : जाने-माने फ़िल्म कलाकार जलाल आगा के पिता, अपने समय के सफल हास्य अभिनेता आगा जान (89) वर्ष का हृदयाघात से पूना में निधन। साठ वर्ष में 500 से अधिक फ़िल्मों में अभिनय। 1932 की मूक फ़िल्म 'पृथ्वी' से प्रारंभ फिल्मी दौर के साथ जेमिनी की 'इन्सानियत'। 'घराना'। 'बहुत दिन हुए' व संसार। कठपुतली। पतिता। ज्वार-भाटा। बच्चों का खेल। फर्ज। जब-जब फूल खिले। दुनिया मेरी जेब में हैं। काली टोपी लाल रूमाल। साहेब। ईश्वर इनकी उल्लखनीय फ़िल्म।

तीन अप्रेल : कला-निर्देशक, के. बाबूभाई (60) वर्ष का वाराणसी में निधन। स्वतंत्र निर्देशक होने के पूर्व कला निर्देशक सुधेन्दू राय के सहायक। सुरेन्द्र मोहन, पहलाज निहलानी। ए. कृष्णमूर्ति निर्देशकों के स्थाई कला निर्देशक। 150 फ़िल्मों में कला-निर्देशन।

तेरह अप्रैल : फ़िल्म निर्माता रवि आनन्द का बम्बई में अचानक निधन। 'हिन्दुस्तान की कसम' फ़िल्म का निर्माण।

अठारह अप्रैल : महेश कौल की फ़िल्म 'तलाक' के श्रेष्ठ सम्पादन पुरस्कार विजेता आर.बी. श्रीखंडे फ़िल्म सम्पादन (75 वर्ष) का बम्बई में अवसान। महेश कौल व देवेन्द्र गोयल की सभी फ़िल्मों का सम्पादन। फ़िल्म सम्पादकों के संगठन के छः बार अध्यक्ष।

तेइस अप्रैल : प्रथम भारतीय ऑस्कर विजेता भारत रत्न सत्यजीत राय (70 वर्ष) का कलकत्ता के निजी नर्सिंग होम में हृदयाघात के कारण निधन। फ़िल्म 'पाथेर पांचाली' से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति। कई अन्तर्राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कारों से सम्मानित।

अठाइस अप्रैल : गुजराती फ़िल्मों के संगीत निर्देशक सुमनजी 'सुमन' (65 वर्ष) का गोरेगाँव (बम्बई) में निधन। संगीत महाविद्यालय बड़ौदा के इस संगीत स्नातक ने 1953 में फ़िल्मोद्योग में शंकर जयकिशन के सहायक के रूप में प्रवेश किया। 'जनम ठेप' गुजराती फ़िल्म से स्वतंत्र संगीत निर्देशक के रूप में उभरे। महामती, मैना सुंदरी और प्यार का पहला सावन इनकी श्रेष्ठ फिल्में।

तीस अप्रैल : 'जय संतोषी माँ' फ़िल्म के प्रसिद्ध जाने माने संगीत-निर्देशक सी. अर्जुन (63 वर्ष) का बम्बई में अवसान। के.जी. भट्ट द्वारा समस्त 11 गुजराती फ़िल्मों व एक हिन्दी फ़िल्म का संगीत : निर्देशक।

तीस अप्रैल : बीते दिनों की 5 दशक लंबे फ़िल्मी जीवन की जानी मानी बंगाली फ़िल्म अभिनेत्री चंद्रावती देवी (84 वर्ष) का कलकत्ता में निधन। 200 से अधिक बंगला फ़िल्मों में अभिनय। देवी बोस द्वारा निर्देशित फ़िल्म 'मीराबाई' में मीरा की भूमिका।

मई

बाइस मई : फ़िल्म वितरक से निर्माता बने आर.सी. प्रकाश (44 वर्ष) का बम्बई में देहावसान। 'टिक् टिक् टिक' तमिल फ़िल्म निर्माण से प्रारम्भ होकर 'गुरू, मास्टरजी और यादगार' हिन्दी फ़िल्में बनाई।

छब्बीस मई : संगीतकार अनिल विश्वास की पत्नी तथा बातें कल की अभिनेत्री आशालत्ता विश्वास (75 वर्ष) का बंबई में निधन। जानी मानी अभिनेत्री फ़िल्म अभिनेत्री समर्पित समाजसेविका संजीव मूर्ति (हिन्दी) प्रेमवीर (मराठी) मारे जाऊ पहले पार (गुजराती) जैसी कई सफल फ़िल्मों में अभिनय।

जून

बीस जून : हिन्दी एवं गुजराती फ़िल्मों के निर्माता - निदेशक एस.के. राजदेव भाई (71 वर्ष) का बम्बई में निधन। जालाराम चित्र व सरगम चित्र कंपनी के अन्तर्गत कई फ़िल्मी गुजराती फिल्में बनाई।

जुलाई

एक जुलाई : तेलुगू सिनेमा के आधार स्तंभ निर्देशक टी. प्रकाश राव (68 वर्ष) का हैदराबाद में निधन। 60 के दशक में दक्षिण भारत के लोकप्रिय

निर्देशक ने करीबन 12 हिन्दी फिल्में निर्देशित कीं। अमरदीप, बहूरानी, बहू बेटी, सूरज, दुनिया, इज्जत, वासना तथा नन्हा फरिश्ता उल्लेखनीय।

सत्रह जुलाई : मराठी चित्रपठ की तारिका शांतावाई हुबलीकर (78 वर्ष) का पूना में निधन। मेडीकल प्रयोग के लिए अपना शरीर दान। तीस के दशक की सफलतम फ़िल्में पहिला पालणा। माझा मुलगा थीं। प्रभात की फ़िल्म 'माणुस' (आदमी) में वेश्या के अभिनय की प्रशंसा।

अठारह जुलाई : भारतीय सिनेमा की उच्च कोटि की कोकिल कण्ठी गायिका अभिनेत्री कानन देवी भट्टाचार्य (76 वर्ष) का कलकत्ता में निधन। अभिनय को प्रतिष्ठा दिलाने वाली, दादा साहेब फालके पुरस्कार से सम्मानित कानन देवी एक समाज सेविका भी रहीं। 1926 में बनी मूक फ़िल्म जयदेव पहली फ़िल्म। 'जारेबरात' सवाक पहली फ़िल्म। उल्लेखनीय फ़िल्में मुक्ति, विद्यापति, चंद्रशेखर, लगन, स्ट्रीट सिंगर, जवाब (हिन्दी), साथी, शेष उत्तर, जोगाजोग (बंगाली)।

इक्कीस जुलाई : निर्माता-निर्देशक रवीन्द्र दवे 75 वर्षीय का बम्बई में निधन। नूतन अभिनीत 'नगीना' से फ़िल्म निर्देशन प्रवेश। सफल फ़िल्में, पोस्ट बाक्स नं 999। सट्टा बाजार। दुल्हा दुल्हन। गुजराती फ़िल्मों में जैसल थोराल, राजा भरथरी, कुँवर बाई जो मामेरू, सोन कंसारी, पटली परमार, भादर थारा वेदला पानी और प्रीत खांडानी धार उल्लेखनीय।

सत्ताईस जुलाई : हिन्दी फ़िल्मों के सफल चरित्र अभिनेता (अभिनेता जयंत के पुत्र) अमजद खान (49 वर्षीय) का बम्बई में निधन। शोले में गब्बर सिंह की भूमिका से सफलता की ऊँचाइयों को छूआ। अमजद भाई के नाम विख्यात सरल तथा दयालु स्वभाव। 300 से अधिक फ़िल्मों में अभिनय। प्रमुख सफल फिल्में शतरंज के खिलाड़ी, दादा, कालिया, कुरबानी, मुकद्दर का सिकन्दर, लावारिस, सत्ते पर सत्ता, राम-बलराम, कसमें वादे, गंगा की सौगंध, हिम्मतवाला, बरसात की एक रात।

अगस्त

छः अगस्त : छायाकार राजकुमार भाकरी (67 वर्षीय) का बम्बई में निधन। निर्देशक मोहन भाकरी इनका भतीजा है। मुल्कराज भाकरी की फ़िल्म 'मोतीमहल' से छायाकार के रूप में अपना कार्य प्रारंभ।

नौ अगस्त : अमिताभ बच्चन का प्रतिरूप, विजय सक्सेना (20 वर्षीय) का कार दुर्घटना में बड़ौदा में निधन। 'गंगापुर की गीता' शूटिंग के पश्चात घर लौटते हुए यह दुर्घटना। रामगढ़ के शोले व वसन्ती ताँगेवाली चर्चित फ़िल्म।

बारह अगस्त : निर्देशक गोल्लपुडी श्रीनिवास (26 वर्षीय) कार विशाखापटनम् में निधन। शूटिंग के लिए स्थाना चयन के दौरान पहाड़ी पर से पैर फिसल जाने के कारण समुद्र में गिरे और डूब जाने से अवसान।

चौदह अगस्त : दक्षिण भारतीय अभिनेता सेन्थमराई (57 वर्षीय) का मद्रास में अवसान। रंगमंच से अभिनय की शुरूआत। 600 से अधिक फ़िल्मों में लोकप्रिय खलनायक तथा चरित्र अभिनय की भूमिका। मायाबाजार, मलयत्ता मंगल, पीरावी इनकी उल्लेखनीय फ़िल्में।

चौदह अगस्त : तमिलनाडु सरकार के अवार्ड से सम्मानित प्रसिद्ध फ़िल्म एवं रंगमंचीय कलाकार के . मुस्तफा (73 वर्षीय) का मद्रास में निधन। स्वर्गीय एम.जी. रामचंद्रन के निकट सहयोगी। लगभग 150 फ़िल्मों में अभिनय।

तेइस अगस्त : कन्नड़ फ़िल्म निर्माता एन वीरास्वामी (61 वर्षीय) का बंगलौर में देहावसान। कन्नड़ में सफल फ़िल्म कुल गौरवा, नगरा हावु, प्रेमालोक, पड्डी काडवन के अतिरिक्त हिन्दी में इन्कलाब (अमिताभ बच्चन) का निर्माण। इनकी आखरी फ़िल्म शांति-क्रांति 4 भाषाओं में हैं।

पच्चीस अगस्त : अनुभवी फ़िल्म सम्पादक निर्देशक निर्माता ए. हबीब (50 वर्षीय) का बम्बई में निधन। पूना फ़िल्म एवं टेलीविजन प्रशिक्षण संस्थान से सम्पादन में स्वर्ण पदक विजेता। 200 से अधिक फ़िल्मों का सम्पादन. 'शहजादी' के निर्देशन के अतिरिक्त गुजराती भाषा की फ़िल्म बनाई।

सितम्बर

सोलह सितम्बर : निर्माता विजय सूरमा (भोलु) (46 वर्षीय) का बम्बई में अवसान। प्रथम फ़िल्म 'अपना बना लो' अंतिम काला बाजार। राजीव कुमार के साथ 'सदा सुहागिन' और हकीकत बनाई।

इक्कीस सितम्बर : निर्माता-वितरक प्रदर्शक, ताराचंद बड़जात्या (77 वर्षीय) का बम्बई में निधन। वितरक संस्था में क्लर्क की हैसियत से कार्य प्रारंभ। दूरदृष्टि, कड़ी मेहनत, दृढ़ता एवं लगन से राजश्री के साम्राज्य के संस्थापक। दक्षिण भारतीय निर्माताओं को उत्तर भारतीय फ़िल्म जगत के नक्शे पर लाने के साथ चंद्रलेखा के सारे भारत में एक साथ फ़िल्म प्रदर्शन की प्रणाली का श्रेय। 32 वर्ष के लंबे समय में राजश्री ने 45 फ़िल्में निर्मित कीं जिनमें मैंने प्यार किया, आरती, दोस्ती, जीवन मृत्यु, तपस्या, गीत गाता चल, दुल्हन वही जो पिया मन भाए, सावन को आने दो, अँखियों के झरोखे से, चितचोर सफलतम राजश्री भारत में एक सबसे बड़ी फ़िल्म निर्माण- वितरण एवं प्रदर्शन संस्था।

तीस सितम्बर : निर्देशक पटकथा लेखक बी. नीलकांतन (75 वर्षीय) का मद्रास में देहावसान। एम.जी. रामचंद्रन की अधिकांश फ़िल्में निर्देशित करने की विशेषता। एम.जी.रामचंद्रन जयललिता अभिनीत फ़िल्म 'कवल कारण' के श्रेष्ठ निर्देशन हेतु राज्य पुरस्कार।

अक्टूबर

एक अक्टूबर : राष्ट्रीय व राज्य पुरस्कार विजेता फ़िल्म व रंगमंचीय अभिनेता सी.ही होनप्पा भागवतार (77 वर्षीय) का बंगलौर में निधन। कन्नड़ एवं तमिल फ़िल्मों में अभिनय के अलावा कई फ़िल्मों का निर्माण। 40 के दशक की 'गोरा कुम्हारा' व 'हेमारेड्डी मल्लाम्मा' लोकप्रिय। 1955 में महाकवि कालिदास में बी सरोजा देवी को अभिनेत्री के रूप में पदार्पण कराया।

छः अक्टूबर : छायाकार रमेश भल्ला (57 वर्षीय) का बम्बई में निधन। धरम चोपड़ा के सहायक दूसरा आदमी, नूरी, युद्ध, त्रिदेव और विश्वात्मा का छायांकन।

आठ अक्टूबर : 'झूम बराबर झूम शराबी' कव्वाली गायन से अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त कव्वाल तथा पार्श्व गायक अजीज न्याजा (55 वर्षीय) का बम्बई में अवसान। कव्वाली गायन से फ़िल्म जगत में प्रवेश। कई फ़िल्मों में गीत व कव्वाली का पार्श्व गायन। 'चढ़ता सूरज धीरे-धीरे ढलता है और हो निगाहें करम' विशेष लोकप्रिय कव्वाली।

दस अक्टूबर : निर्माता-निर्देशक ट्रेड गाइड के सम्पादक, बी.के. आदर्श (बिरधराज नाहटा) (66 वर्षीय) का बम्बई में निधन। जयमाला अभिनेत्री पत्नी। फ़िल्म व्यवसाय के बारे में पत्रिका प्रारंभ करने वाले प्रथम व्यक्ति। सफदर आह के सहायक के रूप में 'भूख' फ़िल्म से बम्बई में जीवन की शुरूआत। स्वतंत्र निर्देशक के रूप में रामबोहरा की परिवार फ़िल्म अपूर्ण रही। लेखक व निर्देशक के बतौर प्राणलाल दोषी के लिए 'मानो या ना मानो' का निर्माण। निर्माता के रूप में 'तीर्थ यात्रा' पहली फ़िल्म के बाद हरिश्चंद्र तारामती, बालक, स्पॉय इन रोम, गुप्त ज्ञान, (प्रथम यौन शिक्षा फ़िल्म), नेताजी सुभाषचंद्र बोस, रामूदादा, मर्डर इन सरकस, पुतलीबाई, बाबा सारी लाडली (राजस्थानी) फ़िल्में बनाई।

उनतीस अक्टूबर : नूतन अभिनीत 'प्यारी भाभी' के निर्माता शमशाद खान (37 वर्षीय) का बम्बई में निधन। सुनील शेट्टी को लेकर आसमा फ़िल्म्स के लिए 'मैं खुदा नहीं' चित्र की घोषणा।

तीस अक्टूबर : दक्षिण भारतीय प्रसिद्ध अभिनेता 'कुल दीवम' राजगोपाल (62 वर्षीय) का मद्रास में निधन। लगभग 600 तमिल-तेलगु-कन्नड़ व मलयालम फ़िल्मों में हास्य भूमिकाएँ।

इकतीस अक्टूबर : लेखक- निर्माता- निर्देशक रामचंद्र ठाकुर (84 वर्षीय) का बंबई में निधन। 1936 से फ़िल्म पत्रकार के रूप में जीवन प्रारंभ। कई उपन्यास पर फिल्में बनीं। उल्लेखनीय 'आम्रपाली', 'बैजू बावरा'। वीर दुर्गादास और नवाब सिराजुद्दौला। ग्रामोफोन सिंगर। गीत-गोविन्द। जय हनुमान। गरीबी। जय महादेव। रूमाल। धरम्पत्नी। वीर दुर्गादास। और शरबती आँखें निर्देशित फ़िल्में।

नवम्बर

तीन नवम्बर : अभिनेता प्रेमनाथ (66 वर्षीय)। का बम्बई में निधन। पेशावर में जन्मे प्रेमनाथ 1940 में मोहन भवनानी की 'अजीत' से फ़िल्मी जगत से जुड़े। इससे पूर्व पृथ्वी थिएटर्स के नाटकों से सम्बद्ध। साकी। बादल। पर्वत। शोखियाँ। नवजवान। हमारा वतन व चंगेजखान सफल फ़िल्म। जॉनी मेरा नाम में इनकी चरित्र भूमिका आज तक याद की जाती है। इनकी आखरी महत्वपूर्ण फिल्म बॉबी थी। राजकपूर के साले तथा राजेन्द्र नाथ-नरेन्द्र नाथ के भाई।

छः नवम्बर : मराठी रंगमंच के प्राण फ़िल्म अभिनेता जयराम शिलेदार (77 वर्षीय)। का पूना में निधन। मराठी संगीत के लिए समर्पित। वी. शांताराम की फ़िल्म 'राम जोशी' से प्रसिद्ध। 'जीवाचा सखा'। 'संत नामदेव'। संत बहिनाबाई व पंढरीचापाटिल लोकप्रिय फ़िल्म। फ़िल्मों में अभिनय के अलावा 87 नाटकों में रंगमंच पर प्रदर्शन।

चौबीस नवम्बर : राजकुमार बोहरा निर्माता, निर्देशक, कलाकार (67 वर्षीय) का बम्बई में निधन। कई फिल्मों में काम। प्रथम फिल्म लचक (1947)। कई हिन्दी गुजराती फ़िल्में निर्मित एवं निर्देशित। शीतल ने कंथे। जय खोडीयार माँ। भगवान श्रीकृष्ण निर्देशित फिल्म।

चौबीस नवम्बर : चौबे महाराज। नृत्यकार व कोरियोग्राफर (55 वर्षीय) का बम्बई में निधन। कोरियोग्राफी के अतिरिक्त नृत्य ही उनके जीवन में महत्वपूर्ण। वी. शांताराम की 'झनक झनक पायल बाजे' में एक महत्वपूर्ण भूमिका।

दिसम्बर

नौ दिसम्बर : मोहन खन्ना - फिल्म निर्माता का बम्बई में निधन। अमिताभ बच्चन की फिल्म एक नजर एवं काला सूरज का निर्माण। बी.आर. इशारा निर्देशित प्रयोगात्मक फ़िल्म 'एक नजर देख इधर' हाल ही में पूर्ण।

तेरह दिसम्बर : सतीनाथ मुखोपाध्याय। बंगाली गीतकार। आधुनिक बंगाली गीतों के प्रवर्तक। 61 वर्ष की उम्र में कलकत्ता में देहावसान। पूर्वी भारत के संगीत-आकाश में पिछले 5 दशकों से छाये हैं। लता एवं रफी सहित लोकप्रिय पाश्वगायिकों के लिए संगीत रचनाएं।

बीस दिसम्बर : महेन्द्र देहलवी कथा- पथकथा लेखक एवं गीतकार का चालीस वर्ष की उम्र में बम्बई में निधन। कई फ़िल्मों के लिए गीतों की रचनाएं। जीना मरना तेरे संग। दिल वाले कभी ना हारे। सनम तेरे हैं हम। दो हंसों का जोड़ा। नाचने वाले- गाने वाले। मेहरबान। दिल दिया चोरी-चोरी। रेशमा। युद्धकाल। फूलन हसीना, रामकली। सबूत माँगता है। खून। बॉय फ्रेन्ड। गंगापुर की गीता। फूल और शोले और बगावत के शोले। फ़िल्मों में गीत लेखन।

ऐसा भी होता है जनाब!

इलाहबाद बैंक में कार्यरत अमिताभ बच्चन के समर्पित एक प्रशंसक ने पोस्टकार्ड की एक ओर तीन चौथाई हिस्से में अमिताभ को जन्मदिन की बधाई इस तरह दी। "हेप्पी बर्थ डे" के 61,800 शब्द 150 घंटों में लिखे। इससे पहले हरिवंश बच्चन जी की कविता 'मधुशाला' के 6562 शब्द पोस्टकार्ड के एक तरफ लिखकर 'लिमका रिकार्ड बुक, में अपना नाम अंकित करा चुके हैं।

एक कम एक जयपुर में 'दीवाना' फ़िल्म के प्रदर्शन के पहले दिन वहाँ के 4 छविगृहों में जो व्यवसाय फ़िल्म ने किया वह संख्या 99,999-00 रुपए रही। निन्यावें के फेर का क्या अजीब संयोग है?

भारतीय फिल्म उद्योग की सर्वाधिक कमाऊ फ़िल्म कौन सी हैं? शोले। मैंने प्यार किया। बेटा या कोई तेलुगू फ़िल्म? कोई नहीं। केवल विजय कोंडके की मराठी फ़िल्म 'माहेर ची साड़ी' ने 10 करोड़ से अधिक व्यवसाय कर हिन्दी व तेलुगू फिल्मों के स्थापित व्यवसाय के आँकड़ों से आगे निकल गई हैं।

चिरंजीवी अभिनीत तेलुगू फिल्म निजाम क्षेत्र के लिए 1.35 करोड़ रुपए में बेची गई। यह अब तक का सर्वाधिक मूल्य है।

हेरोल्ड रसेल (अभिनेता) (78), 1946 में 'द बेस्ट इयर्स ऑफ अवर लाईफ' में अपंग की भूमिका के लिए ऑस्कर विजेता अपनी पत्नी के इलाज में हुए व्यय का भुगतान करने हेतु 60,500 डॉलर में अपना ऑस्कर बेचा, मोशन पिक्चर्स अकादमी ने उसे इस हेतु ब्याज मुक्त ऋण देने की पेशकश की थी परन्तु ऋण के तनाव पूर्ण जीवन के डर से इन्कार कर दिया। उसका कथन था कि ऑस्कर प्यारा अवश्य है परन्तु इससे अधिक मैं पत्नी को प्यार करता हूँ। क्योंकि ऑस्कर मेरे पास बहुत रहा है।

हिन्दी फिल्मों के अजीवों-गरीब नाम * बस नं. 1, 2, 3, * शादी से घबराहट क्यों? * आदम की बहू * चाकू-छुरी * थम्स अप * तुम शादी क्यों नहीं कर लेते * मोहब्बत में मुसीबत * बीबी बदलो * ये है राइट चाइस बेबी * दिल मेरा वापस दे दे * ऐसी की तेसी * मैं तेरा मिर्जा तू मेरी साहिबा * दिल लो जिगर लो जान लो * दो कड़के चले फ़िल्म बनाने * ऐश और केश * तोड़फोड़ * खड़ूस * मारुति 1000 * दो नम्बर का जज।

फ़िल्म-संसार में बढ़-चढ़कर बातें अपना एक अलग अंदाज रखती है। यहाँ हर कुछ बड़ा ही होता है। अधिक लम्बाई की फ़िल्में निर्मित करना भी एक शौक है। 1992 में अधिक लम्बाई की प्रदर्शित फ़िल्में *खुदा गवाह (5306) * यलगार (5270) * मुस्कराहट (5263) * तहलका (5082) * जिन्दगी एक जुआ (5058) हैं।

कभी सुना है कि मुफ्त फिल्म शो के लिए कोई दर्शक नहीं। हाँ। यह सच है। मेलबोर्न (आस्टेलिया) के एक छविगृह में कनेडियन डायरेक्टर की फिल्म 'नेकेड लंच' दिखाई जा रही थी। छविगृह के मालिक ने सुबह के शो में जनता को निःशुल्क फिल्म देखने के लिए आमंत्रित किया। इस शर्त के साथ कि आप निर्वस्त्र आएँगें। आश्चर्य कि कोई दर्शक नहीं आया।

सेंसर बोर्ड द्वारा प्रमाणित फ़िल्मों का श्रेणीवार विवरण १९९२

प्रमाणित वर्ग	सम्पूर्ण रूप से प्रमाणित	काट छाँट सहित प्रमाणित	कुल
यूनिवर्सल (सामान्य)	62	43	105
यूनिवर्सल एडल्ट (सामान्यतः वयस्क)	6	19	25
एडल्ट (वयस्क)	19	29	48
योग	87	91	178

स्मृति - शेष

लम्बी परछाइयों वाले सत्यजीत राय

● प्रयाग शुक्ल

सत्यजीत राय की फ़िल्में तो बराबर चर्चा में रहती ही रहीं, वे स्वयं भी खबरों रहते रहे हैं। यह बात गौर करने की है कि सत्यजीत राय अगर स्वयं भी खबरों में रहते थे, तो इसका कारण उनकी फ़िल्में तो हैं हीं, उनका और भी बहुत सारा ऐसा काम है, जो फ़िल्म जगत से जुड़ा हुआ भी है और उससे अलग भी। यानी उनका व्यक्तित्व केवल फ़िल्मकार का नहीं है, वह उससे कहीं बड़ा है। यह तो एक संयोग ही है कि उनका कद बहुत लम्बा था, लेकिन स्वयं उनके काम का कद भी उतना ही ऊँचा है। सत्यजीत राय फ़िल्मकार थे। लेखक थे। कलाकार थे। फ़िल्म समीक्षक थे। और बच्चों की एक पत्रिका के सम्पादक भी थे।

1955 में सत्यजीत राय ने "पाथेर पांचाली" पूरी की थी और जाहिर है कि उनके फ़िल्म जीवन को भी अब चालीस बरस से ज्यादा हो गए थे। इन चालीस वर्षों में सत्यजीत राय ने इतना काम किया है कि वह किसी को भी अचरज में डाल सकता है। 1955 के बाद से अब तक उन्होंने बीच के कुछ वर्षों को छोड़कर लगभग हर बरस एक फ़िल्म बनाई है और कुछ वर्षों के खाते में तो एक से अधिक फ़िल्में बनाई है।

उन्होंने ज्यादातर फ़िल्मों की पटकथा स्वयं लिखी है। संगीत भी स्वयं दिया है और अपनी हर फ़िल्म के लिए ढेरों रेखांकन किए है। जीवनानंद दास जैसे कवि के संग्रह से लेकर ढेरों बांग्ला पुस्तकों के आवरण बनाए हैं। अपनी फ़िल्मों के पोस्टर डिजाइन किए हैं। इसके अलावा किशोरों और बच्चों के लिए लिखा है। बच्चों की पत्रिका संदेश का सम्पादन किया है। फ़िल्मों पर लिखा है। देश-विदेश की यात्राएं की हैं। पत्र-व्यवहार किया है और बांग्ला और विश्व साहित्य का अवगाहन किया है। अपनी फ़िल्मों के लिए अभिनेता और अभिनेत्री ढूँढे है। एक-एक चीज के लिए परेशान हुए है और बहुत सारी ऑउटडोर शूटिंग की है, जो बंगाल से राजस्थान तक फैली रही है। सत्यजीत राय का काम ज्यादा तो है ही वह काम इतना उम्दा भी है कि अचरज दुगना हो जाता है। उनके जीवन के बारे में सोचकर बराबर यही लगता है जैसे उन्होंने उसका एक भी क्षण व्यर्थ नहीं गँवाया हो।

भारतीय जीवन और समाज के बारे में यह बात बारबार कही जाती है कि उसकी परिस्थितियाँ बहुत कुंठित करने वाली हैं। वे बड़े से बड़े व्यक्ति को अपने चंगुल में फँसाकर उसका कद छोटा कर सकती हैं। यहाँ तक कि उसे तबाह कर सकती हैं। लेकिन सत्यजीत राय इन्हीं परिस्थितियों में अपराजेय खड़े रहे, तो निश्चय ही इसके कारण उनके व्यक्तित्व में हैं। और उस संकल्प और जिजीविषा में तो है ही, जो विपरीत परिस्थितियों में भी रचना के प्रति अडिग आस्था के कारण उपजते हैं।

बांग्ला में बाल साहित्य के अद्‌भुत जनक पिता सुकुमार राय को सत्यजीत राय ने बहुत छुटपन में ही खो दिया था। बड़े वे अपने मामा के घर में हुए। लालन-पालन का श्रेय मुख्यतः उनकी माँ को ही जाता है। सत्यजीत राय अपने बचपन की कहानी बांग्ला में "जाखुन छोटो छिलाम" में स्वयं लिख चुके हैं। यह स्वयं उनके बचपन और परिवार का ही एक बहुत अच्छा दस्तावेज ही नहीं है, इस सदी के शुरूआती वर्षों के कलकत्ता का भी वह एक संवेदनशील इतिहास है। बचपन के बाद की कथा स्वयं सत्यजीत राय ने तो अभी तक नहीं लिखी। अंग्रेजी में उनकी दो चर्चित जीवनियाँ आ चुकी हैं एक तो "पोर्ट्रेट ऑफ ए डायरेक्टर" (मेरी सेटन) है और दूसरी है "द इनर आई" (एंड्रज़ राबिंसन)। इनके अलावा विविध लेखों में देशी-विदेशी फ़िल्म समीक्षकों और अन्य व्यक्तियों ने उनके जीवन के कई प्रसंग लिपिबद्ध किए हैं। सत्यजीत राय की जीवनी कथा वैसे तो बहुत सीधी चलने वाली

रही है। कलकत्ता में शुरू के वर्ष, फिर युवावस्था के कुछ वर्ष शांति निकेतन में, और फिर शांति निकेतन के बाद कई वर्ष विज्ञापन एजेंसी में। देखें तो इस घटनाक्रम को संक्षेप में ही समेट लिया जा सकता है। पर इस सीधे घटनाक्रम से भी बीसियों व्यक्ति और प्रसंग जुड़े हुए हैं। मसलन स्वयं रवीन्द्रनाथ ठाकुर और नन्दलाल बसु और विनोद बिहारी मुखर्जी जैसे व्यक्तियों का सान्निध्य उन्हें शांति निकेतन में मिला। विनोद बिहारी मुखर्जी उनके कला गुरू थे, जिन पर बाद में एक फ़िल्म बनाकर सत्यजीत राय ने उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। विज्ञापन एजेंसी के बाद के बरस पूरी तरह फ़िल्मों और लेखन में डूब जाने के वर्ष हैं और विज्ञापन एजेंसी में काम करते हुए भी बहुत सारा समय तो सत्यजीत राय का फ़िल्म-चिंता में ही बीतता था। विज्ञापन एजेंसी में, जो वर्ष उन्होंने कलकत्ता के अलावा लंदन में बिताए, उन वर्षों में भी वे लगातार विश्व सिनेमा की अच्छी फ़िल्में देख रहे थे। फ़िल्मकारों के जीवन में रुचि ले रहे थे और फ़िल्म बनाने की आकांक्षा तो पाल ही रहे थे। जब 1948 में कलकत्ता फ़िल्म सोसायटी का गठन हो रहा था, तो उन्होंने अपने मित्र चिदानंद दासगुप्त से एक अनौपचारिक बातचीत में कहा था कि "मैं एक दिन महान फ़िल्म बनाऊँगा।"

यह संकल्प सत्यजीत राय ने 1955 की अपनी पहली फ़िल्म "पाथेर पांचाली" में ही पूरा कर दिखाया। साधनों के अभाव में यह फ़िल्म किस तरह से पूरी हुई यह जग जाहिर है। इसे बनाने के लिए सत्यजीत राय को अपनी पत्नी के गहने गिरवी रखने पड़े थे। "पाथेर पांचाली" इसी नाम के जिस उपन्यास पर आधारित है, वह विभूति भूषण बंद्योपाध्याय ने 1928 में लिखा था। जब यह फ़िल्म बनकर तैयार हुई जब तक "पाथेर पांचाली" उपन्यास बांग्ला में क्लॉसिक का दर्जा पा चुका था। इस फ़िल्म ने दुनिया भर के दर्शकों को गहरे उद्वेलित किया था। मानवीय दुःखों और हर्ष-राग की इस करूण कथा में इतना कुछ छिपा हुआ है कि चाहे उपन्यास हो या फ़िल्म, उन्हें जितनी बार भी पढ़े या देखें, कुछ नई चीजें हाथ लगती हैं। फ़िल्म कुछ इतनी अचूक और अनायास शैली में बनाई गई है कि लगता ही नहीं कि हम फ़िल्म देख रहे हैं। एक फ़िल्म जीवन को जीवन के ही फ्रेम में किस तरह दिखा सकती है, "पाथेर पांचाली" इसका बहुत बड़ा उदाहरण है। आगे चलकर सत्यजीत राय ने फ़िल्म तकनीक के बारे में जो बात कही थी वह इस फ़िल्म पर सबसे अधिक लागू होती है। सत्यजीत राय ने कहा था, "अच्छी तकनीक वह है जिसका इस्तेमाल दिखाई न पड़े।" "पाथेर पांचाली" के बाद इस फ़िल्म त्रयी में "अपराजितो" और "अपूर संसार" भी जुड़ीं। ये "पाथेर पांचाली" जितनी महान थीं या नहीं, इस पर चर्चाएं भी हुई, लेकिन इन फ़िल्मों पर भी राय की विशेष शैली की गहरी छाप दिखाई देती है।

"पाथेर पांचाली" की तरह ही बाद में जिन फ़िल्मों की चर्चा हुई, उनमें "देवी"/"चारूलता"/और "जलसाघर"/जैसी फ़िल्में आती है। यहाँ हम यह भी याद कर सकते

> ***पाथेर पांचाली फ़िल्म ने दुनिया भर के दर्शकों को गहरे उद्वेलित किया था। मानवीय-दुःखों और हर्ष-राग की इस करुण-कथा में इतना कुछ छिपा हुआ कि हर बात देखने पर नई चीजें हाथ लगती हैं। एक फ़िल्म जीवन को जीवन के ही फ्रेम में किस तरह दिखा सकती है, "पाथेर पांचाली" इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।***

हैं कि राय की फ़िल्मों का रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ भी एक गहरा सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। चारूलता रवीन्द्रनाथ ठाकुर की ही एक कहानी पर आधारित है। बहुत उदात्त माने जाने वाले रवीन्द्रनाथ ठाकुर के चरित्रों की सूक्ष्मताओं को सत्यजीत राय ने "तीन कन्या" या "चारूलता" में जिस तरह उभारा उस तरह से उनकी व्याख्या सम्भवतः रवीन्द्र साहित्य के मर्मज्ञ भी नहीं कर पाए। यहीं यह भी याद कर सकते हैं कि रवीन्द्र के रचना संसार से सत्यजीत राय का ही नहीं, उन्हीं के समकालीन ऋत्विक घटक का भी उतना ही गहरा सम्बन्ध रहा था। दोनों ही व्यक्ति बांग्ला भाषा के प्रति एक गहरे प्रेम को समझे बिना शायद हम इन दोनों के कृतित्व को भी अच्छी तरह नहीं समझ सकते।

सत्यजीत राय ने यह बात कई बार दोहराई है कि "मैं चाह कर भी किसी अन्य भाषा में फ़िल्में बनाने से इसलिए कतराता रहा हूँ कि मुझे अच्छी तरह आती ही केवल बांग्ला है। हिन्दी में उन्होंने प्रेमचन्द की दो कहानियों पर "सद्गति" और "शतरंज के खिलाड़ी" फ़िल्में बनाई जरूर हैं, पर साथ ही यह भी कहते रहे हैं कि मैं हिन्दी में भी सहज नहीं हो पाता। इसे एक रचनाकार की ईमानदारी ही मानेंगे। यों तो फ़िल्म का माध्यम सार्वभौमिक माना जाता है और उसकी भाषा के लिए किसी शख्स का भाषा से जुड़ा रहना जरूरी नहीं है, लेकिन सत्यजीत राय की फ़िल्में यह भी प्रमाणित करती हैं कि एक भाषा और संस्कृति की जड़ों में अन्दर तक पैठी हुई फ़िल्में दुनिया भर का ध्यान अपनी ओर खींच सकती हैं। उनकी जो दो प्रमुख जीवनियाँ हैं वे दोनों ही विदेशियों की लिखी हुई हैं। ये दोनों ही जीवनियाँ बताती हैं कि उनके जीवनीकारों ने किस तरह बांग्ला भाषा और संस्कृति से भी परिचित होने की कोशिश की। दरअसल इस कोशिश के बिना उनकी कोई जीवन-कथा लिखी भी कैसे जा सकती है। उन पर अंग्रेजी और पश्चिमी प्रभाव की चर्चा भी बहुत हुई है, जो निस्संदेह उनमें है भी, पर उसका रूप और स्तर भी बराबर रचनात्मक रहा है। उसका उन्होंने कोई दिखावटी इस्तेमाल कभी नहीं किया। स्वयं पश्चिमी संगीत में उनकी गहरी दिलचस्पी, उनके समावेशी, बहुमुखी व्यक्तित्व का ही प्रमाण है। वैसे आप देखें तो वे सिर से बंगाली और भारतीय हैं।

सत्यजीत राय की फ़िल्मों में एक अभिनेता लगभग शुरु से लेकर अब तक उनके साथ चला आ रहा है। वे हैं सौमित्र चटर्जी। सौमित्र के बिना राय की फ़िल्में कैसी होतीं, यह अटकल का विषय है। स्वयं सौमित्र क्या होते यह भी उतनी ही बड़ी अटकल का विषय है। फ़िल्म माध्यम निश्चय ही एक समूह का कार्य भी है पर अगर उसमें किसी निदेशक के अचूक हस्ताक्षर दिखाई पड़ते हैं, तो यह भी मानना पड़ता है कि बहुत दूर तक कोई भी फ़िल्म फ़िल्मकार की ही रचना होती है। यह बात सत्यजीत राय, त्रुफो गोदार्द/तारकोव्स्की/फेलिनी/कुरूसोवा जैसे सभी फ़िल्मकारों के लिए सही है।

सत्यजीत राय ने फ़िल्म भाषा के साथ मुखर प्रयोग भले न किए हों, जैसे गोदार्द या कुरूसोवा ने किए। उनकी फ़िल्म भाषा प्रयोग-रहित नहीं है। दरअसल वह फ़िल्म भाषा के क्लैसिक रूप के निकट अधिक पड़ती है, जिसमें यथार्थपरक अंकन शैली में कोई चीज इस तरह कही जाती है कि जस-का-तस फ़िल्मांकित कर देने से इस

शैली का कुछ लेना-देना नहीं है। यह तो उस यथार्थपरक अंकन को लेकर चलती है जिसमें कल्पनाशीलता, सम्वेदना, व्यक्तियों और वस्तुओं की गहरी समझ की जरूरत होती है। अचरज नहीं कि कुरूसोवा जैसे प्रयोगशील फ़िल्मकार सत्यजीत राय के गहरे प्रशंसकों और मित्रों में से है।

सत्यजीत राय की फ़िल्मों में एक-एक चीज, एक-एक विवरण महत्वपूर्ण है। वह मेज-कुर्सी हो/बरामदा हो/खिड़की हो/सीढ़ी हो या ट्रेन लाइन हो/या फिर स्वयं कोई व्यक्ति और चरित्र हो। हम पाते हैं कि सत्यजीत राय हर चीज पर ध्यान देते हैं। यानी उनकी फ़िल्में एक गहरे लगाव और परिश्रम से तो बनी ही हैं, वे हजारहा चीजों का संपुजन भी है। "चारूलता" में चारू जब अपने घर की ऊपरी मंजिल की खिड़की से, दूरबीन लेकर गली के दृश्य देखती है, तो हम पाते हैं कि चारू के भीतर और उस खिड़की से गली तक घटित हो रही चीजों पर सत्यजीत राय की अचूक नजर है। उस वक्त तो "चारूलता" दूरबीन से यह सारे दृश्य देख रही है। पर कह सकते हैं कि सत्यजीत राय की आँखें स्वयं ही एक ऐसी दूरबीन है, जिसकी परिधि में छोटी-बड़ी सभी चीजें अपने तमाम विवरणों के साथ आ जाती हैं। सत्यजीत राय की फ़िल्मों के दर्शकों में से प्रायः सभी को कुछ न कुछ ऐसे दृश्य जरूर याद होंगे, जो अपने विवरणों और प्रसंगों के कारण उनके मन पर गहरी छाप छोड़ गए होंगे।

चित्रकार एम.एफ. हुसेन फ़िल्मकार सत्यजीत राय को चित्रांकित करते हुए

अब जो पीढ़ी पचास के आसपास है, वह तो बड़ी ही सत्यजीत राय की फ़िल्मों के साथ हुई है। जब "पाथेर पांचाली" रिलीज हुई थी उस वक्त मैं पन्द्रह-सोलह का था। उन दिनों सत्यजीत राय कलकत्ता में न्यू मार्किट की हमारी पैतृक दुकान "कालीचरण एण्ड कम्पनी" से कुछ विदेशी पत्र-पत्रिका लेने के लिए आया करते थे। उन्हें तब पहली बार वहीं देखा था। "पाथेर पांचाली" के कारण उनकी तस्वीरें आदि अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं में देख चुका था। सत्यजीत राय को पहली बार देखने की स्मृति अभी तक ताजा है क्योंकि उनका व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा है कि जो उनके कामकाज के बारें में न भी जानते हों वह भी ठिठक कर उन्हें लगा सकते हैं। एक धीर-गम्भीर व्यक्तित्व उनका रहा है। वह किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकते थे।

सत्यजीत राय की फ़िल्मों की इसे मैं एक बड़ी खूबी मानता हूँ कि जितनी आप उन पर चर्चा करते हैं उससे अधिक उनमें आप बारबार उतरना चाहते हैं। उनकी फ़िल्में मानो व्याख्या को बरजती हैं, क्योंकि उनमें जो कुछ है वह उस तरह कहा जा चुका है कि उसके अतिरिक्त कुछ और कहना एक व्यर्थ का घटाटोप लगने लग सकता है। किसी भी रचनाकार के लिए इससे बड़ी सफलता क्या हो सकती है कि हम उसकी रचना के सामने गूंगे भी न हो जाएं, लेकिन बड़बोले होने से स्वयं हिचकें। जैसा सत्यजीत राय का व्यक्तित्व है। दरअसल वैसी ही उनकी फ़िल्में हैं। वे एकाधिक बार यह कह चुके हैं कि मैं एक "प्राइवेट परसन" हूँ और सार्वजनिक जीवन में भाग लेने से बराबर कतराता हूँ, लेकिन यह भी एक सच्चाई है कि जब जरूरत पड़ी है सत्यजीत राय ने अपनी बात सार्वजनिक मंचों से भी कही है। रैलियों में भी भाग लिया है। किसी उद्देश्य के लिए अपील जारी की है। दरअसल वे मानवीय न्याय के पक्ष में खड़े होने वाले ऐसे रचनाकार भी हैं, जो भले अपने कामकाज में ही अधिक डूबा रहता हो पर जो बाहर की सुधि भी बराबर रखता है। उन्होंने एक जगह यह भी कहा है कि " मैं तो ठेठ मध्यमवर्गीय व्यक्ति हूँ और जीवन के बहुत से रूपों के बारे में मुझे पता नहीं है। जिन चीजों के बारे में मुझे जानकारी नहीं है या अनुभव नहीं है उसे मैं दूसरों की सहायता से प्राप्त करने की चेष्टा करता हूँ।" यह चेष्टा उनके हर कामकाज में बेहिचक दिखाई पड़ती है। "पाथेर पांचाली" के लिए जब अपू का चरित्र अभिनीत करने के लिए किसी लड़के की खोज हो रही थी तो सत्यजीत राय ने अपने सभी मित्रों और सम्बन्धियों को मानो इस काम में लगा दिया था।

सत्यजीत राय को अपने अब तक के जीवन में न जाने कितने पुरस्कार और सम्मान मिले हैं, जिनमें से विशेष "ऑस्कर" जैसा सम्मान भी शामिल है। पुरस्कारों और सम्मानों की यह स्वीकृति, उन्हें आनन्दित भले करती रही हो, पर उनसे लगभग अप्रभावित वे अपने कामकाज में ही डूबे रहना पसन्द करते रहे थे।

('जनसत्ता' में प्रकाशित प्रयाग शुक्ल के आलेख के प्रमुख अंश/साभार)

मध्यप्रदेश

अनुसूचित जाति-जनजाति, कमजोर तबकों और किसानों के लिए

नए फैसले

''प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू होने के बाद से शांति और सद्भाव की पुनर्स्थापना तथा दंगा-पीड़ितों के समुचित पुनर्वास का काम सर्वोच्च प्राथमिकता पर पूरा किया गया और अब कमजोर वर्गों विशेष रूप से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और किसानों की तरक्की और बेहतरी की नई शुरूआत हमने की है।''

- कुंवर महमूद अली खाँ
राज्यपाल

- किसानों को शोषण और परेशानियों से मुक्ति दिलाने के लिए धान के निर्यात पर लगी लेव्ही समाप्त। वाजिब कीमत भी मिलेगी।
- किसानों को सिंचाई और खेती के दूसरे कामों के लिए प्रतिदिन 16 घन्टे बिजली सुनिश्चित।
- 7200 गांवों की कटी हुई सड़क बत्ती फिर से चालू।
- सिंचाई कुओं को 1500 रुपये प्रति खम्बे की दर से बिजली कनेक्शन देने की प्रणाली समाप्त। किसानों के कुओं तक अब बिजली कनेक्शन देने के लिए सरकार द्वारा 12 हजार रुपए का अनुदान। शेष खर्च विद्युत मण्डल वहन करेगा।
- किसानों को खेती के लिए पर्याप्त ऋण उपलब्ध कराने के लिए अल्पकालीन साख व्यवस्था के तहत 500 करोड़ रुपये की व्यवस्था।
- इसी प्रकार दीर्घकालीन साख सीमा 55 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 65 करोड़ रुपये की जायेगी।
- पानी खेतों में पहुंचाने के लिए सिंचाई नालियां सरकारी खर्च पर बनाने का निर्णय।
- जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत जल संरक्षण योजनाओं को प्राथमिकता।
- बारहमासी सिंचाई वाली छह से आठ एकड़ जोत वाले किसानों या उनके समूहों को ट्रेक्टर खरीदने के लिए 30 हजार रुपये तक का सरकारी अनुदान।
- ट्रेक्टर का ऋण अब नौ की जगह बारह साल में लौटाने का प्रावधान।
- पंचायतों को चार करोड़ रुपये का राजस्व अनुदान।
- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए शासकीय सेवा में आरक्षित पदों पर भर्ती 30 जून तक पूरी करने के निर्देश। इन पदों की भर्ती को कनिष्ठ सेवा भर्ती बोर्ड से छूट।
- आदिवासियों को शराब ठेकेदारों के शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए आदिवासी इलाकों में शराब की दुकानों की नीलामी बंद। अब देशी शराब की इन दुकानों का संचालन सरकार करेगी।
- अपर्याप्त वर्षा के कारण प्रभावित 24 जिलों में पीने के पानी के इंतजाम को सर्वोच्च प्राथमिकता। इसके लिए एक व्यापक कार्ययोजना पर अमल शुरू, 10 करोड़ रुपये मंजूर।
- दिसम्बर माह में हुए दंगों के बाद साम्प्रदायिक सौहार्द और आपसी भाईचारे का माहौल फिर से कायम करने के लिए विशेष पहल।
- भोपाल और उज्जैन के दंगों की जांच के लिए न्यायिक आयोग गठित। आयोग द्वारा जांच का काम शुरू।
- दंगों में पीड़ितों के पुनर्वास के लिए युद्धस्तर पर कार्रवाई।
- मृत व्यक्ति के परिवार को दी जाने वाली सहायता राशि अब 50 हजार रुपये से बढ़ाकर दो लाख रुपये। गंभीर चोट के लिये सहायता राशि एक हजार रुपये से बढ़ाकर 10 हजार रुपये।
- घरेलू सामान की क्षति और जीविकोपार्जन के साधन की क्षति पर प्रत्येक के लिए राहत राशि 2000 रुपये से बढ़ाकर 5000 रु.।
- अब तक कुल छह करोड़ रुपये की राहत राशि वितरित।
- दंगे में मृत व्यक्ति के परिवार के एक सदस्य को सरकारी नौकरी में अनुकम्पा नियुक्ति। दंगे में विधवा हुईं निराश्रित महिलाओं को आजीवन 5 सौ रुपये प्रतिमाह पेंशन।

जनसंपर्क/म.प्र. माध्यम/93

सत्यजीत राय एक : रूप अनेक

● रंजना नायक

सत्यजीत राय को उनकी सत्तरवीं वर्षगाँठ की बधाई देने उनके पुराने दोस्त मशहूर चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन कलकत्ता पहुँचे थे। राय ने उन्हें देखते ही आगे बढ़कर बाँहों में भर लिया। हुसैन ने वहीं बैठकर राय का एक चित्र बनाया। चित्र पूरा हुआ था कि राय बोले, "अब मेरी बारी"। और फिर उन्होंने हुसैन की तस्वीर बना डाली। हुसैन उस दिन की याद करते हुए कहते हैं, "राय की बनाई तस्वीर मेरी बनाई तस्वीर से बढ़कर है। राय ने तस्वीर फटाफट बनाई, पर उनकी रेखाओं में ज्यादा गहराई और दृढ़ता है।

दरअसल सत्यजीत राय का फ़िल्मकार रूप ऐसी बुलंदियाँ तक पहुँचा कि उसकी चमक के आगे राय की महान प्रतिमा के दूसरे पहलू बहुत कुछ अनदेखे रह गए। कुशल चित्रकार, संगीतकार और लेखक के रूप में उनकी कला कम चर्चित हुई और उस पर लिखा भी बहुत कम गया।

राय को कला की विरासत पारिवारिक पृष्ठभूमि से मिली थी। उनके पितामह उपेन्द्र किशोर चौधरी, रवीन्द्र नाथ के मित्र और समकालीन थे। वे बंगाल में मुद्रण कला और बंगला बाल साहित्य के अग्रदूत थे। जिन्होंने छपाई मशीनों में सुधार के लिए आविष्कार भी किए। पिता सुकुमार राय बंगला बाल साहित्य में उटपटांग कविताओं के जन्मदाता थे। उनकी किताब "आबोल ताबोल" के नाम से बंगला बाल साहित्य की निधि है। मात्र चौबीस वर्ष की आयु में निधन न हो जाता, तो उनकी प्रतिमा के और भी पक्ष सामने आते। इस विरासत के साथ ही सत्यजीत राय को मिला रवीन्द्रनाथ और बंगाल की कितनी ही अन्य प्रतिभाओं का सान्निध्य। नन्दलाल बोस जैसे महान कला गुरू के हाथों उनकी कला प्रतिभा संवारी गई। फ़िल्में बनाने से पहले उन्होंने रेखांकन और पुस्तक डिजाइनिंग में महारत हासिल कर ही थी।

संगीत के प्रति राय की गहन रुचि शुरू से थी। किशोर अवस्था में पहुँचने तक वे पश्चिमी संगीत के दीवाने हो गए थे। मोजार्ट, बीठोवेन और बाख जैसे कालजयी संगीतकारों की रचनाएं सुनने के शौक ने उन्हें संगीत की समझ दी। उनकी किशोर अवस्था के दिनों में न्यू थियेटर्स की फ़िल्मो की धूम थी। कलकत्ता तब भारतीय सिनेमा की राजधानी था। इस वातावरण में राय जैसे कला प्रेमी मस्तिष्क का फ़िल्मों की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था। उन्हें फ़िल्म देखने का शौक हुआ और ऐसा बढ़ा कि वे भारतीय और विदेशी फ़िल्में लगातार देखने लगे।

संगीत/बाल/साहित्य/विज्ञान/कथा लेखन और ग्रेफिक्स में सत्यजीत राय का योगदान इतना प्रचुर और व्यापक हैं कि उसका समुचित आकलन करने के लिए अनेक ग्रंथ लिखे जाएं, तो भी शायद पूरा न हो सकेगा।

राय की पहचान सबसे पहले ग्राफिक कलाकार के रुप मे बनी। शांति निकेतन से लौटकर उन्होंने एक ओर विज्ञापन एजेंसी में कलाकार के रुप में पिचासी रुपए मासिक पर नौकरी शुरू की। दूसरी ओर अतिरिक्त समय में पुस्तकों के मुखपृष्ठ बनाने का काम शुरु किया। मुद्रण कला से पुराने परिचय ने उन्हें छपाई के टाइपों का नया रूप देने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने बांग्ला वर्णमाला के परंपरागत अक्षरों को एक नया सौष्ठव दिया। "टाइप फेस" से उनका रिश्ता आजीवन जुड़ा रहा। अभी कुछ वर्ष पहले एक अमेरिकी प्रतिष्ठान के लिए उन्होंने नए किस्म के अँग्रेजी टाइप बनाए, जो "राय रोमन" और "राय बिजार" के नामों से प्रसिद्ध हुए हैं। पुस्तकों के मुख-पृष्ठ बनाने के काम में वे एक नई क्रांति के जनक रहे। उन्होंने इस काम के घिसे-पिटे मुहावरों से हटकर बिल्कुल नए ढंग के जैकिट बनाए, जिनमें रंगों और रेखाओं का सुरूचिपूर्ण तालमेल था और जो पुस्तक की सम्पूर्ण विषयवस्तु को प्रतीकों की सहायता से उजागर करते थे। बंगाल के प्रकाशन जगत में इस समय सर्वश्रेष्ठ डिजाइनर माने जाने वाले पूर्णेंदु पत्री का कहना है कि बंगाली बुक डिजाइनिंग में राय का वही स्थान है, जो आधुनिक विज्ञान में न्यूटन का। इस कार्य में राय के कौशल का एक उल्लेखनीय नमूना है मशहूर शिकारी जिम कार्बेट की पुस्तक "मैन ईटर्स ऑफ कुमाऊ" की राय के हाथों बनी जैकिट। उसमें अगले और पिछले दोनों ही कवर में पट्टियाँ हैं जैसी शेर के शरीर पर होती हैं। सामने के कवर में पीली पट्टियों के बीच छेद का एक निशान है जो यह संकेत देता है कि गोली वहाँ से शरीर में घुसी है। इस सफेद निशान में ही लेखक और प्रकाशक के नाम दिए गए हैं। पीछे के कवर में पट्टियों के बीच सफेद निशान जरा बड़ा है - यह दर्शाने के लिए कि गोली वहाँ से निकली है। कवि जीवनानंद दास के कविता संग्रहों, रामकृष्ण परमहंस की जीवनी और अन्य कई पुस्तकों के लिए उनकी बनाई जैकिटें कला जगत की स्थाई निधि हैं। सिगनैट प्रेस की किताबों के लिए राय ने अनगिनत कवर बनाए और उनकी बच्चों की पुस्तकों के लिए चित्रांकन किया। इनमें उनके बनाए बर्नार्ड शॉ, यामिनी राय, स्वामी विवेकानन्द के चित्र उन्होंने उनकी ही शैली में बनाया जबकि पण्डित शिवनाथ शास्त्री का चित्र उन्नीसवीं सदी के काष्ठ शिल्प की शैली में। उन्होंने चार्ली चैपलिन, डब्ल्यूडी ग्रिफिथ और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के चित्र भी बनाए और फ़िल्मों की पटकथा के लिए तो रेखांकन वे हमेशा ही करते रहे।

> ***फ़िल्मकार का पहलू अधिक चर्चित और लोकप्रिय हो जाने से सत्यजीत रॉय की चित्रकारी/डिजायनिंग/ ग्राफिक्स/संगीतकला की अद्भूत समझ दब-सी गई। इन पर आज अधिक शोध की आवश्यकता है।***

अपनी फ़िल्म "अपूर संसार" में उन्हें "अपू" की भूमिका के लिए सही चेहरे की तलाश थी। उन्हें जैसा चेहरा चाहिए था, उसके उन्होंने दो चित्र बनाए - एक में सामने देख रहा चेहरा और दूसरे में चेहरे का पार्श्व। चित्रों की प्रतिलिपियाँ उन्होंने अपने सहायकों को दीं। इस तरह फ़िल्म के नायक की भूमिका के लिए सौमित्र चटर्जी की खोज हुई। इससे पहले "पाथेर पांचाली" बनाते समय उन्हें बेरल गाँव में एक ऐसा आदमी दिखा जो हलवाई की भूमिका के लिए उपयुक्त लगा। लेकिन राय को न उसका नाम मालूम था न पता ठिकाना। शूटिंग के समय अचानक उन्हें कुछ सूझा और उस आदमी का चित्र बनाकर उन्होंने गाँव वालों को दे दिया। कुछ ही मिनटों

में गाँव वाले उस आदमी को ले आए।

राय अपनी फ़िल्मों की ही तरह चित्रों में भी ब्यौरों पर बहुत ध्यान देते थे जो कहानी में शब्दों में कहा गया है चित्र उससे आगे की बात कहते हैं। यही उनकी फ़िल्म कला का सार भी है। राय की पटकथाएं शब्दों में नहीं, चित्रकथा के रूप में होती हैं। वे सेट्स, परिधानों, चरित्रों वगैरह के साथ ही विज्ञापन के लिए आवश्यक चित्र भी पहले बना लेते थे। फ़िल्मों की विज्ञापन सामग्री को भी उन्होंने एकदम नया मुहावरा दिया।

सत्यजीत राय द्वारा रेखांकित दो पुस्तकों के आवरण

राय भारतीय उपमहाद्वीप में शायद ऐसे अकेले फ़िल्म निर्देशक थे, जो पिछले तीन दशकों से अपनी हर फ़िल्म के लिए संगीत भी खुद ही तैयार कर रहे थे। शुरू-शुरू में उन्होंने अपनी चार फ़िल्मों में संगीत के लिए पण्डित रविशंकर को लिया और विलायत खाँ व अली अकबर से भी एक-एक फ़िल्म का संगीत तैयार कराया। फिर "तीन कन्या" से अपनी फ़िल्मों का संगीत स्वयं तैयार करने का सिलसिला शुरू किया जो उनकी अंतिम फ़िल्म "आगंतुक" तक बराबर चलता रहा। पूर्णेंदु पत्री बताते हैं कि "तीन कन्या" के निर्माण के समय जब वे दोपहर में एक टेम्पल रोड स्थित राय के निवास स्थान पर पहुँचे तो पाया कि राय मुँह से सीटी बजाते हुए एक धुन निकाल रहे हैं और आलोक डे भारतीय पद्धति से उसकी स्वर लिपि लिख रहे हैं। आलोक डे बाद में राय की हर फ़िल्म में सहायक संगीतकार बने, लेकिन उन्हें स्वरलिपि लिखने का काम फिर नहीं पड़ा। राय अपने प्यानों पर धुन बनाते और उसकी स्वरलिपि स्वयं लिखते। पश्चिमी और भारतीय दोनों ही तरह की धुनों की। भारतीय संगीत की राग-रागनियों की राय ने पूरी जानकारी प्राप्त की और उन्हें गाने-बजाने का अभ्यास भी किया। कलकत्ता में शास्त्रीय संगीत के लगभग हर आयोजन में राय श्रोताओं की अगली कतार में नजर आते थे। उनकी पटकथाओं में संगीत से तालमेल का विशेष ध्यान रखा जाता। राय को शिकायत थी कि, "भारतीय निर्देशकों में फ़िल्म के ढाँचे के संगीत से संबंधित पहलू को नजरअन्दाज कर जाने की प्रवृति है।"

अपनी फ़िल्मों का संगीत खुद तैयार करने की जरूरत के बारे में राय ने अपनी पुस्तक "अवर फ़िल्म, देयर फ़िल्म्स" में लिखा है कि, "अब पेशेवर संगीतकारों को अपने साथ न लेने का कारण है यह कि मुझे स्वयं संगीत से संबंधित बातें सूझती हैं और ये संगीतकार दूसरे की सलाह मानना पसंद नहीं करते। संगीत के लिए मुझे सबसे ज्यादा एकाग्रता की जरूरत होती है पर अपने मन की धुन फ़िल्म में देखकर सारी थकान मिट जाती है। उस सही धुन का आनन्द ही कुछ और है जो न सिर्फ सुनने में भली लगे, बल्कि दृश्य के लिए भी पूरी तरह अनुकूल हो।"

राय के अनुसार पेशेवर संगीतकार फ़िल्म की सीमित जरूरतों से कहीं आगे बढ़कर हावी हो जाते हैं। उदाहरण के लिए - जाने-माने संगीतकारों को किसी राग विशेष से ज्यादा लगाव होता है और वे जरूरत न होने पर भी उसे फ़िल्म में थोप देते हैं। जबकि निर्देशक के दिमाग में पूरी फ़िल्म का खाका होता है। राय की फ़िल्मों में उनका संगीत ठीक दृश्य की मांग के अनुसार ही रहा और कभी शोर मे तब्दील नहीं हुआ। अनावश्यक गाने नहीं ठूँसे गए। "गोपी गाएन बाघा बाएन" में भूतों के नाच के

समय का उनका संगीत इस बात का परिचायक है कि भारत के शास्त्रीय, सुगम और लोक संगीत के साथ-साथ संगीत के अन्य रूपों जैसे नीग्रो, यूनानी, पंजाबी संगीत और चा-चा-चा वगैरह पर भी राय की पकड़ कितनी गहरी थी। वे अक्सर मुँह से सीटी बजाकर या गुनगुनाते हुए ही अपनी फ़िल्म के लिए उपयुक्त संगीत-रचना तक पहुँच जाते थे।

बाल साहित्य की रचना के क्षेत्र में उन्होंने अपने पिता और पितामह से चली आ रही परम्परा को आगे बढ़ाया। पितामह ने बच्चों के लिए "संदेश" नामक पत्रिका निकाली थी जो उनके पिता भी निकालते रहे। बाद में पत्रिका बन्द हो गई। सत्यजीत राय ने उसे पुनर्जीवित किया और नया रूप दिया। बच्चों के लिए उन्होंने कितनी ही कहानियाँ ओर उपन्यास लिखे। बाल पत्रिकाओं में भी वे लिखते रहे और उनके लिए चित्रांकन करते रहे। फ़िल्म और अन्य क्षेत्रों में बेहद व्यस्तता के बावजूद। उनकी बाल कथाओं के दो चरित्रों ने बच्चों के बीच अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की है। जासूस प्रदोष मित्तर उर्फ फेलूदा और महान वैज्ञानिक प्रोफेसर शंकु। फेलूदा को यात्रा करने का शौक है और दुनिया के हर विषय की जानकारी है। अपनी जानकारी में कुछ नया जोड़ने के लिए वे हमेशा बेचैन रहते हैं। इस चरित्र में राय ने कमोबेश अपने आपको ही व्यक्त करने की कोशिश की है।

विज्ञान-कथा लेखन में तो सत्यजीत राय का योगदान सचमुच अनूठा है और वे भारत में इस विधा की नींव डालने वालों में से हैं। कई वर्ष पहले हॉलीवुड के एक बड़े निर्माता ने अपनी एक फ़िल्म का निर्देशन करने के लिए राय से पेशकश की थी। राय ने बात मान ली थी। फ़िल्म विज्ञान कथा पर आधारित थी, जो राय ने लिखी थी। बाद में राय और निर्माता के बीच मतभेद हो जाने के कारण "दि एलियन" नाम की यह फ़िल्म बन नहीं पाई। आगे चलकर अमेरिका के स्पील बर्ग लुकास फ़िल्म्स ने कम से कम दो ऐसी फ़िल्में बनाई जिनकी कथावस्तु "दि एलियन" से ली गई थी। "क्लोज एनकाउंटर ऑफ दि थर्ड काइंड" और "ई टी" नाम की ये फ़िल्में सिर्फ इसलिए बन सकीं कि राय के द्वारा लिखी गई "दि एलियन" की पटकथा की साइक्लोस्टाइल प्रति अमेरिका में उपलब्ध थी। राय से जब आर्थर क्लॉर्क ने कहा कि वे "कॉपीराइट" का मुकदमा करें तो उनका कहना था कि उन्हें व्यक्तिगत शिकायत के अलावा विज्ञान और अंतरिक्ष विज्ञान की फंतासियों के निर्माताओं से कोई गिला नहीं है। इस विधा में अनन्त सम्भावनाएँ हैं। वे तो सिर्फ इतना महसूस करते हैं कि स्पीलबर्ग एण्ड लुकास ने कथाओं को अनावश्यक रूप से उलझनपूर्ण बना दिया है। ये कथाएँ और अधिक सहज और सुबोध हो सकती थीं।

राय की जानकारी का क्षेत्र इतना गहन और व्यापक था कि जीवन और ज्ञान का कोई पहलू उनसे नहीं टूटता था। एक बार अमेरिका की आक्रोशभरी बीट पीढ़ी के मसीहा कवि एलेन गिंसबर्ग सत्यजीत राय से मिलने आए। उस शाम पूरे समय गिंसबर्ग सिनेमा के बारे में बोलते रहे, जबकि राय अमेरिकी कविता के बारे में।

स्मृति शेष

प्रतिभा और सौन्दर्य का संगम : काननदेवी

● राहुल शर्मा

फिल्म जगत को इस वर्ष (1992) जिन महान शख्सियतों से महरूम होना पड़ा, उनमें काननदेवी का नाम प्रमुख है। हिंदुस्तानी सिनेमा ही इस आद्य-अभिनेत्री का 17 जुलाई को कलकत्ता में देहांत हो गया। अपनी 76 वर्ष की आयु का आधार हिस्सा परदे को समर्पित करने वाली काननदेवी भारतीय सिने इतिहास के एक समूचे युग का प्रतिनिधित्व करती थीं। देश में सिनेमा की लोकप्रियता के उत्थान से उनका नाम अभिन्न रूप से जुड़ा है। रजतपट की प्रथम ग्लैमरस हीरोइन के रूप में विख्यात काननदेवी की शोहरत के स्पंदन वक्त के बोझिल अंतराल के बावजूद सिनेप्रेमियों के दिलो-दिमाग में आज भी महसूस किए जा सकते हैं। अप्रतिम सौंदर्य के अलावा कानन देवी सुमधुर कण्ठ की भी स्वामिनी थीं। अपनी कई फिल्मों में उन्होंने अभिनय के अलावा कुछ बेहद लोकप्रिय गीतों को स्वर दिए। रवींद्र संगीत की वह दक्ष गायिका थीं। उनकी आवाज में अपने कुछ गीत सुनने के बाद गुरुदेव टैगोर ने ही उनका नाम काननबाला से बदल कर काननदेवी रखा था। शताब्दी के

महापुरुष द्वारा प्राप्त 'देवी' की संज्ञा उनकी कला के असाधारण बिंदुओं की व्याख्या कर देती है।

अनेक बंगला और हिंदी चलचित्रों में काम करने वाली काननदेवी का रजतपट पर आगमन

काननदेवी ने भारतीय सिनेमा इतिहास में एक समूचे युग का प्रतिनिधित्व किया है। उन्होंने सिनेमा को लोकप्रिय बनाया। नायिका की भूमिका को प्रतिष्ठित करते हुए ऐसा ग्लैमरस बनाया कि दर्शक चकित रह गए। द्वितीय विश्व युद्ध के 'ब्लैक आउट' के दिनों में काननदेवी की फिल्में हाउस-फुल में चला करती थीं।

परिस्थितिजन्य था। मात्र नौ वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु हो जाने के कारण परिवार की सारी जिम्मेदारियाँ उन पर आ पड़ीं। आर्थिक जरूरतों को देखते हुए उन्होंने ज्योतिष बंदोपाध्याय की एक बंगला फिल्म 'जयदेव' में छोटी सी भूमिका निभाई। इस भूमिका के लिए उन्हें पाँच रुपए बतौर पारिश्रमिक मिले थे। यह 1926 की बात है, जो भारतीय सिनेमा के शैशवकाल का दौर था। फिल्मों में तब सभ्रांत परिवारों की लड़कियाँ काम नहीं करती थीं। कई मुश्किलों और सामाजिक अवरोधों के बीच काननदेवी ने अभिनय की शुरूआत की। 'स्ट्रीट सिंगर' 'साथी जोगाजोग' चंद्रशेखर पराजय कंठहार वासवदत्ता उनकी आरंभिक फिल्में थीं। इन फिल्मों ने बहुत जल्दी उन्हें लोकप्रिय बना दिया। दर्शक उनकी खूबसूरती के सम्मोहन में बिंधकर रह गए। पहली बार सिने-दर्शकों ने जाना कि एक अभिनेत्री का ग्लैमर किस तरह परदे पर रोमांच की सृष्टि करता है। एक तरह से काननदेवी को चित्रपट की प्रथम 'सेक्स-सिम्बॉल' कहा जा सकता है। यह विशेषण उनके संदर्भों में थोड़ा छिछोरा जान पड़ता है। काननदेवी का सौंदर्य एक सौम्य मादकता का आभास देता था, कामुकता का नहीं। वह एक परिपूर्ण स्त्री की छवि को परदे पर प्रतिबिंबित करती थीं, जो वात्सल्य में डूबी माँ भी है और अभिसारोत्सुक नायिका भी।

अपनी पहली सवाक फिल्म 'जोरबरत' (1931) में काननदेवी ने एक चुंबन-दृश्य देकर सबको चौंका दिया था। बंगला सिनेमा के इतिहास में पहली बार किसी अभिनेत्री ने यह साहस दिखाया। इस दृश्य को दर्शक परदे पर नहीं देख सके, क्योंकि तकनीकी खामियों के कारण इसे काट देना पड़ा था। तीस के दशक की शुरूआत के साथ काननदेवी की लोकप्रियता परवान चढ़ चुकी थी। दर्शकों में उनके प्रति दीवानेपन का यह आलम था कि विश्वयुद्ध के दौरान जिस वक्त ब्लैक आऊट होता तब भी लोगों की भीड़ काननदेवी की फिल्म देखने के लिए सिनेमाघरों में बंद रहती।

काननदेवी ने चित्रपट पर सिर्फ अपने रूप का जादू ही नहीं बिखेरा, उनका स्वर-माधुर्य भी लाजवाब था। पंकज मलिक और के.एल. सहगल जैसे महान गायकों के साथ उन्होंने जो गीत गाए, वे अविस्मरणीय हैं। खास तौर पर उनका गाया एक बंगाली गीत 'आमि बनफूल गो' (शेष उत्तर) अभूतपूर्व रूप से लोकप्रिय हुआ। काननदेवी की अद्भुत प्रतिभा से प्रभावित होकर बंगाली सिनेमा के शिखर पुरुष प्रमथेश बरुआ ने अपनी प्रसिद्ध फिल्म 'मुक्ति' में उन्हें एक अत्यंत परिपक्व और गंभीर किस्म की भूमिका सौंपी। बतौर अदाकार काननदेवी को स्थापित करने वाली यह एक प्रमुख फिल्म थी। इसके निर्माण के दौरान प्रमथेश बरुवा के साथ उनका सामीप्य कई चर्चाओं का केंद्र बना। अगर पहली बार किसी अभिनेत्री के व्यक्तिगत जीवन में भारतीय दर्शकों ने रुचि ली, तो वह काननदेवी ही थीं।

जिन नायकों के साथ काननदेवी ने काम किया वे सभी फिल्म जगत की महान विभूतियाँ थीं। पहाड़ी सान्याल छबि विश्वास प्रमथेश बरुआ उत्तम कुमार और अशोक कुमार, उनके चिरपरिचित नायक थे। लेकिन इन लब्ध प्रतिष्ठित नायकों की आकाशगंगा के समक्ष उन्होंने अपना व्यक्तित्व कभी फीका नहीं पड़ने दिया। आम तौर पर स्त्री कलाकारों को हमेशा से दोयम पैमाने पर आँका जाता रहा है, किंतु अपनी फिल्म 'विद्यापति' में काननदेवी ने इस धारणा को बिलकुल गलत साबित कर दिया था। पहाड़ी सान्याल जैसे ऊँचे दर्जे के अभिनेता के समक्ष इस फिल्म में उन्होंने जो भावप्रवण भूमिका निभाई, वह अपने आप में बेमिसाल थी। 'विद्यापति' बंगला के अलावा हिंदी में भी प्रदर्शित हुई और इसने समीक्षकों की राय में काननदेवी को एक अत्यंत समर्थ अभिनेत्री का
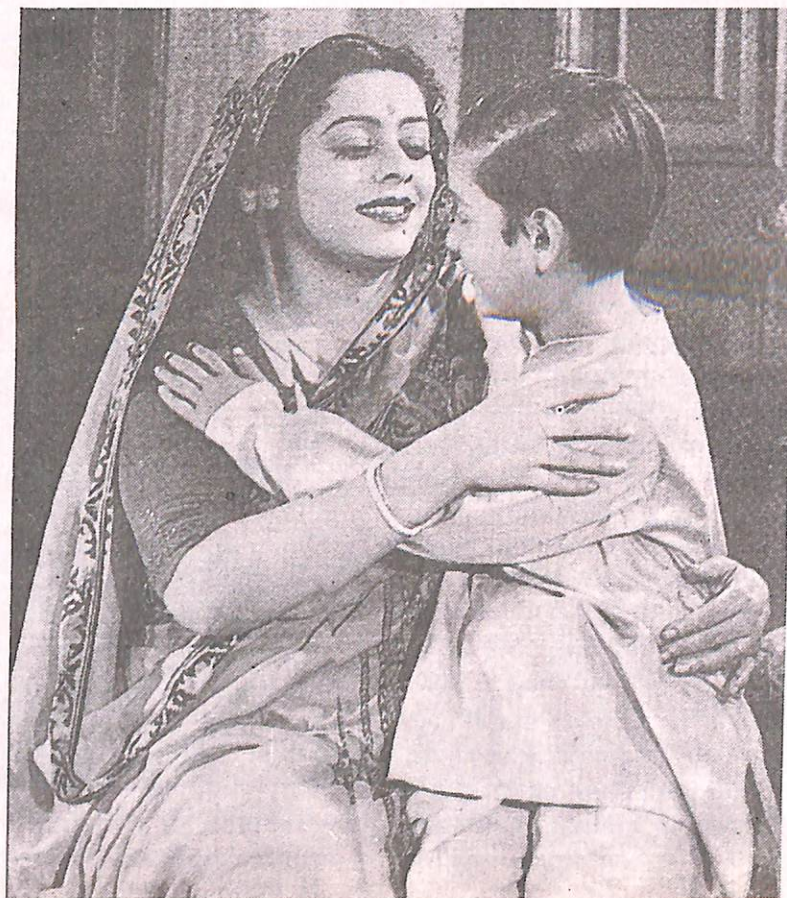
दर्जा दिलाया। उनकी कला का परंपरागत सम्मान हालाँकि काफी समय बाद हुआ, जब वह 1968 में पद्मश्री और 1976 में दादा साहेब फालके पुरस्कार द्वारा सम्मानित की गईं। लेकिन इस वक्त तक उन्होंने फिल्म-जगत से संन्यास ले लिया था। 1962 में वह परदे को हमेशा के लिए अलविदा कह चुकी थीं।

चालीस के दशक में बढ़ती आयु के साथ काननदेवी ने अपनी भूमिकाओं के स्वरूप को नया मोड़ देते हुए महान बंगला कथा-शिल्पी शरतचंद्र के कुछ उपन्यास अपनी फिल्मों के कथानक हेतु चुने। इस बीच वह स्वयं की फिल्म कंपनी 'श्रीमती पिक्चर्स' भी स्थापित कर चुकी थीं। इसके बैनर में उन्होंने 11 फिल्में बनाईं, जिनमें से नौ का निर्देशन उन्होंने खुद किया। उनके निर्देशन में बनी पहली फिल्म 'अनन्या' असफल रही थी, लेकिन इसके बाद निर्मित 'मेजदीदी' को ऐतिहासिक कामयाबी मिली। शरतचंद्र की कहानी पर आधारित इस फिल्म में काननदेवी ने एक ऐसी माँ का पात्र निभाया था, जो पारिवारिक नाराजी की परवाह न करते हुए एक गरीब अनाथ बच्चे को शरण देती है। 'मेजदीदी' की भूमिका में काननदेवी का ममतामयी रूप दर्शकों के समक्ष उजागर हुआ। फिल्म में उनके गाए एक भजन 'प्रनाम तोमई घनश्याम' ने सबको रसविभोर कर डाला था। 'मेजदीदी' के निर्देशक काननदेवी के पति हरिदास भट्टाचार्य थे, जिनके साथ उन्होंने दूसरा विवाह किया था।

'श्रीमती पिक्चर्स' के बैनर में बनी कुछ अन्य प्रमुख फिल्में थीं ; देवात्रा श्रीकांतो- अन्नदीदी राजलक्ष्मी ओर श्रीकांतो और अँधेरे आलो। इन सभी फिल्मों में काननदेवी की रचनाशील प्रतिभा स्पष्ट उदभासित होती है। उनका पूरी जीपन अपने आप में एक जिंदा अनुभव को परदे पर साकार करता नजर आता है। ईश्वर-प्रदत्त सौंदर्य और वाणी के उपहार को अपनी सृजनशीलता से तराशते हुए उन्होंने भारतीय सिनमा को समृद्ध किया। सही अर्थों में वह फिल्म माध्यम से देश में स्त्री-स्वतंत्र्य को स्वर देने वाली प्रथम महिला कही जा सकती हैं, जिस प्रगतिशीलता को उन्होंने स्थापित किया, वह आचरण में उश्रृंखलता की नहीं, बल्कि सुलझे विचारों और निर्भीकता की पक्षधर हैं। ●

स्मृति शेष

औघड़ अभिनेता प्रेमनाथ

● संतोष जैन

सफलता का तात्पर्य किसी ऊँची चोटी पर पहुँचना नहीं, बल्कि उस चोटी पर से गिरने पर भी सम्हलना और पुनः उसी ऊँचाई तक पहुँच जाना है। प्रेमनाथ के जीवन पर यह टिप्पणी है शम्मी कपूर की। प्रेमनाथ लगन और योग्यता के बल पर शिखर तक ही नहीं पहुँचे बल्कि उन्होंने जब जी चाहा शिखर को स्पर्श किया और जब जी चाहा उसे ठुकराया।

'इंसान का चेहरा उसके व्यक्तित्व का आइना होता है' यह कथन प्रेमनाथ पर पूर्णतया लागू होता है। उनके चरित्र और जीवन के विरोधाभास उनके चेहरा पर साफ परिलक्षित होते थे। दृढ़ निश्चय की प्रतीक चौड़ी मजबूत ठुड्डी और आँखों में वह खूबी कि सामान्य भाव-भंगिमा भी सिर्फ एक दृष्टिपात से आक्रामक नजर आए। मोटे नाक-नक्श, अवयवों में तीखेपन के अभाव के बावजूद तासीर का पैनापन उनके व्यक्तित्व के कन्ट्रास्ट को दर्शाता था।

21 नवंबर 1926 को पेशावर में जन्मे प्रेमनाथ बचपन में ही माँ की ममता से महरूम हो गए और पिता के स्नेह व विश्वास से भी तब तक वंचित रहे, जब तक उन्होंने स्वयं को साबित नहीं कर दिखाया। इच्छाओं और पिता के प्रति कर्तव्य के बीच अनिर्णय की स्थिति में प्रेमनाथ ने लॉ कॉलेज में प्रवेश लिया। स्वभावगत लापरवाही की वजह से शिक्षा पूरी नहीं कर सके। पिता की इच्छा का मान रखने के एक और प्रयास में प्रेमनाथ फौज में ट्रेनिंग के लिए गए। नियति ने नौ महीने बाद ही उन्हें बाम्बे भाग जाने पर मजबूर किया। प्रेमनाथ के अंदर के अभिनेता को पृथ्वीराज कपूर, जो दूर के रिश्तेदार होने के कारण पूर्वपरिचित थे, ने पहचाना और दिशा देकर उन्हें पृथ्वी थियेटर का महत्वपूर्ण अभिनेता बना दिया।

फिल्म 'अजीत' से फिल्मों में अभिनय का सफर प्रारंभ करने वाले प्रेमनाथ 'आग' और 'बरसात' में सहनायक की भूमिकाएँ निभाने के बाद 'बादल' से बतौर नायक स्थापित हो गए। 'आग' में प्रेमनाथ चित्रकला के शौकीन अमीर नवयुवक थे, जो उसी लड़की से प्यार करता है जिसे राजकपूर चाहते हैं। 'बरसात' में प्रेमनाथ स्त्री को भोग्या समझने वाले दिलफेंक आशिक हैं, जो राजकपूर के रुहानी प्रेम में यकीन नहीं करते हैं। इस फिल्म के मशहूर गाने 'पतली कमर है तिरछी नजर है' पर प्रेमनाथ के विशिष्ट नृत्य के अंदाज को दर्शक कभी भूल नहीं सकते हैं। इस दौर की अन्य फिल्में थीं- आन इंसानियत चंगेजखान समुन्दर सगाई घरजमाई बुजदिल दो सितारे।

अपेक्षाकृत कम प्रतिस्पर्धा के उस जमाने में प्रेमनाथ, राजकपूर और दिलीपकुमार की उपस्थिति में भी अलग पहचान बनाने में सफल हुए। उनके व्यक्तित्व में गरिमा और ताजगी दोनों थी। स्वभावगत बेफ़िक्री, आनुवंशिक बोल्डनेस और फौजी अक्खड़पन जैसी गैरपरंपरागत विशेषताओं ने उनके कदम मजबूती से जमा दिए। बाद में अलग दिखने और अपनी श्रेठता सिद्ध करने की प्रवृत्ति ने ही उन्हें 'गोलकुण्डा का कैदी' नामक महात्वाकांक्षा फिल्म बनाने को प्रेरित किया। बड़े बजट की इस फिल्म के निर्माता निर्देशक लेखक नायक स्वयं प्रेमनाथ थे, किन्तु अपनी भव्यता और अच्छे उद्देश्य के बावजूद यह फिल्म बुरी तरह असफल हो गई। उसी वक्त 'शगूफा' भी पिट गई। नतीजा यह हुआ कि दो साल पहले 'पठान' में डेढ़ लाख रुपए पारिश्रमिक पाने वाला प्रेमनाथ नाकामयाबी से बौखलाकर शांति की तलाश में ग्रह-नक्षत्र ज्योतिष तंत्र सिद्धि और संन्यास की दुनिया में पहुँच गया। अगले चौदह वर्षों तक वह आत्म साक्षात्कार के लिए हिमालय की तलहटियों में भटकता रहा। इसी दौर में प्रेमनाथ ने संगीत और ज्योतिष सीखा, तमाम कविताएँ और कुछ पुस्तकें भी लिखीं।

सोलह साल बाद अचानक प्रेमनाथ को आत्मज्ञान मिला कि असफलता और निराशा से घबराकर साधु बनना त्याग नहीं, कायरता है। जीवन से पलायन है। फलस्वरूप 1971 में जानी मेरा नाम से प्रमनाथ की धमाकेदार वापसी हुई।

लेकिन नायक के रूप में नहीं। इस बार वह खलनायक के किरदार में थे। प्रेमनाथ ने रोटी कपड़ा और मकान दस नंबरी अमीर-गरीब पूरब-पश्चिम कालीचरण चाँदी-सोना संन्यासी धर्मात्मा जानी दुश्मन गोल्डमेडेल गैम्बलर कर्ज राजा जानी फिल्मों के जरिए स्वयं को सशक्त खलनायक के तौर पर ही नहीं प्रतिष्ठित किया, बल्कि खलनायकी को भी इज्जत का रुतबा और नए आयाम प्रदान किए।

कुछ अंतराल के बाद प्रेमनाथ चरित्र अभिनेता के रूप में अवतरित हुए। इस रूप में भी प्रेमनाथ को इतनी मान्यता मिली कि विश्वास ही नहीं होता था कि इसी व्यक्ति ने कभी क्रूर व धूर्त खलनायक के चरित्र अभिनीत किए थे। बॉबी शोर आपबीती धरमकरम मगरूर क्रोधी आदि में चरित्र भूमिकाएँ निभाने वाले प्रेमनाथ बॉबी और धरम-करम में अभिनयक्षमता के उत्कर्ष पर पहुँचा। बॉबी के संदर्भ में शम्मीकपूर का कहना है कि उसमें प्रेमनाथ की भूमिका उनकी वास्तविक जीवन शैली और अंदाज पर आधारित थी। इस चरित्र की प्रवृत्ति निर्धारित करने में राजकूपर का कम, प्रेमनाथ का ज्यादा योगदान था। वे वास्तविक जिंदगी में जनरल कहलाना पसंद करते थे और बातचीत में अकसर म्युनिसिपलटी बोला करते थे। वे शराब पीते थे और उसूलों के इतने पक्के थे कि उनके लिए किसी से भी बिगाड़ कर सकते थे। धरमकरम में वे ईश्वर के बनाए गए किसी डिजाइन को बदलने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हैं, किंतु अंत में जब वे ऊपर वाले का डिजाइन नहीं बदल पाते हैं, तो उनकी करुणा दर्शकों को अपने प्रभाव में जकड़ लेती है।

गंभीर और रूखे प्रतीत होने वाले प्रेमनाथ का सेन्स ऑफ ह्यूमर जबर्दस्त था। वे शुरू में घुड़सवारी करने के लिये इतने उत्सुक रहते थे कि विलेन के डुप्लीकेट तक बनने को तैयार थे। उनका ख्याल था कि आज स्टार न बन पाने वाले स्टार-सन को बाल काटने की दुकान खोल लेनी चाहिए, जिससे बाहर साइनबोर्ड पर यह नोटिस लगा सकते हैं। हम आपको अपने पिता की हेयर स्टाइल देंगे। उनका यह कथन भी मशहूर है कि ऊँट बिना पानी के आठ दिन चल सकता है, लेकिन कौन है जो ऊँट बनना चाहेगा?

प्रेमनाथ : फिल्मोग्राफी

1948 : अजीत * आग 1949 : बरसात 1950 : हिंदुस्तान हमारा 1951 : आराम * बादल * बुजदिल * दो सितारे * नौजवान * सगाई * शोखियाँ 1952 : आन * अंजाम * पर्वत * साकी 1953 : औरत * दर्दे दिल * शगूफा * मेहमान 1954 : गोलकुंडा का कैदी 1955 : आबे ह्यात 1956 हमारा वतन 1957 : चंगेज खाँ * समुंदर 1958 : चौबीस घंटे * सन ऑफ सिंदबाद 1959 : बस कंडक्टर * चालीस दिन * जागीर 1960 : अपना घर * डॉ. शैतान * गैम्बलर * कातिल 1961 : सारा जहाँ हमारा * 1962 : पठान 1963 : रुस्तम सोहराब * शहीद भगतसिंह 1965 : जनम जनम के साथी * सिकंदर ए आजम 1966 : आम्रपाली * प्यार मोहब्बत * शेर अफगान * तीसरी मंजिल 1967 : बहारों के सपने * मेरा भाई मेरा दुश्मन 1968 : बलराम-श्रीकृष्ण 1969 : महुआ * सती सुलोचना 1970 : इल्जाम * जानी मेरा नाम * पुष्पांजलि 1971 : तेरे-मेरे सपने 1972 : बेईमान * दो बच्चे दस हाथ * गोरा और काला * मोम की गुड़िया * शोर * राजा जानी * जॉनी मेरा नाम * वफा 1973 : बॉबी *छुपा रुस्तम * लोफर * नफरत * प्राण जाए पर वचन न जाए * राजा काका 1974 : अमीर-गरीब * चट्टान सिंह * इश्क-इश्क-इश्क * रोटी कपड़ा और मकान 1975 : धर्मात्मा * दफा 302 * धरमकरम * संन्यासी * धोती लोटा और चौपाटी * मोन्टी *रानी और लाल परी 1976 : आप बीती * बजरंगबली * ढोंगी * दस नंबरी * जानेमन * कबीला * कालीचरण * नागिन 1977 : नहले पे दहला * चला मुरारी हीरो बनने * चाँदी और सोना * दरिंदा * दो चेहरे * फरिश्ता या कातिल * ज्ञानीजी * जादू टोना * शिरडी के साईं बाबा * थीफ ऑव बगदाद * यारों का यार 1978 : हीरालाल पन्नालाल * काला आदमी * राहूकेतु * शालीमार * विश्वनाथ 1979 : अहिंसा * गौतम गोविंदा * गोल्ड मेडल * जानी दुश्मन * लोक परलोक * मगरूर 1980 : मुकाबला * धन दौलत * कर्ज 1981 : क्रोधी 1982 : देशप्रेमी 1983 कर्ज की कीमत 1984 : हम दोनों।

● **फिल्मोग्राफी प्रस्तुति : आदर्श गर्ग**

स्मृति शेष

फिल्माकाश के चमकीले तारे : ताराचंद बड़जात्या

● **राजीव सक्सेना**

राजश्री प्रॉडक्शन्स के संस्थापक, हिंदी फ़िल्म जगत के वयोवृद्ध फ़िल्म निर्माता-निर्देशकों में से एक ताराचंद बड़जात्या का निधन, भारतीय फ़िल्मोद्योग के लिए नुकसानदायक घटना है। बड़जात्याजी ने महर्षि अरविंदो को आदर्श मानते हुए अपना संपूर्ण जीवन सिनेमा को समर्पित कर यह प्रेरणा दी कि जिस काम से जुड़ा जाए, उसे तन-मन-धन की समूची निष्ठा और लगन से सींचा जाए। ताराचंदजी का सिनेकर्म इस विधा से जुड़े तमाम लोगों के लिए यकीनन पथप्रदर्शक की तरह है।

ताराचंद बड़जात्या ने पाँच दशक हिंदी सिनेमा की सेवा की। बेहद सीमित, संतुलित बजट की सुघड़ पारिवारिक मनोरंजक संदेशप्रधान और संगीतमय फ़िल्मों के निर्माण के लिए ताराचंदजी और राजश्री प्रोडक्शन्स मशहूर हैं। बड़जात्याजी महर्षि अरविंदो के अनन्य अनुयायी रहे हैं। उन्होंने महर्षि के जन्म दिवस और भारत की आजादी की पहली सुबह यानी 15 अगस्त 1947 को राजश्री प्रोडॅक्शन्स प्राइवेट लिमिटेड नामक अपने बैनर की शुरुआत की इससे पहले ताराचंदजी ने फ़िल्म जगत में बतौर प्रशिक्षणार्थी पच्चीस रुपए प्रतिमाह पर अपना कैरियर शुरू किया था। बाद में उन्होंने

रायबहादुर मोतीलाल कमारिया के संस्थान में जुड़कर निर्माण, वितरण और प्रदर्शन की शाखाओं का संचालन किया।

राजश्री प्रोडँक्शन्स के बेनर तले पहली फ़िल्म "आरती" (1962) प्रदर्शित की गई। इसे उस वर्ष अंतरराष्ट्रीय फ़िल्मोत्सव में भी प्रस्तुत किया गया। बाद में उन्होंने नवोदित कलाकारों को लेकर बतौर प्रयोग "दोस्ती" बनाई, जिसे अपेक्षा से कहीं बड़ी कामयाबी हासिल हुई।

अभिनेत्री राखी को पहले पहल मौका राजश्री की "जीवन-मृत्यु" में दिया गया। इस फ़िल्म ने उस दौर में एक साथ, एक थियेटर में लगातार सौ हफ्ते चलने का रिकार्ड कायम किया था। रवींद्रनाथ ठाकुर की कहानी पर राजश्री ने 1972 में "उपहार" बनाई, जिसमें जया भादुड़ी को अवसर मिला। इस फ़िल्म को सन् 72 में ही "ऑस्कर अवार्ड" के लिए भारत की ओर से प्रविष्ट बतौर भेजा गया था। महानगरों की आवास समस्या को राजश्री की "पिया का घर" में उम्दा तरीके से उभारा गया। इसके बाद "सौदागर" बनाई गई, जिसमें अमिताभ बच्चन के साथ नूतन की प्रभावी भूमिका है। यह फ़िल्म भी सन् 1973 में "ऑस्कर अवार्ड" के लिए भेजी गई थी।

1975 में सचिन और सारिका अभिनीत "गीत गाता चल" ने बॉक्स आफिस पर शानदार कीर्तिमान बनाए। फ़िल्म ने देश के अनेक शहरों में सिल्वर जुबली मनाई। इसी साल "तपस्या" और "चितचोर" जैसी फ़िल्में बनाकर ताराचंदजी ने सफलता की "हैट्रिक" कायम की।

"दुल्हन वही जो पिया मन भाए" ने भी व्यवसाय का कीर्तिमान बनाया और इसके माध्यम से फ़िल्म जगत को रामेश्वरी जैसी एक नई भावप्रवण अभिनेत्री हासिल हुई। "अँखियों के झरोखे से", "एजेंट विनोद" और "लैला-मजनू" की राजश्री की सफल फ़िल्मों में शुमार है।

1979 का साल राजश्री प्रॅडक्शन्स के इतिहास का स्वर्णिम वर्ष रहा है। इस एक ही साल में सात फ़िल्में पेश कर राजश्री ने वाकई लोगों को अचंभे में डाल दिया। यह एक राष्ट्रीय कीर्तिमान था। "शिक्षा", "सुनयना", "साँच को आँच", "गोपालकृष्ण", "राधा और सीता", "तराना" और "सावन को आने दो" ने आमदनी का भी रिकॉर्ड बनाया।

1989 में "नदिया के पार" की शानदार सफलता ने उस दौर की सारी प्रदर्शित फ़िल्मों को पीछे छोड़ दिया। महेश भट्ट के निर्देशन में अनुपम खेर अभिनीत "सारांश" बनाकर राजश्री ने कला फ़िल्मों की दुनिया को भी चुनौती दे डाली। 1989 में प्रदर्शित "मैंने प्यार किया" को मिली अपार कामयाबी सर्वविदित है।

ताराचंद बड़जात्याजी ने फ़िल्म निर्माण के अलावा सिनेमाघर भी बनवाए और फ़िल्म वितरण व प्रदर्शन के क्षेत्र में भी सफलता हासिल की है। उनका समर्पण फ़िल्म जगत के लिए प्रेरणादायक सिद्ध होगा।

राजश्री के उपहार

जीवन मृत्यु : राखी

उपहार : जया भादुड़ी

दुल्हन वही जो पिया मन भाए : रामेश्वरी

चित्तचोर : विजयेंद्र घाटगे

तराना : मिठुन चक्रवर्ती

सावन को आने दो : अरुण गोविल

गीत गाता चल : सचिन-सारिका

नदिया के पार : साधनासिंह

अबोध : माधुरी दीक्षित

मैंने प्यार किया : भाग्यश्री

छोटा परदा १९९२

दर्शकों से दूर होता दूरदर्शन

● संदीप श्रोत्रिय

भारतीय दूरदर्शन भानुमति के पिटारे के समान है। उसे श्रेष्ठ सूचना माध्यम साबित होने के साथ सरकार के प्रति वफादारी भी निभाना है। मनोरंजन के जरिए दर्शकों का दिल बहलाना है, तो सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा भी करना है। अपनी ही विसंगतियों के जाल में उलझकर दूरदर्शन आज विदेशी चैनलों के सामने असहाय दशा में है। विदेशी चैनलों के पास पैसासाधन तथा उद्देश्य साफ हैं जबकि मण्डी हाउस दिशाहीन होकर रह गया है।

जबरदस्त प्रतियोगिता, सी.बी.आई. जाँच, कर्मचारी आंदोलन, विवादास्पद निर्णय और लचर कार्यक्रमों के दौर से गुजरते हुए पिछला वर्ष दूरदर्शन के लिए भारी चिंताओं का वर्ष रहा। दरअसल दूरदर्शन की हालत एक ऐसे धावक-सी हो कर रह गई, जिसे दुर्बल और बीमार काया के बावजूद किसी अंतरराष्ट्रीय स्पर्धा में दौड़ने के लिए भेज दिया गया हो। इस वर्ष एक ओर तो देश भर में डिश 'एंटेना कुकुरमुत्तों के तरह दिखाई देने लगे और भारतीय दर्शकों को विदेशी चैनलों ने अपने कार्यक्रमों की आँधी में उड़ा ले जाने की कोशिश की। वहीं दूसरी ओर भ्रष्टाचार के आरोपों ओर अनियमितताओं की जाँच करने के लिए सी.बी.आई. के जाँच दल ने लंबे समय तक कार्यक्रमों की निर्माण की प्रक्रिया को रोके रखा जिससे जब दूरदर्शन को सबसे ज्यादा प्रतियोगिता की भावना से काम करने की आवश्यकता थी- ऐन उसी वक्त उसे खाली हाथ खड़ा कर दिया गया। फिर अंतर्राष्ट्रीय मीडिया युद्ध में दूरदर्शन का वही हाल हुआ जो कि हो सकता था। विदेशी चैनलों के पास पर्याप्त साधन हैं, पैसा है, और सबसे बड़ी बात यह कि उनके उद्देश्य साफ हैं। हमारे दूरदर्शन को मनोजरंन तो करना है लेकिन उससे पहले दर्शकों को शिक्षित भी करना है। सांस्कृतिक मूल्यों का पोषण करने की जिम्मेदारी निभानी है। सूचना माध्यम होने का उत्तरदायित्व भी निभाना है और सरकारी माध्यम होने का भी। ऐसी कितनी ही विसंगतियों के बीच तालमेल बैठाने का प्रयास करने वाले दूरदर्शन के पास भानुमति का पिटारा हो जाने के अलावा और रास्ता ही क्या है। दूरदर्शन के साथ एक परेशानी यह भी है कि उसका विकास क्रमिक और भारतीय समाज की आवश्यकता को मद्देनजर रखते हुए कल्पनाशील तरीके से नहीं हुआ। दूरदर्शन क्या प्रसारित करे, क्या प्रसारित न करें? टी.वी. ट्रांसमीटर कहाँ लगे कहाँ न लगे? कहाँ दूरदर्शन केंद्र खुले और कहाँ केंद्र बन जाने के बाद भी उद्घाटन ही न होने दिया जाए? इन तमाम सवालों के जवाब प्रशासकीय फाइलों में कम और राजनीतिक नोटशीटों में ज्यादा आसानी से मिलता हैं। इन स्थितियों में यह भोली उम्मीद नहीं की जानी चाहिए कि दूरदर्शन के कार्यक्रम दर्शकों की अपेक्षाओं की कसौटी पर पूरी तरह खरे उतरेंगे।
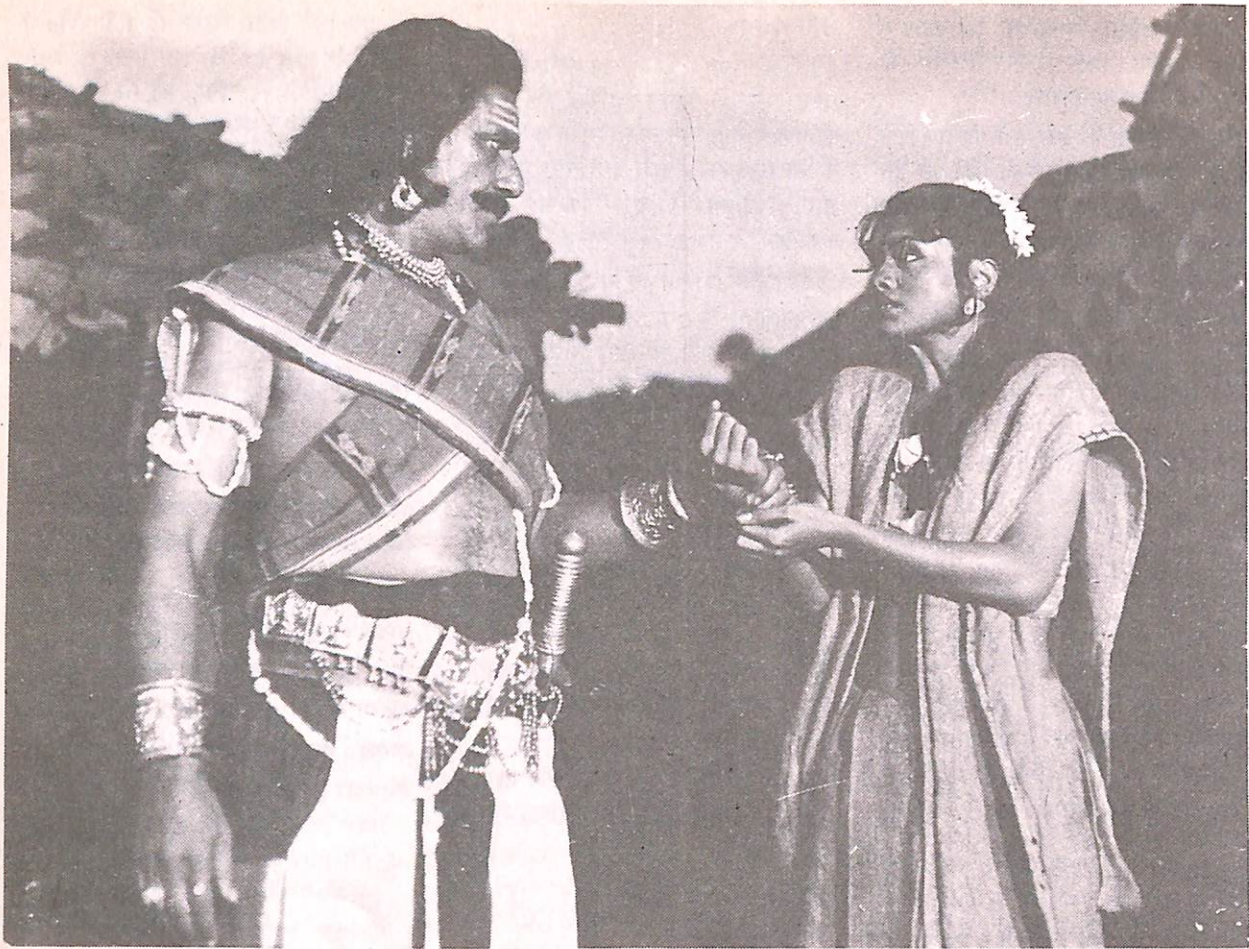
श्याम बेनेगल के धारावाहिक भारत एक खोज में ओम पुरी और पल्लवी जोशी

पिछले वर्ष दूरदर्शन की प्रशासकीय स्थिति को सुधारने और कार्यप्रणाली को बेहतर बनाने के लिए कई निर्णय लिए गए जिनमें से ज्यादातर विवाद के शिकार हुए। इन निर्णयों में ही एक था 'कमीशंड- कार्यक्रमों' के लिए बैंक गारंटी लेने का निर्णय। दरअसल इस श्रेणी के कार्यक्रमों के लिए दूरदर्शन रूपरेखा स्वीकृति के बाद कुल प्रस्तावित खर्च का बड़ा हिस्सा निर्माताओं को अग्रिम दे दिया जाता था ताकि कार्यक्रम निर्माण में आसानी हो। वैसे तो यह सुविधा उन रचनात्मक टी.वी. कार्यक्रम निर्माताओं के लिए थी, जिनके पास विचार तो थे लेकिन पैसा नहीं था। लेकिन इस सुविधा का कुछ लोगों ने गलत फायदा उठाया। नतीजतन कुछ ने पैसा लिया और बेहद घटिया कार्यक्रम बनाए और कुछ ने कार्यक्रम बना कर ही नहीं दिए। इस स्थिति से उबरने के लिए दूरदर्शन अग्रिम पैसा देने से पहले बैंक गारंटी माँगनी शुरू कर दी। उधर बैंक घोटालों के जले बैंक अधिकारी हर कदम फूँक-फूँक कर रखने लगे हैं इसलिए बैंक गारंटी देने आसान नहीं रह गया है। निर्माता के जेब में भरपूर पैसा होना जरुरी हो गया है। इस तरह अब कमीशंड कार्यक्रमों का निर्माण हल्की जेब वाले निर्माताओं के हाथ से निकल गया है। यही वजह है कि कई निर्माताओं ने इस श्रेणी के स्वीकृत कार्यक्रम दूरदर्शन को यह कहते हुए वापस कर दिए हैं कि बैंक गारंटी देना उनके बूते की बात नहीं है जबकि कुछ निर्माताओं ने अग्रिम राशि लेने की बजाए संपूर्ण श्रृंखला तैयार करने के बाद ही पैसा लेने का रास्ता निकाल लिया है। जाहिर है इससे कार्यक्रमों की गुणवत्ता प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाएगी।

एक और विचारणीय मुद्दा यह है कि अगर सरकार दूरदर्शन को बेहतर बनाने के प्रति गंभीर है, तो मंडी हाउस में दूरदर्शन के महानिदेशक का पद अब तक खाली क्यों पड़ा हुआ है? कार्यकारी महानिदेशक से कब तक काम चलाया जाएगा? कब तक दूरदर्शन कर्मचारियों को आंदोलन करते रहना होगा? उनकी सेवा शर्तों में सुधार कब होगा? आखिरकार इन सब बातों का भी कार्यक्रमों पर भारी असर पड़ती ही है।

दूसरी तरफ 'मेट्रो चैनल' के निजीकरण का निर्णय लिया गया जिसका आमतौर पर स्वागत ही हुआ। यह कदम टी.वी. चैनलों का मुकाबला करने की रणनीति की दिशा तय करने में महत्वपूर्ण हो सकता है। कुछ अर्से पहले मैट्रो चैनल पर कार्यक्रम समय निर्धारण समिति' की घोषणा भी की गई। पी.एस. देवधर की अध्यक्षता वाली इस समिति में निखिल चक्रवर्ती, कपिला वात्स्यवन, मृणाल पाण्डे और अनिल बोर्डिया शामिल हैं। कला, सूचना, साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र के इन प्रतिनिधियों में प्रसारण विशेषज्ञ की अनुपस्थिति निश्चय ही खटकती है। सबसे बड़ी दिक्कत यह मैट्रो चैनल के उद्देश्य और नीतियों को लेकर अभी तक भ्रम का वातावरण है। दूरदर्शन यह तो चाहता है कि वह मुख्य रूप से मनोरंजक- कार्यक्रम प्रसारित करे

ताकि केवल टी.वी. का मुकाबला किया जा सके। लेकिन वे कार्यक्रम क्या हो और कैसे बने जब तक यह न निश्चित नहीं किया जाता तब तक यह उम्मीद कैसे की जा सकती है। कि मैट्रो चेनल अपने उद्देश्य में सफल हो सकेगा। अभी तक प्रसारण परिषद के ही नतीजे सामने नहीं आए हैं, लेकिन एक बात साफ है कि जब तक दूरदर्शन थोड़ा उदारवादी रवैया नहीं अपनाता तब तक दर्शक और दूरदर्शन के रिश्तों में सुधार की गुंजाइश बहुत ज्यादा नजर नहीं आती। कहते हैं कि सरकार मैट्रो चैनल पर समाचार और समाचार आधारित कार्यक्रमों के प्रति भी नरम रुख अपनाना चाहती है, इसे बेहतर संकेत माना जा सकता है। लेकिन अभी हाल ही में अयोध्या की घटनाओं के बाद 'परख' कार्यक्रम में विनोद दुआ ने अफसोस प्रकट करते हुए कहा कि अपनी सीमाओं की वजह से अयोध्या की घटनाओं की चर्चा नहीं कर पाएँगे। ऐसे हालात में क्या हमारा दर्शक विदेशी टी.वी. चैनलों के कार्यक्रमों की ओर नहीं दौड़ेगा और क्या तब उसे इन चैनलों के माध्यम से रिस रहे जहर से बचाया जा सकेगा? दरअसल अब चुप्पी लगाने से काम नहीं चलेगा। अब तो संयत और विवेकपूर्ण तरीके से सच को सामने लाना ही होगा। इसी रास्ते से होकर वह विश्वसनीयता भी पाई जा सकेगी जो किसी भी जनसंचार माध्यम की लोकप्रियता की पहली आवश्यकता है।

दूसरी ओर हमें फिल्मकार रमेश शर्मा के बयान से भी सहमत होना चाहिए कि 'लोग' दार्शनिक भाषण नहीं चाहते। अब समय आ गया है जब हमें मनोरंजन को गंदा शब्द मानना बंद कर देना चाहिए। फिलहाल तो दर्शक दूरदर्शन को सरकारी सूचनाओं को प्रसारित करने वाला ऐसा माध्यम मानते है जिसे मनोरंजन की परिभाषा भी ठीक से याद नहीं है। इस माध्यम के साथ परेशानी यह है कि इसके नीति निर्माताओं की दृष्टि तो साफ है ही नहीं साथ ही उन्हें सुनाई भी कम देता है। यदि वह अपने कार्यक्रमों की समीक्षाओं को ही पढ़-सुन लें तो शायद कुछ बेहतर हो सके लेकिन दर्शकों के विचारों और समीक्षकों की प्रतिक्रियाओं की ओर ध्यान देने की उन्हें फुर्सत ही कहाँ है।

बीते साल में दूरदर्शन पर घटिया कार्यक्रमों का ही बोलबाला रहा। यों तो हर साल ही दूरदर्शन पर लचर कार्यक्रमों का जोर रहता है लेकिन इस वर्ष तो अच्छे कार्यक्रमों की गिनती करने के लिए एक हाथ की उँगलियां ही काफी हैं। रविवार की सुबह नौ बजे का समय दूरदर्शन ने सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम के लिए निश्चित कर रखा था। इसी समय पर रामायण और महाभारत जैसी श्रृंखलाएँ प्रसारित हुई भी। इन श्रृंखलाओं को लोकप्रियता के लिहाज से महाश्रृंखला की श्रेणी में रखा जाता है। 'चाणक्य' भी इस समय का सही उत्तराधिकारी सिद्ध हुआ। यों तो यह श्रृंखला वर्ष 1991 में ही शुरू हो गई थी। लेकिन इसका अधिकांश भाग इस वर्ष प्रसारित हुआ। शुरूआत में 'चाणक्य' काफी प्रमाणिक होने का भ्रम पैदा करता था लेकिन जल्दी आम दर्शकों को भी समझ में आ गया कि निर्माता- निर्देशक चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने सैटों और प्रॉपर्टी के माध्यम से माहौल तो बना लिया लेकिन इतिहास बोध के स्तर पर कई सवाल भी उठ खड़े हुए। इतना
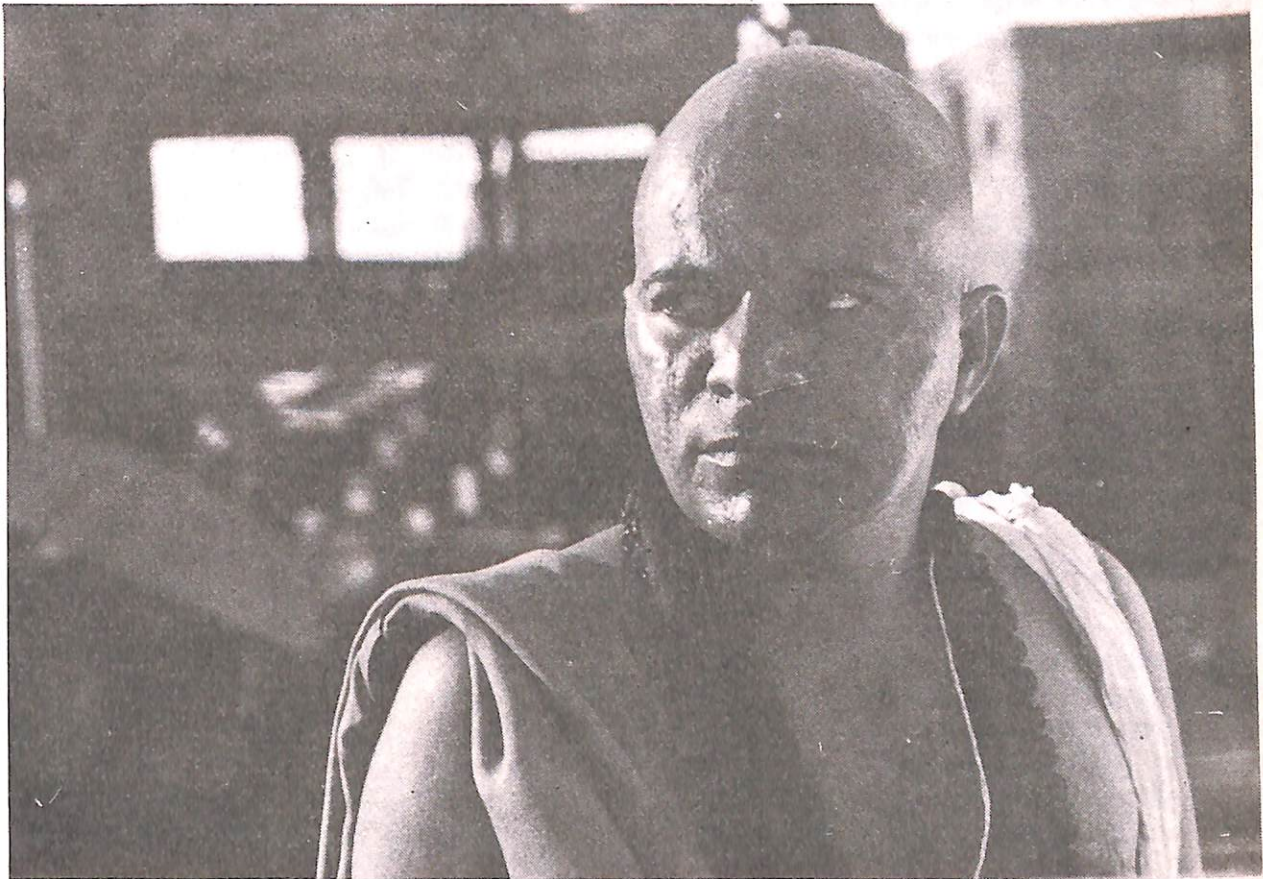
धारावाहिक चाणक्य में डॉ.चन्द्रप्रकाश

ही नहीं इस श्रृंखला के प्रयोग किए गए गीत और झंडे भी विवाद का विषय बने और दूरदर्शन की कैंची 'चाणक्य' के प्रति कुछ ज्यादा ही चौकन्नी हो गई। उधर रंगों को धर्म और राजनीति से जोड़ा जाने लगा और 'चाणक्य' की चर्चा संसद तक में हुई। नतीजा यह हुआ कि 'चाणक्य' को जल्दबाजी में खत्म किया गया। अंतिम अंकों में तो हालत यह हो गई थी श्रृंखला पर निर्देशक की कोई पकड़ ही नहीं दिखाई देती थी। लगता ही नहीं था कि यह वही निर्देशक है जिसने 'चाणक्य' के आरंभिक अंक तैयार किए थे। कुल मिलाकर इतिहास को विषय बना कर तैयार की गई श्रृंखलाओं में श्याम बेनेगल की 'भारत एक खोज' का जवाब अभी भी आना बाकी है। 'चाणक्य' इस दौड़ में काफी पिछड़ा रहा। 'चाणक्य' की समाप्ति के बाद न तो इस लोकप्रिय श्रृंखलाओं के समय पर प्रसारित करने के लिए कोई अच्छी श्रृंखला मिली और न ही दर्शकों को आकर्षित किया जा सके। 'चाणक्य' की जगह वेद राही के 'रिश्ता' ने ली। 'पंजाब समस्या' पर बनाए गए इस अतिसामान्य धारावाहिक का प्रसारण जालंधर केंद्र में किया जा चुका था। रिश्ता खत्म हुआ लेकिन कोई महत्वपूर्ण श्रृंखला दूरदर्शन को फिर भी हासिल नहीं हो पाई। इस तरह केंद्रीय निर्माण एकांश सी.पी.सी. द्वारा बनाई गई। पूर्व प्रसारित टेली फिल्म 'तितली' को ही धारावाहिक रूप में प्रसारित किया गया। 'ग्रास हॉपर' के हिन्दी रूपांतरण का फिल्मांकन इस कदर लचर था कि एम.के. रैना, आलोकनाथ, और नीलिमा अजीम भी फिल्म को उल्लेखनीय नहीं बना सके।

'प्राइम टाइम' यानी रात नौ बजे प्रसारित होने वाली श्रृंखलाओं ने इस वर्ष दर्शकों को आमतौर पर निराश ही किया। साल भर या तो वे- 'उपन्यास' 'हमराही' और 'तलाश' जैसी श्रृंखलाओं में उलझे रहे या फिर मशाल जैसी श्रृंखलाओं से कन्नी काटते रहे। विनय धुमाले की श्रृंखला 'उपन्यास' यों तो एक लेखक के उपन्यास चरित्रों के आसपास बुनी गई थी लेकिन मूलतः यह एक 'सोप-ऑपेरा' ही थी जिसमें अनेक चरित्र अपनी-अपनी कहानियों के साथ मौजूद थे। उपन्यास के ज्यादातर पात्र प्रेम करने में व्यस्त थे चाहे वह निशा सिंह और शेखर कपूर हों या किटू गिडवानी और बेंजामिन गिलानी या फिर बीना और उदय, यहाँ तक कि लेखक मोहन वत्सल (डॉ. श्रीराम लागू) तक प्रभा (उत्तरा बावकर) और यशोधरा (सुहास जोशी) के बीच कशमकश में थे। इस तरह की प्रेम कथाओं और खोया-पाया कथानकों का कोई औचित्य हो या न हो लेकिन इनमें दर्शकों को आसानी से उलझाया जा सकता है। इस दृष्टि से 'उपन्यास' सफल कहा जा सकता है हालाँकि प्रसारण खत्म होने के बाद आज 'उपन्यास' को याद करने वाले कहीं नहीं दिखाई देते।

'हमराही' प्राइम टाइम श्रृंखलाओं में चर्चित होने वाली दूसरी श्रृंखला थी। 'हम लोग' के ही फ्रेम में कसकर मनोहर श्याम जोशी से ग्राम्य संस्करण तैयार करवाया गया जिसमें लेखक ने सरकारी सूत्रों को बड़ी कुशलता से बुन दिया था। इस 'सोप ऑपेरा' के ज्यादातर पात्र बहुत 'लाउड' थे और उन्हें हम लोग के चरित्रों की तरह तराशा नहीं जा सका था लेकिन 'देवकी भौजी' की भूमिका में हिमानी शिवपुरी ने खासी लोकप्रियता हासिल की। इस श्रृंखला के साथ ही साथ शनिवार की दोपहर में 'हम लोग' का प्रसारण भी हो रहा था जिसे दोबारा भी पसंद किया गया।

ऋषिकेश मुखर्जी के निर्देशन में 'तलाश' भी आई जिसने शुरू-शुरू में दर्शकों को बांध कर रखा लेकिन कुछ ही समय में वे समझ गए कि तलाश को रबर की तरह खींचा जा रहा है और देखते ही देखते दर्शक कहीं और मनोरंजन तलाश करने लगे। मौसमी चटर्जी अपनी भूमिका के हिसाब से कुछ ज्यादा ही प्रौढ़ दिखाई दे रही थी। आलोकनाथ, विजेंद्र घाटगे, नीलिमा अजीम भी ज्यादा समय तक तलाश को रोचक बनाए नहीं रख सके और खत्म होते-होते यह तलाश 'खोदा पहाड़, निकला चूहा' साबित हुई।

इसी तरह 'सौदा' ने भी दर्शकों को निराश किया। 'क्रांति कथा' से शुरू कर के 'भ्रांति-कथा' पर खत्म होने वाला सौदा देखकर दर्शकों ने घाटे का सौदा ही महसूस किया। बी.आर. चोपड़ा एंड कंपनी 'महाभारत' के बाद इतनी लचर श्रृंखला बनाएगी, इतनी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

अरुण गोविल ने देशभक्ति के नाम पर मनगढंत किस्से को 'मशाल' बना डाला। इसे देखना अपने आपको यातना देना ही था। इस वर्ष दर्शक धीरज कुमार से बच गए तो अरुण गोविल को भुगतना पड़ा। देश भक्ति के किस्सों का कॉपीराइट रखने वाले मनोज कुमार 'भारत के शहीद' लेकर आए। इसे रविवारीय कार्यक्रमों महत्वपूर्ण जगह दी गई लेकिन दर्शकों ने मनोज कुमार को अंगूठा दिखा दिया। 'प्राइम टाइम' श्रृंखलाओं की हालत इतनी खराब नहीं दर्शकों ने 'फूलवंती' और 'कशिश' जैसी कमजोर श्रृंखलाओं को भी उत्सुकता के साथ देखा।

'व्यक्ति चित्र' प्रस्तुत करने वाली दो श्रृंखलाएँ भी 'प्राइम टाइम' पर दिखाई गई डॉ. अम्बेडकर और 'धरती के लाल' इन दोनों का निर्माण बेहद खराब हुआ था। दूरदर्शन के लिए ही प्रकाश झा ने गोविन्द वल्लभ पंत पर जो डाक्यूड्रामा बनाया था, वह इन श्रृंखलाओं से कई गुना बेहतर था। वैसे घटिया कार्यक्रमों की सूची के शीर्ष पर 'बानो बेगम' ही रही जिसमें कलाकारों की उम्र और चरित्रों के बीच भी कोई तालमेल नहीं था। साल के अंत में 'बाइबिल की कहानियाँ' का प्रसारण आरंभ कर दिया गया, जो विवादों के घेरे में है। ●

विदेशी छवियों के हवाई हमले से सांस्कृतिक-प्रदूषण का खतरा

'झट बटन दबाइए' पट छोटे परदे पर विदेशी चेहरे देखिए। दूरदर्शन के दर्शकों की संख्या दिनोंदिन कम होती जा रही है। कस्बों और महानगरों के घरों की छतों पर डिश एंटेना तन गए हैं। किसी भी राज्य की जल-थल सीमा अब बेमानी हो गई है। हवाई मार्ग से हर देश की संस्कृति घरों के ड्राइंग रूम में प्रवेश कर गई है। सांस्कृतिक प्रदूषण के इस खतरे को रोक पाना असंभव है।

1992 का वर्ष भारतीयों के लिए छवियों के विस्फोटन का वर्ष रहा। जहाँ सन् 1982 में एशियाड के बहाने दूरदर्शन ने पूरे देश में अपने पैर फैलाने शुरू किए थे, वहीं अब करीब दस साल बाद भारतीय दूरदर्शन के लिए चुनौतियों का सिलसिला शुरू हो गया। इन दिनों नित नई टी.वी. कंपनियाँ रात-दिन भारतीय दर्शकों को लुभाने की योजनाएँ बनाने में मशगूल हैं। वे अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी को भी अपना रही हैं क्योंकि यह सर्वमान्य तथ्य है कि यदि भारत में दर्शकों का मन जीतना है तो यह हिन्दी के जरिए ही होगा। यही वजह है कि आजकल भारतीय दर्शकों को निशाना बनाने वाली टी.वी. कंपनियाँ हिन्दी फिल्मों और हिन्दी कार्यक्रमों की खरीद-फरोख्त में व्यस्त हैं। स्टार

टी.वी. एस.टी.वी. जी.टी.वी. वगैरह तो हैं ही साथ ही केवल टी.वी. ऑपरेटरों की मर्जी से दिखाई जाने वाली फिल्में और अन्य कार्यक्रम भी चौबीसों घंटे दर्शकों को लुभाने के लिए मौजूद हैं। झट बटन दबाइए, पट नई चैनल पर नए कार्यक्रम देखिए। ऐसे में दूरदर्शन के दर्शकों की संख्या तेजी से कम हो गई है। खासकर महानगरों और बड़े नगरों में मध्यम से लेकर उच्च वर्ग के परिवारों में इन दिनों दूरदर्शन की बजाए विदेशी टी.वी. कंपनियों के कार्यक्रमों और उनके सितारे चर्चा का विषय बन गए हैं।

दूरदर्शन वाले भले ही दावा करते हों कि उनके कार्यक्रम भारतीय संस्कृति के अनुरूप होते हैं लेकिन इस संस्थान की सरकारी छवि ने दर्शकों को दूर ही किया है। एक ओर तो दर्शकों के सामने पाश्चात्य का खुलापन है और किसी भी घटना के सत्य को विभिन्न कोणों से देखने का आमंत्रण है, तो दूसरी ओर सब कुछ सरकारी लैंस से देखने की मजबूरी।

दरअसल पिछले वर्ष की शुरुआत में भारतीय दर्शकों को सी.एन.एन. यानी केवल न्यूज नेटवर्क के माध्यम से खाड़ी युद्ध की विभीषिका देखने को मिली थी। यहाँ तक कि दूरदर्शन ने भी इस कंपनी से दृश्य खरीद कर अपने दर्शकों को दिखाए थे। तब औसत भारतीय को भी पता चल गया था कि मीडिया, पत्रकारिता दुनिया में कहाँ से कहाँ पहुँच गई है। और यह भी कि मंत्रियों के बयान या सूचना मंत्री द्वारा तिरुपति में लड्डू बांटने जैसे दृश्य समाचार नहीं वरन् व्यक्ति प्रचार है। कुछ ही दिनों में सैटेलाइट टेलीविजन एशियन रीजन (स्टार) का भारत में आगमन हो गया। इस कंपनी के जरिए भारतीय क्रिकेट प्रेमियों ने विश्वकप के अपने पसंदीदा क्रिकेट मैच भी देखें और विदेशी खुलापन भी उनकी आँख के आस्वाद में घुसपैठ कर गया। स्टार टी.वी. को भारत में जबरदस्त लोकप्रियता मिली। देखते ही देखते यह करीब 13 लाख घरों में जा पहुँचा। यदि स्टार की लोकप्रियता का ग्राफ इसी तरह बढ़ता रहा, तो कोई शक नहीं कि साल के अंत तक बीस लाख घरों में लोग इसके कार्यक्रम देखेंगे और इसके दर्शकों की संख्या भारत में एक करोड़ के पार पहुँच जाएँगी।

स्टार टी.वी. ने अपनी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए 2 अक्टूबर से अपनी हिन्दी चैनल जी.टी.वी. की शुरुआत भी कर डाली और इस तरह 24 देशों के भारतीयों को मनोरंजन का एक और दावतनामा मिला।

इसी वर्ष 15 अगस्त से एशिया टी.वी. नेटवर्क यानी ए.टी.एन. भी आकाश के रास्ते भारतीयों के घरों में दाखिल होने लगा। अपनी 'प्रीव्यू चैनल' के जरिए ए.टी.एन. ने जहाँ दूरदर्शन से प्रसारित रामायण, जैसे लोकप्रिय कार्यक्रम दिखाए हैं वहीं रामानंद सागर, राज बब्बर, हिन्दुस्तान टाइम टेलीविजन, टाइम्स टेलीविजन जैसे लोगों और संस्थानों को भी अपने साथ जोड़ लिया है। ए.टी.एन. के संचालक भारतीय हैं और वे भी दूरदर्शन की तरह भारतीय संस्कृति को 'प्रमोट' करने का दावा करते नजर आते हैं।

टी.वी. एशिया इन दिनों काफी चर्चा में है। इसका कारण है भारतीय सुपर स्टार अमिताभ बच्चन का परोक्ष रूप में इससे जुड़ा होना।

धारावाहिकों के महामहिम : मनोहर श्याम जोशी

अमिताभ के छोटे भाई अजिताभ बच्चन इस कंपनी के अध्यक्ष हैं, लेकिन कुछ अर्से पहले अमिताभ ने टी.वी. एशिया की लंदन में शुरुआत की थी। अमिताभ बच्चन कहते हैं कि हिन्दी फिल्मों, पाकिस्तानी नाटक, और दक्षिण एशिया की चुस्त पत्रकारिता को मिलाकर यह कंपनी जबरदस्त चुनौती बन जाएगी।

देखते ही देखते अमेरिकी टी.वी. चैनल एम.टी.वी. ने भी भारत में घुसपैठ शुरू कर दी है। पाश्चात्य गीत-संगीत को आधार बनाकर अपने कार्यक्रम प्रसारित करने वाली यह चैनल शहरी युवाओं में विशेष रूप से लोकप्रिय हो सकती है क्योंकि 'पॉप' के दीवानों की भारत में भी कोई कमी नहीं है। साथ ही पॉप के जरिए अश्लील दृश्यों का आक्रमण भी एम.टी.वी. ने जोरदार ढंग से किया है।

छवियों के विस्फोटन के इस दौर में यह प्रश्न बार-बार उठता है कि क्या इन विदेशी कार्यक्रमों के जरिए हम सांस्कृतिक प्रदूषण के युग में प्रवेश कर गए हैं। निश्चय ही आसमान की मार्फत हमारे इक्कीस इंची परदे पर जो छवियाँ उतर रही हैं, उनसे भारतीय मानस प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। लेकिन, दूसरी तरफ इन विदेशी टी.वी. चैनलों के अपने तर्क हैं, जैसे कि एम.टी.वी. का प्रवक्ता कहता है, 'आप इसे सैक्स कहते हैं? अगर आपको वाक सैक्स देखना है तो हमारे उन कार्यक्रमों को देखिए जो हम अमेरिका में दिखाते हैं, यहाँ तो हम 85 प्रतिशत काट-छांट कर देते हैं।' जो भी तो तर्क-वितर्क से परे आज विदेशी टी.वी. कंपनियाँ आवश्यक बुराई की तरह हमारे घरों में दाखिल हो चुकी है। आज भले ही डिश एंटेनाओं की संख्या दूरदर्शन एंटेनाओं के मुकाबले बहुत कम है, भले ही दूरदर्शन के दर्शकों की संख्या इन विदेशी टी.वी. चैनलों की तुलना में कई गुना ज्यादा है, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह केवल शुरुआत है और अभी से खतरों के संकेत मिल रहे हैं। निश्चय ही आने वाला समय कड़ी स्पर्धा का होगा।

प्रतियोगिता के आरंभिक दौर में ही दूरदर्शन की भूमिका निराश करने वाली है। दूरदर्शन के अधिकारियों की दूरदृष्टि सदा से कमजोर रही हैं। उन्होंने इन विदेशी टी.वी. कंपनियों के हमले से निपटने के लिए जो रणनीति बनाई है उसमें शुरू से ही छेद दिखाई दे रहे हैं। हमेशा की तरह इस बार भी हिन्दी फिल्मों को अपना हथियार बनाया है। यह समझने के प्रयास किए ही नहीं जा रहे कि हर सप्ताह सड़ी गली फिल्मों के ढेर में से अगर एक दो फिल्में और दिखाई जाने लगें, तो भी दर्शकों पर क्या फर्क पड़ जाएगा? खास तौर पर जब केवल टी.वी. और अन्य टी.वी. कंपनियाँ हिन्दी फिल्मों की अनाप-शनाप खरीद करने में लगी हुई हैं। दर्शकों की रुचि को जानने-समझने के लिए दूरदर्शन के दर्शक अनुसंधान विभाग को सक्रिय किया जाना स्वागत योग्य है लेकिन इसका भी लाभ तभी मिल पाएगा जबकि ईमानदारी से दर्शकों का मन-मस्तिष्क को पढ़ने की कोशिश की जाए।

पिछले महीनों में दूरदर्शन सी.सी.आई की जाँच की चपेट में रहा। इस दौरान नए प्रायोजित कार्यक्रमों की स्वीकृति पर रोक लगी रही। इसका नतीजा यह हुआ कि रविवार की छुट्टी के दिन भी दूरदर्शन के पास एक भी ऐसा कार्यक्रम नहीं था जिससे दर्शकों को लुभाया जा सके।

एक साक्षात्कार में दूरदर्शन के महानिदेशक ने एस. कृष्णन ने कहा है कि 'जी.टी.वी. और स्टार टी.वी. दूरदर्शन के लिए एक चुनौती है खतरा नहीं। विदेशी नेटवर्क मनोरंजक कार्यक्रमों के जरिए हमारे दर्शकों को खींच रहे है, इसलिए हम भी उसी स्तर के कार्यक्रम देंगे और अपने बुनियादी सिद्धांतों को भी नहीं छोड़ेंगे।' दूरदर्शन एक जनवरी 93 से हर रात दो प्राइम टाइम कार्यक्रम दिखाना शुरू कर देगा। लेकिन जब तक इन कार्यक्रमों का स्तर नहीं सुधरेगा तब तक बात बनने की उम्मीद नहीं की जा सकती और तब आप की चुनौती खतरा भी बन जाएगी। फिलहाल स्थिति यह है कि तमाम निर्माता पहले दूरदर्शन की ओर जाना चाहते हैं चूँकि अभी उसके दर्शकों की संख्या अन्य चैनलों के मुकाबले कई गुना ज्यादा है। इस पर भी अब विज्ञापनदाता तक अब विदेशी चैनलों की ओर जा रहे हैं क्योंकि नगरों और महानगरों के दर्शक उनके उपभोक्ता वर्ग का बड़ा हिस्सा हैं। लेकिन दर्शकों को लुभाने की दौड़ में मुब्तिला होने के बावजूद फिल्मकार गुलजार की इस टिप्पणी से हमें सहमत होना चाहिए कि दूरदर्शन हो या विदेशी चैनलें किसी की कोई खास शिनाख्त नहीं है।

यू.जी.सी. के जरिए विश्व-दर्शन

आज हम सूचना क्रांति के दौर से गुजर रहे हैं। विज्ञान और तकनीक के अवलंबन वाले इस युग में विकास की गति बहुत तेज है, और प्रतिपल नूतन संभावनाओं का आकाश मानव के स्पर्श क्षेत्र में आ रहा है। सुपरकंडक्टिविटी, अंतरिक्ष यात्रा, कंप्यूटर और ऐसी कितनी ही अद्भुत उपलब्धियाँ हाल ही में हासिल की गई। हमारे आस-पास द्रुत गति से परिवर्तित होती दुनिया के बारे में जन-जन को जानकारी उपलब्ध कराने के उद्देश्य से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) द्वारा १५ अगस्त १९८४ को दूरदर्शन के माध्यम से राष्ट्रव्यापी शिक्षण कार्यक्रमों की शुरुआत की गई थी।

एक सशक्त संचार माध्यम के रूप में दूरदर्शन की उपयोगिता को देखते हुए शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु इसका काफी लाभ उठाया जा सकता है। खास तौर पर देश के दूर-दराज और ग्रामीण इलाकों में जहाँ शिक्षण की पर्याप्त सुविधाएँ नहीं हैं, यू.जी.सी. के टी.वी. कार्यक्रम बेहद उपयोगी साबित हुए हैं। प्रत्येक कार्यदिवस को 'इन्सैट' उपग्रह की मदद से प्रसारित होने वाले इन शैक्षणिक कार्यक्रमों को देशभर में बड़ी दिलचस्पी के साथ देखा जाता है। यह कार्यक्रम अपने दर्शकों को केवल सूचनाएँ ही प्रदान नहीं करते, बल्कि उनमें और अधिक जानने की उत्कंठा भी जगाते हैं। पाठ्यक्रम की सीमित परिधि में बँधने की बजाए इनके जरिए विश्व घटनाक्रम के बारे में जानने के साथ विषय विशेष से संबंधित सिद्धांतों की सरल व्याख्या भी आसानी से समझी जा सकती है। इस लिहाज से छात्रों के लिए इनकी उपादेयता का परिक्षेत्र काफी विस्तृत है।

यू.जी.सी. कार्यक्रमों के निर्माण में अधिकतम लोगों का सहयोग लेने के उद्देश्य से देश के विभिन्न भागों में निर्माण केंद्र स्थापित करने की योजना बनाई गई। १९८४ में ४ शिक्षण शोध केंद्र (ई.एम.आर.सी.) और दो दृश्य श्रव्य शोध केंद्र (ए.वी.आर.सी.) निर्मित किए गए। जिनकी संख्या अब बढ़कर क्रमशः ७ और ८ तक पहुँच गई है। तेजी से स्थापित किए जा रहे ट्रांसमीटरों के द्वारा यू.जी.सी. कार्यक्रम अब लगभग पूरे देश में देखे जा सकते हैं। इन कार्यक्रमों का निर्माण देश की औसत जनता को ध्यान में रखकर किया जाता है। ताकि साधारण से साधारण व्यक्ति भी इन्हें समझ सके। कार्यक्रम बनाते तक विषय विशेष से संबद्ध विशेषज्ञ उन्हें अधिक बोधगम्य बनाने के लिए आपस में गहन विचार-विमर्श करते हैं। विषय की प्रामाणिकता को बरकरार रखते हुए उसकी सरल व्याख्या का प्रयास किया जाता है। देश में बने कार्यक्रमों के अलावा कुछ विदेशी कार्यक्रम भी यू.जी.सी. द्वारा प्रसारित किए जाते हैं। हालाँकि इनका चुनाव केवल विविधता की दृष्टि से किया जाता है। वरना उत्कृष्ट शैक्षणिक कार्यक्रमों के निर्माण में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग किसी से पीछे नहीं कहा जा सकता। अपनी स्थापना के ८ वर्षों के दौरान यू.जी.सी. ने २००० से अधिक कार्यक्रमों का निर्माण किया है।

१९९१ में दूरदर्शन पर शिक्षा संचार की एक अत्यंत उन्नत प्रणाली 'टॉकबैक' या प्रत्यक्ष वार्तालाप की शुरुआत की गई। इसके तहत देश के आठ विशिष्ट केंद्रों के छात्र दूरदर्शन के माध्यम से दिल्ली स्थित विषय विशेषज्ञों के साथ सीधे बातचीत द्वारा अपनी शंकाओं का समाधान कर सकते थे। यू.जी.सी. द्वारा इस तरह की अभिनव प्रणालियों की व्यवस्था निरंतर की जा रही है। इस दिशा में और अधिक सार्थक प्रयोगों के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के दृश्य-श्रव्य संचार केंद्र अपने दर्शकों से उपयोगी सुझावों का स्वागत करते हैं। ताकि देश में शिक्षा-प्रसार क्रांति को वास्तविक अर्थों में साकार किया जा सके।

भारत में सिनेमा घरों की स्थिति १९९१-९२
(जुलाई ९२ तक)

प्रदेश	८६-८७	८७-८८	८८-८९	८९-९०	९०-९१	९१-९२
आंध्र	२४३८	२४८७	२५५८	२६१२	२६१५	२६१७
अरुणाचल	३	३	३	३	३	२
आसाम	२०६	१९४	२२०	२०९	२२३	१९३
बिहार	३४५	३३८	३७०	३४८	३९४	३७०
गुजरात	५७७	५६२	५५३	५२३	५२४	५११
हरियाणा	१०९	११६	११४	१०९	१००	१०३
हिमाचल प्रदेश	२६	२६	२०	१६	१५	१५
जम्मू कश्मीर	३०	३०	३१	२९	२४	२४
कर्नाटक	१३१९	१२८३	१२७२	१२५३	१२४७	१२१०
केरल	१३८९	१३८५	१३९३	१३९६	१३७९	१३७५
मध्यप्रदेश	५३८	५२६	५१८	४८३	४७६	४८०
महाराष्ट्र	११०३	१३२०	१३२८	१२५९	१२३६	११९०
मणिपुर	१२	१३	१४	१४	१५	१४
मेघालय	११	१०	१०	१०	१०	११
मिझोरम	२	२	२	२	२	३
नागालैण्ड	६	६	७	७	७	७
उड़ीसा	१९१	१९१	२०७	१९६	१८४	१७४
पंजाब	१८२	१९१	१७२	१६२	१६०	१५८
राजस्थान	२४९	२७१	२५८	२५८	२५१	२४९
सिक्किम	३	३	२	२	२	२
तमिलनाडु	२२१३	२२२०	२३७०	२४३१	२४४७	२४७५
त्रिपुरा	८	६	८	८	८	८
उत्तरप्रदेश	८८२	९०२	१००६	९५७	१०२७	१०३७
पश्चिम बंगाल	६८०	६७०	७४५	६९२	६६९	६०७
गोवा दमन और दीव	३२	३२	३१	३०	२७	२८

केन्द्र शासित प्रदेश						
अंडमान निकोबार	३	३	३	३	३	३
सेना प्रक्षेत्र	४१	४१	३	२	२	२
चंडीगढ़	८	८	८	८	८	८
दादरा नगर हवेली	२	३	२	२	२	२
देहली	७५	७७	७५	७५	७३	७५
पांडिचेरी	४९	५३	५२	५२	४८	४८
कुल योग	**१२७३२**	**१२९७८**	**१३३५५**	**१३३५१**	**१३१८१**	**१३००२**

1989-90 की उच्चतम स्थिति की तुलना में पिछले वर्ष से छविगृहों की संख्या में गिरावट हो रही है। 232 छविगृह बंद होने के साथ इस अवधि में 53 सिनेमा नए बने। सर्वाधिक 62 सिनेमा पश्चिम बंगाल में बंद हुए। 28 सिनेमा तमिलनाडु में नए शुरू हुए।

सेंसर बोर्ड द्वारा प्रमाणित फिल्में १९९२

माह	कुल	मूल	रिमेक	डब	यू	यूए	ए
जनवरी	२२	१३	३	६	१२	१	९
फरवरी	८	७	-	१	२	२	४
मार्च	१६	१३	-	३	९	१	६
अप्रेल	१५	१५	-	-	१०	३	२
मई	१६	९	१	६	७	४	५
जून	२०	२०	-	-	१४	३	३
जुलाई	१७	१३	-	४	९	१	७
अगस्त	१३	१२	१	-	१०	१	२
सितम्बर	१०	१०	-	-	७	३	-
अक्टूबर	१६	१३	-	३	८	३	५
नवम्बर	१५	१३	-	२	९	२	४
दिसम्बर	१०	१०	-	-	८	१	१
महायोग	**१७८**	**१४८**	**५**	**२५**	**१०५**	**२५**	**४८**

१९९२ में सेंसर बोर्ड द्वारा प्रमाणित फिल्मों का विषयवार विभाजन

श्रेणी	भारतीय	विदेशी	योग
सामाजिक	६७७	३५	७१२
अपराध	९४	१५	१०९
फेंटेसी	१२	२	१४
हॉरर	११	-	११
बाल फिल्म	६	-	६
एक्शन/रोमान्च	-	९	९
पौराणिक	६	-	६
भक्तिपूर्ण	६	-	६
कॉमेडी	३	७	१०
आत्मकथात्मक	३	-	३
महापुरूष जीवनी	२	१	३
सामाजिक बाल फिल्म	२	-	२
वैज्ञानिक	-	२	२
सामाजिक कॉमेडी	१	-	१
बाल फिल्म फेंटेसी	१	-	१
रहस्य	१	-	१
रोमान्च	३	१	४
सामाजिक अपराध	१	-	१
साहसिक	-	१	१
ऐतिहासिक	-	१	१
अपराध/कॉमेडी	-	१	१
अन्य	९	३	१२
योग	८३६	८०	९१६

● प्रस्तुत : आदर्श गर्ग
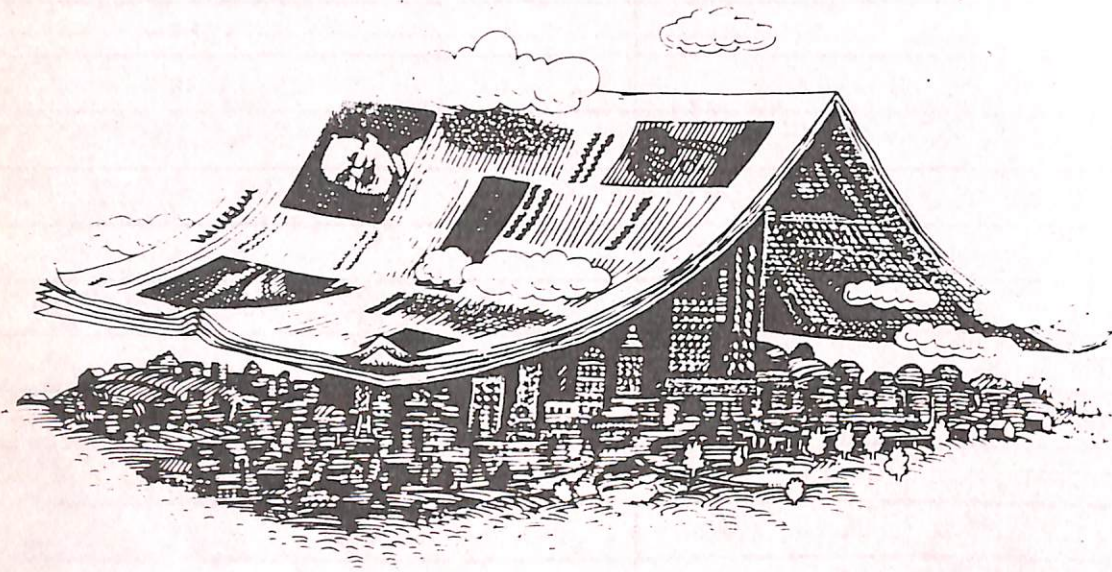
१९९२ में फिल्म सेंसर बोर्ड द्वारा प्रमाणित कथा फिल्में : क्षेत्रवार तथा भाषावार विभाजन

भाषा	बम्बई	कलकत्ता	मद्रास	बंगलोर	तिरूअनंतपुरम	हैदराबाद	दिल्ली	कटक	कुल
हिन्दी	१४०	२	२९	२	४	१२	-	-	१८९
तमिल	२	-	१३९	८	४	२७	-	-	१८०
तेलुगु	-	-	३९	४	५	१०५	-	-	१५३
कन्नड़	-	-	-	९२	-	-	-	-	९२
मलयालम	२	-	६८	९०	१	-	-	-	९०
बंगाली	२	३८	१	-	-	-	-	१	४२
मराठी	२४	-	१	-	-	-	-	-	२५
पंजाबी	१२	-	-	-	-	-	-	-	१२
उड़ीया	-	१	१	-	-	-	-	९	११
नेपाली	८	१	-	-	-	-	-	-	९
भोजपुरी	५	३	-	-	-	-	-	-	८
गुजराती	५	-	-	-	-	-	-	-	५
असमी	-	४	-	-	-	-	-	-	४
अंग्रेजी	२	-	२	-	-	-	१	-	५
राजस्थानी	३	-	-	-	-	-	-	-	३
हरियाणवी	२	-	-	-	-	-	-	-	२
उर्दू	२	-	-	-	-	-	-	-	२
गढ़वाली	१	-	-	-	-	-	-	-	१
नागपुरी	-	१	-	-	-	-	-	-	१
मणिपुरी	-	१	-	-	-	-	-	-	१
संस्कृत	-	-	-	१	-	-	-	-	१
कुल	२१०	५१	२८०	१०७	३२	१४५	१	१०	८३६

● प्रस्तुति : आदर्श गर्ग

सेंसर बोर्ड द्वारा प्रमाणित देशी-विदेशी कथा फिल्मों का श्रेणीवार विवरण १९९२

वर्ग	भारतीय	विदेशी	योग
यू (बगैर काटछांट)	३३२ (३९.७१%)	१६ (२०%)	३४८ (३७.९९%)
यू (काटछांट सहित)	२७९ (३३.३७%)	४ (५%)	२८३ (३०.९०%)
योग	**६११ (७३.०८%)**	**२० (२५%)**	**६३१ (६८.८९%)**
यू.ए.	२७ (३.२३%)	९ (११.२५%)	३६ (३.९३%)
यू.ए. (कटी हुई)	६१ (७.३०%)	३ (३.७५%)	६४ (६.९९%)
योग	**८८ (१०.५३%)**	**१२ (१५%)**	**१०० (१०.९२%)**
ए	५५ (६.५८%)	२० (२५%)	७५ (८.१९%)
ए (कटी हुई)	८२ (९.८१%)	२८ (३५%)	११० (१२%)
योग	**१३७ (१६.३९%)**	**४८ (६०%)**	**१८५ (२०.१९%)**
कुल योग	८३६ (१००%)	८० (१००%)	९१६ (१००%)

खण्ड : चार

फिल्म पुरस्कार

राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार १९९२

देर हुई अंधेर नहीं ...

राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार हमेशा से विवादों में घिरे रहे हैं। यह वर्ष भी इसका अपवाद नहीं। आलोचकों का आरोप है कि फिल्म पुरस्कारों के चयन में लोकप्रिय सिनेमा की पूरी तरह उपेक्षा की गई है। इसके अलावा केवल वरिष्ठ और स्थापित फिल्मकारों को ही पुरस्कृत किया जाने के कारण नई प्रतिभाओं को प्रोत्साहन नहीं मिल सका। कुछ हद तक यह आपत्ति जायज जान पड़ती है। लेकिन गंभीरता से देखा जाए तो कुल मिलाकर चयन समिति ने इस वर्ष पर्याप्त परिपक्वता और साफगोई का परिचय दिया है। यह सही है कि लम्हे, दलपति, गुण आदि विभिन्न भाषाओं की कुछ उम्दा व्यावसायिक फिल्में पुरस्कारों से वंचित रहीं। किन्तु दूसरी ओर पुरस्कृत फिल्मों की गुणवत्ता को लेकर भी किसी तरह का संदेह व्यक्त नहीं किया जा सकता। चयन समिति के अध्यक्ष अदूर गोपालकृष्णन और उनके सहयोगियों को प्रभावित करने में बंबइया फिल्में असमर्थ साबित हुईं। पुरस्कार तालिका में सार्थक सिनेमा उन पर हावी रहा।

इस वर्ष पुरस्कृत फिल्में आगंतुक, फिरिंगोटि, भारथम और भद्रम कोडको के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सत्यजीत राय की आगंतुक को पुरस्कार मिलना सुनिश्चित ही था। शताब्दी के इस महान फिल्मकार की यह अंतिम फिल्म कृषि विश्व भर में सराही जा चुकी है। राय की फिल्मों के कथ्यात्मक स्वरूप से अलग इस संवाद प्रधान फिल्म में आधुनिक सभ्यता के भविष्य को लेकर कई महत्वपूर्ण सवाल उठाए गए हैं। जाहनू बरुआ की फिरिंगोटि को समीक्षकों ने आगंतुक के बाद दूसरी सर्वश्रेष्ठ फिल्मके रूप में आंका है। 'हलेदिया चोराय बाओ धन खाई' जैसी बहुप्रशंसित फिल्म के चर्चित असमिया निर्देशक बरुआ ने अपनी नई फिल्में शिक्षा व्यवस्था पर एक विवेचनात्मक दृष्टि डालने की कोशिश की है। उनका गंभीर विषयगत प्रस्तुतिकरण दर्शाता है कि वह विवादों की आँच पर ख्यात को भुनाने वाले निर्देशकों में शुमार नहीं होना चाहते। सीधे-सरल रास्ते से समस्या की जड़ों तक पहुँचना उनकी प्राथमिकता है न कि सवालों की दिखावटी कशीदाकारी। फिरिंगोटि की नायिका मलया गोस्वामी, सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री के अवार्ड से सम्मानित हुई हैं। एक जागरूक शिक्षिका की भूमिका में उनका अभिनय काफी प्रभावित करता है।

पिछले वर्ष पेनोरमा खण्ड में 'कुटुंब राव' की भद्रम कोडको शामिल नहीं की गई थी। ज्यूरी ने इसकी बजाय रामोजी राव की अपेक्षाकृत साधारण फिल्म 'अश्विनी' को चुना था। लेकिन इस बार चयन समिति ने सर्वश्रेष्ठ तेलुगू फीचर फिल्मके रूप में भद्रम कोडको को चुनाव कर सही निर्णय लिया। फिल्म में सर्वश्रेष्ठ सहायक अभिनेता का अवार्ड पी.एल. नारायण को दिया गया है। भद्रम कोडको की तरह ही एक मलयालम फिल्म 'यमनम' का चुनाव भी चयन समिति दारा किए गए भूल सुधार के रूप में देखा जाएगा। पिछले साल यह फिल्म की पेनोरमा खण्ड में उपेक्षा का शिकार हुई थी। विकलांग व्यक्तियों के जीवन का 'यमनम' में अत्यंत संवेदनशील चित्रण है। फिल्म के निर्देशक 'गोपी' स्वयं लकवे का आघात झेल चुके है।अनुभूतियों का नितांत लकवे का आघात झेल चुके हैं। अनुभूतियों का नितांत यथार्थपरक चित्रण, उनकी फिल्म में रूपायित होता है। मलयालम भाषा से एक अन्य फिल्म भारथम के लिए सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का अवार्ड मोहन लाल को दिया गया है। इसके पहले भी वे अपनी अभिनय क्षमता का परिचय कई मौकों पर दे चुके हैं। भारथम मे उन्होंने एक समर्पित गायन की भूमिका को बेहद खूबसरती से अंजाम दिया है। येसुदास इस फिल्म में पार्श्व गायन के लिए पुरस्कृत हुए हैं। कुल मिलाकर एक उम्दा सांगीतिक फिल्मकृति के रूप में भारथम ने काफी प्रशंसा बटोरी है।

वर्ष की कुछ अन्य महत्वपूर्ण पुरस्कृत फिल्मों में वन्न-वन्ना पोक्कल (तमिल), सरोथी (असमिया) और आदिमीमांसा (उड़िया) के नाम हैं। इन सभी फिल्मों की कथ्य शैली और प्रस्तुति देखकर लगता है कि दर्शकों की अभिरूचि को परिष्कृत करने वाली विचारोत्तोजक फिल्में ही निर्णायकों की नजर में पुरस्कार के योग्य मानी गईं। बंबइया फिल्मों की चकाचौंध ने दम तोड़ते सार्थक सिनेमा के लिए यह एक सुखद संकेत है।
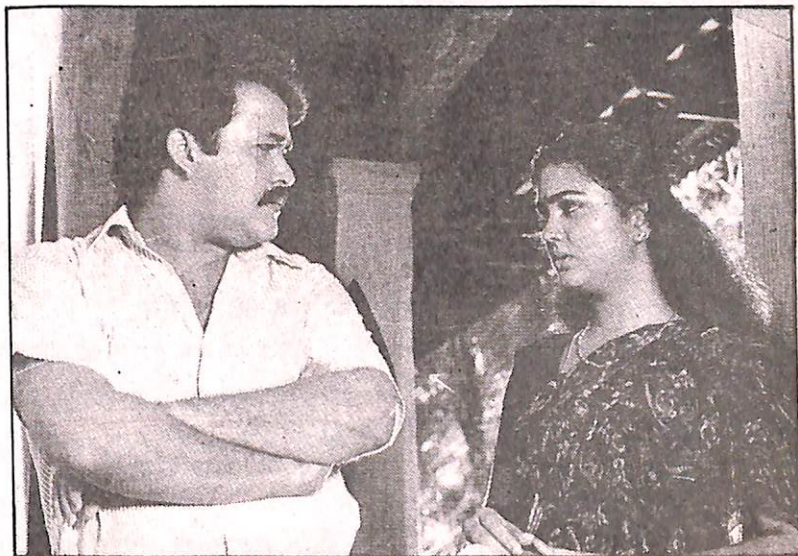
मोहनलाल और उर्वशी फिल्म भारथम में

राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार १९९२

कथाचित्र पुरस्कार

सर्वोत्तम कथा चित्र पुरस्कार : आगन्तुक (बंगला)

निर्माता : राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम लिमिटेड को स्वर्ण कमल और 50,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम निर्देशन पुरस्कार : सत्यजीत राय

निर्देशक : सत्यजीत राय को स्वर्ण कमल और 50,000 रुपए का नकद पुरस्कार

द्वितीय सर्वोत्तम कथाचित्र पुरस्कार : फिरिंगोटी (असमिया)

निर्माता : शैलधर बरुआ और जाहनु बरुआ को रजत कमल और 30,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

निर्देशक जाहनु बरुआ को रजत कमल और 30,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

निर्देशक के सर्वोत्तम कथाचित्र के लिए इंदिरा गाँधी

पुरस्कार : हलधर (असमिया)

निर्माता : गीती बरुआ और द्विजेन हजारिका को स्वर्ण कमल और 25,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

निर्देशक : संजीव हजारिका को स्वर्ण कमल और 25,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम पटकथा पुरस्कार : एम.टी. वासुदेवन नायर

पटकथा लेखक : एम.टी. वासुदेवन नायर को रजत कमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम छायांकन पुरस्कार : ए.के. वीर

छायाकार : ए.के. वीर को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार

सर्वोत्तम ध्वनि आलेखन पुरस्कार : अजय मुंजाल और ए.एम. पद्मनाभन्

ध्वनि आलेक अजय मुंजाल और ए.एम. पद्मनाभन को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम सम्पादन पुरस्कार : रेणु सलूजा

फिल्म सम्पादन : रेणु सलूजा को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार

सर्वोत्तम कला निर्देशन पुरस्कार : समीर चन्दा

कला निर्देशक : समीर चन्दा को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार

सर्वोत्तम संगीत निर्देशन पुरस्कार : रजत ढोलकिया

संगीत निर्देशक : रजत ढोलकिया को रजत कमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम वेशभूषा पुरस्कार : नीता लुल्ला, कचिन्स और लीना

वेशभूषाकार : नीता लुल्ला, कचिन्स और लीना दारू को रजत कमल और 10,000 रपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम अभिनेता पुरस्कार : मोहनलाल

अभिनेता : मोहनलाल को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम अभिनेत्री पुरस्कार : मलाया गोस्वामी
अभिनत्री मलाया गोस्वामी को रजत कमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम सह अभिनेता पुरस्कार : पी.एल. नारायण
सह अभिनेता : पी.एल. नारायण को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम सह अभिनेत्री पुरस्कार : शान्ता देवी

सह अभिनेत्री : शान्ता देवी को रजत कमल और और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम बाल कलाकार पुरस्कार : सन्तोष रेड्डी

सर्वोत्तम बाल कलाकार : पुरस्कार सन्तोष रेड्डी

सर्वोत्तम बाल कलाकार पुरस्कार : सन्तोष रेड्डी
बाल कलाकार संतोष रेड्डी को रजत कमल और 5,000 रुपए का नगद पुरस्कार

सर्वोत्तम पार्श्व गायक पुरस्कार : के.जे. येसुदास
पार्श्व गायक : के.जे. येसुदास को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम पार्श्व गायिका पुरस्कार : वाणी जयराम
पार्श्व गायक : वाणी जयराम को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम गीतकार पुरस्कार : के.एस. नरसिम्हा स्वामी
गीतकार : के.एल. नरसिंम्हा स्वामी को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम असमिया कथाचित्र पुरस्कार : सरोथी
निर्माता : डॉ. भवेन्द्र नाथ सैकिया को रजत कमल और 20,000 रुपए का नगद पुरस्कार।
निर्देशक : डॉ. भवेन्द्र नाथ सैकिया को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार ।

सर्वोत्तम बंगला कथा चित्र पुरस्कार : अन्तर्धान
निर्माता : नवकुमार चंद्र, स्वप्न मित्रा तथा सुचेता मिश्रा को रजत कमल और 20,000 रुपए का नगद पुरस्कार।
निर्देशक : तपन सिन्हा को रजत कमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम हिंदी कथाचित्र पुरस्कार : दीक्षा और धारावी
निर्माता : राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम लि. और दूरदर्शन (दीक्षा के लिए) राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम और दूरदर्शन (धारावी) को रजत कमल और 20,000 रुपए का नकद पुरस्कार।
निर्देशक : अरुण कौल (दीक्षा के लिए) और सुधीर मिश्र (धारावी के लिए) को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम कन्नड़ कथा चित्र पुरस्कार : मैसूरा मल्लिगे
निर्माता : श्री हरि एल खोड़े को रजनकमल और 20,000 रुपए का नगद पुरस्कार।
निर्देशक : टी.एस. नागभरण को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम मलयालम कथा चित्र पुरस्कार : कड़ावु
निर्माता : एम.टी. वासुदेवन नायर को रजत कमल और 20,000 रुपए का नगद पुरस्कार।
निर्देशक : एम.टी. वासुदेवन नायर को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम उड़िया कथा चित्र पुरस्कार : तारा
निर्माता : विजया जेना को रजत कमल और 20,000 रुपए का नकद पुरस्कार
निर्देशक विजय जेना को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम तमिल तथाचित्र पुरस्कार : वन्ना वन्ना पूक्कल
निर्माता : एस. धानु को रजत कमल और 20,000 रुपए का नगद पुरस्कार।
निर्देशक बालु महेन्द्रा को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार

सर्वोत्तम तेलुगू कथाचित्र पुरस्कार : भद्रम कोडुको
निर्माता : वी. रामचंद्र राव को रजत कमल और 20,000 रुपए का नकद पुरस्कार।
निर्देशक : ए. कुटुम्बराव को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

राष्ट्रीय एकता पर सर्वोत्तम कथाचित्र का नरगिस दत्त पुरस्कार : आदि मीमांसा (उड़िया)
निर्माता : ए.के. बीर को रजत कमल और 30,000 रुपए का नगद पुरस्कार।
निर्देशक ए.के. बीर को रजत कमल और 15,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

परिवार कल्याण पर सर्वोत्तम कथाचित्र : दुर्गा (हिंदी)
निर्माता : राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम लिमिटेड को रजत कमल और 30,000 रुपए का नगद पुरस्कार।
निर्देशक : बासु चटर्जी को रजत कमल और 15,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सामाजिक विषयों पर सर्वोत्तम कथाचित्र पुरस्कार : यमनम (मलयालम)
निर्माता अजमन वरी कोलिल को रजत कमल और 30,000 रुपए का नगद पुरस्कार।
निर्देशक : पद्मश्री भारत गोपी को रजत कमल और 15,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

सर्वोत्तम बाल कथाचित्र पुरस्कार : अभयम (मलयालम)
निर्माता : भारतीय बालचित्र समिति को स्वर्ण कमल और 30,000 रुपए का नकद पुरस्कार।
निर्देशक शिवन को स्वर्ण कमल और 15,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

निर्णायक मण्डल का विशेष पुरस्कार : सौमित्र चटर्जी
अभिनेता : सौमित्र चटर्जी को रजत कमल और 10,000 रुपए का नगद पुरस्कार।

विशेष उल्लेख : ममता शंकर
निर्णायक मण्डल ने बंगला फिल्म आगन्तुक में एक गृहिणी की भूमिका निभाने के लिए ममता शंकर का विशेष उल्लेख किया है।

विशेष उल्लेख : रवीन्द्रन
निर्मणिक मण्डल ने मलयालम फिल्म भारतम् के गीतों के लिए रवीन्द्रन के संगीत के ऊँचे स्तर का भी विशेष उल्लेख किया है।

पुरस्कार जो नहीं दिए गए : कथाचित्र निर्णायक मण्डल ने निम्नलिखित पुरस्कार प्रदान नहीं किए हैं।
1. सर्वोत्तम विशेष प्रभाव
2. सर्वोत्तम नृत्यकला

संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं से इतर भाषा में सर्वोत्तम कथा चित्र पुरस्कार।
4. पर्यावरण संरक्षण परिरक्षण पर सर्वोत्तम कथाचित्र पुरस्कार।

5. लोकप्रिय एवं स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करने वाले सर्वोत्तम कथा चित्र पुरस्कार।

6. सर्वोत्तम गुजराती तथा चित्र पुरस्कार।

7. सर्वोत्तम मराठी कथा चित्र पुरस्कार।

8. सर्वोत्तम पंजाबी कथा चित्र पुरस्कार।

निम्नलिखित भाषाओं में प्रविष्टियाँ प्राप्त नहीं हुई हैं : कश्मीरी/संस्कृत/सिंधी/उर्दू

गैर - कथाचित्र पुरस्कार

सर्वोत्तम गैर - कथाचित्र पुरस्कार : सन्स ऑव अबोतानी : द मिसिंग

निर्माता : दिलीप डोले को स्वर्णकमल और 15,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

निर्देशक : गौतम बोरा को स्वर्णकमल और 15,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

निर्देशक का सर्वोत्तम प्रथम गैर-कथाचित्र पुरस्कार : कमलाबाई (हिन्दी)

निर्माता : रीना मोहन को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम मानव शास्त्रीय/मानव जातीय फ़िल्म पुरस्कार : द वेलिएन्ट वन्स (अंग्रेजी)

निर्माता : ए.के. बालकृष्णन् को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

निर्देशक : ए.के. बालकृष्णन् को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम जीवनी फ़िल्म पुरस्कार : भावांतरण (उड़िया) और कबिनार अनन्त जात्रा पथे (बंगला)

निर्माता : मेसर्स बॉम्बे सिनेमाटोग्राफ प्रा.लि. (भावांतरण के लिए) और पश्चिम बंगाल सरकार के सूचना और संस्कृति विभाग (कबितार अनन्त जात्रा पथे के लिए) को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

निर्देशक : कुमार शाहनी (भावांतरण के लिए) तथा सनन कुमार दासगुप्ता (कबितार अनन्त जात्रा पथे के लिए) को रजत कमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम कला/सांस्कृतिक फ़िल्म पुरस्कार : संचारी (अंग्रेजी)

निर्माता : अरुण खोपकर को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

निर्देशक अरुण खोपकर को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम वैज्ञानिक फ़िल्म पुरस्कार : साइलेन्ट वेली (एन इण्डियन रेन फॉरेस्ट डअंग्रेजी)

निर्माता इको मीडिया प्रा.लि. को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

निर्देशक शेखर दत्तात्री और रेवती मुखर्जी को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम पर्यावरण/संरक्षण/परिरक्षण फ़िल्म पुरस्कार : मुदियाली एकनी विकल्प पंथा (अंग्रेजी)

निर्माता दिलीपकुमार राय को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

निर्देशक समीरन दत्ता को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

प्रोत्साहन देने वाली सर्वोत्तम फ़िल्म पुरस्कार : ऑफ माइन्स एण्ड मेन (अंग्रेजी)

निर्माता पी.सी.शर्मा को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

निर्देशक रघुकृष्ण को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम कृषि फ़िल्म पुरस्कार : मुलबेरियम पट्टुनूलम (मलयालम)

निर्माता केरल राज्य फ़िल्म विकास निगम लि. को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

निर्देशक पी.वी. गोविन्दन को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम ऐतिहासिक पुर्नानिर्माण/संकलन फ़िल्म पुरस्कार : आनन्द भवन (अंग्रेजी)
निर्माता वी.बी. चन्द्रा को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।
निर्देशक यश चौधरी को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सामाजिक विषयों पर सर्वोत्तम फ़िल्म पुरस्कार : आइज़ ऑव स्टोन (हिन्दी/मेवाड़ी)
निर्माता नीलिता वाच्छानी को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।
निर्देशक नीलिता वाच्छानी को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम शैक्षिक/प्रेरक/शिक्षाप्रद फ़िल्म पुरस्कार : ए स्टोरी ऑव ट्रायम्फ (अंग्रेजी)
निर्माता पूना जिला कुष्ठ रोग समिति को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।
निर्देशक विश्राम रेवंकर को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम खोजी फ़िल्म पुरस्कार : भागीरथी की पुकार
निर्माता अनवर जलाल को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।
निर्देशक अनवर जलाल को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम कार्टून फ़िल्म पुरस्कार : बल्लूशाह (हिन्दी)
निर्माता भारतीय बाल चित्र समिति को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।
निर्देशक राजेश अग्रवाल को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।
कार्टूनकार एस.एम.हसन को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।
निर्णायक मण्डल का विशेष पुरस्कार : मिटी पंग (अंग्रेजी) और आकृति
निर्देशक अरिबम श्याम शर्मा (मिटी पंग के लिए) और वी.नरसिंगराव (आकृति के लिए) को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम लघु कल्पित फ़िल्म पुरस्कार : पुनरावृत्ति और तोतानामा (हिन्दी)
निर्माता भारतीय फ़िल्म एवं टेलीविजन संस्थान के निर्देशक (पुनरावृत्ति) और विकास सातवलेर (तोतानामा) को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।
निर्देशक इमोसिंह (पुनरावृत्ति के लिए) और चन्दिता मुखर्जी (तोतानामा के लिए) को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

परिवार कल्याण पर सर्वोत्तम फ़िल्म पुरस्कार : ए मैटर ऑव मदरहुड (अंग्रेजी)
निर्माता राजीव मेहरोत्रा को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम छायांकन पुरस्कार : साइलेन्ट वेली-एन इण्डियन रेन फॉरेस्ट (अंग्रेजी)
छायाकार शेखर दत्तात्री को रजतकमल और 10,00 रुपए का नकद पुरस्कार।
फ़िल्म की प्रोसेसिंग करने वाली प्रयोगशाला "प्रसाद फ़िल्म लेबोरेट्रीज़" को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम ध्वनि आलेखन पुरस्कार : सन्स ऑव अबोतानी : द मिसिंग
ध्वनि आलेखक अनिल तालुकदार और गौतम बोरा को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम सम्पादन पुरस्कार : संचारी (अंग्रेजी)
फ़िल्म सम्पादक राजेश परमार को रजतकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।
विशेष उल्लेख : देवल बासु

गैर-कथाचित्र निर्णायक निर्णायक मण्डल ने देवल बासु का लिविंग ऑन द जंक फ़िल्म के निर्देशन के लिए विशेष उल्लेख किया है।

पुरस्कार जो नहीं दिए गए (गैर-कथा चित्र)

गैर कथा चित्र निर्णायक मण्डल ने सर्वोत्तम खोजी/साहसिक फ़िल्म को (खेल सहित) पुरस्कार नहीं दिया।

सिनेमा लेखन पुरस्कार

सर्वोत्तम सिनेमा पुस्तक पुरस्कार : आत्मा निन्डे युडे पूक्कल (मलयालम) (आत्मनिंदा के पुष्प)

लेखक अरविन्दन वालचीरा को स्वर्णकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

प्रकाशक : वी.आर.पुष्पकरण को स्वर्णकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

सर्वोत्तम फ़िल्म समीक्षक पुरस्कार : गौतम कौल

फ़िल्म समीक्षक गौतम कौल को स्वर्णकमल और 10,000 रुपए का नकद पुरस्कार।

- **प्रस्तुति : आदर्श गर्ग**
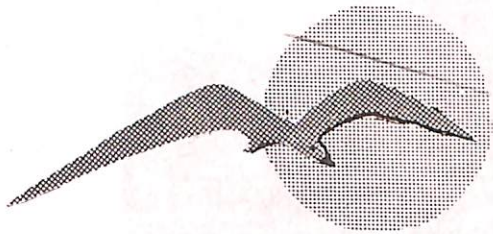
सैतीसवें

फिल्म फेअर पुरस्कार : १९९२

*फ़िल्म : लम्हें

* निर्देशक : सुभाष घई (सौदागर)।

* अभिनेता : अमिताभ बच्चन (हम) एवं राजकपूर पुरस्कार।

* अभिनेत्रीः श्री देवी (लम्हें)

* सह-अभिनेता : डैनी डेंजोंग्या (सनम बेवफा)

* सह. अभिनेत्री : फरीदा जलाल (हिना)

* हास्य अभिनेता : अनुपम खेर (लम्हें)

* खलनालयक : सदाशिव अमरापुरकर (सड़क)

* कथा : हनी ईरानी (लम्हें)

* संगीतकार : नदीम -श्रवण (साजन)

* गीतकार : गुलजार

* पार्श्व गायक : कुमार सानू
(मेरा दिल भी कितना .... साजन)

* पार्श्व गायिका : अनुराधा पौड़वाल (दिल है कि मानता नहीं।)

फिल्म लम्हे में अनुपम खेर, अनिल कपूर और श्रीदेवी

फिल्म फूल और काँटे में मधु और अजय देवगन

* एक्शन : वीरू देवगन (फूल और काँटे)
* छायांकन : राधू करमाकर (हिना)
* पटकथा : तपन सिन्हा (एक डॉक्टर की मौत)
* संवाद : डॉ. राही मासूम रजा (लम्हें)
* कला निर्देशक : आर. बर्मन (हम)
* नृत्य निर्देशक : चिन्नी प्रकाश (हम)
* वृत्तचित्र : राम के नाम (आनंद पटवर्धन)
* फ़िल्म का समीक्षक पुरस्कार : अरुण कौल (दीक्षा)
* ध्वनि मुद्रण : एस. सी. मांबरी (पत्थर के इंसान)
* संपादक : वामन भोंसले एवं गुरुदत्त शिराली (सौदागर)
* आलोचक पुरस्कार : डिम्पल कापड़िया (दृष्टि)

● **प्रस्तुति : आदर्श गर्ग**

सण्डे आब्जर्वर : प्रथम स्क्रीन अवार्ड १९९२

सर्व-श्रेष्ठ कलाकार फ़िल्म

* फ़िल्म उद्योग को योगदान एवं अर्जित उपलब्धियों के लिए : अशोक कुमार
* विशेष सम्मान ललिता पवार बिंदु नादिरा हेलन अरुणा ईरानी अजीत और के.एन. सिंह
* कथा-चित्र : यश चोपड़ा (लम्हें)
* निर्देशक (समीक्षक) : यश चोपड़ा (लम्हें)
* निर्देशक (लोकप्रियता) : सुभाष घई (सौदागर)
* अभिनेत्री (समीक्षक : डिम्पल कपाड़िया (लेकिन)
* अभिनेत्री (लोकप्रियता) : श्री देवी (लम्हें)
* अभिनेता (समीक्षक) : अनिल कपूर (लम्हें)
* अभिनेता (लोकप्रियता) : अमिताभ बच्चन (हम)
* खलनायक : सदाशिव'अमरापुरकर (सड़क)
* सहायक अभिनेत्री : अश्विनी भावे (हिना)
* सहायक अभिनेता : अनुपम खेर (लम्हें)
* हास्य अभिनय : अनुपम खेर (दिल है कि मानता नहीं)

फिल्म हम : किमी काटकर और अमिताभ बच्चन

*(सर्वाधिक लोकप्रिय अमिताभ बच्चन)
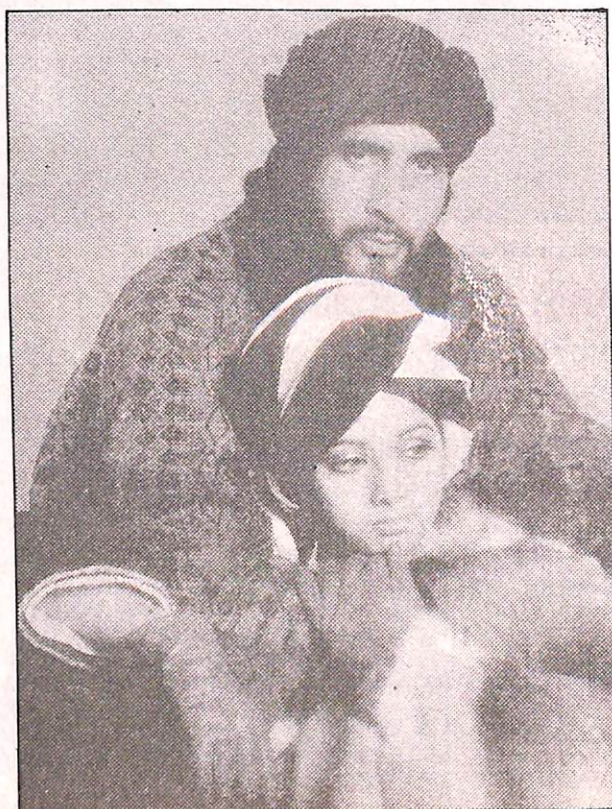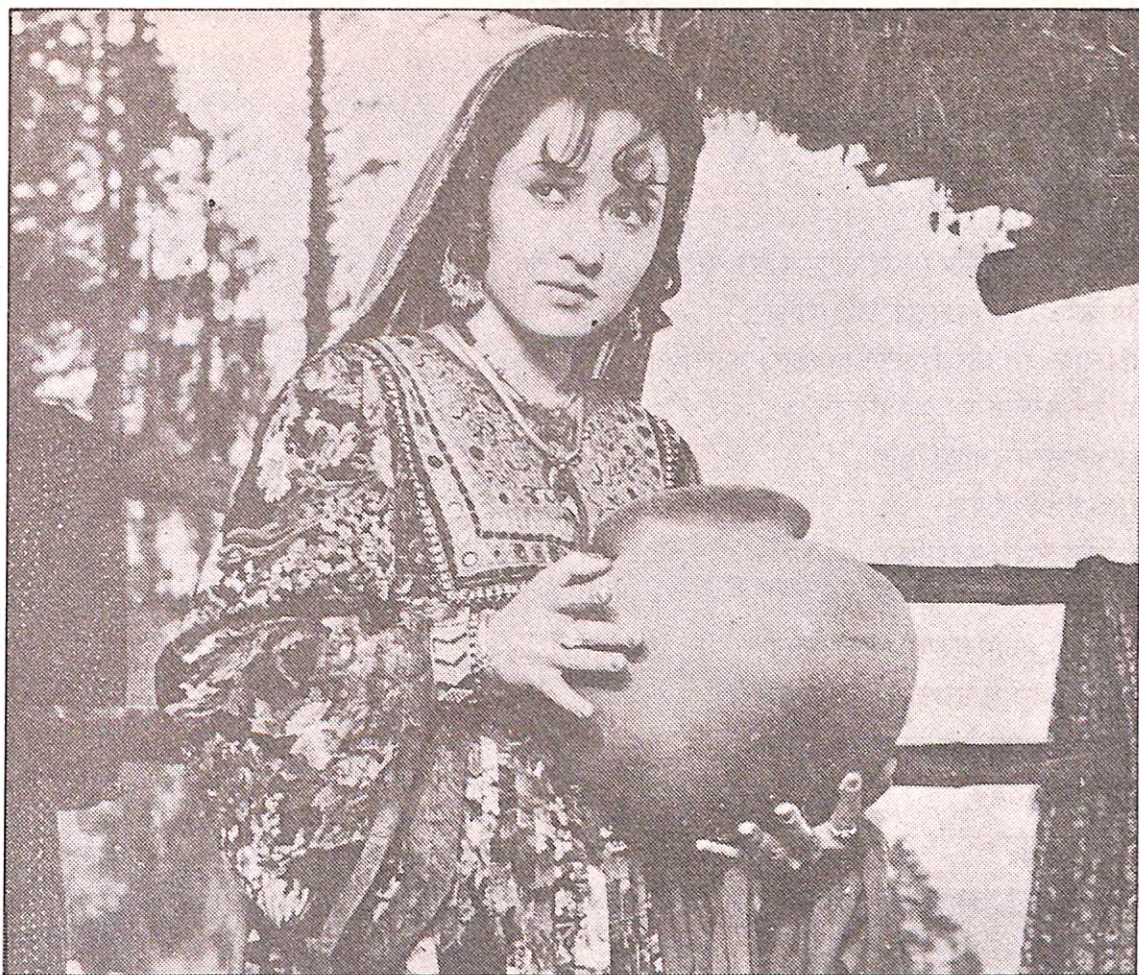
फिल्म हिना : जेबा बख्तियार

* पार्श्व गायिका : लता मंगेशकर लेकिन (यारा सिली सिली)

* पार्श्व गायक : कुमार सानू दिल है कि मानता नहीं (तू प्यार है किसी और का)

* संगीत निर्देशक : नदीम -श्रवण (साजन)

* गीतकार : समीर साजन (मेरा दिल भी कितना आशिक है)

* कहानी कार (पटकथा) : हनी ईरानी (लम्हें)

* संवाद लेखन : कमलेश पांडे (सौदागर)

* छायांकन : राधू करमाकर (हीना)

* कला निर्देशन : नितिश रॉय (लेकिन)

* संपादन : केशव नायडू (लम्हें)

* ध्वनि अंकन : कुलदीप सूद (हम)

* वेशभूषा : भानू अथैया (हिना)

* पार्श्व संगीत : चिन्नी प्रकाश (हम)

* द्वंद- निर्देशन : वीरू देवगन (फूल और काँटे)

● **प्रस्तुति : पी.आर. जोशी**

महाराष्ट्र राज्य उनतीसवें मराठी फिल्म पुरस्कार १९९२

सर्वोत्तम कलाकार फ़िल्म

* फिल्म प्रथम : स्मिता तलवलकर (दादा साहब फालके पुरस्कार) चौकटराजा
* द्वितीय : प्रदीप बेर्लेकर वैद्य (बाबूराव पेंटर पुरस्कार)
* तृतीय : संजीव नाइक (मास्टर विनायक पुरस्कार) अनापेक्षित
* फिल्म : सामाजिक समस्या प्रधान : प्रतिकार
* निर्देशन (1) संजय सूरकर चौकट राजा
* निर्देशक (2) प्रदीप बेर्लेकर वैद्य
* निर्देशक (3) संजीव नाईक अनापेक्षित
* अभिनेता : दिलीप प्रभावलकर चौकटराजा
* अभिनेत्री : राजेश्वरी (प्रथम प्रवेश) आत्या घरात घरोबा
* सहायक अभिनेता : अशोक सराफ आत्या घरात घरोबा
* सहायक अभिनेत्री : सुलभा देशपांडे चौकट राजा
* पटकथा : प्रकाश बेर्लेकर वैद्य
* संवाद : विकास रक्ते प्रतिकार

फिल्म काल रात्री बारा वाजता : प्रमोद शिन्दे और नन्दू पाटिल

* गीतकार : जगदीश खेबुदकर झे.पी.
* संगीत निर्देशन : अरविद पवार काल रात्रि बारा वाजतां
* बाल कलाकार : बेबी राजसी चौकट राजा
* छायांकन : तंदू पाटिल वैद्य
* पार्श्व गायिका : आशा भोसले चौकट राजा
* पार्श्व गायिक : रवींद्र साठे पश्चाताप
* कला निर्देशक : अजीत दांडेकर चौकट राजा
* वेषभूषा : अनिता बेर्डे एक फुल चार हाफ
* रंगभूषाकर : विलास कुदलकर चौकट राजा
* ध्वनि मुद्रण : उषा नाईक काल रात्रि बारा वाजता
* प्रचार : विज्ञापन सुरेश देशमाने काल रात्रि बारा वाजता

विविध पुरस्कार, सम्मान, अलंकरण : १९९२

राष्ट्रीय पदालंकरण से विभूषित भारतीय-चल चित्र जगत की हस्तियाँ
* सत्यजीत राय (फ़िल्मकार) 'भारतरत्न'
* स्वर्गीय वी. शांताराम (फ़िल्मकार) पद्म-विभूषण (मरणोपरांत)
* नौशाद अली (संगीत निर्देशक) पद्मभूषण
* तलत महमूद (पार्श्व गायक) पद्मभूषण
* बी. सरोजादेवी (अभिनेत्री) पद्मभूषण
* गिरीश कर्नाड (नाट्यकार व अभिनेता) पद्मभूषण
* हरिप्रसाद चौरसिया (शिव-हरी जोड़ी) बाँसुरी वादक। पद्मभूषण
* कल्याण जी- आनंदजी (संगीत-निर्देशक) पद्मश्री
* श्रीमती जयाबच्चन (अभिनेत्री) पद्मश्री
* मनोज कुमार (अभिनेता-निर्देशक) पद्मश्री
* आशा पारिख (अभिनेत्री) पद्मश्री
* के. विश्वनाथ (फ़िल्मकार) पद्मश्री
* तपन सिन्हा (निर्देशक) पद्मश्री
* दादा साहब फालके अवार्ड 1992
* भाल चंद्र गोविद पेंढारकर (भालजी) 94- सफल फ़िल्मकार भारतीय फ़िल्म उद्योग के अग्रणी संस्थापक पितृ पुरुषीय व्यक्तित्व लेखक-निर्देशक के रूप में 1920 में फिल्म उद्योग में प्रवेश आज भी कार्यशील। 60 मराठी एवं हिन्दी ऐतिहासिक व सांस्कृतिक स्वातंत्रता संग्राम विषयक फ़िल्मों का निर्माण।
* लता मंगेशकर पुरस्कार 1991 एवं 1992 (म.प्र. शासन)
* के.जी. येसुदास : पार्श्व संगीत में विशिष्ट उपलब्धि व योगदान के लिए 1991
* आर.डी. बर्मन : संगीतकार वर्ष 1992 के लिए
* गान-समृद्धिनी लता मंगेशकर पुरस्कार 1992 (महाराष्ट्र) शासन द्वारा स्थापित
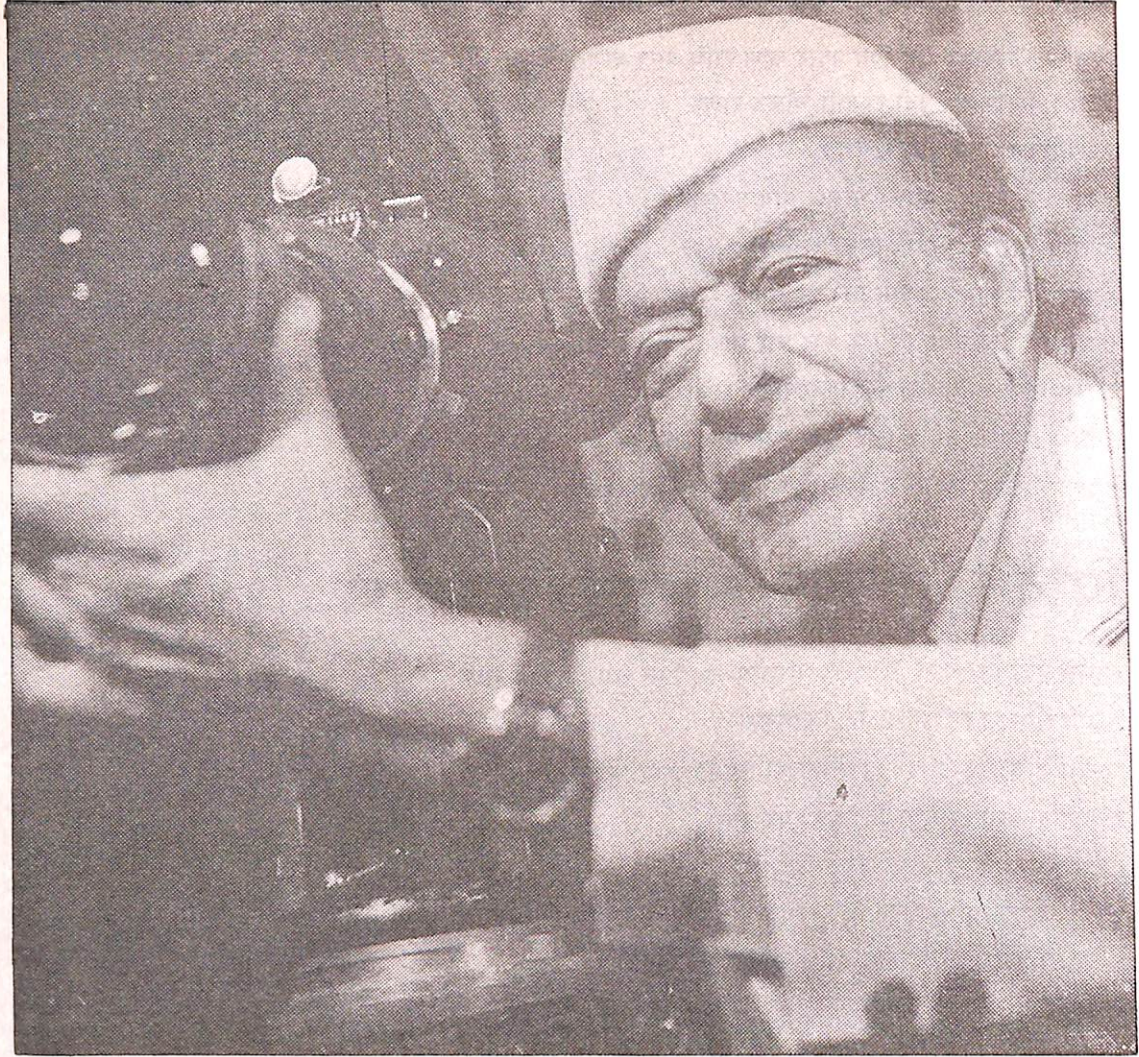
फिल्मी दुनिया के आखरी मुगल शांताराम : मरणोपरांत पद्म विभूषण

* श्रीमती माणिक वर्मा (शास्त्रीय संगीत गायिका)
* प्रथम नटराज अवार्ड अमेरिका में भारतीय आप्रवास्तियों द्वारा संस्थापित भारतीय नटराज अवार्ड इनकारपोरेशन न्यूयार्क।
* अमिताभ बच्चन (अभिनेता) नटराज रत्न फ़िल्म उद्योग को बहुमूल्य योगदान हेतु
* बी.आर. चोपड़ा (निर्माता-निर्देशक) नटराज रत्न
* राजकपूर (महान फ़िल्मकार) नटराज रत्न (मरणोपरांत जीवन पर्यन्त फ़िल्म उद्योग की सेवा
* अमिताभ बच्चन (श्रेष्ठ अभिनय) हम
* रणधीर कपूर (श्रेष्ठ फ़िल्म) हिना
* सुभाष घई (श्रेष्ठ निर्देशन) सौदागर
* माधुरी दीक्षित (श्रेष्ठ अभिनेत्री) 'साजन'
* अनुपम खेर (श्रेष्ठ हास्य कलाकार)
* यश चोपड़ा (क्रिटीम अवार्ड)
* सलमान खान (जवानों की धड़कन अवार्ड)

भारतीय सिनेदर्शक अकादमी द्वारा २१ वें वार्षिक पुरस्कार

* प्राण : (चरित्र अभिनेता) फ़िल्म उद्योग को अब तक विशिष्ट योगदान के लिए 'अभिनय सम्राट'
* मीनाक्षी शेषाद्रि (अभिनेत्री) : 'अभिनय रत्न'
* शबाना आजमी श्रेष्ठ अभिनय- 'दिशा'
* ऋषि कपूर (अभिनेता) : श्रेष्ठ अभिनय हिना
* सईद जाफरी (सहायक अभिनेता) श्रेष्ठ अभिनय हिना
* रणधीर कपूर (निर्देशक) श्रेष्ठ निर्देशन हिना
* रजामुराद (चरित्र अभिनेता) श्रेष्ठ खलनायक हिना
* आशा सचदेव (सहायक अभिनेत्री) श्रेष्ठ अभिनय 'बागी'
* मनीषा कोइराला (अभिनेत्री) सर्वोत्तम अभिनय : 'सौदागर'
* सुधाकर बोकाड़े (निर्माता-निर्देशक) निर्माण : 'साजन'
* नदीम -श्रवण (संगीत निर्देशक) श्रेष्ठ संगीत : 'साजन'
* रीमा राकेशनाथ (लेखक) श्रेष्ठ कहानी : 'साजन'
* लक्ष्मीकांत बेर्डे (हास्य कलाकार) श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य 'साजन'
* अजय देवगन श्रेष्ठ नवोदित कलाकार 'फूल और काँटे'
* मिनी तव्वसुम (बाल कलाकार) श्रेष्ठ बाल कलाकार : 'हम'

मध्यप्रदेश फ़िल्म विकास निगम द्वारा राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार १९९२ (हिन्दी सिनेमा)

* 'दीक्षा' सर्वोत्तम हिदी फ़िल्म प्रथम - अरुण कौल रु. 51,000-00 (राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम एवं दूरदर्शन)
* 'लिबास' श्रेष्ठ हिन्दी फ़िल्म द्वितीय विकास मोहन रु. 21,000-00
* 'प्रहार' सर्वश्रेष्ठ निर्देशन- नाना पाटेकर रु. 31,000 एवं प्रशस्ति पत्र।

प्रथम अमीर खुसरो अवार्ड १९९२

(1) नौशाद अली (संगीतकार)
(2) कैफी आजमी (गीतकार एवं शायर)
(3) सुनील दत्त (अभिनेता, निर्देशक एवं सांसद)
(4) डॉ. राही मासूम रजा (साहित्यकार लेखक, व शायर) (मरणोपरांत)

* राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम द्वारा वित्त पोषित फिल्मों को 14 राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त।
* 'आगन्तुक' (श्रेष्ठ कथा-चित्रश्रेष्ठ निर्देशन ममता शंकर, अभिनेत्री स्पेशल जूरी)
* 'दीक्षा' (श्रेष्ठ हिन्दी फ़िल्म)
* 'धारावी' (श्रेष्ठ संगीत एवं सम्पादन)
* 'आदि मीमांसा' (श्रेष्ठ राष्ट्रीय एकता फिल्म एवं छायांकन)

* 'दुर्गा' (परिवार-कल्याण पर श्रेष्ठ फ़िल्म)

* 'यमनम' (मलयालम श्रेष्ठ सामाजिक समस्या पर कथा चित्र)

* 'तारा' (श्रेष्ठ क्षेत्रीय भाषा उड़िया फ़िल्म)

* यज्ञनम (तमिल फ़िल्म श्रेष्ठ सहायक अभिनेता व अभिनेत्री)

मजरूह सुल्तानपुरी : (कवि, शायर, गीतकार)। उदूर् साहित्य का इकबाल सम्मान अवार्ड 1991-92 पुस्तक 'गजल' के लिए (मध्यप्रदेश राज्य सरकार द्वारा) आठ आवृतियाँ मजरूह के गानों के साहित्यिक मानवता वास्तविकता के साथ फ़िल्मों को मोहक व खूबसूरत बनाया।

'आदि मीमांसा' ए.के. बीर निर्देशित उड़िया फ़िल्म को 5 उड़ीसा राज्य फ़िल्म पुरस्कार

* श्रेष्ठ उड़ीसा फ़िल्म महासुंदर दवे गोस्वामी अवार्ड

* श्रेष्ठ निर्देशन ए.के. बीर

* श्रेष्ठ अभिनय ललतेंदू रथ

* श्रेष्ठ कहानी महापात्र नीलमणि साहू

* श्रेष्ठ छायांकन ए.के. बीर

* स्व. वी. शांताराम (किरण शांताराम) ऋषिकेश मुखर्जी चंद्रशेखर कल्याणजी-आनंदजी प्राण - इन फ़िल्म कारों को फ़िल्मोद्योग की बेहतरी के लिए की गई सेवाओं के प्रति इम्पा (भारतीय चलचित्र निर्माता संघ ने ट्राफिज से सम्मानित किया।

* अपर्णा सेन (अभिनेत्री)। मृणाल सेन निर्मित 'महापृथ्वी' में श्रेष्ठ अभिनय के लिए ताशकंद फेस्टिबल में श्रेष्ठ अभिनेत्री के सम्मान से पुरस्कृत।

* डॉ. राजकुमार (प्रख्यात दक्षिण भारतीय अभिनेता) कर्नाटक सरकार द्वारा 'कर्नाटक रत्न' पदवी से विभूषित।

भारतीय विद्या भवन बम्बई द्वारा मूकयुगीन फिल्म कलाकारों का सम्मान :

* भाल जी पेंढारकर * शंकर भाई भट्ट * विजय भट्ट * होमी वाडिया * पेंस्टन जी कूका * ललिता पवार * पी. जयराज * मेहताव बानू * विट्ठलदास पंचोटिया रतीलाल शाह * नरसिंहदास ढक्कर * चंद्रराव कदम * सोमनाथ शुक्ला * हरीलाल ड्रेसवाला * बलवान दवे।

* विजया मेहता (रंगकर्मी, निर्देशिका लेखक अभिनेत्री) (सतत् समग्र अवदान। श्रेष्ठ स्तर सृजनात्मक प्रतिबद्धता व प्रेरणा स्त्रोत के लिए मध्यप्रदेश शासन द्वारा) कालिदास सम्मान 1991-92 **प्रस्तुति पी.आर. जोशी**

१९९२ दादा साहेब फालके पुरस्कार

चित्रपट तपस्वी : भालजी पेंढारकर

● **शशिकांत किणीकर**

इस वर्ष का दादा साहेब फालके पुरस्कार जिस महान फिल्म विभूति को दिया गया, उनके बारे में कहना मुश्किल है कि अवार्ड से वे सम्मानित हुए अथवा उनसे स्वयं अवार्ड की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि हुई है। भालचंद्र गोपाल उर्फ भालजी पेंढारकर भारतीय सिनेमा के पितृ पुरुष कहे जाने वाले दादा साहब फालके के ही समकालीन हैं पूरे सत्तर साल जिस व्यक्ति ने सक्रिय रूप से सिनेसंसार में गुजारे, वह अपने-आप में एक किवदन्ती से कम नहीं। शायद ही दुनिया में चित्रपट पर इतनी लम्बी उपस्थिति का दूसरा उदाहरण मौजूद हो। भालजी पेंढारकर के कृतित्व के सापेक्ष हिन्दुस्तानी सिनेमा का समूचा इतिहास रेखांकित किया जा सकता है। अपने सात दशकीय फ़िल्मी जीवन में उन्होंने अनेक फ़िल्मों के निर्माण, निर्देशन और पटकथा लेखन में अपना योगदान दिया है।

भालजी पेंढारकर को १९९२ का दादा साहेब फालके अलंकरण इनके कोल्हापुर निवास पर प्रदान करते हुए सूचना एवं प्रसारण मंत्री अजीत पांजा

3 मई 1899 को जन्मे मालजी के पिता एक स्थापित चिकित्सक थे। उन्होंने यह पेशा नहीं अपनाया। अपने गृहनगर कोल्हापुर में मैट्रिक करने के बाद वे पूना चले गए। यहाँ एक सिनेमाघर में गेटकीपर की नौकरी कर ली। फ़िल्म -जगत से यह उनका पहला संपर्क था। लेकिन जल्दी ही इस नौकरी को छोड़कर उन्होंने लोकमान्य तिलक के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'केसरी' के लिए काम करना शुरू कर दिया। अखबारनवीसी और राजनीति से कुछ दिनों तक संबद्ध रहने के बाद भालजी पेंढारकर ने 'सिनेमा समाचार' नाम से एक फिल्मी मुखपत्र निकाला। इसी के माध्यम से उनका परिचय सोहराव मोदी से हुआ, जिनके साथ वे रंगमंच के लिए नाटक लिखने लगे। 1922 में बाबूराव पेंटर के अनुरोध पर उन्होंने पहली बार एक फिल्म 'मार्कन्डेय' के लिए पटकथा लिखी। लेकिन प्रौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित इस फ़िल्म का निर्माण पूरा नहीं हो सका।

भालजी को फिल्म -जगत में अगला मौका 'पृथ्वी वल्लभ' फ़िल्म के लिए निर्देशन और लेखन के रूप में मिला। इस फ़िल्म में उन्होंने विलेन की भूमिका निभाई थी। इक दफा फ़िल्म-माध्यम के प्रति रूचि जागृत होने के बाद उन्होंने अपने भाई बाबूराव पेंढारकर के साथ मिलकर अपनी निजी फिल्म कंपनी 'वंदे मातरम' की आधारशिला रखी। लेकिन इसके बैनर में केवल एक ही फ़िल्म बन पाई और वह थी 'वंदे मातरम आश्रम' (1927) ब्रिटिश सरकार की तीखी आलोचना के कारण इस फ़िल्म को प्रतिबंधित कर दिया गया था, और भाल जी को जेल की सजा सुनाई गई। मजबूरन उन्हें अपनी फ़िल्म कंपनी को बंद करना पड़ा।

1929 में भाल जी कोल्हापुर लौट गए और एक नई फ़िल्म कंपनी 'प्रभात' के लिए फ़िल्में लिखने का काम करने लगे। 'रानी रूपमती' (1931) इस दौर की एक प्रमुख फ़िल्म थी। देश में सवाक सिनेमा के सूत्रपात के साथ उन्होंने एक अत्यंत सफल फिल्म 'श्यामसुंदर' के लिए संवाद और गाने लिखे। 1934 में महाराजा कोल्हापुर की मदद से भालजी पेंढारकर ने 'कोल्हापुर सिनेटोन' नाम से एक फ़िल्म स्टूडियो खोला। यहाँ उन्होंने 'आकाशवाणी' नेताजी पालकर 'सोनबाई' आदि मराठी फ़िल्मों का

निर्माण किया थोड़े अंतराल में ही उनका स्टुडियो देश के सर्वाधिक चर्चित और सुविधा संपन्न फ़िल्मांकन स्थलों में गिना जाने लगा था।
उत्साहित हो कर भाल जी ने 1943 में अपनी नई फ़िल्म कंपनी 'प्रभाकर चित्रा' की शुरूआत की। 'बहिरजी नाइक' इस बैनर की पहली फ़िल्म थी, जिसके बाद भाल जी ने लगातार अत्यंत सफल हिन्दी फ़िल्मों का निर्माण किया। इनमें 'महारथी-कर्ण, 'वाल्मीकि' और 'सुवर्ण भूमि' के नाम प्रमुख हैं।
एक सफल फ़िल्मकार के रूप में स्थापित होने के बाद भालजी को 1948 में अचानक एक अप्रत्याशित आघात सहना पड़ा। दरअसल कैरियर की शुरुआत के दिनों में उनके हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कुछ नेताओं के साथ मित्रतापूर्ण संबंध थे। इसलिए गोडसे द्वारा गाँधी जी हत्या के बाद उत्तेजित लोगों ने जब इन दलों पर गुस्सा उतारा तो उनका स्टुडियो भी जला दिया। करीब एक करोड़ का नुकसान सहने के बावजूद भालजी पेंढारकर ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने कर्ज लेकर फ़िल्मों का निर्माण जारी रखा। आर्थिक परेशानियों से न उबर पाने के कारण वे अन्य फ़िल्म-निर्माताओं के लिए पटकथा लेखन और निर्देशन का काम करने लगे। उनकी आखिरी फ़िल्म-कृतियों में 'गनिमी कावा' विशेष रूप से सफल रही।
भालजी पेंढारकर की फ़िल्मों में तीन मुख्य संदेश होते थे : स्वदेश (मातृभूमि से प्यार)। स्वभाव (मातृभाषा से प्यार) और स्वधर्म (अपने धर्म के प्रति प्रेम)। अत्यंत प्रभावशाली संवादों के जरिए उन्होंने अपनी फिल्मों में राष्ट्रप्रेम की भावना को खास तौर पा अनुप्राणित किया। महारथी कर्ण, छत्रपति शिवाजी और साधि मानस को वे अपनी सर्वश्रेष्ठ फ़िल्में मानते हैं। हिन्दी और मराठी सिनेमा की कई महत्वपूर्ण हस्तियों को फ़िल्म-जगत में लाने का श्रेय भाल जी को जाता है। इनमें शांता आप्टे, साहू मोडक सुलोचना राजकपूर और जुबेदा जैसे विख्यात नाम भी शामिल हैं।
फ़िल्म -जगत में एक युग का इतिहास रचने के बाद भालजी पेंढारकर आजकल अपनी आत्मकथा लिखने में व्यस्त हैं। उनकी महती सेवाओं के लिए मराठी इंडस्ट्री ने उन्हें 'चित्र तपस्वी' की उपाधि दी थी। निश्चित रूप से भालजी के कर्मठ और सर्मपित फ़िल्मी कैरियर को देखते हुए यह संबोधन नितांत उपयुक्त जान पड़ता है। ●

लता मंगेशकर पुरस्कार पर विशेष

धन्नो की आँखों में रात का सुरमा

● **अजात शत्रु**

आधुनिक भारत के हिंदी फिल्म संगीत में राहुल देव बर्मन का स्थान उस दूधिया विद्युत बल्ब की तरह है, जो किसी प्राचीन मंदिर के गर्भगृह में जल रहा है। एक तुलसी के बिरवे की तरह है, जो किसी महानगर की बालकनी से नई सड़क पर झाँक रहा है। वे फिल्म संगीत की सुदृढ़ परंपरा का अंत और विकृति नहीं हैं, बल्कि विकास और फैलाव हैं। उनसे पुराने दरवाजे बंद हुए बगैर नई खिड़कियाँ खुलती हैं। वे फिल्म संगीत में एक विभाजक रेखा बनकर उभरे हैं, जिसके एक पार सचिन दा रोशन हेमंत कुमार नौशाद और शंकर-जयकिशन का संगीत है और दूसरे पार अकेले आर.डी. हैं, जिनका फैलाव बप्पी लाहिरी राजेश रोशन आनंद-मिलिंद तथा नदीम-श्रवण में होता है। वे आधुनिक शंकर-जयकिशन हैं, जिनमें ऑर्केस्ट्रेशन अधिक और मेलोडी कम हो गई है।

इस वर्ष का प्रतिष्ठित 'लता मंगेशकर पुरस्कार' हिंदी फिल्म संगीतकार राहुल देव बर्मन को देना तय हुआ है। इस चयन के पीछे एक नजर के पीछे एक नजर, समझदारी और परख है। आर.डी. इस पुरस्कार के स्पष्ट और स्वच्छ हकदार हैं। आमतौर पर माना जाता है कि हिंदी फिल्म संगीत का स्तर सन् 60 के पश्चात गिरा और उसका फूहड़ तथा सतही पाश्चात्यीकरण करने के लिए आर.डी. जिम्मेदार हैं। पर ऐसा मान लेना कुछ हद तक सही होते हुए भी ज्यादा सही यह है कि आर.डी. ने आधुनिक हिंदी फिल्म संगीत को एक नया आयाम प्रदान किया है। इस आयाम में शामिल हैं- पूर्व की भावुकता और पश्चिम के अनुशासित ऑर्केस्ट्रा का मेल, मेलोडी और विविधतापूर्ण वाद्य

संगीतकार राहुल देव बर्मन और गायिका आशा भोसले

संगीत का योग, मोहक, दूरंगत व कल्पनाशील धुनें तथा उनके साथ ऑर्केस्ट्रा की बारीक बुनावट। आधुनिकता और हिंदुस्तानीपन का सम्यक संतुलन तथा अन्वेषणशीलता और माधुर्य में सतत संगति। युग के अनुरूप आर.डी. का ऑर्केस्ट्रा अपने पिता से ज्यादा बारीक, विविधतापूर्ण और प्रयोगधर्मी है। उनके सांगीतिक योगदान में संवेदनशील व सजग आधुनिकता का स्पर्श बराबर मौजूद है। बहुत कम लोग जानते हैं कि आर.डी. एक चाइल्ड प्रॉडीजी रहे हैं, और अपने पिता एस.डी. बर्मन के साथ उन्होंने बहुत पहले अरेंजर के रूप में काम करना शुरू कर दिया था। 'आराधना' का 'रूप तेरा मस्ताना' (किशोर) एस.डी. का गीत होते हुए भी दरअसल आर.डी. की कम्पोजिशन क्षमता का नमूना था। इसकी झलक बाद में 'पड़ोसन' के 'मेरे सामने वाली खिड़की में एक चाँद का टुकड़ा रहता है' (किशोर) में मिल जाती है। दोनों ही गीत अपने बारीक और समृद्ध ऑर्केस्टेशन के कारण मशहूर हुए थे। 'आराधना' से नए संगीत का दौर शुरू होता है और एस.डी., सलिल, तथा नौशाद के हिंदुस्तानीपन में आधुनिकता की सेंध लगाते हैं आर.डी.। 'शोले' का 'मेहबूबा ओ मेहबूबा' (आर.डी.) एक तरह से नए दौर का प्रथम गीत है। भारतीय हिंदी फिल्म संगीत में आर.डी. एक विभाजक रेखा हैं जिसके एक पार एस.डी., रोशन, हेमंत, नौशाद और शंकर जयकिशन का संगीत है और

दूसरी ओर अकेले आर.डी. हैं, जिनका बप्पी लाहिरी, राजेश रोशन, आनंद-मिलिंद और नदीम-श्रवण में होता है। वे आधुनिक शंकर-जयकिशन हैं जिनमें एस.जे. का ऑर्केस्ट्रेशन अधिक और एस.जे. की मेलोडी कम हो गई है।

अगर हम राष्ट्रीय सांस्कृतिक परिदृश्य पर गौर करें, तो भारत-चीन युद्ध के पश्चात फिजाँ अचानक बदल जाती है। नेहरू की मौत, टैक्नोलॉजी की भरमार, शहरातीकरण की तेजी, भीड़ से उत्पन्न यांत्रिक तटस्थता, पश्चिम से लगाव और हिप्पी तथा बीटल युग का अपरिहार्य प्रवेश ये सब हिंदी सिनेमा की थीमों और संगीत पर भी प्रभाव डालते हैं। पीढ़ी एक नए सिने-संगीत की बाट जोहती है, जिसमें नौशाद के खेत-खलिहानों से अधिक आर.डी. के फास्ट डिस्को हों। आर.डी. इस बिंदु पर एक द्वार बनते हैं, जो दोनों ओर खुलता है। हालाँकि उसके फड़ नए 'अरबन म्यूजिक' की तरफ ज्यादा खुलते हैं। 'दम मारो दम' (आशा), 'दिलवर दिल से प्यारे' (लता), 'ओ मेरे सोना रे, सोना रे, सोना रे' (आशा), 'ओ हसीना जुल्फों वाली' (रफी) और 'दुनिया में, लोगों को, धोखा हो जाता है' (आर.डी. व आशा, अपना देश)- ये तमाम गीत नए दौर के स्वाभाविक उच्छवास है! इन्हें आप अच्छा या बुरा नहीं कह सकते। ज्यादा से ज्यादा 'नेसेसरी इविल' कह सकते हैं। पर तकनीकी दृष्टि से देखा जाए तो इन तमाम गीतों में ऑर्केस्ट्रा और उसकी विविधतापूर्ण उड़ानें खासतौर पर दृष्टव्य हैं। आर.डी. को मात्र कम्पोजर कहा जाए तो गलत न होगा। दूसरे शब्दो में संगीतकार वे परिस्थितियों के कारण हैं। असल में वे हैं- संगीत शिल्पकार, जो सर्वप्रथम ऑर्केस्ट्रल स्ट्रक्चर से मतलब रखता है। आर.डी. में मेलोडी से अधिक वाद्य संगीत संयोजन महत्वपूर्ण है। 'ऑर्केस्ट्रा, माय फस्टर् प्रायोरिटी'- वे कहते हैं।

लता पुरस्कार की घोषणा ने प्रसंगवश यह अच्छा काम किया कि अब फिल्म संगीत समीक्षक और आम श्रोता का ध्यान आर.डी. के संगीत की ओर जाने लगा है और हम समीक्षकीय दृष्टि से उनके समस्त आउटपुट में झाँकने के लिए तैयार हुए हैं। सन् 50-60 के मनोहारी गीतों से अपने को अलग करके जब हम आर.डी. के संगीत संसार पर नजर डालते हैं तो तुरंत ही हमें विस्मयकारी, चित्ताकर्षक और प्रभावशाली गुण दिखाई पड़ने लगते हैं। उनकी धुनों में नवीनता, संदेवनशीलता और कठिन माधुर्य है। यह वह दौरा है, जब रफी बीत चुके हैं और किशोर कुमार युगानुकूल हो रहे हैं। फिर आर.डी. का आधुनिक संगीत, फ्रीलांस किशोर का खुनक, चंचलता और प्राफुल्य तथा इलेक्ट्रॉनिक वाद्ययंत्रों की तीखी मेलोडी- ये सब मिलकर युग को उसका संगीत और संगीत को युग के श्रोता दे देते हैं। आर.डी. और किशोर मिलकर ऐसा स्वर संसार रचते हैं जो विशिष्ट, मधुर और मौलिक एक साथ है। आर.डी. की मेलडी और ताजगी का नमूना देखिए- जहरीला इंसानः ओ हंसनी कहाँ उड़ चली रे मेहबूबाः मेरे नैना सावन-भादो अनामिकाः मेरी भीगी-भीगी सी नमक हरामः दीए जलते हैं प्यार का मौसमः तुम बिन जाऊ कहाँ सागरः सागर किनारे अमर प्रेमः चिंगारी कोई भड़के खुशबूः ओ माँझी रे तथा मंजिलः रिमझिम गिरे सावन, सुलग-सुलग जाए मन सभी गीत किशोर कुमार द्वारा। इन गीतों में न सिर्फ धुन की मौलिकता, भाव की गहराई और गंभीर गायिकी है, बल्कि ये श्रेष्ठ काव्य को भी धारे हुए हैं। 'तुम बिन जाऊँ कहाँ' एक अविस्मरणीय गीत है। इसके माधुर्य और अवसाद तक रफी भी नहीं पहुँच सके, हालाँकि उन्होंने भी इसे गाया था। 'मंजिल' का 'रिमझिम गिरे सावन' संभवतः पिछले अनेक सालों में एक मधुर, मौलिक और संवेदनशील कम्पोजिशन है। आर.डी. का अवचेतन कितना रचनाशील और सूक्ष्म है, इसकी बानगी, उच्चतम प्रयोगधर्मिता के साथ, अकेले इस गीत में मिल जाती है। 'ओ हंसनी कहाँ उड़ चली' एक जीनियस रचना है।

आर.डी. की केंद्रीय विशेषता है- दूर की कौड़ी लाना। वे 'ऑफ बीट' होने में विश्वास करते हैं। कुछेक गीतों में वे 'मेलोडियस फेंटेसी' की हद तक चले गए हैं। सज्जाद हुसैन के 'ऐ दिलरूबा नजरें मिला' (लता, रुस्तम सोहराब) जैसी अकेली जमीन पारी रचना के बाद आर.डी. का 'धन्नो की आँखों में रात का सुरमा' (किताब, गीतकार : गुलजार) एकमात्र ऐसा गीत है जो भारतीय हिंदी फिल्म संगीत के महासागर में चमकदार सीपी सा अलग रखा जा सकता है। इस गीत को अलौकिकता का जवाब नहीं। धुन इसकी 'ऑफ बीट' है। वाद्य संगीत विस्मित कर देने वाला है। स्वयं आर.डी. ने इस बाल-गीत को गाकर गुलजार, बच्चों और कला के साथ न्याय किया है। यह गीत उनकी मौलिकता, कल्पनाशीलता और प्रयोगधर्मिता का विलक्षण उदाहरण

है। देखा जाए तो कला की ऐसी दुर्लभ ऊँचाई पर पहुँचने में काव्य का भी स्थान रहा है। चूँकि संगीतकार को सर्वप्रथम काव्य ही 'इन्सपायर' करता है। लिहाजा आर.डी. वर्मन और गुलजार का साथ भी ऐसी दिलकश, आला तामीरों का सबब रहा है, जो कभी रवि और साहिर के संयोग में देखने में आई थीं। मिसाल के तौर पर 'खुशबू' का 'दो नैनों में आंसू भरे है' (लता) लीजिए। इसमें धुन, कविता और अपील उल्लेखनीय बन पड़े हैं। 'इजाजत' का 'मेरा कुछ समान आपके पास रह गया है' (आशा) एक खूबसूरत गद्यखंड है, पर जितनी खूबसूरत कविता है यह, उतनी ही खूबसूरत धुन रचकर आर.डी. ने, इसे आशा की लाजवाब गायिकी के माध्यम से एक मिथ की हद तक पहुँचा दिया है। 'इजाजत' का ही 'खाली हाथ आई है' (आशा) एक ऑफ बीट दर्दीली धुन है। इसमें एक कठिन अलौकिकता है। 'दिल पड़ोसी है' (नॉन फिल्म) का 'माँझी रे माँझी' (आशा) आर.डी. की विलक्षण प्रतिभा का दूसरा उदाहरण है। साफ लगता है कि कुछ खास गीतों में आशा, गुलजार और आर.डी. का त्रिगुट एक आवश्यक संयोग है और जहाँ-जहाँ ये तीनों एक हुए हैं काव्य, गायन और संगीत का अविस्मरणीय परिणाम सामने आया है। 'नमकीन' का 'बड़ी देर से मेघा बरसा' व 'फिर से अइयो बदरा विदेशी' (दोनो ही गीत आशा के गाए हुए) सूक्ष्मता, गहराई और अवसाद की गहरी रजत-रेखा खीचते हैं। इनकी धुनें सर्वथा मौलिक और नई हैं। आशा एक बार फिर अपने जीवन के सुंदरतम गीत गा गई हैं। बल्कि नैयर के कम्पोजिशनों से ज्यादा दुर्लभता यहाँ है।

असल में आर.डी. के अनेक गीतो को 'भावगीत' कहना चाहिए। इस शैली के गीत का बेहतर उदाहरण है फिल्म 'तुम्हारे लिए' का गीत 'तुम्हें देखती हूँ तो लगता है ऐसे' (लता)। इन भाव गीतों में कविता, कौमाल्य, सात्विकता और मिठास होती है। आर.डी. के इन गीतों को सुनिए- बहारों के सपनेः आजा पिया तोहे प्यार दूँ (लता) किनाराः मीठे बोल बोले रे (लता व भूपेन्द्र)बुड्ढा मिल गयाः रात कली इक ख्वाब में आई (किशोर) और दिल पड़ोसी हैः झूठे तेरे नैन (आशा)। अपनी धुनों, प्रभाव व संगीत रचना के कारण ये स्मृतिगम्य हैं। 'अनामिका' का 'जाऊँ तो कहाँ जाऊँ' (आशा) जहाँ गहरी बेकली का अहसास कराता है, वहीं 'दि बर्निग ट्रेन' की गजल 'किसी के वादे पे क्यों एतबार हमने किया' (आशा) आशा की अवसादपूर्ण गायिकी, संगीतकार की नायाब धुन और सटीक वाद्य-वादन का अनुपम उदाहरण है। ये तमाम बंदिशें और नतीजे राहुल देव बर्मन को एक उच्च कोटि का प्रतिभावान कम्पोजर और ट्यून सेटर ठहराते हैं।

लेकिन, जैसा कि आमतौर पर माना जाता है, भारतीय संगीत के संदर्भ में किसी भी गायक या संगीतकार को तब तक प्रतिष्ठा और मान्यता प्राप्त नहीं होती, जब तक कि उसकी कृति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शास्त्रीय संगीत से न जुड़ी हो। यहाँ तक कि ओ.पी. नैयर जैसे स्थापित संगीतकार को भी मलाल रहता है कि समीक्षक उन्हें अनिल विश्वास, नौशाद, सलिल और एस.डी. वर्मन की शास्त्रीय संपदा का सहधारक नहीं मानते। इस मोर्चे पर आर.डी. वर्मन का अपना क्षेत्र साफ है। घोर आधुनिकता के बीच उन्होंने अपने संगीत की भारतीयता और शास्त्रीयता को बचाए रखा है। जब-जब फिल्मी व्यावसायिकता और सतही निर्माता के दबाव से छूटकर उन्हें कुछ नया कर दिखाने की 'साँसा' मिली है, उन्होंने गीत और गजलों के बीच शास्त्रीयता, साहित्य और माधुर्य को स्तर के साथ ला बिराजा है। शास्त्रीय दृष्टि से उनका पहला ही गीत 'घर आजा घिर आए बदरा साँवरिया' (छोटे नवाब, लता) आज भी तीस-पैंतीस वर्षों बाद, उतना ही मौलिक, स्तरीय और कर्णप्रिय बना हुआ है। लता की सटीक, संवेदनशील गायिकी और संगत वाद्य संगीत निर्वाह के कारण यह गीत स्मरणीय है ही, पर बड़ी बात यह है कि उसमें बरखा का फील बड़ी सूक्ष्मता से उकेरा गया है। कहने दीजिए कि सलिल चौधरी के 'ओ सजना, बरखा बहार आई' (लता, परख) को छोड़कर आज भी हिंदी फिल्म संगीत में इस टक्कर का वर्षा गीत नहीं है। स्वयं एस.डी. का मेघा छाए आधी रात' (लता, शर्मिली) भी नहीं। इसी तरह, एक और अमर रचना है राहुल देव की। फिल्म 'अमर प्रेम' की। 'रैना बीती जाए' (लता)

'पती-पत्नी' का 'कजरारे बदरवा रे' (लता) भी आर.डी. की बेजोड रचना ही 'परिचय' के 'बीती ना बिताई रैना', 'किनारा' के 'अबके ना सावन बरसे', 'मेहबूबा' के 'जमना किनारे' और 'बुड्ढा मिल गया' के 'जिया न

लागे मोरा' जैसे गीतों में आर.डी. ने अपने पिता की शास्त्रीय परंपरा को सम्मान और गौरव के साथ बरकरार रखा है। गीत उस आंशिक आरोप को धुंधला कर देते हैं, जिसके तहत उनके संगीत को महज यांत्रिक, तकनीकी, नीरस तौर पर भव्य, सस्ती रूमानियत से भरपूर, योरपीय उच्छृंखलता से प्रभावित, शायरी के आनंद बक्शीकरण से लकदक, और पोट्टा-पोट्टी रिझाऊ बताया गया था। मगर आर.डी. की प्रतिभा को इतने जल्दबाज और सतही विशेषणों से घेरा नहीं जा सकता। उनका समस्त संगीत एक जीनियस कम्पोजर के स्पर्श से अनुप्रमाणित है। वे फिल्म संगीत की सुदृढ़ परंपरा का अंत और विकृति नहीं हैं, बल्कि विकास और फैलाव हैं। उनसे पुराने दरवाजे बंद हुए बगैर नई खिड़कियाँ खुलती हैं। 'ज्वेल थीफ' के 'होठों पे ऐसी बात मैं दबा के चली आई' (लता, एस.डी. बर्मन) के वास्तविक कम्पोजिटर वही थे और 'ओ....शालू...' वाला प्रयोग उन्हीं के द्वारा जोड़ा गया था। 'किसी के वादे पे' (आशा, दि बर्निंग ट्रेन) में जिस कद्र तबला बजा है, गीत की उठान है, और गरिमापूर्ण उदासी है, वह आधुनिकता और शास्त्रीयता का सफल मेल है। 'आँधी' के 'तुम आ गए हो नूर आ गया है' (किशोर) में जो सादगी, गहराई और गरिमा है (सिम्फनी के साथ), वह प्रतिभा से कम की शर्त पर नहीं उपज सकता। फर्क इतना है कि आर.डी. के वाद्य वृंद और धुन की गहराई में उतरने की जरूरत है। देखा जाए तो आधुनिक भारत के हिंदी फिल्म संगीत में उनका स्थान उस दूधिया विद्युत बल्ब की तरह है जो किसी प्राचीन मंदिर के गर्भगृह में जल रहा है। एक तुलसी के बिरवे की तरह है जो किसी महानगर की बालकनी से नई सड़क पर झाँक रहा है। ●

चौबीसवाँ अंतर्राष्ट्रीय फ़िल्म समारोह : नई दिल्ली

ऊँची दुकान के फीके पकवान

अगर उन्हें नहीं मालूम कि फ़िल्मोत्सव का आयोजन कैसे किया जाता है, तो वे लगातार इसका जिम्मा क्यों लेते हैं? "यह टिप्पणी थी गिरीश कर्नाड की, जो उन्होंने नई दिल्दी के २४ वें अंतर्राष्ट्रीय फ़िल्मोत्सव के आयोजकों के बारे में कही। कुल मिलाकर नई दिल्ली में १० से २० जनवरी १९९३ तक आयोजित इस फ़िल्म समारोह को लेकर ऐसी ही प्रतिक्रियाएँ सुनने को मिलीं। अखबारों ने पहले ही दिन इसकी शुरूआत को निराशाजनक करार दिया था। अव्यवस्था और अनिश्चितता के वातावरण में शुरू हुए २४ वें फ़िल्म समारोह पर सरकारी नौकरशाही पूरी तरह हावी रही। फ़िल्मोत्सव निदेशालय में सरकारी दफ्तरों-सा माहौल था। उधर सूचना केंद्र अपना अर्थहीन प्रचार-राग बेहूदा तरीके से अलापते रहे।

समारोह के मुख्य आयोजन स्थल सिरी फोर्ट सभागृह में सब कुछ अस्त-व्यस्त था। उद्घाटन अवसर पर प्रमुख हस्तियों को भी धक्का-मुक्की और अन्य अशोभनीय दिक्कतों का सामना करना पड़ा। ब्रितानवी अभिनेत्री वेनेसा रेडग्रेव को कुछ शोहदों ने घेर लिया था। वे इसे लेकर काफी अप्रसन्न दिखीं। भूतपूर्व सूचना एवं प्रसारण मंत्री अजीत पांजा और उपमंत्री गिरिजा व्यास की उपस्थिति में इस तरह की खेदजनक घटनाएँ हुईं। मगर सरकारी तंत्र मूक दर्शक बना रहा। समारोह की आरंभिक फ़िल्मों में **'माया मेमसाब'** के प्रदर्शन पर घोर अराजकता के दृश्य देखने को मिले। इस फ़िल्म की टिकटों के लिए दर्शकों के बीच जम कर हाथापाई हुई। प्रदर्शन स्थल छोटा होने के कारण कई दर्शकों को फ़िल्म देखने से वंचित रहना पड़ा। इन लोगों ने फ़िल्म के पुनः प्रदर्शन की माँग करते हुए समारोह के प्रमुख आयोजक दीपक संधू का घेराव कर डाला।

विश्व पेनोरमा खंड में दर्शकों की

उत्सुकता विशेषतः अमेरिकी फ़िल्म 'बेसिक इंस्टिंक्ट', हँगरी की 'स्वीट एम्मा एंड डियर बोबी' तथा अमेरिका के सहयोग से निर्मित पाकिस्तानी फ़िल्म 'इम्मेक्युलेट कंसेप्शन' (निर्देशन-जमील देहलवी) के प्रति रही। कराची में वृहन्नलाओं के पूजास्थल पर निःसंतान दंपत्तियों की इच्छापूर्ति पर आधारित 'इम्मेक्युलेट कंसेप्शन' की प्रमुख भूमिकाओं में जेम्स विल्बी और मेलिसा लिओ के साथ भारतीय कलाकार श्रीराम लागू तथा शबाना आजमी भी मौजूद हैं। समारोह की एक अन्य चर्चित फ़िल्म पॉल काक्स कृत 'दनन एंड दि बेन्डिट' रही। पुनरावलोकन खंड में भीड़-भाड़ का माहौल देखने का नहीं मिला। उपहार थियेटर में, जहाँ विटोरियो द सीका की फ़िल्मों का पुनरावलोकन आयोजित था, दर्शकों की संख्या काफी कम थी। 'शू शाइन'/उम्बर्तो डी/ आय वुड गिव अ मिलियन/ द गार्डन ऑफ दि फ़िंजी कॉंटिनिस/ब्रेड लव एंड ड्रीम्स/ मेरिज इटालियन स्टाइल आदि सार्वकालिक महत्व वाली फ़िल्मों का प्रदर्शन अपेक्षाकृत शांत और सौहार्द्रपूर्ण माहौल में हुआ। प्रख्यात स्वीडिश अभिनेत्री इन्ग्रिड बर्गमेन' की फ़िल्मों के पुनरावलोकन के तहत उनकी कुछ चर्चित फ़िल्में 'इंटरमेज्जो' 'डॉलर' और 'ऑटम सोनाटा' प्रदर्शित की गई।

इसी खंड में फ्रेंच सिनेमा की महत्वपूर्ण फ़िल्मों का भी एक समीक्षात्मक पुनरावलोकन शामिल था। शिल्प के लिहाज से फ्रांसीसी निर्देशक सर्वथा विशिष्ट स्थान रखते हैं। विम वेन्डर्स कृत 'विंग्स ऑफ फायर'/क्रिस मार्कर की द जेटी/हेनरी क्रुएल की 'मोनालिसा'/जीन गोडार्ड कृत मेस्क्यूलाइन फेमीनाइन और जेक्वस बररियर द्वारा निर्देशित 'डिसआर्डर एट ट्वेंटी :हियर कम्स आर्डर' में फ्रेंच सिनेमा के उत्कृष्ट स्तर की झलक दिखाई दी। ये फ़िल्में दर्शक के मन-मस्तिष्क को असरदार ढंग से

नई दिल्ली में चौबीसवें अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह का शुभारम्भ करते हुए फिल्मकार जी.पी.सिप्पी। सामने खड़े हैं सूचना एवं प्रसारण मंत्रीद्वय अर्जुन पांजा और श्रीमती गिरिजा व्यास

आंदोलित करती हैं। नई फ़िल्मों के साथ इनकी तुलना नहीं की जा सकती।

फ़िल्मोत्सव में प्रदर्शित समकालीन फ़िल्मों को स्तरहीनता से बचाने में फ़िनलैंड की फ़िल्में महत्वपूर्ण रहीं। 'मिका करिस्माकी' द्वारा निर्मित 'अमेजन' पर्यावरण चेतना को लेकर बनी उम्दी फ़िल्मों में एक थी। फ़िनलैंड के शीर्षस्थ फ़िल्मकार 'आकी करिस्माकी' उत्तर आधुनिक प्रयोगवादी सिनेमा का प्रतिनिधत्व करते हैं। उनकी फ़िल्मों शैडोड इन पेराडाइज/एरियल और बोहेमियन लाइफ को सशक्त दृश्य चित्रण तथा भावानुगत गुरुत्व के लिए काफी सराहा गया। एक अन्य फ़िनिश निर्देशक हैन्स एंडर्सन की फ़िल्म 'लिटिल मैच गर्ल' ने भी सबका ध्यान खींचा। फ़िल्म बीसवीं शताब्दी के त्रासद अस्तित्व पर प्रकाश डालती है।

भारतीय पेनोरमा में फ़िल्मों का चयन हमेशा की तरह इस बार भी कुछ विवाद पीछे छोड़ गया। एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह था, कि मुख्यधारा और उससे अलग सिनेमा को क्या बगैर किसी विभेद के पेनोरमा में दिखाया जाना चाहिए? निःसंदेह गैरव्यावसायिक फ़िल्में इस वर्ष स्तर के लिहाज से एक पृथक खंड में रखे जाने की हकदार थीं। बँगला भाषा की 'पद्मा नदीर माझी' (गौतम घोष) और तहदेर कथा (बुद्धदेव दासगुप्ता) के अलावा 'एक होता विदूषक' (मराठी-जब्बर पटेल) तथा 'हूँ हुन्शी हुन्शीलाल' (गुजराती-सुधीर शाह) में नयेपन और प्रस्तुति की दृष्टि से काफी कुछ काबिले-तारीफ था। किंतु पामेला रूक्स कृत 'मिस बेटीस चिल्ड्रन' (अंग्रेजी) और केतन मेहता की 'माया मेमसाब' (हिन्दी) विषय के प्रति एकतरफा दृष्टिकोण वाली फ़िल्में लगीं। 'मिस बेट्टी' में जहाँ देवदासी प्रथा के उन्मूलन हेतु हुए अब तक के प्रयासों को पूर्णतः नजरंदाज कर दिया गया, वहीं 'माया मेमसाब' स्त्री को पुरुष प्रधान समाज में महज 'सेक्स-प्रतीक' के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम (एन.एफ.डी.सी.) और दूरदर्शन द्वारा संयुक्त रूप से बनाई गई बहुप्रतीक्षित फ़िल्में 'धारावी' और 'रूदाली' अपने प्रति ऊँची अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतर सकीं। ओमपुरी और शबाना आजमी की प्रभावशाली उपस्थिति के बावजूद 'धारावी' पर व्यावसायिक मसालों की छाप खलने वाली बात है। गैंगवार के

अतिरेक और नायक द्वारा कल्पित स्वप्तदृश्यों में माधुरी दीक्षित जैसी अभिनेत्री की बारंबार उपस्थिति फ़िल्म को अस्वाभाविकता की ओर हो जाती है। कल्पना आजमी की पहली निर्देशकीय कृति 'रूदाली' फ़िल्मांकन की दृष्टि से तो आकर्षक है, किंतु इसका भी कथ्य आत्म केंद्रित 'मैलोड्रामा' तक सीमित नजर आता है। फ़िल्म राजस्थानी परिवेश की सजीव झाँकी प्रस्तुत करने की उपेक्षा उसे विज्ञापित करती अधिक जान पड़ती है। दूरदर्शन के लिए गिरीश कर्नाड द्वारा निर्मित लघु फ़िल्म 'चेलुवी' पर्यावरण चेतना का मूल संदेश संप्रेषित करने में पूरी तरह सक्षम है। मगर इसकी आँचलिक पृष्ठभूमि को और अधिक असरदार बनाया जा सकता था।

विश्व सिनेमा खंड की आलोचना इस बात को लेकर हुई कि कुछ विशेष देशों की फ़िल्मों के बाहुल्य की वजह से अंतर्राष्ट्रीय सिनेमा का समुचित प्रतिनिधित्व नहीं हो पाया। आलोचकों का कहना था कि विदेशी फ़िल्मों के चयन में लापरवाही बरती गई। और जनरुचि को बलाए ताक रख कर औपचारिक ढंग से काम निपटाया गया। लेकिन रंगहीन एवं अनाकर्षक करार दिया जाने के बावजूद विश्व पेनोरमा खंड के कुछ सकारात्मक पहलू भी थे। इसमें शामिल अधिकतर फ़िल्में सिने-कर्म की दृष्टि से चाहे सर्वश्रेष्ठ न हों, किंतु वो समस्याग्रस्त वर्तमान विश्व का प्रामाणिक और विचारोत्तेजक रेखाचित्र बखूबी प्रस्तुत करती है। खासतौर पर चीन, जापान और हाँगकाँग की फ़िल्मों को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

मानवीय तथा स्त्री-पुरुष संबंध फ़िल्मकारों के प्रिय विषय रहे हैं। २४ वें फ़िल्मोत्सव में 'मामा'

फिल्म हावर्डस् एण्ड

दक्षिण अफ्रिका की फिल्म सराफिना
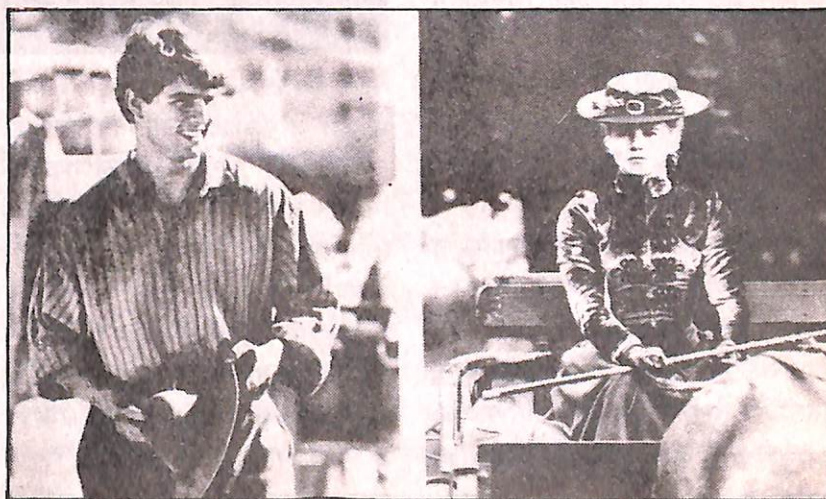
अमेरिकन फिल्म फॉर एण्ड अवे

(चीन/झाँगयुआंग, माय अमेरिकन ग्राँगसन (हाँगकाँग/एन हुई), ऑटमन मून (जापान/क्लारा ला) 'फाइव गर्ल्स आन अ रोप' (ह्यंग वी/हाँगकाँग) और 'टुलिव' (इवान्स चाँग/ हाँगकाँग/ अमेरिकी) ऐसी ही कुछ फ़िल्में थीं, जिनमें मानव जीवन के जटिल अंतर्संबंधों को टटोला गया। ईरानी फ़िल्म 'अविनार' ईरान में कुर्द अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न पर आधारित हैं। मिस्र के निर्देशक दाऊद अब्दाल सईद की फ़िल्म 'किटकत' में चरित्र चित्रण का अनूठा स्वरूप विशेष बात थी। फ़िल्म का नेत्रहीन नायक अपने अंधत्व को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है, यहाँ तक कि वह दूसरे अंध व्यक्तियों को मार्गनिर्देश देने हेतु भी तत्पर रहता है।

अमेरिकन फिल्म मिसीसिपी मसाला में शर्मिला टैगोर और रोशन सेठ

स्वीटझरलैण्ड की फिल्म अन्ना गोल्डविन : द लॉस्ट विच

फ़िल्म समारोह में प्रदर्शित फ़िल्मों से प्रतीत होता है कि वे सिनेमा की आधुनिक धारा जटिलताओं से बचते हुए सीधी सरल वृत्तांतनुमा प्रस्तुति की ओर मुड़ रही है। विषय को मतविशेष से संबद्ध करने की बजाय उसे अब वैयक्तिक धरातल पर संश्लेषित किया जा रहा है। इस वजह से फ़िल्में वक्तव्यपरक होने के साथ विवेचनात्मक भी जान पड़ती है। मानवतावाद एक बार फ़िर सिनेमा में शिद्दत से मुखरित हुआ है। रंगभेद से लगाकर हर तरह के अमानवीय कृत्य की नई फ़िल्में पुरजोर खिलाफत करती हैं। वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में मनुष्य के भावनात्मक पार्थक्य की समस्या पर भी नए फ़िल्मकारों ने विभिन्न कोणों से दृष्टिपात किया है। किंतु सभ्यता के मलिन पक्ष पर अभ्यारोपण के लिए नई फ़िल्मों में हिंसा का अतिरेक किसी भी तरह उचित नहीं जान पड़ता। आस्ट्रेलियाई फ़िल्मकार पॉल काक्स की बहुचर्चित फ़िल्म 'द नन एंड दि बेंडित' अच्छाई और बुराई के सनातन संघर्ष को नए सिरे से परखने की कोशिश है। निर्देशक ने बुराई को सामाजिक अन्याय, मानसिक संताप और उत्पीड़न के बिम्बों में प्रदर्शित किया है। फ़िल्म के कथानक में एक डाकू मानवीयता को अंगीकार कर अपने द्वारा अपहृत एक युवती को मुक्त कर देता है। धीमे कैमरा मूवमेंट की मदद से फ़िल्म की केंद्रीभूत संकल्पना काफी प्रभावी स्वरूप में संप्रेषित की गई है। अभिनव सिनेमा की कुछ अन्य उल्लेखनीय शैलियों का जायजा अमेरिकी फ़िल्मों 'डेथ ऑफ अ सेल्समेन', 'ग्लेंगेरी ग्लेन रोस' और 'द फ़िशर किंग' में लिया जा सकता है।

स्त्री फ़िल्मकारों ने भी फ़िल्मोत्सव में अपनी उपस्थिति प्रभावशाली ढंग से दर्ज कराई। मेरियान हेन्सल की फ़िल्म 'आन अर्थ लाइक इन हैवन' मानव जाति के भावी विलोप की संभावना को दर्शाती

है। एक विषप्ति माँ द्वारा अपने गर्भस्थ शिशु को इस कलुपित संसार में जन्म देने से इंकार तथा दूसरी ओर उसी शिशु के मातृत्व की याचना ऐसे संत्रासपूर्ण अनुभव का छाया-चित्र है, जो विरोधाभासी होने के बावजूद अत्यंत अर्थपूर्ण जान पड़ता है। फ्रांस, जर्मनी और स्विटजरलैंड द्वारा सम्मिलित रूप से निर्मित 'एन्ना गोल्डिन; द लास्ट विच' अठारहवीं शताब्दी में यूरोप से जादूगरनी 'एन्ना' के निष्कासन की कहानी है। इस कथानक के माध्यम से फ़िल्म वर्तमान औद्योगिक समाज तथा प्रकृति के बीच फैलते अलगाव पर भी प्रकाश डालती है। समाज द्वारा बहिष्कृत किए जाने के बाद प्रकृतिप्रेमी 'एन्ना' को त्रासद एकाकीपन का सामना करना पड़ता है।

१९९२ के 'लोकर्नो फ़िल्मोत्सव' में 'गोल्डन लिओपार्ड' पुरस्कार से सम्मानित 'क्लारा लाव' की फ़िल्म 'ऑटमन् मून' एक जापानी पर्यटक पर आधारित है, जो अपनी हाँगकाँग यात्रा के दौरान एक स्कूली लड़की के प्रेम में पड़ जाता है। फ़िल्म की विशेषता है इसका उम्दा छायांकन। कैमरा कोण और रंग-मिश्रण के लिहाज से छायाकार और निर्देशक की तकनीकी दक्षता साफ झलकती है। फ़िल्म में प्रेमी युगल के बीच भाषायी और भौगोलिक दूरियों से उपजी पीड़ाजनक स्थितियों का भी संवेदनशील चित्रण है।

अभिनव प्रयोगों की दृष्टि से उल्लेखनीय फ़िल्मों में मिकलोस जेन्सको कृत 'गॉड वाक्स बैकवर्डस (हँगरी) मानव सभ्यता के भविष्य का रोमांचकारी दृश्य-चित्र प्रस्तुत करती है।' 'चैरी आर्कड' और 'सिटी लाईफ' भी इसी श्रेणी की फ़िल्में है। १२ भागों में निर्मित 'सिटी लाइफ' विश्व के विभिन्न महानगरों के जनजीवन को टटोलती है। इसमें एक भाग का निर्देशन भारत के 'मृणाल सेन' ने भी किया है। कुल मिलाकर अपने-आप में यह एक अनूठी प्रस्तुति जरूर है, किंतु इसमें और अधिक संभावनाओं की गुंजाइश थी। समारोह के उद्घाटन और समापन अवसर पर प्रदर्शित फ़िल्मों के लिए भी यही बात लागू होती है। मसलन 'मर्चेंट आयवरी' बैनर की 'हावर्डस एण्ड; जिसमें इ.एम. फार्स्टर के मूल उपन्यास की गत्यात्मकता तो बखूबी रूपायित हुई है, किंतु चरित्रों के दृश्य माध्यम में रूपांतरण के बावजूद उनकी जीवंतता औपन्यासिक धरातल से आगे नहीं बढ़ पाती। दक्षिण अफ्रीका की प्रस्तुति 'सरफीना' (निर्देशक-डेरेल जेम्स रूड) स्कूली बच्चों के रंगभेद समर्थकों से संघर्ष का प्रभावोत्पादक रेखांकन है। कर्णप्रिय संगीत, सुंदर अभिनय और गंभीर विषयवस्तु वाली इस फ़िल्म का एकमात्र कमजोर पक्ष है बर्बर हिंसा का अतिरिक्त प्रदर्शन। लेकिन इससे फ़िल्म के कसावट भरे निर्देशन में कोई कमी नहीं आती।

(फ्रंट लाइन में प्रकाशित गौरी रामनारायण के लेख पर आधारित साभार)

भारत में फ़िल्म-समारोह : रेगिस्तान में दौड़

अंतर्राष्ट्रीय फ़िल्मोत्सवों की उपादेयता अनेक प्रकार से महत्वपूर्ण होती है। सिनेमा के प्रति जनचेतना के विकास/सिने-कर्म की नूतन प्रवृत्तियों से परिचय तथा फ़िल्म माध्यम से जुड़े लोगों के पारस्परिक विचार-विमर्श आदि के उद्देश्य से इनका आयोजन काफी उपयोगी रहता है। इसके अलावा फ़िल्मों के व्यावसायिक प्रचार-प्रसार में भी यह अहम भूमिका निभाते हैं। नईदिल्ली में आयोजित २४ वाँ अंतर्राष्ट्रीय फ़िल्मोत्सव इन कसौटियों पर कितना खरा उतारा? विभिन्न प्रतिक्रियाएँ:-

फ़िल्म आर्काइव के **पी.के. नायर** *की राय इस मामले में काफी आलोचनात्मक है। उनके अनुसार 'भारतीय फ़िल्मोत्सव पानी के लिए रेगिस्तानी दौड़ से अधिक सुखद नहीं जान पड़ते। आखिर इनसे देश की नई प्रतिभाओं को आगे आने का कितना मौका मिल पाता है? महज व्यावसायिक नजरिए से चयनित फ़िल्में किसी फ़िल्मोत्सव को वास्तविक अर्थों में कितना आकर्षक बना सकती हैं? अगर पुनरावलोकन खंड की उम्दा फ़िल्मों को छोड़ दिया जाए, तो २४ वें फ़िल्मोत्सव में कुछ भी उल्लेखनीय नहीं था। मेरे विचार से ऐसे समारोहों की सार्थकता तभी सिद्ध हो सकती है, जब उत्कृष्ट फ़िल्मों के लिए ज्यादा से ज्यादा दर्शक वर्ग जुटाया जाए।'*

फ़िल्मकार **गिरीश कसरावल्ली** *भी फ़िल्मोत्सव में फ़िल्मों के चयन को लेकर नाखुश है। उनका मानना है कि चयन हेतु कोई मानक प्रक्रिया नहीं अपनाई जाती। फ्रांस और अमेरिका की फ़िल्मों को अनर्थक प्राथमिकता मिलती है। नए फ़िल्मकारों के बारे में कसरावल्ली कहते हैं- 'करिस्माकी कृत स्वीट एम्मा एंड डियर बोबी' जैसी फ़िल्मों में कथ्य प्रस्तुति की एक नई शैली देखने को मिली, जिसमें संवाद की प्रधानता नहीं होती। प्रयोग की दृष्टि से यह शैली विशिष्ट हो सकती है, किंतु हमें नहीं भूलना चाहिए कि सिनेमा की संप्रेषणीयता महज दृश्यों के सहारे पूरी नहीं हो सकती।*

*निर्देशन **कुंदन शाह** के विचार में विश्व सिनेमा अब आर्थिक कारणों से प्रयोगवाद से विमुख हो रहा है। बेहतर सिनेमा की जड़ें बगैर राजकीय, संस्थागत और जनसहयोग के मजबूत नहीं हो सकती। जड़ता और उदासीनता के माहौल में उसका अस्तित्व असंभव है। भारतीय फ़िल्मकारों के नए काम को कुंदन विदेशी सिनेमा की नकल मात्र मानते हैं। फ़िल्म समीक्षक **चिदानंद दासगुप्ता** नई दिल्ली फ़िल्मोत्सव को सिने-कर्म की कुछ विधाओं-संगीत, छायांकन और फ़िल्म संपादन की दृष्टि से प्रभावशाली निरूपित करते हैं। उनके अनुसार भारत तृतीय विश्व सिनेमा का केंद्र बिंदु बन सकता है बशर्ते कि फ़िल्मोत्सव आयोजकों पर सरकारी दबाव कम से कम हों।*

*उपादेयता के लिहाज से **अमोल पालेकर** किसी भी फ़िल्म समारोह को बेकार नहीं मानते। उनके अनुसार फ़िल्मकार अच्छी या बुरी हर फ़िल्म से कुछ न कुछ सीखता ही है। अमोल का मानना है कि भारतीय फ़िल्मोत्सव की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए इसका व्यावसायिक वितरण क्षेत्र मजबूत करना होगा। कान और वेनिस के अंतर्राष्ट्रीय फ़िल्मोत्सवों में अच्छे फ़िल्मकार इसलिए दिलचस्पी लेते हैं कि वहाँ उनकी फ़िल्मों के व्यापक प्रचार-प्रसार की गारंटी होती है। ऐसा ही विश्वास हमें भी पैदा करना चाहिए और इसके लिए पहली जरूरत है, लगातार उत्कृष्ट फ़िल्मों का चयन।*

सार्क फिल्म-समारोह

● **डॉ. यासीन दलाल**

दक्षिण एशियाई देशों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान की दृष्टि से पिछले दिनों राजकोट में १५ से १९ अक्टूबर तक सार्क फ़िल्मोत्सव का आयोजन किया गया। इस पाँच दिवसीय समारोह के दौरान सार्क देशों की पंद्रह फ़िल्में दिखाई जाने वाली थीं, लेकिन इनमें से कुछ का प्रदर्शन ही संभव हो सका। सिनेप्रेमी पाकिस्तान की 'हीर-राँझा', बाँग्ला देश की 'गोलापी एखोन त्रायने' और श्रीलंका की 'केलि मंडला' जैसी चर्चित फ़िल्मों की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे, लेकिन उन्हें निराश होना पड़ा। इन बहुप्रतीक्षित फ़िल्मों के स्थान पर जो फ़िल्में प्रदर्शित की गईं, उनमें से अधिकतर अपेक्षाकृत कमजोर फ़िल्मकृतियाँ थीं।

खासतौर पर पाकिस्तान की प्रविष्टि 'काले चोर' को देखकर तो काफी आश्चर्य हुआ। सेक्स हिंसा और पिसे-पिटे फार्मूलों पर आधारित इस फ़िल्म का चुनाव सचमुच हैरत में डालने वाला था। बंबईया फ़िल्मों की तर्ज पर 'काले चोर' की कहानी एक तस्कर 'काली' के आसपास घूमती है। समझ में नहीं आता कि नाच गानों और उत्तेजक दृश्यों से भरपूर इस फ़िल्म का निर्माण पाकिस्तान जैसे कट्टरपंथी देश में कैसे संभव हो पाया। बहरहाल आयोजकों को यह फ़िल्म शायद प्रभावित करने में सफल रही, क्योंकि फ़िल्मोत्सव में इसका तीन बार प्रदर्शन हुआ।

समारोह की कुछ उम्दा फ़िल्मों में मालदीव की 'युसुफ एंड जेनब' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मिस्त्र के सहयोग से बनी इस फ़िल्म का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है, क्योंकि मालदीव की यह पहली फीचर फ़िल्म है। 'मो. रशीद' द्वारा निर्देशित 'युसुफ एंड जेनब' वैसे तो एक साधारण प्रेमकथा पर आधारित है, किंतु इसका प्रस्तुतिकरण साधारण नहीं कहा जा सकता। इजिप्ट से मालदीप आया एक युवक 'युसुफ' वहाँ स्थानीय लड़की 'जेनब' से प्यार करने लगता है। भौगोलिक और सांस्कृतिक दूरी उनके प्रेम में किस तरह के अवरोध खड़े करती है, इसका प्रभावी चित्रण फ़िल्म में किया गया है।

श्रीलंका की प्रविष्टि 'सागर जलाया' एक अनाथ बालक की कहानी है, जो जीवन की कड़वी वास्तविकताओं से समय के साथ परिचित होता है। फ़िल्म की निर्देशिका 'सुमित्रा पीयरिस' द्वारा विषयवस्तु को काफी परिपक्वता के साथ पेश किया गया है। निश्चित रूप से उनके काम में काफी संभावनाएँ तलाशी जा सकती हैं।

नेपाल की 'शांतिद्वीप' समारोह में प्रदर्शित पहली फ़िल्म थी। लक्ष्मीनाथ शर्मा द्वारा निर्देशित इस फ़िल्म में युद्ध की निरर्थकता पर प्रकाश डाला गया है। नेपाल के गाँवों से ब्रिटिश राज के जमाने में सैनिक दुनिया के विभिन्न हिस्सों में लड़ने के लिए भेजे जाते थे। फ़िल्म इसी विषय के केंद्र बनाकर शांति की महत्ता कर संदेश देती है। हिमालय की खूबसूरत वादियों का फ़िल्म में आकर्षक छायांकन हुआ है।

भारत से कुछ हिन्दी और गुजराती फ़िल्मों का प्रदर्शन हुआ। इनमें बाघ बहादुर/भवनी भवाई/ काशी नो डीकरो/ आदि फ़िल्में शामिल थी। वृत्तचित्र-प्रभाग में बाँग्लादेश और मालदीव की प्रविष्टियों ने काफी प्रभावित किया। बाँग्लादेश में निर्मित वृत्तचित्र 'पेरेडाइड इकॉलोजी' पर खासतौर से सबकी आँखें टिकी। पर्यावरण से संबंधित इस वृत्तचित्र में प्रकृति का अत्यंत मनोहारी फ़िल्मांकन किया गया है।

आयोजन की दृष्टि से सार्क फ़िल्मोत्सव काफी फीका रहा। कई पूर्व घोषित फ़िल्में प्रदर्शित नहीं की गई। फ़िल्मोत्सवों में आमतौर पर आयोजित की जाने वाली परिचर्चाएँ और प्रेस कांफ्रेंस राजकोट में देखने को नहीं मिली। फ़िल्मों का चुनाव स्तर के अनुरूप नहीं था। कई फ़िल्में तो बगैर उपशीर्षक (सब टाइटल्स) के दिखाई गई। बहरहाल इन खामियों के इसलिए नजरंदाज किया जा सकता है, क्योंकि राजकोट जैसे अपेक्षाकृत छोटे शहर में यह पहला फ़िल्म समारोह था।

●

भारतीय फिल्म समारोह निदेशालय के समारोह और समारोह

फिल्म समारोह निदेशालय ने २४ वें अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह के आयोजन द्वारा भारतीय सिनेमा के प्रचार-प्रसार के अपने उद्देश्य की दिशा में एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की। समारोह में जहाँ हमेशा की तरह भारतीय पेनोरमा खंड और राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों के माध्यम से देश के फिल्मकारों की तकनीकी एवं कलात्मक दक्षता प्रतिपादित हुई वहीं निदेशालय द्वारा विदेशी फिल्मों के आदान-प्रदान के तहत आयोजित विशेष कार्यक्रमों में अंतरराष्ट्रीय समकालीन सिनेमा की नई परंपराओं से परिचित होने का मौका मिला। इस सिलसिले में सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने भी सक्रिय भूमिका निभाई।

फिल्मोत्सव १९९२

बंगलौर में पिछले वर्ष देश का २३ वाँ अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह, निदेशालय के तत्वावधान में आयोजित किया गया था। जिसमें ४० देशों की कुल २१२ फिल्में प्रदर्शित हुईं। समारोह में भाग लेने के लिए देश-विदेश से २,५०० प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। विदेशी प्रतिनिधियों में 'क्रिस्तोफ जेनुसी, डेनिस ओ रूर्के, राबर्ट दोर्नहेम, एनी व्हीलर, अलेक्जेंड्रा लंदन, एनी मेरी पिसानी, किंग एम्पॉव, जियान मारिया वोलोन्ते, पीटर बेसो, पीटर टाइमर, खुसरो सिनाई और राजकुमार यूकोल आदि फिल्म जगत से जुड़ी अनेक प्रमुख हस्तियाँ शामिल थीं।

समारोह के तीन खंड विशेष आकर्षण का केंद्र रहे फ्रेंच सिनेमा का चार दशकीय लेखा-जोखा, फ्राँसिस्को रोजी की फिल्मों का पुनरावलोकन और वर्तमान ईरानी सिनेमा पर आधारित एक विशेष कार्यक्रम। इसके अलावा कन्नड़ सिनेमा की प्रमुख फिल्मों का भी पुनरावलोकन किया गया। १९९२ के अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव की शुरुआत निकिता मिखल्कोव द्वारा निर्देशित रूसी फिल्म 'उर्गा' से हुई, जबकि समापन अवसर पर पीटर गोल्डस्मिड एवं एथोल फ्यूगार्ड की फिल्म 'रोड टू मक्का' का प्रदर्शन हुआ। दक्षिण अफ्रीका के खिलाफ लगाए गए अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रतिबंधों के हटने के बाद भारत में प्रदर्शित यह पहली दक्षिण अफ्रीकी फिल्म थी।

भारतीय पेनोरमा खंड में २१ फीचर फिल्मों सहित कुल ३४ फिल्मों को शामिल किया गया था। केंद्रीय समिति के अध्यक्ष विमल डे थे, जबकि गैर फीचर फिल्म श्रेणी की चयन समिति की अध्यक्षता बुद्धदेव दासगुप्ता ने की थी।

राष्ट्रीय फिल्म समारोह

राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों के निर्धारण के लिए गठित समिति ने मार्च १९९२ से चयन प्रक्रिया शुरू कर दी थी। अडूर गोपाल कृष्णन की अध्यक्षता में चयन समिति ने ११४ फीचर फिल्मों का अवलोकन किया। जबकि गैर फीचर फिल्म श्रेणी में बुद्धदेव दासगुप्ता की अध्यक्षता वाली समिति द्वारा १०७ फिल्में अवलोकित की गईं। कमलेश्वर सिनेमा संबंधी सर्वश्रेष्ठ लेखन का निर्णय करने वाली समिति के अध्यक्ष थे।

स्व. सत्यजीत राय की बँगला फिल्म 'आगंतुक' को सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म और गौतम बोस कृत 'सन्स आफ अबोटानी' को गैर फीचर फिल्म श्रेणी का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार दिया गया। सिनेमा पर सर्वश्रेष्ठ पुस्तक के रूप में मलयालम भाषा की 'आत्मनितयुदे पोक्कल' (स्वनिंदा के पुष्प) चयनित हुई। जबकि गौतम कौल को १९९१ का सर्वोत्कृष्ट फिल्म समीक्षक घोषित किया गया। इसके अलावा भाल जी पेंढारकर प्रतिष्ठित दादा साहब फाल्के अवार्ड से सम्मानित हुए।

इन सभी पुरस्कारों का वितरण भारत के राष्ट्रपति द्वारा ६ मई को सिरी फोर्ट सभागृह में आयोजित एक विशेष समारोह के अंतर्गत किया गया। समारोह की समाप्ति पर अवार्ड विजेता फिल्में प्रदर्शित हुईं।

अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव एवं पुरस्कार

वर्ष १९९२ में भारत ने ५५ अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सवों में हिस्सा लिया। इनमें से कुछ विशेषतः एशियाई सिनेमा पर केंद्रित थे। जैसे फुकुओका फिल्मोत्सव (जापान), एशिया, प्रशांत फिल्म शो (सीओल), प्योंगयाँग तथा सिंगापुर अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव, दक्षिण एशियाई लघु फिल्म समारोह (श्रीलंका) आदि।

फिल्मोत्सव निदेशालय द्वारा कान, सिंगापुर, हाईफा, फुकुओला, लोकर्नो, इशिकावा आदि अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोहों में भाग लेने के लिए भारतीय प्रतिनिधियों को भेजा गया। ३५ वें सेन फ्रांसिस्को अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव में लब्ध प्रतिष्ठित अकीरा कुरोसावा अवार्ड स्व. सत्यजीत राय को प्रदत्त हुआ। सिंगापुर फिल्म समारोह में एस.टी. वासुदेवन नायर की 'कडवु' विशेष जूरी पुरस्कार से सम्मानित की गई। तृतीय प्योंगयांग फिल्मोत्सव में शबाना आजमी को गुलजार कृत 'लिबास' में अभिनय के लिए सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का अवार्ड मिला। जबकि अपर्णा सेन ने यही गौरव ११ वें ताशकंद फिल्मोत्सव में मृणाल सेन की फिल्म 'महापृथ्वी' में अभिनय के लिए प्राप्त किया। कुमार शाहनी की 'भावांतरण' मन्नेज फिल्मोत्सव में सर्वश्रेष्ठ वृत्तचित्र अवार्ड से पुरस्कृत हुई। हवाई फिल्मोत्सव में सुब्रतो मित्रा को 'इस्टमेन कोडक पुरस्कार' मिला। फिल्मोत्सव निदेशालय की संयुक्त निदेशिका मालती सहायक सिंगापुर फिल्म समारोह में जूरी की हैसियत से सम्मिलित हुई। विदेशों में भारतीय फिल्मकारों के पुनरावलोकन के तहत सत्यजीत राय की फिल्मों का पुनरावलोकन मंगोलिया, श्रीलंका, स्वीडन, जापान, तुर्की और बहरीन में आयोजित किया गया। इसके अलावा शिकागो फिल्मोत्सव में श्याम बेनेगल तथा ताशकंद फिल्म समारोह में राज कपूर की फिल्मों का पुनरावलोकन हुआ।

सांस्कृतिक आदान-प्रदान

पिछले वर्ष मंगोलिया श्रीलंका, स्वीडन, जापान, तुर्की और बहरीन में विशेष कार्यक्रमों के अंतर्गत भारतीय फिल्में प्रदर्शित की गईं। बंबई, नई दिल्ली और त्रिवेंद्रम में स्वीडन की फिल्मों का प्रदर्शन आयोजित हुआ। इसके अलावा देश में फ्रेंच, जापानी, डच, तुर्की और चीन की फिल्मों

के विशेष प्रदर्शन किए गए।

सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया में सार्क फिल्मोत्सव एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रहा। अक्टूबर १९९२ में आयोजित इस फिल्म समारोह में दक्षिण एशियाई देशों से कई फिल्म प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इसके अलावा भारत-अमेरिका के संयुक्त तत्वावधान में एक विशेष कार्यशाला आयोजित की गई। जिसके तहत अमेरिका के कुछ वृत्तचित्र निर्माताओं ने भारत आकर पुणे और दिल्ली के फिल्म प्रशिक्षण संस्थान में छात्रों को सिनेमा संबंधी विषयों पर व्याख्यान दिए।

१० से २० मार्च १९९२ तक चतुर्थ यूरोपीय फिल्मोत्सव पहले दिल्ली और फिर कलकत्ता में आयोजित किया गया। दस देशों की १४ फीचर और ८ लघु फिल्में इसके अंतर्गत दिखाई गई। साथ ही नई दिल्ली, पुणे और कलकत्ता में प्रसिद्ध स्वीडिश निर्देशक जान ट्रोएल की फिल्मों का पुनरावलोकन समारोह भी संपन्न हुआ। इसमें भाग लेने के लिए स्वयं ट्रोएल अपने एक सहकर्मी सूजन वेज के साथ स्वीडन से भारत आए और उन्होंने भारतीय सिनेकर्मियों से विचार-विमर्श किया।

● अजय वर्मा

मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम :

वामन से विराट की ओर ...

● सुनील मिश्र

मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम ने अपनी स्थापना के बाद से ही लगातार अपने कार्यक्रमों में विस्तार किया है। इसके अन्तर्गत मध्यप्रदेश फिल्मोत्सव, परिसंवाद, कार्यशालाओं के अलावा रसास्वाद पाठ्यक्रम भी शामिल हैं जिनमें दर्शकों और पाठकों ने अपनी हिस्सेदारी को निरन्तर उपयोगी और सुरुचिपूर्ण बनाया है। विस्तार के इसी क्रम में पिछले वर्ष हिन्दी सिनेमा के राष्ट्रीय पुरस्कारों की घोषणा ने निगम के कार्यक्रमों को उल्लेखनीय वृद्धि के साथ राष्ट्रीय स्तर पहचान दी है। अलंकरण समारोह के साथ ही प्रदेश में मध्यप्रदेश फिल्मोत्सव ९२ श्रृंखला प्रारम्भ हुई। इसके अलावा इसी वर्ष से भारतीय फिल्म वार्षिकी का प्रकाशन भी प्रारम्भ हुआ। श्रीराम ताम्रकर द्वारा सम्पादित इस पत्रिका का पहला अंक अलंकरण समारोह के दौरान जारी हुआ। इसी समारोह में हिन्दी सिनेमा के बुजुर्ग एवं सशक्त कलाकार अशोक कुमार पर अज्ञातशत्रु द्वारा लिखी पुस्तक का भी विमोचन हुआ।

मध्यप्रदेश फिल्मोत्सव श्रृंखला ९२, गत वर्ष मार्च में आयोजित की गई थी। भारतीय भाषाओं की उत्कृष्ट फिल्मों के प्रदर्शन की इस श्रृंखला के साथ ही इस वर्ष से फिल्म के क्षेत्र में स्थापित राष्ट्रीय पुरस्कारों की घोषणा से एक नया गौरवमयी अध्याय जुड़ा।

राष्ट्रीय पुरस्कारों के भव्य अलंकरण समारोह के साथ फिल्म समारोह की शुरूआत हुई। भोपाल में इस समारोह में शामिल होने जानी-मानी फिल्म हस्तियाँ पधारी थीं। मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम ने इसी वर्ष से सर्वश्रेष्ठ फिल्म के लिए निर्माता को इक्यावन हजार रुपए, सर्वश्रेष्ठ निर्देशक के लिए इकतीस हजार रुपए सहित सर्वश्रेष्ठ लघु फिल्म एवं सिनेमा पर सर्वोत्तम पुस्तक के लिए ग्यारह-ग्यारह हजार रुपए के पुरस्कार स्थापित किए थे। यह पुरस्कार इस वर्ष राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम और दूरदर्शन को उनके द्वारा निर्मित और अरुण कौल द्वारा निर्देशित फिल्म दीक्षा को सर्वश्रेष्ठ फिल्म के रूप में, प्रख्यात बहुचर्चित कलाकार **नाना पाटेकर** को उनके द्वारा निर्देशित फिल्म प्रहार के लिए सर्वश्रेष्ठ निर्देशक के रूप में एवं निर्माता विकास मोहन को गुलजार निर्देशिक उनकी फिल्म लिबास के लिए द्वितीय सर्वश्रेष्ठ फिल्म के पुरस्कार से अलकृत किया किया गया। वरिष्ठ एवं अनेक उत्कृष्ट फिल्मों के निर्देशक ऋषिकेष मुखर्जी ने इस अवसर पर पुरस्कार, प्रशस्ति पत्र एवं प्रतीक चिह्न प्रदान किए।

वास्तव में यह शुरूआत हिन्दी में बनने वाली बेहतर और रचनात्मक कलाबोध की फिल्मों और उससे जुड़े कलाकारों के प्रति आदर प्रकट करने के उद्देश्य को लेकर हुई। मध्यप्रदेश फिल्मोत्सव श्रृंखला के अन्तर्गत भोपाल सहित, इन्दौर, उज्जैन, ग्वालियर, जबलपुर, रायपुर इत्यादि शहरों में आयोजित समारोहों में शामिल फिल्मों के साथ पुरस्कृत फिल्मों के प्रदर्शन आयोजित हुए। इसी बीच बस्तर में फिल्मोत्सव आयोजित करना निगम का एक महत्वपूर्ण प्रयास रहा। विशेषकर ऐसे समय में जब वह क्षेत्र काफी विपरीत परिस्थितियों में था। इसके बावजूद फिल्म समारोह को वहाँ मिले उत्साद ने सुखद अनुभूतियाँ दीं।

प्रदेश में मध्यप्रदेश फिल्मोत्सव श्रृंखला को दर्शकों का भरपूर स्नेह और प्यार मिला है। यह वह अवसर होता है जिसकी साल भर दर्शक बेसब्री से प्रतीक्षा करते हैं। इस समारोह के प्रति इतना रुझान इस बात को स्पष्ट करता है कि बेहतर सिनेमा को दर्शक अपने चिन्तन, अपनी जिज्ञासा में शामिल करते हैं। यह भी कि दर्शक सिनेमा में कलात्मक गुणवत्ता एवं उसकी उपयोगिता ढूँढ़ते, खोजते, पाते और सराहते हैं और कमतर होने पर उसकी समालोचना भी करते हैं।

मध्यप्रदेश फिल्मोत्सव के बहाने अच्छी फिल्मों के न सिर्फ स्थायी दर्शक वर्ग तैयार करने वल्कि निरन्तर दर्शक परिवार बढ़ाने में निगम को सफलता मिली है। सिनेमा अलंकरण ने इस गौरव में और अभिवृद्धि की है।

इन सबके साथ ही निगम द्वारा विश्व सिनेमा एवं भारतीय सिनेमा के चर्चित सम्माननीय फिल्मकार स्वर्गीय सत्यजीत राय पर एकाग्र **स्मरण : सत्यजीत राय** प्रसंग का आयोजन भी किया गया। इस आयोजन में जाने-माने फिल्मकार सर्वश्री श्याम बेनेगल, गोविन्द निहलानी, सईद मिर्जा और केतन मेहता सहित फिल्म समालोचक एवं पत्रकार प्रयाग शुक्ल, पुरुषोत्तम अग्रवाल, भास्कर सिन्हा, शैलेन्द्र तिवारी, विनोद रैना ने हिस्सा लिया। राय की फिल्म कला, कला-दृष्टि और उनके काम के महत्वपूर्ण पक्षों को वक्ताओं ने प्रसंग में रेखांकित किया। इसी अवसर पर निगम ने उन पर लघु

फिल्म दीक्षा में नाना पाटेकर और आशीष मिश्रा

पुस्तक सत्यजीत राय का प्रकाशन भी किया।

इसके अतिरिक्त इस वर्ष निगम ने दूरदर्शन एवं माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय संस्थान के सहयोग से टी.वी. पटकथा लेखन कार्यशाला का आयोजन किया। इसी वर्ष निगम के सिनेमा त्रैमासिक पटकथा के चार विशिष्ट अंक प्रकाशित हुए वर्ष भर होने वाले और समारोहों में प्रथम दक्षिण एशियाई फिल्म समारोह, चीनी फिल्म समारोह, फिनलैण्ड सिनेमा सत्र, पर्यावरण सिनेमा सत्र, इटालियन सिनेमा सत्र में दर्शक लगातार विविध आयामी और उद्देश्यपरक फिल्मों का आस्वादन करते रहे। इसी बीच प्रख्यात् फिल्मकार बासु चटर्जी, टीवी धारावाहिकों एवं फिल्मों के महत्वपूर्ण लेखक मनोहर श्याम जोशी एवं वरिष्ठ कवि, समालोचक एवं फिल्म समीक्षक विनोद भारद्वाज एवं मंगलेश डबराल की उपस्थिति में **समय, समाज और सोप ऑपेरा** विषय पर परिसंवाद के आयोजन को भी सराहा गया।

●

फिल्म किंग अंकल : नगमा और शाहरुख खान

खण्ड : छः

हिन्दी फिल्म सर्वेक्षण : १९९२

उधार की रोशनी में बीता वर्ष

● श्रीराम ताम्रकर

किसी फ़िल्म की सफलता का सर्वमान्य और लोकप्रिय फार्मूला है कि वह टिकट खिड़की पर कितना पैसा बटोरने में कामयाब रही है। सफलता की आँख सिर्फ आमदनी देखती है। इस हिसाब से फ़िल्म **बेटा** वर्ष की ऐसी फ़िल्म साबित हुई, जिसने अपनी लागत से दो-ढाई गुनी आमदनी की है। बेटा का निर्माण तमिल हिट फ़िल्म 'इंगा चिन्ना राजा' पर आधारित है हिन्दी फ़िल्मों के फार्मूलों के अनुसार इसमें नया कुछ नहीं था फिर भी माधुरी-अनिल की जोड़ी 'क्लिक' कर गई। माधुरी की लगभग हर फ़िल्म में एक उत्तेजक गीत-नृत्य अवश्य होता है, जो सुस्त पड़े दर्शकों की रगों में रक्तचाप बढ़ा देता है। बेटा में वह 'धक-धक' करती आई और धड़कनें तेज कर गई। कई फ़िल्म पंडितों की इस फ़िल्म के बारे में यह राय थी कि इसका नाम 'बेटा' के बजाए 'बेटी' होना चाहिए था क्योंकि फ़िल्म की सफलता में माधुरी का जबर्दस्त हाथ है अनिल कपूर तो माधुरी की रोशनी उधार लेकर मुफ्त में जगमगा रहे हैं।

सफलता की दूसरी पायदान पर शाहरुख-दिव्या भारती की फ़िल्म **'दीवाना'** है। नदीम-श्रवण के मीठे-उत्तेजक संगीत से सँवरी यह एक रोमांटिक फ़िल्म है। दीवाना ने यह तथ्य एक बार फिर रेखांकित किया कि रोमांस फ़िल्मों की सफलता का एक स्थाई भाव है। **'बोल राधा बोल'** फ़िल्म ने जूही चावला की सचमुच में लाज रख ली वरना वह तो 'राधा' बनकर 'संगम' में डूबने लगी थी। और कोई नहीं राधा को डुबोने में उसके 'गोविन्दा' का ही हाथ था। इस फ़िल्म में ऋषिकपूर नए-नए स्वेटर पहनकर डबल-रोल में आए और यह साबित कर गए कि शताब्दी के अंत तक वे रोमांटिक-हीरो बने रहेंगे।

फ़िल्म 'फूल और कांटे' की अपनी पहली सुपर-डुपर सफलता का परचम अजय देवगन ने दूसरी फ़िल्म **'जिगर'** में कामय रखा। जिगर की नायिका करिश्मा थी, उसे भी अजय ने निर्भय बनाया वरना वह तो फ्लॉप फ़िल्मों का करिश्मा बनने चली थी। फ़िल्म **'शोला और**

नम्बर वन के सिंहासन पर श्रीदेवी
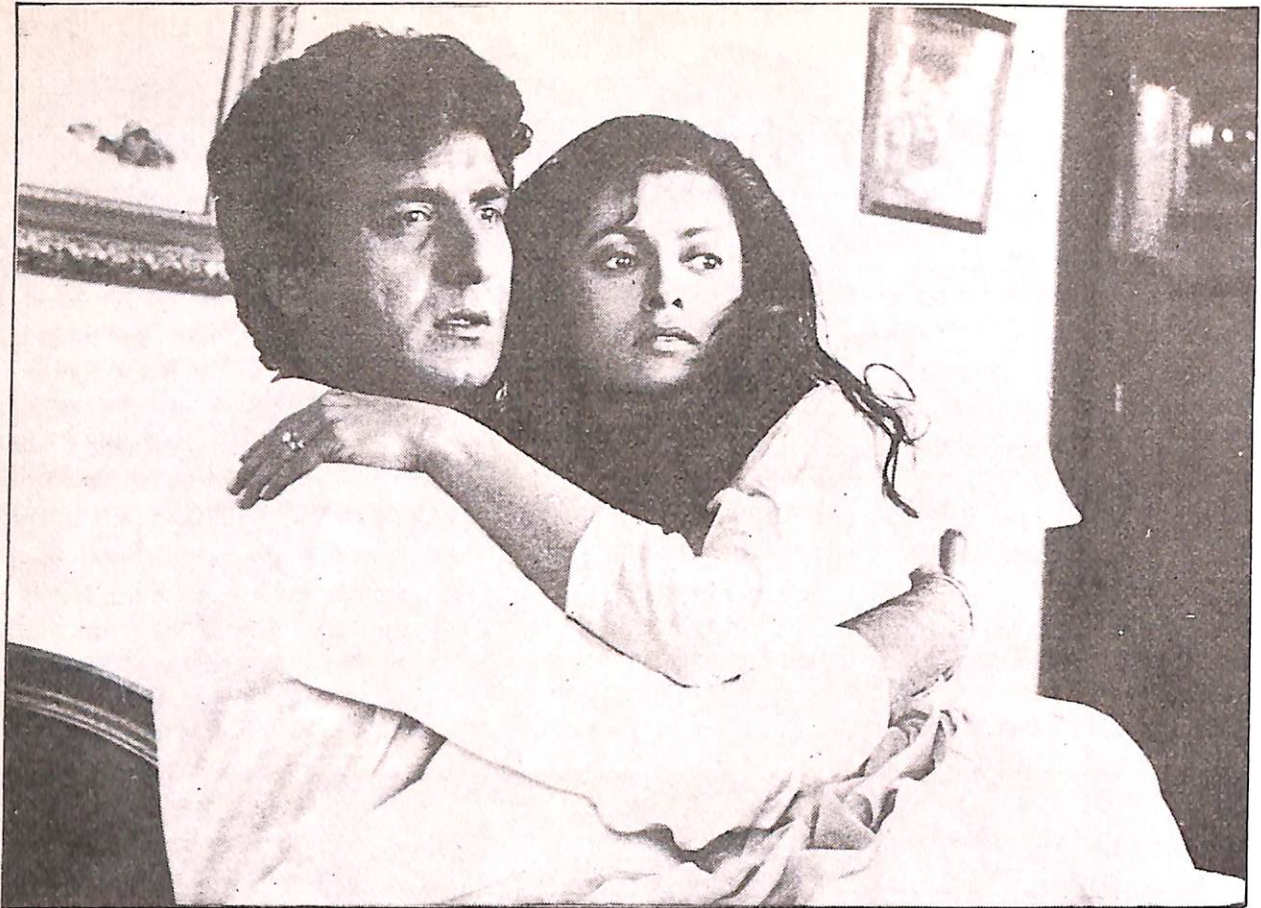
फिल्म माया मेम साहब : राज बब्बर और दीपा साही

शबनम' ने सफल होकर गोविन्दा को खारिज होने से बचा लिया वहीं दूसरी ओर दिव्या भारती का कद ऊँचा किया। **खिलाड़ी** फ़िल्म की सफलता कई समीक्षकों को अचरज में डालती है। इसके नायक अक्षय कुमार किसी एंगल से 'हीरो' नहीं लगते। बड़े बजट और बहुल सितारों की फ़िल्म '**खुदा गवाह**' की सफलता का 'ग्राफ' काफी नीचे है। अमिताभ की आखिरी फ़िल्म के रूप में प्रचारित करने से इसे अमिताभ प्रशंसक एक बार देखने जरूर आए। 'अनयुजवल' कहानी नए लोकेशन और तकनीकी गुणवत्ता ने खुदा गवाह को एक महत्वपूर्ण फ़िल्म निःसंदेह बनाया है मगर यह अमिताभी-टकसाल नहीं बन सकी। श्रीदेवी का छुपा हुआ 'लावण्य' इस फ़िल्म में अद्‌भुत रूप में उजागर हुआ है। इस फ़िल्म के बाद अमिताभ की आरामी-मुद्रा समझ में आती है। '**तहलका**' से जैसे तहलके की उम्मीद थी, वो खरी नहीं उतरीं। नसीर का स्वीमिंग-सूट फ़िल्म से ज्यादा चर्चित रहा। चिरंजीवी-मीनाक्षी की जोड़ी की फ़िल्म '**आज का गुण्डाराज**' उत्तर भारत के दर्शकों ने खूब पसंद की। शायद उन्हें अपने आसपास के गुण्डाराज के प्रतिबिंब परदे पर नजदीक से नजर आए होंगे। **पोलिस ऑफिसर** को जैकी श्राफ ने सफल बनाया। वर्ष के आखरी महीनों में **चमत्कार/घर जमाई** और **राजू बन गया जेंटलमैन** ने अपनी सफलता दर्ज कराई है।

वर्ष १९९२ सफलता के स्थान पर असफल फ़िल्मों के लिए ज्यादा याद किया जाएगा। श्रीदेवी-अनिल की महत्वाकांक्षी और महँगी फ़िल्म 'हीर-राँझा' का जो हश्र हुआ उसे देख सब भ्रमित तथा चकित है। बड़बोले कीर्ति कुमार की तमाम कीर्ति **राधा के संगम** में डूब गई। सावन कुमार टाक से बेवफ़ा ने कतई वफा नहीं की। फिरोज खान की '**यलगार**' ने उन्हें ही घायल किया। बी.आर. चोपड़ा की फ़िल्म '**कल की आवाज**' ने पलट कर बताया कि वे बीते 'कल' की आवाज बन चुके हैं। रवीन्द्र पीपट की इच्छा थी कि वे सोने की बुलबुल भाग्यश्री को कैद से बाहर निकालने में कामयाब होंगे, मगर भाग्य ने साथ नहीं दिया। प्रकाश मेहरा के लिए जिंदगी, सचमुच में जुआ साबित हुई। एन. चन्द्रा का '**हमला**' विफल हो गया और महेश भट्ट **सातवें आसमान** पर ही अटके रह गए। राजीव राय की **विश्वात्मा** के फ्लॉप होने से उनकी आत्मा काँप गई। अच्छे निर्देशक और बेहतर कलाकार जब टिकट खिड़की पर फ्लॉप होने लगे, तो यह समीकरण समझना टेढ़ी खीर बन जाता है।

नायकों की जमात पर विचार करने से पाते हैं कि यह वर्ष शाहरुख खान का रहा। **माया मेमसाब** के कारण वे गरम चर्चाओं में रहे। दीवाना/चमत्कार और राजू बन गया जेंटलमैन उनकी हेट्रिक रही। शाहरुख ने दूसरे तमाम खानों को पीछे धकेल दिया। सुपर सितारों का दावा करने वाले **सलमान** की सूर्यवंशी/जागृति/निश्चय और एक लड़का एक लड़की फ़िल्में फ्लॉप रहने से उनके भाव जमीन पर आ गए। **आमिर खान** की हालत भी खस्ता रही, हालाँकि उनकी फ़िल्म 'जो जीता वही सिकंदर' एक बेहतर प्रस्तुति थी। संजय दत्त को लेकर सुभाष घई का विश्वास उन्हें कितना ही बड़ा 'खलनायक' बनाने पर आमादा हो, लेकिन संजय की फ़िल्में-साहबजादे/ अधर्म/सिरफिरा/ यलगार/जीना मरना तेरे संग बुरी तरह मार खा गईं। अब **क्षत्रिय** पर सारा दारोमदार है। यह

वर्ष जैकी श्राफ के लिए बेहतर रहा। पोलिस ऑफिसर और अंगार उनकी सफल फ़िल्में है। संगीत में उनके अभिनय को सराहना मिली, फ़िल्म का न चलना अलग बात है। **अजय देवगन** ने दूसरी फ़िल्म जिगर हिट देकर अपने दबाव को कायम रखा है। **गोविन्दा** महज शोला और शबनम के कारण बच गए वरना उनके होम-प्रोडक्शन राधा का संगम में वे हर दृष्टि से दिवालिए हो चुके हैं। **अनिल कपूर** की टोपी में सिर्फ बेटा की कामयाबी का मोरपंख है। खेल/हमला/अपराधी/जिंदगी एक जुआ और हीर-राँझा ने उनके कैरिअर के सामने प्रश्नचिह्न लगा दिया है। **नसीरुद्दीन शाह** हमेशा तहलका मचाने में भरोसा करते हैं। उनका चमत्कार देखने को मिला। **अनुपम खेर** पत्रकारों से पंगा लेकर काफी चर्चित हुए। उन्होंने हर फ़िल्म में अपना चोला बदला और अपने बहुरूपिए व्यक्तित्व की झाँकी फ़िल्म दीदार/हमला/हीर-राँझा/शोला और शबनम/बेटा/खेल/वंश/आजा सनम/उमर पचपन की दिल बचपन का में दिखाई। **राहुल रॉय** का जुनून, गजब तमाशा बनकर रह गया। भले ही दिल वाले कभी न हारे हों, राहुल तो हार गए। **मिठुन** की **घर जमाई** यदि सफल नहीं होती, तो उन जैसे सजना का साथ निभाने कोई आगे नहीं आता।

धर्मेन्द्र अपने को लीलैण्ड का ट्रक मानते हैं और नए छोकरों को आटो रिक्शे कहते हैं। लेकिन खुलेआम यह साबित हो चुका है कि इस वर्ष उनका हमला नाकामयाब रहा। **जीतेंद्र** फोर्टी प्लस में सोने की लंका जा कर मिट्टी लेकर लौटे हैं। जय शिवशंकर सेंसर से निकलकर रीलिज तक नहीं हो पाई है। विनोद खन्ना की अधूरी फ़िल्में हम शक्ल/पोलिस मुजरिम पूरी होकर फ्लॉप की कतार में उन्हें शामिल कर ली गई। **विवेक मुश्रान** की तीनों फ़िल्में– प्रेम दीवाने/बेवफा से वफा और सातवाँ आसमान उनके लिए घाटे का सौदा साबित हुई। अरमान कोहली/अविनाश वाधवान/पृथ्वी/कुमार गौरव और भाग्यश्री के दिल अजीज पति हिमालय, असफलता के हिमालय के नीचे दब गए। **राजकुमार** की पोलिस मुजरिम में उपस्थिति यादगार बनी। शम्मी कपूर ने अपने देह-सौष्ठव का लाभ चमत्कार/हीर-राँझा/तहलका में खुलेआम लिया। **ओम पुरी** विदेशों के लिए सिटी ऑव जॉय में रिक्शा खींचते रहे। श्याम बेनेगल ने उन्हें अंतर्नाद में प्रस्तुत किया। पुरुष/अंगार और रात उनकी उम्दा फिल्में है। सदाशिव अमरापुरकर के लिए यह वर्ष यादगार नहीं रहा। डैनी फिल्म द्रोही और खुदा गवाह में अपनी चमक बनाए रख सके। प्राण अभी प्राणवान हैं, यह उन्होंने दो फिल्मों में सिद्ध किया। **नागार्जुन** ने खुदा गवाह तथा द्रोही के जरिए संभावनाएँ जगाई हैं। **अमरीश पुरी** की मुस्कुराहट ने उन्हें कॉमेडियन बनाया मगर वे खलनायक ही बने रहना चाहते हैं क्योंकि उन्होंने इस फिल्म का पुरस्कार नहीं लिया। जय मेहता का आगमन लिजलिजा है। **नाना पाटेकर** अंगार में आग उगलते मिले और राजू बन गया जेंटलमैन में उन्होंने मानवीय संवेदनाओं को कुरेदा। अब हिन्दी सिनेमा के पास कोई ऐसा सितारा नहीं है, जो रथ को अकेले खींचकर ले जा सके।

नायिकाओं में **माधुरी दीक्षित** नंबर-वन की दौड़ में न रहते हुए भी 'नंबर-वन लकी' साबित हो रही है। संगीत/खेल और प्रेम दीवाने उसकी अदाकारी के उम्दा नमूने हैं हालाँकि सफलता सिर्फ बेटा के नामे लिखी गई। **श्रीदेवी** का जादू उतार पर है। हीर-राँझा की घनघोर असफलता का खुदा गवाह है। श्रीदेवी की उम्मीदें १९९३ में प्रकाशित होने जा रही रूप की रानी चोरों का राजा पर टिकी हैं। **मीनाक्षी शेषाद्रि** के लिए यह साल उनकी तरह ठंडा रहा। आज का गुण्डाराज में जरूर उनकी चर्चा हुई। जयाप्रदा की सोने की लंका जल गई। त्यागी ने उन्हें कुछ नहीं दिया- न दाम, न नाम! **शबाना** की नेतागिरी के साथ फिल्में भी ठंडे बस्ते से बाहर नहीं निकल पाई। माला सिन्हा अपनी बेटी प्रतिभा को आगे रखकर खेल और राधा का संगम में उपस्थित हो गई। प्रतिभा ने अपनी प्रतिभा का अचार फिल्म मेहबूब मेरे मेहबूब में कुछ इस तरह डाला कि नया नायक बॉय मुखर्जी दुम दबाकर भाग निकला। अब नदीम के संगीत के सहारे प्रतिभा रोमांस की बाँसुरी सुन रही है। यही हाल तनूजा की लाड़ली **काजोल** का हुआ। 'बेखुदी' में वह कमल सदाना को भी ले डूबी। **भाग्यश्री** पति हिमालय को गोद में लेकर पायल बजाती आई। लेकिन सफलता का परदेशी घर लौटकर नहीं आया और बुलबुल कैद में ही सिसकती रही। **जूही** की मोहक मुस्कान बोल राधा बोल में बनी रही। शेष फिल्में उसे बदनाम कर गई। **नीलम** के हाल तो इससे भी बुरे रहे। उसकी एक लड़का एक लड़की फिल्म तो कई सरकिटों में रीलिज तक नहीं हो पाई। **दिव्या भारती** की दो फिल्मों (दीवाना/शोला और शबनम) की सफलता ने शेष फिल्मों के पाप धो दिए। **करिश्मा** अखबारों की सुर्खियों में सिर्फ चटपटे-अटपटे बयानों से बनी रही वरना उसकी सभी फिल्में पिट गई। केवल अजय देवगन की जिगर ने उसे बचाया है, शीबा/वर्षा/अश्विनी/रवीना/नगमा/शिल्पा/आयशा जुल्का एक थैली के चट्टे-बट्टे की तरह साबित हुई। दरअसल इनमें प्रतिभा की ऊर्जा नहीं हैं। उधार की रोशनी से कोई लंबे समय तक जगमगा नहीं सकता। यही वजह है कि अनु अग्रवाल की आशिकी इस साल गजब तमाशा बन कर रह गई। मनीषा कोइराला ने यलगार में अपने कथनों को झूठा किया। उर्मिला द्रोही में नागार्जुन और चमत्कार में शाहरुख की उंगली पकड़कर चली है। पूजा बेदी कंडोम बेचकर ही सेफ है वरना जो जीता वही सिकन्दर में वह सिकन्दर नहीं बन पाई। **पूजा भट्ट** के लिए भी उसके पापा इस वर्ष सौगात लेकर नहीं आ पाए। पूजा अपने नायकों पर भारी पड़ती है, यह सच है। दक्षिण भारतीय **रेवती** ने मुस्कराहट और रात फ़िल्म में कमाल किया है। **राखी** की क्षत्रिय तथा रुदाली तैयार है। **डिम्पल** भी रुदाली में है। काका की फिल्म जय शिवशंकर को काकी रीलिज नहीं करा पाई मगर उन्हें चुनाव जिता कर सांसद बना दिया। **हेमा,** अभिनय के राजमार्ग से निर्देशन की पगडण्डी पर चल पड़ी है। अमृता सिंह अपने मियाँ सैफ खान की फिल्मों में आधे दाम में काम करने को राजी रहती है। राजू बन गया जेंटलमैन में वह मर्द-सिंह नजर आई। **दीपा साही** को निर्वस्त्र देखने के लिए दर्शकों को माया मेमसाब का बेसब्री से इंतजार है। ●

फिल्म संगीत सर्वेक्षण १९९२

संगीत के सौदागरों का नया सरगम

• देवेन्द्र शर्मा

फिल्म संगीत ने 1992 के साल में कौन-कौन से मुकाम तय किए। यानी कि श्रोता संघों की राय और कैसेट बिक्री की रिपोर्टों से बने माहौल और मीडिया से प्रभावित नव समीक्षकों की टिप्पणियों के खिलाफ जाने का जोखिम उठाते हुए एक खोजी मुआयना हो जाए।

जैसे सौ बार बोला हुआ झूठ, सच की पदवी पा जाए, ठीक वैसे ही बीते साल में अतिप्रचार के जरिए गीकों के लोकप्रिय.होने का भ्रम पैदा किया गया। सचमुच के अच्छे संगीत को 'किल' करने की कोशिशें हुई। निर्विकल्प श्रोता नकली सच से रूबरू हुआ। परिणामतः पोले पाँव वाले 'नकली सच' प्लेटिनम और गोल्डन डिस्कें पा-पाकर फूल उठे।

इस वर्ष संगीतकार **आनंद-मिलिंद** की सर्वाधिक सत्रह फिल्में आईं। दूसरे नंबर पर चौदह फिल्मों के साथ नदीम-श्रवण रहे। तीसरे क्रम पर लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल की दस फिल्में थीं तथा बप्पी लहरी और राम लक्ष्मण क्रमशः नौ और आठ फिल्में लिए चौथे और पाँचवें क्रम पर रहे। राजेश रोशन, अन्नू मलिक और आर.डी. बर्मन को बाद के नंबर दिए जा सकते हैं।

नकलवृत्ति के इस वर्ष में आनंद-मिलिंद को सबसे बड़ा 'कॉपी केट' घोषित किया गया। लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल और दक्षिण के संगीतकार इलय्याराजा की धुनों पर लगातार, बेमुलाहिजा हाथ साफ करते हुए इन्हें अपने गुणी पिता स्व. चित्रगुप्त की प्रतिष्ठा का ख्याल भी नहीं रहा। 'वंश' और 'बेटा' में इलय्याराजा की धुनें इनके नाम से खूब बजीं। गजब तमाशा/दिल आशना है/बोल राधा बोल/संगीत/आज का गुंडाराज/घर जमाई आदि में यह जोड़ी कभी-कभी नया करने की कोशिश करते-करते भी, बार-बार नकल के रसातल में जाती दीखती है! (ओह हमारा निर्बल कानून !!)

'आशिकी' से शुरू **नदीम-श्रवण** का नया सफर इस साल न सिर्फ "आशिकी" को ही दोहराता-तिहराता लगा बल्कि वे नकल पर भी जमकर आमादा हो गया। नमूने के बतौर पहले 'दीवाना' का 'ऐसी दीवानगी' सुनिए, फिर लक्ष्मी-प्यारे की 'कर्ज' फिल्म का 'एक हसीना थी, एक दीवाना था' सुन लीजिए। 'सड़क' फिल्म का 'हम तेरे बिन कहीं' सुनिए फिर उसके इंटरल्यूड में बजे साजों के क्रम का मिलान 'हीरो' फिल्म के 'तू मेरा जानू है' (लक्ष्मी-प्यारे) के इंटरल्यूड से कर लीजिए। लोगों का मत रहा कि कुमार शानू का लगातार बार-बार इस्तेमाल कर इस जोड़ी ने अपने संगीत में से विविधता के अवसर खत्म कर एकरसता को न्योत लिया है। दीवाना/बेखुदी/पायल/जुनून/सपने साजन के/कल की आवाज/ और कई फिल्में इस बात की गवाह है। लगता है सोलह-सत्रह साल तक इंडस्ट्री में बेकार रहने के बाद एकाएक प्रसिद्धि पा गई यह जोड़ी मेहनत के अलावा, लोकप्रियता के सारे हथकंडे आजमा लेना चाहती है। आज वे अपने समकालीन वरिष्ठ संगीतकारों को अपशब्द कह रहे हैं।.... खुद को अपने मुँह से सर्वश्रेष्ठ और अपूर्व कह रहे हैं। अपने निर्माताओं को, अपनी तस्वीरें होर्डिंग्स पर प्रदर्शित करने के लिए मजबूर कर रहे हैं। बेखुदी का संगीत पिटने पर इन्होंने राहुल रवैल को दोषी ठहराया कि अगर वे फिल्म के प्रचार में इनकी तस्वीरें इस्तेमाल करते, तो संगीत हिट हो जाता। बकौल इनके 'आज संगीत नहीं, हमारा नाम बिकता है...वी आर द वर्ल्ड') अन्य हथकंडों में नदीम-श्रवण के जल्दी संन्यास लेने की घोषणा है। ये महँगे संगीतकार हैं और निर्माता पर पारिश्रमिक का एक वितरण क्षेत्र देने के लिए दबाव डालते हैं। माला सिन्हा की बिटिया से रोमांस कर नदीम अलग से चर्चित हो गए हैं। यहाँ श्रवण (प्रसंगवश, वे ख्यात संगीतज्ञ चतुर्भुज राठौड़ के पुत्र हैं) की विनयशीलता या कुलीनता का इसलिए कोई अर्थ नहीं रह जाता, क्योंकि जोड़ियाँ जब बन जाएँ, तो कुख्यात या विख्यात जोड़ियाँ ही होती हैं।

बहरहाल यह जोड़ी गुलशन कुमार के प्रचार के बवंडर में एकाएक ऊपर उठी थी। एक दिन बवंडरों और स्तंभों का फर्क जाहिर होना ही है। याद आता है गुलशन कुमार का उछाला वह मुहावरा कि उनकी देखरेख में फिल्मों में मेलोडी का, मधुरता का युग लौट आया है। निवेदन है कि सर, मेलोडी तो हमारे यहाँ शुरू से मौजूद रही हैं। अब तो उल्टे आपकी आँधी के बाद से रवीन्द्र जैन, या खय्याम या रवि जैसे संगीत साधक, जो मेलोडी देने वाले नियमित संगीतकारों के अलावा तकरीबन हर साल नायाब धुनों के जरिए अपनी उपस्थिति दर्ज कराते थे, अप्रासंगिक हो गए हैं।

गुलशनजी द्वारा प्रोत्साहित (मौलिक रचना के लिए नहीं) संगीतकारों में से कुछ यदाकदा अच्छा काम करने की कोशिश करते हैं तो भला लगता है। आप हैरत करेंगे कि 'आजा मेरी जान' (टी सीरीज) के लिए आर.डी. बर्मन (पंचम) की बनाई धुनें इन दिनों संगीतकारों अमर-उत्पल के नाम से धड़ल्ले से बज रही है। बेचारे पंचम दा।

इस साल पंचम दा का स्वस्थ होकर सक्रिय हो जाना संगीत जगत के लिए शुभ घटना है। उनकी फिल्में 'गुरुदेव'/'खुलेआम' और 'द्रोही' के कुछेक गीत ताजगी से भरपूर है। नए संगीतकारों में **जतिन-ललित** उभरकर आए हैं। उनकी फिल्में 'खिलाड़ी'/'जो जीता वही सिकंदर' और 'राजू बन गया जेंटलमैन' के कुछ गीतं उनकी मेहनत के दस्तावेज हैं। अरेंजर से संगीतकार बने श्याम-सुरेंद्र (माशूक) को अभी मौलिक शैली खोजनी होगी। 'यलगार' में चन्नी सिंह ठीक-ठीक रहे। 'त्रिदेव' के ओए-ओए संगीतकार वीजू शाह इस साल 'विश्वात्मा' लेकर आए। संगीत श्रवणीय था, पर सुना नहीं गया। इंडस्ट्री के एक और काबिल तहजीब पसंद संगीतकार हैं राम-लक्ष्मण, जिनकी अपनी शैली है। 'मैंने प्यार किया' जैसी धुआँधार हिट फिल्म देकर भी इन्होंने ढ़ेर सी फिल्में नहीं बटोरी। राम-लक्ष्मण की बेहतर धुनों से सज्जित फिल्में थीं- 'मुस्कुराहट' और 'सातवाँ आसमान'। उषा खन्ना ने एक अर्से बाद 'बेवफा से वफा' में

संगीत तो दिया पर पहले के मुकाबले कम असरदार। दिलीप सेन-समीर सेन बंधु ('उमर पचपन की दिल बचपन का' और 'इश्क खुदा है') धीरे-धीरे संगीत को गंभीरता से ले रहे हैं। नरेश शर्मा की 'नैना' सामान्य रही।

एक हुए हैं बप्पी लहरी। याद कीजिए डिस्को का बवंडर। बीस साल बीत गए पर इन महाशय की आज भी आपनी कोई स्टाइल नहीं है। असफल बहुरूपिए की तरह किसी गीत में वे सचिन दा दिखने की कोशिश करते हैं। किसी गीत में राजेश खन्ना। किसी गीत में राजेश रोशन। कभी मदन मोहन, तो अक्सर एल.पी.। इन दिनों वे नदीम-श्रवण से प्रभावित चल रहे हैं। बप्पी लहरी मधुरता रचने के बजाए अधिकाधिक चैनलों के प्रयोग, इलेक्ट्रॉनिक साजों की भीड़ और 'कम्प्यूटराइज्ड बीट' के इस्तेमाल से खुश होते हैं। इस वर्ष बप्पी लहरी ने 'शोला और शबनम'/आँखें/गीत/जिंदगी एक जुआ' फिल्मों में अपने जौहर दिखाए।

गुणी पिता के 'सो-सो' बेटे अन्नू मलिक भी लंबे समय से अपना स्थान बनाने के लिए संघर्षरत हैं। 'कॉपी' करने से इन्हें कभी परहेज नहीं रहा। हाँ, 'वेस्टर्न म्युजिक' की कर्कश अति उन्होंने तेज दी है। अभी किसी फिल्म में वे हूबहू नदीम-श्रवण की आशिकी जैसा संगीत दे चुके हैं। इस वर्ष उनकी 'माँ/चमत्काराधा का संगम/तहलका' फिल्में आई।

हमें सबसे ज्यादा अफसोस रोशन के पुत्र राजेश रोशन की प्रतिभा की बर्बादी का होना चाहिए। 'देस-परदेस/मि.नटवरलाल/ काला पत्थर/ याराना/जूली/जनता हवलदार/और दिल्लगी' जैसी दर्जनों 'आल टाइम ग्रेट' फिल्मों में भरपूर विविधता के साथ अपनी क्षमता का लोहा मनवाने वाले राजेश रोशन को न जाने किसकी नजर लग गई है। लक्ष्मी-प्यारे के बाद उन्हें आखरी 'ट्रेंड-सेटर' कहा जा सकता है। नई पीढ़ी में वे ही हैं जिन्होंने भरपूर प्रयोगात्मकता और सूझबूझ से अपनी पहचान बनाई है। आज वे उस 'खास' फॉर्म में नहीं है। राहतें देने वाले संगीतकारों की पाँत में राजेश रोशन एक सम्माननीय नाम है। 'खेल' (इडली डू), किंग अंकल (तुम्हारी आँखें....) और कसक (इक ताजमहल दिल में हर कोई है छुपाए) जैसी फिल्मों में उनके बहुरंगी गाने कमोबेश तृप्तिदायक हैं।

करीब तीन दशकों से फिल्म संगीत-सृजन में खूबी के साथ जुटे लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के उल्लेख के बिना बात अधूरी रहेगी। छुटपन से साज थामकर नामी संगीतकारों के सहायक रहने के बाद कड़े परिश्रम और मधुर संगीत की जो जुगलबंदी इन्होंने पेश की है वह फिल्म इतिहास में एक मिसाल है। आज का हर संगीतकार सिर्फ इन्हें छूना या पार करना चाहता है। और संगीत में नकल का मतलब सिमटकर 'अधिक से अधिक लक्ष्मी-प्यारे की नकल' रह गया है। यह अलग बात है कि इस साल इनका संगीत या तो श्रोताओं तक पहुँचा ही नहीं, और जितना कुछ पहुँचा भी-उससे पूरी तृप्ति नहीं दी। कुछ 'मिस' करने का आभास होता रहा। इस वर्ष लक्ष्मी-प्यारे की 'खुदा गवाह/प्रेम दीवाने/प्रहार/दिल ही तो है/धुन/हमला/ युगान्धर/हीर-राँझा/अपराधी और अंगार' फिल्में आई। 'खुदा गवाह' के संगीत को यदि

संगीतकार शिव-हरि की जोड़ी के हरिप्रसाद चौरसिया : मीठे और मधुर लम्हे

'किल' नहीं किया जाता, तो 'सौदागर' के बाद उसके गली-गली लोकप्रिय होने की पर्याप्त संभावना थी। अरेबियन संगीत से सज्जित अमिताभ की आखरी फिल्म का शीर्षक गीत 'तू मुझे कबूल' लता की आवाज में ज्यादा असरदार प्रतीत होता है। 'तू ना जा मेरे बादशाह' सहित अन्य गीत भी नयापन लिए हुए हैं....पर अफसोस। 'हीर-राँझा' का 'रब ने बनाया तुझे' गीत जिसे लता ने अनवर के साथ गाया है, सम्मोहक है और लता-रफी के दिनों की याद दिलाता है। 'दिल ही तो है' फिल्म का 'मेरी चूड़ियाँ बजें' (लता), 'क्षत्रिय' का 'दिल न किसी का जाए....' (लता-कविता) और 'प्रेम दीवाने' का 'पी-पी-पी-पी-पिया' जैसे गीत लोकप्रिय हुए हैं। संजीदा गानों के खोजियों के लिए 'धुन' के अधिकांश गीत लजीज दावत हैं। फिर भी लक्ष्मी-प्यारे को इस बार हमने अनमना ही पाया।

१९९२ में संगीतकार ओ.पी. नैयर की वापसी 'जिद' और 'निश्चय' फिल्मों के जरिए हो गई। कविता कृष्णमूर्ति को आशा भोंसले की जगह रखते हुए, उन्होंने दोनों ही फिल्मों में नए दौर से ताल मिलाता संगीत दिया है। नौशाद साहब की फिल्म 'तेरी पायल मेरे गीत' के गीत सुनना एक सुखद अनुभूति है। लता और एस.बी. बालसुब्रमण्यम की आवाजों में, नौशाद का नया अंदाज सुनने लायक है। संगीतकार शिव-हरि ने 'लम्हें' और 'परंपरा' में मीठी धुनें देकर 'सिलसिला' का सिलसिला जारी रखने के कोशिश की है। फिल्म 'अंदाज अपना अपना' में तुषार भाटिया ने कमाल किया है-आप जरूर सुनिए और वह कमाल जानिए। 'लेकिन' के बाद पं. हृदयनाथ मंगेश्कर ने 'माया मेमसाब' में कमाल किया है। गुलजार का एक-एक गीत, मानों चमेली का महकता कर्णफूल हो। मगर हुजूर, फिलहाल तो फिल्म 'रुदाली' का एक गीत दिलों-दिमाग में पैठा है- 'दिल घुम-घुम करे...'। दिल के दुर्गम वीरोरा को छूते-से इस गीत को धुन में बाँधा है असम की फिल्मों के सिद्ध संगीतज्ञ तथा हिंदी के श्रोताओं के भी सुपरिचित, भूपेन हजारिका ने। और लता दीदी ने इसे अपने स्वर से दिव्यता दी है। इसी क्रम में संगीतकार बासु चक्रवर्ती की 'नरगिस' सचमुच, बानवे के गमले में खिला एक सुंदर फूल है।

गायकों पर नजर डालें तो पाएँगे कि लताजी अपनी सम्मोहक स्वर-माधुरी लिए आज भी संगीत जगत पर छाई हैं। बढ़ती आयु से अप्रभावित उनका कंठ उन्हें और भी आश्चर्यजनक बना देता है। लताजी के कई फिल्मी गीतों की लोकप्रियता के अलावा इस साल एच.एम.वी. द्वारा प्रस्तुत 'श्रद्धांजलि' कैसेट भी चर्चित रहा। अन्य गायिकाओं में कविता कृष्णमूर्ति/अलका याज्ञिक और साधना सरगम के साथ-साथ आशा भोंसले भी भरपूर सक्रिय रहीं। अनुराधा पौडवाल की फैक्ट्री से इस बार भी अंधाधुंध गीत निकले। गुणवत्ता? छोड़िए भी। पुरुष गायकों में कुमार शानू फैक्ट्री बन गए। एक जैसे सैकड़ों गीत गाकर इन्होंने जनता में दूसरे गायकों की पर्याप्त चाह जगा दी है।

कुमार शानू के प्रकोप से बहुत थोड़े संगीतकार मुक्त रह पाए। चौंकाने वाली बात तब हुई जब (नदीम) श्रवण के छोटे भाई विनोद राठौर ने अपना सर्वप्रथम फिल्मी गीत (रोमियो नाम मेरा...), लक्ष्मी-प्यारे के संगीत निर्देशन में फिल्म 'रूप की रानी चोरों का राजा' के लिए गाया। उधर सुरेश वाडकर, अभिजीत और अमितकुमार के साथ-साथ अनवर के स्वर भी गूँजे। कुमार शानू के बाद सबसे ज्यादा गीत मोहम्मद अजीज और बाला सुब्रमण्यम ने गाए। बाला का उच्चारण शानू से साफ है, और आवाज भी दमदार।

गीतकारों में समीर ने नदीम-श्रवण और आनंद-मिलिंद के लिए दोनों हाथों से थोक में गीत पर लिखे। आनंद बख्शी अपनी जगह जमे रहे। इंदीवर और अनजान का नाम और काम नहीं के बराबर था। और रानी मलिक और राजेश जौहरी जैसे नए गीतकारों ने खूब जौहर दिखाए।

इस बीच हम श्रोता भी अपनी भूमिका समझें और १९९३ के संगीत की स्वागत-बेला में, महात्मा गाँधी के त्रिसूत्र में से एक 'बुरा मत सुनो' का फिल्म संगीत के संदर्भ में भी मनन शुरू कर दें।
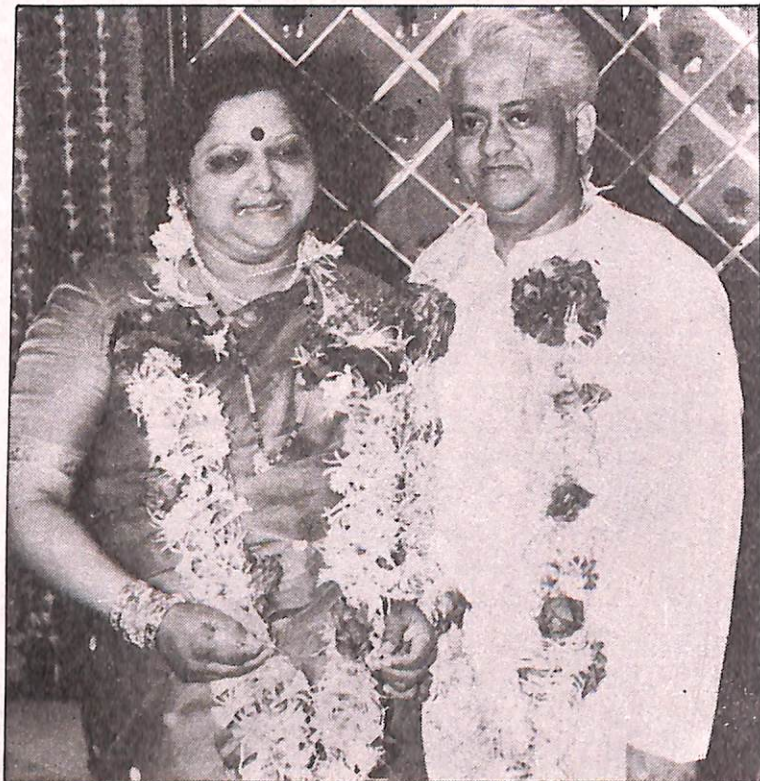
संगीतकार लक्ष्मी-प्यारे की जोड़ी के प्यारेलाल अपनी पत्नी के साथ

हादसों में हिन्दी सिनेमा - १९९२

● प्रभुनाथ सिंह 'आज़मी'

हिन्दुस्तानी सिनेमा अजूबों की दुनिया में जीने वाला एक आश्चर्य है। इसके बारे में ज्यादातर लोग कुछ नहीं जानते। न ही बनाने वाले जानते हैं कि वे क्या बना रहे हैं और न देखने वाले जानते हैं कि वे क्या देख रहे हैं। ऐसे में सिनेमा की समीक्षा बन गए और देखे गए के बीच तलाश किए गए कुछ तर्कों पर टिकी रहती है। इन्हीं तर्कों में अपनी समझ को विकसित करके कुछ सिद्धान्त ढूँढे जा सकते हैं। चूँकि हिन्दुस्तानी सिनेमा में माध्यम के समझने वाले लोग जिन्हें पता है कि वे क्या बना रहे हैं, वे उन्हें उन दर्शकों तक पहुँचा देते हैं जो जानते हैं कि वे क्या देख रहे हैं। ऐसे में इस तरह की फ़िल्मों की समीक्षा थोड़ा सरल काम है। क्योंकि समीक्षक की दृष्टि से देखने पर ऐसे सिनेमा में बहुत सारे तत्व मिल जाते हैं जिन पर लिखना मुश्किल काम नहीं होता।

1992 का साल भी इसी तरह के अजूबे का साल है जो अपनी कई पुरानी बीमारियों से ग्रसित रहा तथा दूसरी ओर उसमें कई नई बीमारियाँ भी शामिल हो गईं। पुरानी बीमारियों में वीडियो सबसे खतरनाक ढंग से शामिल हुआ था लेकिन सिनेमा में ही उसको शामिल करके एक तरह से टीका के लिए सीरम तैयार करने जैसा कारनामा सिनेमा ने कर लिया था और धीरे-धीरे आकण्ठ डूबे सिनेमा को सांस लेने का मौका मिल चला था। अचानक केबल टी.वी. ने हमला किया। देखने वाले दर्शकों की संख्या तय है। इसी तरह से उनको देखने की अवधि भी तय है जबकि देखी जाने वाली चीजों में चुनाव की गुँजाइश लगातार बढ़ रही है। यह ठीक बात है कि चुनाव कई एक जैसी चीजों में से एक को चुनने जैसा है पर सम्भवतः चुनाव में बदलाव या संशोधनों की कोशिश करें, आखिरकार ढेर सारी देखी जाने वाली चीजों की आमद ने आज के आदमी को कई बहुत जरूरी और महत्वपूर्ण क्षणों से भी अलग करके उन्हें देखने के लिए अतिरिक्त समय देने को विवश कर दिया है। तो भी सिनेमा की कुछ अलग दिक्कतें हैं। यह अपने आप आपके घर में नहीं आ सकता और 1992 के हालातों में तो उस तक जाने की भी बहुत सारी बाधाएँ हैं, केबल टी.वी. से सिनेमा थोड़े कम नफे के साथ समझौता कर सकता है लेकिन लगातार हादसों को सिनेमा बरदाश्त नहीं कर सकता। एक तरफ आरक्षण के नाम पर आहुतियाँ जारी थीं तो दूसरी तरफ मन्दिर-मस्जिद विवाद की साम्प्रदायिक आग में देश जल रहा था। इन दोनों ने मिलकर 1992 के सिनेमा की लगभग कमर ही तोड़ दी।

हिन्दुस्तानी सिनेमा सत्य और स्वप्न का ऐसा घाल-मेल तैयार करता है जिसे देखने के लिए एक तरह की फुरसत या फिर दीवानगी चाहिए। यह कोई आवश्यक कर्म नहीं है जो खतरों और असुविधाओं के बावजूद हमें सिनेमा देखने को विवश करे। हमारा फ़िल्म उद्योग संसार भर में सबसे अधिक लगभग एक हजार फ़िल्में प्रतिवर्ष बनाता है तो भी यह घाटे का उद्योग है क्योंकि उद्योग के लिए जिस तरह की प्लानिंग होनी चाहिए वैसा कुछ सिनेमा में सम्भव नहीं है और यह कुछ मायावी आकर्षण की तरह काम करता है। ढेर सारे लोग रातों रात एक से सौ करने के चक्कर में इतने दीवानगी की हद तक पैसा लगा देते हैं तो कुछ लोग केवल शोहरत की चमकदार रोशनी के लिए अपने आप को झोंक देते हैं। बावजूद इसके कि सफलता का आँकड़ा पन्द्रह प्रतिशत रहा, इस साल केवल हिन्दी में एक सौ पैंतालीस फ़िल्में प्रदर्शित हुई जिसमें से केवल 22 फ़िल्मों ने ऐसा धंधा किया जिसे मुनाफा कहा जा सकता है। 22 फ़िल्मों का आँकड़ा केवल इतनी सी बात का है कि इन फ़िल्मों पर लगाया गया पैसा डूबा नहीं और थोड़ा बहुत मुनाफा दे गया। लेकिन जिसे कि सचमुच सुपर हिट कहा जाता है ऐसी मात्र छः या सात फ़िल्में ही हैं। छः सुपर हिट फ़िल्मों में बेटा, दीवाना, शोला और शबनम, बोल राधा बोल, जिगर और आज का गुण्डाराज को गिना जा सकता है। खींचतान कर छः और फ़िल्मों को सफल फ़िल्में कहा जा सकता है जैसे खुदा गवाह, जो जीता वही सिकन्दर, तहलका, मेरे सजना साथ निभाना, घर जमाई और प्रहार। इसके अलावा हिन्दुस्तानी फ़िल्मों के नाम पर जितनी भी फ़िल्में बनी हैं और 1992 में प्रदर्शित हुई हैं वे सभी लगभग घाटे का और बहुत बड़े घाटे का सौदा है जिसमें हीर रांझा, राधा का संगम, सपने साजन के, खेल, बेवफा से वफा और बेखुदी जैसी फ़िल्में आती हैं जिनमें कुछ तो वे हैं जिनके निर्माता निर्देशकों ने पिछले साल अच्छी खासी कमाई की जमीन तैयार की थी और उसी सफलता के भरोसे इस साल वितरकों ने दिल खोलकर पैसा लगाया और डूब गए। जिसमें लॉरेन्स डिसूजा सबसे ऊपर आते हैं जिन्होंने पिछले साल साजन जैसी फ़िल्म में सफलता हासिल की थी और इस साल "सपने साजन के" में वितरकों को डुबो दिया।

सफल फ़िल्मों के ऊपर नजर डालें तो एक विचित्र सी चीज सामने आती है। आज के आदमी की एक तरफ केवल आज को देखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। वह आने वाले समय को लेकर परम्पराहीन ढंग से देख रहा है तो दूसरी ओर सिनेमा में ठीक इसके विपरीत उत्तराधिकारी और विरासत के मामले को लेकर हद दर्जे की दिलचस्पी कायम करता है। बेटा, दीवाना, बोल राधा बोल तीनों ही फ़िल्मों में सम्पत्ति पर उत्तराधिकार को लेकर कथाएँ बुनी गई हैं और उसके बीच अवास्तविक संसार रचा गया है। अगर दीवाना के अमरीश पुरी को बोल राधा बोल के आलोकनाथ से बदल दिया जाय तो क्या फर्क पड़ने वाला है। दरअसल सफल फ़िल्मों की सफलता का राज ढूँढना केवल उस तरह की कोशिश होगी जैसे "दाने दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम" की कहावत को सच करने के लिए खाने से पहले दाने पर अपना नाम लिख देना। गत वर्ष फ़िल्म संगीत की सफल संगीत रचनाओं को देखकर लगा था कि सुरीले और मैलोडी के संगीत का रुझान बहुत अलग है और नया है। गीत बजता है, उसे सुनते हैं और उसे काफी देर तक सुनने के बाद भी यह बता पाना मुश्किल होता है कि उसके बोल क्या हैं। सवाल गीत के शब्द और संगीत के स्तर की अमूर्तता का नहीं बल्कि व्यर्थता के बोध कराने का है। अभिनय के हिसाब से समय के दबाव और तेजी साफ नजर आ रहे हैं। सम्वेदनशीलता के तन्तु कमजोरतर हुए हैं और इसी के चलते चेहरों के माध्यम से व्यक्त करने के लिए पर्दे पर चेहरे को कुछ देर तक सस्टेन करने का समय न तो दर्शकों के पास है और न ही फ़िल्म सम्पादक के पास। इसलिए केवल घटनाओं को सिनेमा में तब्दील करने के लिए एक तरह की कसरत जारी है जिसमें से तरह-तरह की हरकतें पटकथा के नाम

पर संयोजित की जाती हैं। इसलिए अब टांगों और हाथों से अभिनय की जगह भरी जाती हैं और घटनाओं को केवल गति के पैमाने से नापा जाता है। इस साल की जिक्र करने लायक दस महत्वपूर्ण फ़िल्मों का आइए एक जायजा लेते हैं :

1. बेटा

बेटा का जिक्र पहले नम्बर पर इसलिए आता है कि यह 1992 की सबसे कमाऊ फ़िल्म है। इस फ़िल्म की कुल लागत 90 लाख रुपए थी जिसने ढाई करोड़ रुपए कमा कर दिए। इस सफलता के कारण, पूरी फ़िल्म में रचे बसे नहीं बल्कि वे टुकड़ों-टुकड़ों में फ़िल्म के बीच रखे हुए हैं। अगर एक तरफ माधुरी दीक्षित आज के खुले समाज और अनुत्तेजक उत्तेजना में अपने शरीर से ठेठ आदम पुरूष को जगा पाने में कामयाब हुई है तो दूसरी तरफ अरुणा ईरानी अपनी उम्र और अभिनय के पिछले आयाम को तोड़कर नया कुछ साबित करने में बहुत सफल रही हैं और यह काम बेटा फ़िल्म में रस की तरह न भरकर उछाल की तरह कई बार रखा गया "धक धक करने लगा" गीत पर माधुरी दीक्षित ने जो कुछ बेटा के लिए किया है उसे नृत्य, अभिनय, अंग प्रदर्शन कुछ भी कहा जा सकता है लेकिन बेटा के टिकिट खरीदने वालों को लाईन में लगाने के लिए काफी है। माधुरी दीक्षित खुद यह कबूल करती है कि बाद के निर्देशक उनसे वैसी ही उत्तेजक अभिव्यक्ति की इच्छा रखते हुए विनती करते हैं, "मैडम एक बार फिर वही बेटा वाली परफारमेन्स दे दीजिए"। यह विनय कोई नई नहीं है और न ऐसे आकर्षण नए हैं। इन चालबाजियों पर हिन्दी सिनेमा का बॉक्स ऑफिस अक्सर पिट जाता है क्योंकि लगभग हर तीसरी फ़िल्म में यही कुछ ठगने का बहाना होता है। किन्तु बेटा में इस दोहराव का जिस मौलिकता से ठेठ उत्तेजना को पैदा किया गया है वह है तो कमाल का चाहे उसकी तारीफ करने में कितनी भी नैतिक बाधाएं आएं।

अरुणा ईरानी ने विधुर पति की पत्नी बनते हुए केवल उत्तराधिकार में प्राप्त धन की इच्छा प्रमुख रखी थी। यह उनके सम्पूर्ण अभिनय और हर लहजे से ज़ाहिर होता है और एक तरह से बेटा का सबसे बड़ा तनाव का बिन्दु पैदा करते हैं तो दूसरी ओर माधुरी दीक्षित इस तनाव को प्रतितनाव के मार्फत सामान्य बनाने की कोशिश करती है और आज की औरत की दिलेरी को जिस तरह साकार करती है वह परम्परागत नारी के लिए मुक्ति पर्व जैसा है जिसे वह सिनेमा के मार्फत सेलिब्रेट करती है और उनके बीच अनिल कपूर सम्पर्क सूत्र की तरह काम करते हैं जो नाटक को अति नाटकीयता का वह आकर्षक पुट देते हैं जिसे एक लम्बे अरसे से सिनेमा पर दर्शकों की स्वीकृति मिली हुई है। दरअसल एक दृश्य में जब सिन्दूर लेकर माधुरी दीक्षित अनिल कपूर के सामने खड़ी होती है तो उस क्षण पौरुष अपनी देह छोड़कर दूसरी देह में प्रवेश करता है और एक तरह से वह पुरुष का उद्धार करने वाली औरत की तरह बरताव करती है जिसमें विचित्रता नए नाटकीय धरातल पर दर्शक को विस्मित करती है।

बेटा फ़िल्म की पटकथा में यह पूरी कोशिश की गई है कि किसी भी क्षण मामूली या सहज दृश्य आकर दर्शक के तर्क को जागृत नहीं कर पाए इसलिए अनुपम खेर लगातार उपस्थित रहते हैं जो सामान्य होते हुए दृश्य को भी केवल अपनी उपस्थिति भर से दर्शकीय विचित्रता में बदल देते हैं। यह उनकी कामयाबी में शामिल होने लायक बात है कि जहाँ करने को कुछ नहीं हो, कहने को कुछ नहीं हो वहाँ अपनी उपस्थिति भर से दृश्य को विशिष्ट बना देना कितना मुश्किल काम है जिसे वे बहुत आसानी से कर देते हैं। मेले के दृश्यों का सम्पादन और मौत के कुए में बलात्कार की कोशिश के दृश्यों का छायांकन बेटा के दृश्य संयोजन में महत्वपूर्ण है लेकिन कुल मिलाकर इस फ़िल्म का छायांकन बहुत सामान्य और सपाट है और दृश्य इतने स्थूल हैं कि किसी सम्पादकीय कौशल की अतिरिक्त आवश्यकता नहीं महसूस होने देती। दरअसल इस फ़िल्म के गीतों के मार्फत जिस स्वप्निल दुनिया की रचना की गई है वह एक तरह का निर्जन एकान्त रचता है जहाँ वह स्त्री और पुरुष के बीच शारीरिक सम्बन्धों के आसपास घूमती हुई आदिम इच्छाएँ रहती हैं जिसकी ललक उम्र के एक खास मुकाम से शुरू होती है और आजीवन बनी रहती है। बेटा फ़िल्म में इसी आकर्षण को बॉक्स ऑफिस में तब्दील करने का करिश्मा किया गया है। यह करिश्मा नागवार न गुजरे और फ़िल्म कथा में मिसफिट न हो इसलिए धन और सम्पत्ति के उत्तराधिकार को एक पलड़े में रखकर दूसरे पलड़े में समर्पण और केवल समर्पण रखा गया है। समर्पित पुत्र की भूमिका में अनिल कपूर ने कोई उल्लेखनीय काम नहीं किया है फिर भी फ़िल्म के अन्तिम दृश्य में उन्होंने समर्पित पुत्र को जिस तरह प्रस्तुत किया है वह फ़िल्म को अपनी नाटकीय सीमाओं में नैतिक ऊँचाई देने की समर्थ कोशिश नजर आती है। दरअसल फ़िल्म खत्म होते-होते उत्तेजना भी उतार पर होती है और यहाँ दुनिया की माया क्षण भंगुर और फिजूल नजर आने लगती है और फ़िल्म के स्थाई भाव के रूप में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता को बनाये रखना जरूरी लगता है। तभी तो अरुणा ईरानी अन्ततः पुकार उठती है "मुझे कोई धन सम्पत्ति नहीं चाहिए, मुझे केवल बेटा चाहिए।" गीत-संगीत लोकप्रिय हैं जिसके लिए धुनों के साथ-साथ पर्दे पर उनकी अदायगी भी काम करती है।

2. दीवाना

दीवाना में सफलता के लिए जरूरी सभी मसालों को सन्तुलित ढंग से उपयोग में लाया गया है। कथा सामान्य सी। एक जमींदार उसका इकलौता बेटा जिसे अपने धन सम्पत्ति, कारोबार में विशेष रूचि नहीं, उस पर नजर गड़ाए उसके चाचा, ताऊ और उसका एक मक्कार बेटा। इसमें नया जोड़ने की नई तरकीब जिसमें एक और जबरदस्त ड्रामा और आज की मांग के अनुसार तथा उत्तेजक सम्वाद। इस बिकाऊ मसाले के लिए पटकथा में कोशिश तो काफी की गई लेकिन उसे वह कामयाबी नहीं मिल पाई जो पूरी फ़िल्म को गतिशीलता दे सके और उनमें समरसता कायम कर सके। वास्तव में दीवाना की पटकथा एक खूबसूरत रफूगरी नजर आती है बनिस्वत एक मजबूत सिलाई के। सुषमा सेठ ऋषि कपूर की माँ हैं जो विधवा हैं और बेटे के लिए खूबसूरत सी बहू का इन्तजार कर रही हैं। पूरे कारोबार को चाचा अमरीश पुरी सम्भाल रहे हैं और उसमें उनका हाथ बटा रहे हैं उन्हीं के बेटे मोहनीश बहल। किसी स्टेज शो के लिए नायक ऋषि कपूर किसी पहाड़ी कस्बे में जाते हैं और वहाँ से दिव्या भारती को ब्याह लाते हैं। अमरीश पुरी अपनी नीयत के पूरे खोट के साथ दृश्य में दाखिल होते हैं। ऋषि कपूर को मार कर नदी में फेंक दिया जाता है। दिव्या भारती अपनी सास के साथ जान बचाती हुई शहर में पहुँचती है जहाँ आलोकनाथ उनको संरक्षण देता है। शहर का आवारा नौजवान शाहरुख खान दिव्या भारती को देखकर दीवाना हो जाता है और बहुत ही नाटकीय ढंग से उससे विवाह करके शहर में रहने लगता है। अति नाटकीय ढंग से ही ऋषि कपूर जीवित पाये जाते हैं और शहर में आकर दीवानगी में और इजाफा करते हैं। और फिर बुरों और अच्छों में युद्ध होता है जिसमें बुरे और कुछ अच्छे मारे जाते हैं। बाकी अच्छे,

अच्छे-अच्छे रहने लगते हैं। इस कथा में न बहाव है न उछाल है और न ही बदलाव है। यह केवल दृश्यों की जमावट का कारनामा है। इस कारनामे में ऋषि कपूर ने अपना काम मामूली ढंग से अदा किया है। अमरीश पुरी, मोहनीष बहल और सुषमा सेठ ने कहानी की मांग के मुताबिक अपनी क्षमताओं से कुछ कम काम किया है जिसका सारा लाभ शाहरुख खान ने उठाया है। उन्होंने मामूली से परफारमेन्स से सजे सिनेमा में अपनी उपस्थिति को बेहद ताजे और ताकतवर अभिनेता की तरह प्रस्तुत किया है जिसमें दिलीप ताहिल के सामने उनकी सम्वाद अदायगी और लम्बे सम्वाद ने अच्छी मदद की है लेकिन यहाँ निर्देशक से एक आपत्ति दर्ज करना जरूरी लगता है। बाप और बेटे के सम्वादों में इतना आधुनिक होते हुए लेखक उन सीमाओं को छूने लगते हैं जो किसी भी देशकाल में आदर नहीं पा सकते चाहे वे कितने भी विकसित क्यों न हो। क्योंकि उनका कोई अर्थ नहीं होता। जब शाहरुख खान अपने पिता से कहते हैं "आप के यहाँ मेरा पैदा होना या मेरा आपका बेटा होना यह केवल घटना है या संयोग उससे अधिक कुछ नहीं" इस बात का अर्थ क्या है? आदमी स्वयं संयोग है। घटनाएँ इसी तरह से घटती आई हैं उनमें सम्बन्ध या उनके बहाव को पारम्परिक तारतम्य में देखना केवल घटना नहीं, केवल संयोग नहीं यह तपस्या और चिन्तन से मिली है और चिन्तन या तपस्याएँ हल्के उत्तेजनात्मक सम्वादों से नष्ट नहीं की जा सकतीं। क्योंकि इस तरह दुनिया में हर चीज को केवल घटना या संयोग कह कर टाल दिया जा सकता है और ऐसे में सृजन की सम्भावना ही नहीं बचती।

दीवाना का छायांकन उचटे-उचटे दृश्यों के बीच की जगह को खूबसूरती से भरता है। स्पेसेज को खालीपन से मुक्त करता है। गीत-संगीत अपनी लोकप्रियता को पचाने में कामयाब रहे हैं फिर भी "तेरी उम्मीद तेरा इन्तजार" और "ऐसी दीवानगी" के माध्यम से अपनी उपस्थिति अलग से दर्ज कराने में कामयाब रहे हैं। फाइट कम्पोजिंग में चिड़ियों के पिंजरे का इस्तेमाल प्रतीक की तरह किया गया है जो दृश्य के रूप में तो अच्छा लगता है लेकिन प्रतीक के रूप में भौण्डा। दीवाना की कामयाबी में उस का निर्देशन और फोटोग्राफी दोनों ने अच्छी भूमिका अदा की है। जिस दृश्य में दिव्या भारती को शाहरुख खान के एक्सीडेन्ट का समाचार फोन पर मिलता है और वह फोन के हैण्डसेट को वापस टेलीफोन पर रखने के बजाय जिस तरह फेंक कर भागती है वह निर्देशकीय कौशल से ही सम्भव बन पड़ा है। दरअसल दीवानगी की सफलता का राज शाहरुख खान के अभिनय में छुपा है जिसमें बाकी लोग मदद करते हैं।

3. शोला और शबनम

शोला और शबनम गोविन्दा की किस्मत का सितारा बुलन्द रखने के लिए सफल हुई है जिसमें सबसे बड़ा हाथ अनुपम खेर का है। दिव्या, राजा बुन्देला, गुलशन ग्रोवर, बिन्दु, आलोक नाथ, हरीश पटेल इत्यादि लोगों ने अपनी क्षमताभर मदद की है। शोला और शबनम असामाजिक तत्वों द्वारा अत्याचार की हद तक उत्पीड़ित किये जाने के बाद विरोध में खड़े नवयुवक की घिसी पिटी कथा की पुनः शक्तिशाली ढंग से की गई प्रस्तुति है। गुलशन ग्रोवर ने एक बिहारी गुण्डे को नकली अविश्वसनीय किन्तु रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। उनके छोटे भाई के रूप में मोहनीष बहल को जिस प्रकार इन दिनों ढेर सारा काम एक ही प्रकार का मिल रहा है और जिस तरह वे इसको एक ही ढंग से निपटाते चले जा रहे हैं उसे जिस प्रकार आज का दर्शक एक ही तरह स्वीकार करता चला जा रहा है यह मोनोटॅनी के नियम के विरूद्ध और आश्चर्यजनक लगता है। क्योंकि मोहनीष बहल में रेखांकित करने लायक कुछ भी नहीं है फिर भी वे आज के घटिया, क्रूर और नीच नवयुवक को लगातार प्रस्तुत करते जा रहे हैं। गोविन्दा के चेहरे पर एक नैसर्गिक भोलापन तो है ही उसमें अपने भावों को प्रकट करने का आत्म विश्वास भी नजर आता है।

दिव्या की भूमिका भरपेट भोजन में चटनी जैसी ही है जिसका उल्लेख करने की जरूरत इसलिए भी है कि बहुत मामूली सी उपस्थिति के बावजूद उन्हें शोला और शबनम में सफलता का कारक माना जाता है। पर अनुपम खेर ने जिस कायदे प्लस कानून के जरिए हास्य और बोध दोनों पैदा किया है वह अनुपम खेर की क्षमताओं को तो ज़ाहिर करता ही है यह भी स्पष्ट करता है कि वे सायलेन्स और स्पेस के अच्छे अभिनेता है तो क्राउड एण्ड कॉमेडी के भी सशक्त कलाकार हैं। जिन दृश्यों में वे उपस्थित हैं उनमें उनके सामने से लोग लगभग अनुपस्थित लगते हैं। दृश्य संयोजन के हिसाब से यह कोई बहुत अच्छी रचना का प्रतीक नहीं है लेकिन टिकिट खिड़की पर ऐसी उपस्थिति अक्सर कामयाब होती है और शोला और शबनम की कामयाबी में इसका हाथ है। हरीश पटेल ने बहुत कम निगेटिव रोल्स किये हैं जिसमें से एक यह भी है, तो भी वे प्रभावित करते हैं पर अपनी नई भूमिका में बिन्दु अनुपम खेर के साथ मिलकर जो रस संसार रचती हैं वह उल्लेखनीय है। इन दिनों फ़िल्मों में पुलिस का एक वर्ग सीधे-सीधे खुले आम गुण्डों के हाथों में खेलता दिखाया जाता है और उन्हीं में से कोई एक ठेठ गुण्डे से भी अधिक क्रूर और बेईमान नज़र जाता है। हो सकता है यह इस समय के सोच के भीतर झांकने की कोशिश हो किन्तु पर्दे का यह सच दर्शकों के बीच पहुँच कर विश्वनीयता की जड़ें खोखली कर देता है और मनुष्य में विश्वास की कमी खुद उसी के विरुद्ध रो जाती है जो अन्ततः उसे कमजोर आदमी में बदल देता है। सवाल यह नहीं है कि पुलिस अविश्वसनीय, क्रूर और बेईमान हो गई है बल्कि सवाल यह नहीं है कि हम किस तरह से देखते हैं, केवल समय का सच हो सकता है लेकिन वह फ़िल्म का झूठ है क्योंकि फ़िल्म स्वयं चौराहे की घटनाओं के साथ ऐसा करती है। "शोला और शबनम" में पुलिस के वेन में सजायाफ्ता मुजरिम के साथ खुद पुलिस द्वारा की गई क्रूरता अन्ततः व्यक्तिगत क्रोध में बदल जाती है इसको समूह का स्वर देने की कोई कोशिश कहीं नज़र नहीं आती। इस फ़िल्म के गीत और संगीत में ऐसी कोई खूबी नज़र नहीं आती जो शोला और शबनम को एक सफल फ़िल्म में ढाल दे बल्कि शोला और शबनम के चलते हुए गीत लोकप्रिय हो गए है। फ़िल्म के सम्वाद अलग से चुभते नहीं उनकी इतनी ही सफलता काफी है पर थोड़ी सी कोशिश और की जाती तो उनकी नाटकीयता कम की जा सकती थी।

4. बोल राधा बोल

बोल राधा बोल और दीवाना में कथा के स्तर पर कोई फर्क नहीं है। अभिनय के स्तर पर भी कोई फर्क नहीं है। गीत-संगीत भी एक जैसे ही हैं और सफलता भी एक ही जैसी है अगर इसे दर्शकों की रूचि का पैमाना माना जाय तो यह कहा जा सकता है कि दर्शक अब जमीन-जायदाद सम्पत्ति को हड़पने के लिए अपनाए गए हथकण्डों और उसमें मासूम उत्तराधिकारी की बदमाश लोगों से मुठभेड़ को तरजीह देने लगे हैं पर ऐसे खयालात पहले ऐसी ढेरों फ़िल्मों की लुटिया डुबो चुके हैं। आने वाले समय में यह भेड़ चाल इसी तरह जारी रही तो और जाने कितनों की डुबोएंगे। फ़िल्म देखने पर एक बात तो साफ समझ में आती है कि अगर आप फ़िल्म में दर्शक की दिलचस्पी कायम रखने

में कामयाब हो गए तो वह फ़िल्म घाटे का सौदा तो नहीं होगी। रही बात कामयाबी की तो अगर यही कुछ पता होता तो कोई भी फ़िल्म फ्लॉफ नहीं होती। जैसे रचे जाने से पूर्व कोई भी रचना महान नहीं होती उसी प्रकार बॉक्स ऑफिस पर टिकिट बिके बिना कोई भी फ़िल्म हिट नहीं होती। बोल राधा बोल शुरू से आखिर तक पूरी तरह दर्शकों की रूचि और दिलचस्पी कायम रखने में कामयाब रही है।

जुड़वाँ भाई, हमशक्ल, डबल रोल सिनेमा के सफल औजार के रूप में लम्बे अरसे तक इस्तेमाल हुए हैं लेकिन जिसे शुद्ध कामयाबी कहा जाय ऐसी बात बहुत कम फ़िल्मों के साथ हुई है। जिसमें बेहद कामयाबी फ़िल्मों का नाम लें तो हम दोनों, राम और श्याम और सीता और गीता ही गिनी जाती है। बोल राधा बोल इस अर्थ में डबल रोल की सफलता का किस्सा नहीं है क्योंकि ऋषि कपूर की दोहरी भूमिका न जुड़वाँ भाईयों की कहानी है न एक ही बाप के दो बेटों की है बल्कि ठेठ संयोग की है कि दो आदमी एक जैसी शक्ल के हैं। इस फ़िल्म में यह भी कोशिश नहीं की गई है कि इन दो हमशक्ल लोगों के बीच मारपीट कर खींचतान कर कोई रिश्ता स्थापित करना ही है। अतः इसे डबल रोल की सफलता की केवल मुख्य शाश्वत कारण यह है कि फ़िल्म में दर्शकों की दिलचस्पी बनाई रखी गई है।

पहले ही दृश्य में जब ऋषि कपूर वर्षों से बन्द पड़ी चाय की फैक्ट्री को पुनः चालू करने के लिए शहर से दूर चाय के बागानों में जाता है तो वहाँ से दिलचस्पी का सिलसिला शुरू हो जाता है। चुस्त सम्पादन के जरिए एक भाव लगातार पैदा किया जाता है जैसे कोई नायक के साथ अनहोनी होने वाली है। जूही चावला और ऋषि कपूर के मार्फत गाँव के जो दृश्य संयोजित किये गए हैं उनका मकसद फ़िल्म की कहानी को आगे बढ़ाने के साथ-साथ दिलचस्पी पैदा करने का है। कादर खान की उपस्थिति एक ऐसे आदमी के रूप में सामने आई है जो रात को देख नहीं पाता। अपने इस चरित्र के बहाने वे दिलचस्पी और हास्यपूर्ण दृश्यों की रचना करने में सफल हो जाते हैं। शहर में वापसी के बाद ऋषि कपूर का प्रति ऋषि कपूर से सामना होता है और इसके बाद दिलचस्प स्थितियों का लम्बा सिलसिला चलता है और बोल राधा बोल उसके बाद लगातार दिलचस्प अनुभवों में तब्दील होती चली जाती हैं। इस फ़िल्म के दो गीतों में ऐसे तत्व नजर आते हैं जो इसके लोकप्रिय होने में सहायक हैं। पहला है तू तू तू तारा और दूसरा है मैं तो गाँव की गोरी। इतना तो जरूर है कि संगीत इस फ़िल्म की दिलचस्पी को कायम रखने में मदद करता है। वह न तो फ़िल्म से नीचे बह कर व्यर्थ जाता है और न ही ऊपर जाकर उसे बोझिल बनाता है। इस फ़िल्म के संवाद बहुत लाउड और स्थूल हैं। इसके बावजूद नाटकीय दृश्यों में सफल हैं। बोल राधा बोल कामयाब फ़िल्मों में शामिल होते हुए भी कोई उल्लेखनीय फ़िल्म नहीं कही जा सकती।

5. जिगर

जिगर की सफलता अजय देवगन का जादू है जो फूल और कांटे के मार्फत पिछली बार भी दर्शकों के सिर पर चढ़ कर बजा था। वरना इस फ़िल्म में सफलता लायक ऐसी कोई विशेष चीज नहीं है जो इसके साथ आने वाली अन्य फ़िल्मों में नहीं था। इसमें खासकर अजय देवगन का स्टन्ट भी कोई बहुत ऊँचे स्तर का नहीं है जैसा फूल और कांटे में था और फ़िल्म की पटकथा में भी कोई खास चुस्ती नहीं है जो दर्शकों को स्तब्ध कर दे। लेकिन वीरू देवगन ने अपने बेटे के चरित्र के मुताबिक एक ऐसी कथा का ताना-बाना जरूर बुना है जो लगातार दर्शकों को व्यस्त रखे और उनकी दिलचस्पी फ़िल्म में बनाए रखे। इस काम में सहयोग देने के लिए मोहनीष बहल, परेश रावल, अजीत और करिश्मा कपूर को लुभावने और दिलचस्प बनाने के अंदाज में पेश किया गया है। परेश रावल इन दिनों निगेटिव कैरेक्टर को हास्य बोध के साथ प्रस्तुत करने में सफल हो रहे हैं, जिसे देखकर जीवन और दो-चार फ़िल्मों के ओमप्रकाश की याद आती है। खलनायक और हास्य अभिनेता के दोहरे चरित्र को एक साथ प्रस्तुत करने में जीवन का कोई सानी नहीं था, लेकिन परेश रावल ने इस फ़िल्म में यह काम रेखांकित करने लायक ढंग से किया है। वर्षों बाद अजीत फ़िल्मी पर्दे पर नजर आए हैं और उनके संवाद की अदायगी देखते हुए एक पीढ़ी का फर्क पर्दे पर देखकर अच्छा लगता है। व्यायामशाला के नाम पर गुण्डों को पालना और उन्हें पनाह देने का काम परेश रावल करते हैं जिसमें एक पात्र अर्जुन का भी है जो शुरू-शुरू में नायक का मित्र होता है और मामूली और नाटकीय घटनाओं के भरोसे दुश्मन में बदल जाता है। इस तरह का रस भंग और रिश्तों का विरोधी हो जाना फ़िल्मी घटना ही हो सकती है, जब दो मित्र अचानक दुश्मन हो जाते हैं और एक-दूसरे की बहन बेटियों से क्रूरतम ढंग से व्यवहार करने लगते हैं।

जिगर की कथा इस प्रकार से बुनी गई है कि शुरू-शुरू में अजय देवगन देर तक परेश रावल के गुण्डों से पिटते रहे और हीरो होने की सारी सहानुभूति दर्शकों से बटोरते रहे और उसके बाद उन्होंने रातों रात बॉक्सिग का प्रशिक्षण लिया और सारे गुण्डों को धराशायी कर दिया। ऐसी कथा हिन्दी सिनेमा के लिए काफी घिसी हुई है और इस तरह की फ़िल्मों में नया केवल इतना होता है कि उन्हें कितने गति और कैमरे के कितने कोणों से पर्दे पर प्रक्षेपित कर दिया जाता है। यही काम मामूली से थोड़ा बेहतर वीरू देवगन और सुरेश चतुर्वेदी ने मिलकर कर दिया है। आधी फ़िल्म बेहद बुझी-बुझी और पिटी-पिटी सी है पर जैसा कि इन दिनों चलन में है कि पुलिस के कुछ नुमाइंदे न केवल गुण्डों के हाथ में खेलते हैं, बल्कि व ठीक गुण्डों जैसा व्यवहार करते हैं और गुण्डों के लिए बाकायदा उनकी तरफ से काम करते हैं। वीरू देवगन का प्रारम्भिक प्रभाव बेहद फुसफुसा और मामूली सा पड़ता है लेकिन उत्तरार्थ में एक्शन और सम्पादन की चुस्ती ने फ़िल्म को अपने कंधों पर उठा लिया और लगभग यहाँ के आसपास गुलशन ग्रोवर की एंट्री ने फ़िल्म को दिलचस्प भी बनाना शुरू कर दिया। एक अलग किस्म के पुलिस इंसपेक्टर के रूप में अपनी स्थाई खलनायकीय छवि को उन्होंने तोड़ा है। यद्यपि उनका कहना "हम इंस्पेक्टर जरा दूजे किसम के हैं" बेहद फूहड़, नाटकीय, लाऊड और पैबंद जैसा है। लेकिन पूरी फ़िल्म में चूँकि इसी तरह से जिगर की सफलता में गुलशन ग्रोवर का भी खासा हाथ है। बॉक्सिग के दृश्य स्तरहीन है जिस पर पूरी फ़िल्म टिकी हुई है। करिश्मा कपूर केवल औरत की उपस्थिति दर्ज करती है और मोहनीष बहल केवल आतंक की स्थतियाँ पैदा करते हैं पर यह फ़िल्म पूरी तरह से अजय देवगन, परेश रावल और गुलशन ग्रोवर के कारनामों से सफल मानी जा सकती है, जिसमें थोड़ा बहुत हाथ आनंद मिलिन्द का भी है जिनके संगीत में थोड़ी सी समय की झलक मिलती है।

6 मुस्कुराहट

सिनेमा को एक कला का दर्जा तब मिलता है जब उसमें कहानी संवाद, नाटक, संगीत, नृत्य, फोटोग्राफी, अभिनय इत्यादि सारी चीजें मिलकर एक ऐसी नायाब चीज की तरह सामने आएँ जिन्हें आप इन सब से अलग कर के और सामूहिक ढंग से देखते हुए अलग-अलग महसूस करें। यानि जब आप फ़िल्म देख रहे होते हैं उस वक्त किसी विशेष तत्व पर ध्यान न जाय और तब कला के लायक तत्व के रूप में यह खोज मुश्किल हो जाय कि आखिर यो सारी कलाएं मिलकर किस प्रकार सिनेमा बा जाती हैं। पिछले साल बनी फ़िल्में में मुस्कुराहट एक इसी तरह की फ़िल्म है जो कला के उपरोक्त विभिन्न रूपों को अपने भीतर इस तरह समेटती है कि उनके अलग-अलग पक्षों पर ध्यान ही नहीं जाता। सर्वथा नए कलाकारों ने एक बेहद खूबसूरत फ़िल्म के रूप में मुस्कुराहट हमें सौंपी। विशेषकर अन्नू कपूर, रेवती तथा अमरीश पुरी ने जिस विचित्र अनुभव से परिचित कराया है वह मामूली कल्पनाओं का तो नहीं है लेकिन हमारे भीतर बहुत कुछ पता करने में सक्षम है। ऊटी के रेल्वे स्टेशन पर लाचारी में गाईड बने एक लड़के को एक लड़की यात्री मिलती है जो अपने व्यवहार से बहुत अमीर नजर आती है। फटीचर गाईड के लिए सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी नजर आती है। फटीचर गाईड का कंजूस दोस्त लगातार रोटी और भूख को लेकर परेशान रहता है और यही तीन पात्र भूख और पेट के बीच लगाता झगड़ते रहते हैं पर उनके बीच आदमियत कूट-कूट कर भरी होती हैं। अचानक एक दिन अखबार में कंजूस मित्र को लड़की का फोटो इनाम की घोषणा के साथ छपा दिखता है और इसके बाद फटीचर गाईड और कंजूस दोस्त मिलकर लड़की को अपने कब्जे में इस तरह दबोच लेते हैं, जिससे वे उसकी वापसी पर अच्छी खासी रकम वसूल कर सकें। अंततः लड़की फटीचर गाईड और कंजूस दोस्त के बीच बेहद खूबसूरत संवेदनशील फ़िल्म हाथ लगती है जो मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत है पर ऊपर से विस्फोटक हास्य देते हुए फ़िल्म भीतर करुणा का स्रोत बहाती रहती है। नाजायज रिश्तों में नाजायज बच्चों की उपज और उसे छुपाते आधुनिक समाज की पुरानी कोशिश और उनके बीच आर्थिक संबंधों के द्वंद में फँसे परिवार और मित्रता के रिश्तों में मुस्कुराहट आज की महत्वपूर्ण फ़िल्म है, जिसमें संवाद और दृश्य के स्तर पर सभी ने अपनी भूमिका को बहुत ही ग्राह्य ढंग से निवाहा है तो भी कुछ विशेष दृश्यों में रेवती ने अद्भुत अभिनय क्षमता का परिचय दिया है। स्टेशन से उतरते हुए, फिर होटल में पागल लड़की की भूमिका में और अन्ततः जिस वक्त एक सांड उस घायल करता है ये दृश्य उसकी अभिनय क्षमता के खूबसूरत नमूने हैं। पर बाजी जीती है अन्नूकपूर ने। अमरीश पुरी ने एक अन्दाज में प्रभावित किया है। मानवीय रिश्तों से ओत-प्रोत करुणा से उपजे हास्य की बेहद खूबसूरत फ़िल्म के रूप में इसे अवश्य देखा जाना चाहिए।

7. आज का गुण्डाराज

एक समय था जब किसी फ़िल्म में पुलिस को पथभ्रष्ट तो क्या संदेहास्पद तर्क दिखा पाना संभव नहीं था। सेंसर इस बात की अनुमति नहीं देता था। आज स्थिति यह है कि फ़िल्म में पुलिस को बतौर खलनायक प्रस्तुत किया जा सकता है। एक वह अति थी। एक यह अति है। सिनेमा में अतिशयता के हम आदी हैं। यह अतिशयता सिनेमा के पर्दे पर आसानी से बिकती है इसलिए वह चलन में है। अन्यथा न तो वह आदर्श सत्य था कि पुलिस बेईमान हो ही नहीं सकती, न यह कि पुलिस पूरी तरह अव्यवस्था की जड़ है, उसकी भूमिका पूरी तरह खलनायक की है तथा एक भी ईमानदारी आदमी उसमें नहीं बचा। मामला केवल संख्या का है- कितने ईमानदार, कितने भ्रष्ट बहुसंख्यक क्या हैं?

सिनेमा में सब कुछ जानबूझकर किया जाता है। कुछ भी अपने-आप नहीं होता चाहे उसे कितना भी लापरवाही से प्रस्तुत किया जाए। दृश्य में शामिल हर पात्र प्रतिनिधि पात्र होता है। इसलिए इस दलील का कोई अर्थ नहीं होता कि एक सिपाही को बेईमान या भ्रष्ट दिखा देने से पूरी पुलिस भ्रष्ट नहीं समझी जा सकती। **इत्तिफ़ाक** फ़िल्म में बी.आर. चोपड़ा ने बहुत बारीकी से यह काम किया था और नितांत व्यक्तिगत कारणों से केवल एक पुलिस वाले को कथा की माँग के नाम पर हत्यारा दिखाया था, जो बहुत मुश्किल से पर्दे पर पहुँच पाया था। यहाँ आज का गुण्डाराज है, जिसमें किसी प्रकार का संकोच नहीं बरता गया है। सिनेमा सृजन के मामले में भी यह फ़िल्म अपने नाम को ही सार्थक करती है।

फ़िल्म का प्रारम्भ एक स्वप्न दृश्य से होता है, जिसमें नायक कई गुण्डों को मशीनगन से भून देता है। जगता है तो अपनी दादी के हाथों पिटता है। स्वप्न तथा यथार्थ के बीच का रसभंग जितना विडम्बनीय है, उतना ही त्रासद वह विषय है जो चिरंजीवी प्रस्तुत करते हैं। एन.एन. सिप्पी का निर्माण इस बार दक्षिण भारत के निर्देशक के नाम गया है। उन्होंने जो बनाने को दिया गया उसे बिकने लायक बनाकर प्रस्तुत कर दिया। किन्तु जो प्रस्तुत हुआ है उसमें कुछ खतरनाक स्थापनाएँ हैं। पहली तो यह कि आज का गुण्डाराज, व्यवस्थागत न होकर निरपेक्ष रूप से उभरती व्यवस्था है, दूसरी यह कि पुलिस स्वतंत्र सत्ता है तो अपनी इच्छानुसार कुछ करने की बजाय इच्छानुसार ही सब कुछ होने देती हैं। तीसरी यह कि राजनीति सबसे कमजोर स्थिति में है जो केवल दलालों के हाथ में खिलौने-सी नजर आती है तथा वास्तविक अपराधी निरंकुश तथा तंत्रविहीन है।

उपरोक्त स्थापनाएँ कितनी वास्तविक है कितनी फ़िल्मी, इस बात पर टिप्पणी करने से पूर्व इस बात पर विचार कर लेना जरूरी है कि किस प्रभाव में इनका सृजन हुआ है और इनके प्रभाव में कितना विध्वंस संभव है। प्रभाव तथा परिणाम पर गौर किए बिना केवल दर्शक की जेब पर नजर रखने वाली फ़िल्मों में ही यह भी शामिल है। ऐसे में केवल यही पता करना होता है कि दर्शक किन दृश्यों का भूखा है, जो सेंसर की ज़िद्दी नज़रों से बचा कर एक प्रमाण पत्र बिना, प्रस्तुत किया जा सकता है। पुलिस पर की गई सिनेमाई टिप्पणियों के प्रति सेंसर ने जिस तरह नरम नज़रिया अपनाना शुरू किया है वह एक ओर सिनेमा वालों को सहजता से मनमानी टिप्पणी का मैदान मुहैय्या करा देता है तथा दूसरी ओर विचारकों के लिए सारी बात को फ़िल्मी कहने की आसानी भी उपलब्ध करा देता है। यहाँ यह खतरा खुला छोड़ दिया जाता है कि अगर आदतन पुलिस को पिटता देखकर जनता तालियाँ ही बजाती रहेगी तो फिर अनुशासन, प्रशासन, व्यवस्था, शांत, कानून इत्यादि शब्दों का क्या अर्थ शेष बचेगा? तथा एक निरीह व्यक्ति अकारण, अनायास जब सड़क पर पिट रहा होगा तो वह किसे पुकारेगी? पुलिस अपनी छवि जब पर्दे परे देखकर स्वयं तिलमिलाना भी छोड़ देगी तथा उस पर हंस कर वही व्यवहार अपना लेगी, तो कितनी भयावह स्थिति होगी? हन्ता की दया की गुहार लगाने वाला, कितना कातर बोल, बोल पाएगा जो चाकू के विरुद्ध ठहर पाए।

नायक के तीन रूप हैं- एक-मीनाक्षी शेषाद्रि के साथ प्यार करना, द्विअर्थी भौंडे तथा अश्लील
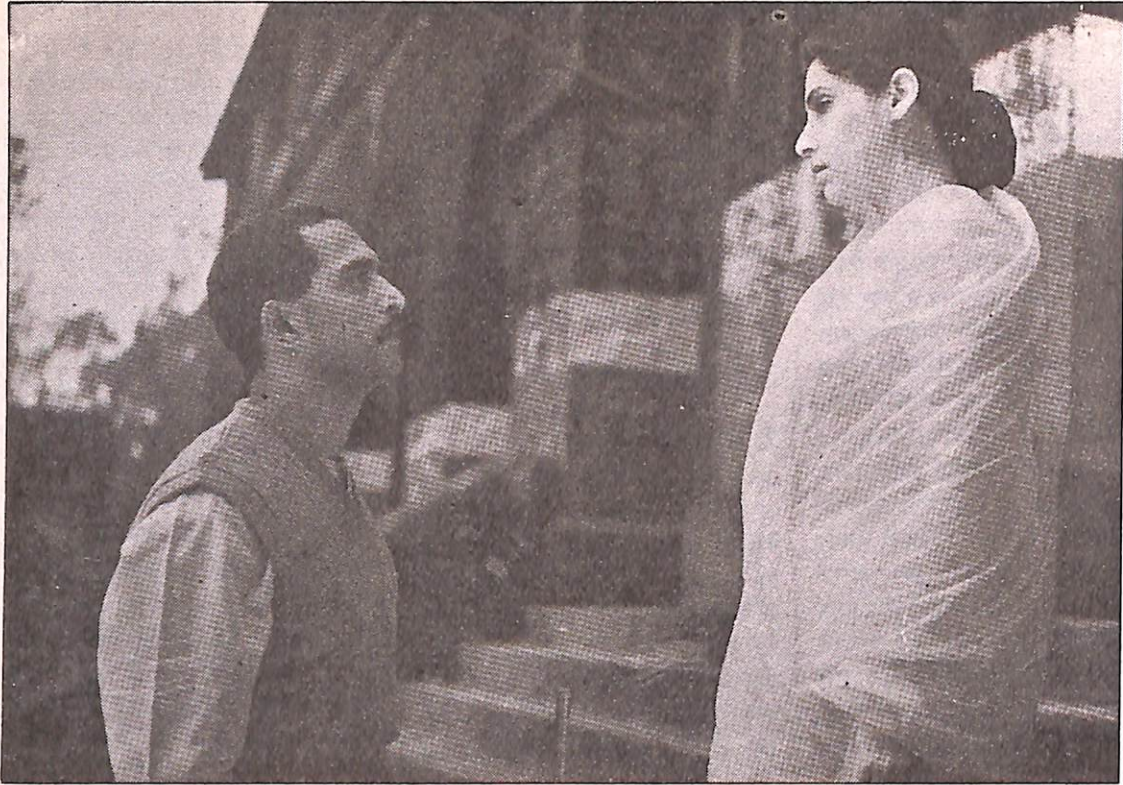
फिल्म प्रहार : नाना पाटेकर और डिम्पल

संवाद बोलना, जिसमें नायिका का पलड़ा भारी है तथा भौंडे संवाद बोलते चिरंजीवी स्वयं भौंडे लगते हैं। नायिका का इससे अधिक फ़िल्म में कोई और हस्तक्षेप है भी नहीं। दूसरे रूप में उन्हें हास्य पैदा करना है जो दीना पाठक (दादी) के मार्फत पैदा करते हैं, जो हास्यप्रद की जगह हास्यास्पद है। दादी से सामान्य बाल सुलभ हरकतें तो ग्राह्य लगती हैं, जो आप को हंसा गुदगुदा सकें, लेकिन दादा के रूप में उनकी वयस्क इच्छाओं के लिए उत्प्रेरक बनकर हास्य को पैदा करना हमारे हास्य बोध को विकृत करना ही है। यह एक तरह की भावबोध के विरुद्ध गुण्डागर्दी ही है।

अपने तीसरे रूप में वे नेता, पुलिस, प्रशासन तथा गुण्डों से लड़ते-भिड़ते रहते हैं जिसमें अपने तईं तो वे सफल हैं, पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं डाल पाते। फ़िल्मकारों को यह शिकायत रहती है कि समीक्षा में कथ्य, पटकथा, अभिनय, गीत-संगीत, फोटोग्राफी, सम्पादन को अलग-अलग देखकर समीक्षित कर दिया जाता है तथा दिग्दर्शक के काम को गोल-मोल ढंग से निबटा दिया जाता है। किसी भी सृजन में उत्कृष्टता, उस कला के सम्पूर्ण रूप के प्रभाव को स्वीकृत करने के बाद ही होती है। जब अपनी पूर्णता में ही फ़िल्म प्रभावहीन होती है तो उसके अलग-अलग अवयव अपनी अच्छाई बुराई से प्रभावित करते हैं। किताब का कथ्य ही व्यर्थ हो तो फिर उसके गेट अप, छपाई और अन्य बातों पर ध्यान जाता है जिसका कोई विशेष अर्थ नहीं है।

अपनी खतरनाक स्थापनाओं में बहस आमंत्रित करने के अतिरिक्त आज का गुण्डाराज एक व्यर्थ फ़िल्म मात्र है जिसमें केवल एक्शन फाइट कम्पोजिंग तथा सम्पादन की तारीफ की जा सकती है।

8. प्रहार

वर्तमान सिनेमा के परिदृश्य में प्रहार की चर्चा एक भिन्न फ़िल्म के रूप में करने के कई कारण हैं। सबसे महत्वपूर्ण तथा विशिष्ट कारण तो यह है कि अपने विषय तथा उसके निर्वाह के बीच किसी प्रकार की तथा कथित शास्त्रीयता नहीं अपनायी गी है और न ही जारी भेड़चाल की फार्मूलेबाजी दिखायी गयी है। फिर भी फ़िल्म शास्त्रीय लगती है तथा व्यावसायिक रूप से सफल भी है। एक फ़िल्म के आधार पर कोई अवधारणा स्थापित करना उतावलापन होगा तो भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि यदि आप अपने विचारों में स्पष्ट हैं, बिम्बों का प्रयोग जानते हैं, माध्यम की समझ है तो अति शास्त्रीयता अथवा अतिशय व्यावसायिकता के चरम बिन्दुओं में फँसे बगैर एक अच्छी सफल फ़िल्म बना सकते हैं।

समीक्षा की दृष्टि से प्रहार में अतुलनीय अथवा अत्यन्त महत्व के साथ रेखांकित करने लायक चमकदार बिन्दु नहीं है। इसे खुद प्रहार की अच्छाई के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए। क्योंकि दो-चार चमकदार बिन्दुओं को भर कर शोहरत पा लेने वाली फ़िल्में अपने सम्पूर्ण अवदान में कई बार शून्य साबित होती है जो दर्शक के साथ एक तरह का छल होता है।

प्रहार का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उसका विचार है। दर्शन के माध्यम से अत्याचार अनाचार के विरुद्ध खड़ा होने का तरीका जरा सोच कर संभल कर और योजनापूर्ण ढंग से है। वर्तमान बेहद तेज खूँखार तथा मारक है। संवेदनहीन और कई बार तो बेमकसद (लगभग सैडिस्ट अन्दाज में) एक निरीह व्यक्ति को पीड़ा पहुँचाने का चलन चल पड़ा है। यह हमले अत्यन्त अचानक तथा तीव्र होते हैं, जिससे संभलने का अवसर तक नहीं मिलता। ऐसे में सोच विचार के बाद किया गया प्रतिकार अव्वल तो प्रतिकार होता नहीं और यदि होता भी है तो बेहद अप्रभावी तथा भोथरा जो हिंसा बनाता है, उकसाता है। सोचने समझने

में व्यय हुआ समय हिंसक को अपने अत्याचार के एवज में मजा लेने का मौका देता है। परिणामतः वह और अनाचार में व्यस्त हो जाता है। यदि बाद में उसे प्रतिकार स्वरूप खत्म भी कर दिया जाय तो भी अपने जीवन काल में भोगा गया उसका आनन्द एक पीढ़ी को ऐसे ही कर्म की ओर प्रेरित करता है, क्योंकि आकलन के मानदण्ड बदल रहे हैं। बदनामियाँ आज बेमानी लगती हैं। सबको पता है कि स्टेज पर खड़ा होकर अच्छाइयों पर भाषण दे रहा व्यक्ति अव्वल दर्जे का मक्कार है तथा बुराइयों की खान है तो भी वे उसे हार पहनाएँगे उसके भाषण पर तालियाँ बजाएँगे। यानी दो मुंहा पन केवल भाषण दे रहे व्यक्ति में नहीं है, बल्कि उसके सामने बैठी बेशुमार लोगों की भीड़ भी दो मुंही ही है। अन्तर केवल दो मुंहेपन के पीछे छिपी भावना का है। एक की भावना उत्पीड़न है दूसरे की विवशता। ऐसे में लम्बे समय तक लिया गया मजा थोड़ी देर के लिए भोगी सजा से अच्छा लगता है।

अतः लम्बित प्रतिकार, प्रतिकार की मूल भावना के ही विरुद्ध है। ठीक उसी तरह जैसे देर से दिया गया न्याय अन्याय है। लम्बित प्रतिकार अन्याय सहना है। प्रहार लम्बित प्रतिकार वक्तव्य है। इन दिनों हिंसा प्रधान फ़िल्मों (घायल, फूल और कांटे इत्यादि) में लम्बित प्रतिकार को अस्वीकार ही किया जा रहा है। लेकिन वे फ़िल्में इसलिए कमजोर हैं क्योंकि लम्बित प्रतिकार के विरुद्ध खड़े नायक जन्मजात शक्ति सम्पन्न नजर आते हैं और उत्पीड़न के विरुद्ध खड़े होने से पूर्व ही विजयी दिखने लगते हैं और उत्पीड़कों को स्थापित करने के पहले उनके कारनामों को निरही लोगों पर दिखाया जाता है ताकि उनके आतंक के प्रभाव में दर्शक को लिया जाये। फिर नायक उसका प्रतिकार करता है जो वास्तव में दर्शक के आतंक बोध को कम करना है। इस प्रकार ये फ़िल्में फैंटेसी रचती हैं और इनके प्रभाव से यो कोई ताल-मेल नहीं बिठा पातीं जबकि प्रतिकार निलम्बन के विरुद्ध प्रहार एक सम्पूर्ण विचार है।

प्रहार का नायक हमलों के विरुद्ध प्रशिक्षित है। हमलों के मनोविज्ञान से परिचित है। अतः उसके व्यवहार में महानायकत्व नहीं है और न महामानवता। वह हम में से ही कोई है पर हम से अलग विचार वाला व्यक्ति लगता है। इतना लगते ही प्रहार अन्य हिंसा प्रधान फ़िल्मों से अलग नजर आने लगती है। चरित्र की विश्वसनीयता कर्म के यथार्थ से बड़ी होती है, प्रहार चरित्र की विश्वसनीयता स्थापित करती है। फिर भी यथार्थ कहीं घायल नहीं होता।

प्रहार का पूर्वार्द्ध लगभग कथाहीन तथा वृत्तात्मक है किन्तु तथा फ़िल्म के मन्द तन्तुओं के सहारे पटकथा ने प्रशंसनीय गति प्रस्तुत की है। कमांडो फोर्स के प्रशिक्षण हेतु आये युवकों के दिए जाने वाले प्रशिक्षण के खासे लम्बे दृश्य हैं किन्तु चरित्र की विश्वसनीयता को विभिन्न कोणों से दिलचस्प बनाये रखा है। अभिनय पक्ष में नाना पाटेकर के साथ-साथ सैनानी का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे युवकों ने उसी स्तर का अभिनय प्रस्तुत किया है जो फ़िल्म के दृश्य अनुभव को भोग्य अनुभव में परिवर्तित कर दें। इसके साथ-साथ निर्देशकीय कौशल का भी महत्व कम नहीं है, क्योंकि यहाँ भी नाना पाटेकर ने विशेष दृश्यों की आसन्दी पर सामान्य दृश्यों का निषेध नहीं रखा बल्कि फ़िल्म के हर फ्रेम में स्थायी सतर्कता बरती है जैसे ऊँचे से पानी में कूदने वाले दृश्यों को उसके असली खतरे को स्थापित करने के बाद ही स्वयं नायक मेजर चौहान ने उसके आतंक को अपने माध्यम से कम किया है। स्वयं ऊँचाई से कूदते मेजर चौहान अतिमानव नहीं लगते बल्कि अच्छी तरह प्रशिक्षित तथा अभ्यस्त दिखते हैं। खतरनाक स्थितियों से जूझते तथा उनसे उबरते अन्य फ़िल्मों के नायक खतरों को कम करते तथा आतंक को बढ़ाते नजर आते हैं जबकि प्रहार खतरों को उनके सही आकार में प्रस्तुत करती है तथा उसके आतंक को खत्म करते हुए एक तरह का आह्वान करती है कि आसन्न खतरे के विरुद्ध उत्पन्न डर खतरों को अभिवर्द्धित ही करता है। उसका सामना करने का साहस उस खतरे का उसी की औकात में देखने की सही तरकीब है। यह काम चुटकियों में नहीं होता। इसलिए प्रशिक्षण के दौरान बुने गए दृश्यों में प्रशिक्षणार्थियों के चेहरों पर एक-दूसरे के प्रतिबिम्ब डर की सामूहिकता स्थापित करते हैं जो फिलहाल हमारा सामाजिक चरित्र बन गया है। दो-चार जालिमों के सामने पूरी बस्ती नपुंसक नजर आने लगती है। मेजर चौहान इस डर को एक झटके में नहीं निकालते, क्योंकि एक झटके में निकला डर मन में अपनी खाली जगह का शून्य छोड़ जाता है जो अन्य तरह की बुराईयों से ही भर जाता है। जैसे भीड़ का स्वयं आतताई हो जाना अथवा एक डर के विरुद्ध डर का दूसरा स्वरूप आत्महत्या इत्यादि। प्रहार डर को समूल नष्ट करने की प्रक्रिया को पर्दे पर प्रस्तुत करती है अतः हमलावर के विरुद्ध खड़े होने में केवल विजयी होने की एक मात्र भावना काम नहीं करती, बल्कि आतंक के विरुद्ध होने की भावना महत्वपूर्ण है। विजय सम्भावना है उद्देश्य नहीं। उद्देश्य है आतंक के विरुद्ध सशक्त प्रतिकार, तुरंत।

इसी पूर्वार्द्ध में कैमरे के कोणों, प्रकाश व्यवस्था तथा पार्श्व संगीत ने अपने-अपने उत्कृष्ट प्रयासों से बहुत ही लगभग अतुलनीय दृश्यों की रचना की है। जब फ़िल्म यह बात कह रही होती है कि डर केवल संवेदना की उलटी गिनती मात्र है। आतताई के हमले के विरुद्ध हथियार डाल देने में हार अवश्यम्भावी है जबकि सामना करने में जीत भी हो सकती है। उस समय फ़िल्म के सारे तकनीकी तथा कला पक्ष एक तरह का आव्हान करते नजर आते हैं।

जब नाना पाटेकर का सामना रेलवे क्रासिंग ब्रिज पर चाकूबाज जेबकतरे से होता है तो उसकी प्रतिक्रिया में नायक न तो डरता है और न जेबकतरे चाकूबाज जैसी उत्पीड़क भावना उसके चेहरे पर आती है, बल्कि अपने हाथ में हमलावर की गर्दन को वह अविबम्ब प्रतिकार के भाव से दबाए रखता है तथा उसे समाप्त कर देता है। सामान्य मानवतावादी दृष्टिकोण से एक प्रश्न उठाया जा सकता है कि प्रतिकार में हमलावर को मृत्यु दण्ड दे देना कितना उचित है? वास्तव में प्रहार इस तरह के प्रश्नों के विरुद्ध शब्दजाल के माध्यम से तर्क का खेल नहीं खेलती बल्कि इन प्रश्नों के विरुद्ध कुछ प्रश्न उठाती है। जब हमलावर की क्रूरता से एक निरीह की मौत हो जाती है तथा न्याय प्रक्रिया की कमजोरियों का लाभ उठा कर आतताई और अधिक क्रूरता में व्यस्त हो जाता है तब ये प्रश्नकर्ता कहाँ खो जाते हैं? आन्तरिक पश्चाताप व अन्तर्गत की संवेदना दिनों-दिन जब भौतिक मूल्यों के उन्नयन में खोती गई है, पीड़ित का आर्तनाद मारक के भीतर दया करुणा उत्पन्न करने में अक्षम हो गया है तब इस दलील का क्या करें कि मृत्युदण्ड मानव के अधिकार में नहीं है? जबकि पूरी व्यवस्था एक तरह के अराजक तथा अपराधीकरण में आलिप्त हो। संवेदना पर आधारित नियमों से केवल अपराधी ही बचेंगे व सुरक्षित रहेंगे। मरेंगे तो केवल मासूम तथा असहाय व निरीह। प्रहार आतंक के दुर्ग में रखा विस्फोटक है।

एक कार में चार गुण्डे आकर पवित्र सामाजिक सम्बन्धों को सरेआम गाली देते हैं और अनैतिक ढंग से लगभग तहस-नहस कर देते हैं और उनके सारे मनसूबे केवल एक असहाय निरीह स्त्री के

विरुद्ध हैं जिसे अपना एकाकीपन समाज के कारण और पति की मृत्यु से उपजा होने की वजह से भोगना है। जिसके लिए वह स्वयं कहीं से अपराधी नहीं है। सामान्य आक्रमण के तर्कों के विरुद्ध भी है कि कहाँ एक अकेली निरीह अरक्षित स्त्री और कहाँ चार छः मुस्टंडे गुण्डे। इस दृश्य रचना में आतंक अपनी उत्पीड़क भावना के साथ तो उपस्थित हुआ ही है, किन्तु वह प्रतिकार के लिए बाध्य करता नजर आता है। चार गुण्डों को कैमरा जिस तरह प्रस्तुत करता है तथा प्रकाश व्यवस्था उसे जिस प्रकार ठोस ढंग से उजागर करती है वह पूरे समाज के पौरुष को ललकारता नजर आता है ऐसे में नायक का उससे भिड़ जाना अतिनायकत्व प्रदर्शित करने के लिए किया गया संयोजन नहीं नजर आता, बल्कि उसका सहज पुरुषोचित कर्म लगता है। ऐसे में हार जाना या जीत जाना युद्ध के बाद का परिणाम मात्र होता है। जीत को पूर्वनिश्चित मानकर रचा गया उत्तेजक दृश्य संयोजन नहीं होकर यह समाज को अपने दायित्वों के प्रति झकझोरने का प्रयास है और प्रभावशाली प्रयास है। अन्त में एक बचे गुण्डे के कार तथा दीवार के बीच रख कर नायक ने जिस तरह खत्म किया है वह शिथिल पड़े दोनों पात्रों के गतिशील मंतव्यों को गति के साथ प्रस्तुत करता है। वास्तव में इसी दृश्य ने यह स्थापित किया है कि अत्याचार व्यक्तिगत उन्माद मात्र नहीं सामाजिक बुराई है तथा उसका प्रतिकार एक सामाजिक आवश्यकता है। कुछ अत्यनत आदर्शवादी अवधारणाओं के लिए प्रहार एक प्रश्न चिन्ह भी है।

9. खुदा गवाह

खुदा गवाह से अमिताभ बच्चन ने अपने लिए मार्ग निदेशक अपेक्षाएँ की थीं और यही उनके भविष्य के लिए दुविधा होगी। अमिताभ बच्चन हिन्दी सिनेमा के अब ते के दौर के सबसे बड़े सितारे रहे हैं किन्तु आगे वे क्या करने वाले हैं खुदा गवाह तय करेगी। कुल मिलाकर यह फ़िल्म का पब्लिसिटी स्टंट लगता है। इस बयान से खुदा गवाह तथा अमिताभ बच्चन एक-दूसरे को प्राणान्वित करेंगे क्योंकि बतौर फ़िल्म खुदा गवाह एक मृत फ़िल्म है बतौर स्टार अमिताभ की सांसे फूलती दिख रही है।

थोड़ी देर के लिए अगर मान ले कि अमिताभ का स्वयं के भविष्य के लिए खुदा गवाह पर नजर रखना एक वास्तविकता है तो फिर खुदा गवाह को अमिताभ के अभिनय की लय तथा उनके फ़िल्मी सफर पर नजर रखते हुए जाँचना पड़ेगा। इस जगह शराबी फ़िल्म का जिक्र करना पड़ेगा, जिसमें कुली से घायल अमिताभ ने अपने लिए खास लय तथा मैनरिज्म खोज ली थी जिसे वे अब ते इस्तेमाल करते रहे हैं। उम्र के अहसास ने उन्हें खुदा गवाह को परखने वाली फ़िल्म के रूप में स्वीकार करवाया है तो यह एक व्यर्थ की कसरत है क्योंकि उम्र तथा शारीरिक क्षमता के मुताबिक खुदा गवाह में न तो उनकी कोई भूमिका है न अपने लिए कोई परिवर्तन वाली लय वे तलाश पाये हैं।

वैसे भी अमिताभ बच्चन केवल विशेष छवि वाले अभिनय के लिए स्टार के रूप में जाने गए अन्यथा उनके अच्छे अभिनय के लिए रेखांकित की जाने वाली फ़िल्मों में अभिनय तथा अमिताभ के बीच का आत्मीय एका कुछ बहुत अच्छे निर्देशकों की जिद थी। यथा ऋषिकेश मुखर्जी, ख्वाजा अहमद अब्बास इत्यादि। उसमें स्वयं अमिताभ की कोई विशेष रुचि नहीं है। अच्छे सिनेमा के लिए अमिताभ ने कोई विशेष पहल नहीं की है। स्वयं कोई उन्हें लेकर अच्छी फ़िल्म बना गया यह संयोग मात्र रहा है या फिर निर्माता निर्देशक की इच्छा। नायक की विद्रोही छवि को उसकी औकात से बहुत बड़ी बनाकर विश्वास दिलाना बड़ा काम था और यही बड़ा काम उन्होंने किया है। किन्तु पात्र को उसके सही आकार में जीना व प्रस्तुत करना अमिताभ के लिए आसान नहीं रहा है इसलिए पिछली तमाम फ़िल्मों में पात्र से बड़ा होकर उन्होंने शराबी के पूर्व के अमिताभ की तलाश की पर संभव नहीं हुआ उसे पाना। यथा जादूगर, तूफान, अग्निपथ और अब खुदा गवाह।

अमिताभ को लेकर फ़िल्म बनाने वाले तथा पैसा कमाने वाले प्रमुख मनमोहन देसाई, प्रकाश मेहरा, रमेश सिप्पी निर्देशकों ने दर्शक की दमित इच्छाओं के विद्रोह का फायदा उठाया किन्तु घटिया से घटिया फ़िल्म का कोई न कोई सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक अथवा मनोरंजक सरोकार अवश्य रखा पर पहले अजूबा तथा अब खुदा गवाह में इसे भी छोड़कर केवल अमिताभ से मतलब रखा गया है। सब से बड़ी चूक यही हुई है कि खुदा गवाह एक कथा फ़िल्म है अमिताभ पर केंद्रित वृत्त चित्र नहीं। इसलिए दर्शक अमिताभ बच्चन का नाम देखकर खुदा गवाह देखने तो आ जायेगा पर देखेगा आखिरकार खुदा गवाह ही। खुदा गवाह के बादशाह खान को। अब यदि बादशाह खान ही कमजोर तथा उद्देश्यहीन है तो अमिताभ क्या करेंगे?

मुख्तसर में बादशाह खान अपनी महबूबा बेनजीर के लिए एक काबिल का सर कलम करने काबुल से हिन्दुस्तान आ जाते हैं और कातिल का सर कलम करके वापस काबुल जाने लगते हैं किन्तु एक जिम्मेदार जेलर के हाथों पकड़ लिए जाने पर अपनी महबूबा का हवाला देकर 30 दिनों में लौट आने का वादा करते हैं। जेलर और बादशाह दोनों वादे और जुबान को ओढते बिछाते हैं और अच्छा भला इन्सानी जज्बा भी कोफत पैदा करने लगता है। खैर काबुल आकर बेनजीर से शादी करके तथा उसे मातृत्व सौंपकर वे वादा निभाने भारत आ जाते हैं। यहाँ कुछ दुष्ट लोगों के हाथों अच्छे लोगों के लिए आजीवन सजा काटने लगते हैं और अन्त में सब भला होता है। भले लोग बचते हैं बुरे लोग मरते हैं। पता नहीं किस लिए पात्रों के नाम राजनैतिक लोगों से मिलते-जुलते रखे गये हैं।

ऐसी फ़िल्मों का एक मात्र सरोकार होता है मनोरंजन। यदि यह भी नहीं है तो कोई भी अमिताभ कुछ नहीं कर सकते चाहे इसके लिए श्री देवियाँ ही क्यों न जाया कर दी जाए। खुदा गवाह केवल कोफ्त पैदा करती है वह भी व्यर्थ।

लाखों के लिबास का प्रचार भी सस्ती मानसिकता वाले दर्शकों को लुभाने का बहाना है वरना लाइट्स तथा कैमरे में इतनी तकनीकी क्षमता होती है कि दो कौड़ी के कांच लाखों के हीरे नजर आयें और सोने चांदी, पीतल तथा कांसे नजर आये। ऐसे में श्रीदेवी के कपड़ों तथा जेवरातों की फोटोग्राफी में असली सोने चांदी जांचने कौन सा जौहरी आयेगा तथा किस कसौटी पर जांचेगा।

समय सन्दर्भों से कटी तथा व्यर्थ तथा बेतुकी घटनाओं पर खड़ी पटकथा इस फ़िल्म की सबसे बड़ी कमजोरी है। सन्तोष सरोज की पटकथा फ़िल्म को दृश्यों के कोलाज में रखती नजर आती है तथा सम्पादन ने उसमें अमिताभ को फ़िल्म के पर्याय के रूप में संयोजित किया है। निर्देशन में मुकुल एस आनन्द का काम थोड़े से भाग को कथा सूत्र के रूप में फ़िल्माना भर रहा है क्योंकि पूरी फ़िल्म फाइट कम्पोजर ने ही डायरेक्ट की है ऐसा लगता है।

अमिताभ बच्चन के अतिरिक्त श्रीदेवी, डैनी, किरणकुमार भी है जो अपने काम सामान्य ढंग से निभा गए है जो खुदा गवाह को कोई महत्व नहीं देते। यदि थोड़ा बहुत ध्यान खींचते हैं तो किरणकुमार जो कॉमेडियन विलेन की पैतृक विरासत को जीवन से लिए दिखते हैं। गीत

जी हाँ! जो जीता, वही सिकन्दर

संगीत में बेहद बनावटीपन तथा बासीपन है जो कमजोर शब्दों तथा व्यर्थ स्वरों में खोया हुआ है। अकेली फोटोग्राफी है जो कई निर्जीव दृश्यों में जान भरती है। जवान, जोशीले, वृद्ध, असहाय, मारधाड़ से भरपूर तथा संवेदनों से परिपूर्ण, हर तरह के पात्र को अभिनीत करने के लिए खुदा गवाह में ढूँढ-ढूँढ कर दृश्य रचना संयोजित की गई है, जिससे अपने लिए मार्ग दर्शक अपेक्षाएँ जगा लेना अमिताभ के लिए ठीक ही था लेकिन फ़िल्म का बनने से पूर्व पूर्वानुमान तथा आकलन कर लेना भी जरूरी था। खुदा गवाह में एक भी ऐसा तत्व नहीं है जो खींचे। अच्छे दृश्यों को जोड़कर ही अच्छी फ़िल्म नहीं बनती। मामूली दृश्यों को लयबद्ध रूप से रखकर बहुत अच्छी बनायी जा सकती है। इसके दो बहुत अच्छे उदाहरण हैं शान तथा रजनी गंधा। खुदा गवाह कुछ भी नहीं बन पायी। अमिताभ बच्चन से आशा की जाती है कि वे अच्छे सिनेमा के लिए स्वयं भी कोई पहल करेंगे क्योंकि अच्छी फ़िल्म केवल स्टार का नाम नहीं होती। खुदा गवाह एक बेकार फ़िल्म है।

शेष का संसार

उपर्युक्त फ़िल्में 1992 की दौड़ में अपने बॉक्स ऑफिस कलेक्शन और लोकप्रियता के बीच संतुलन स्थापित करने के कारण भी चर्चित रहीं। जबकि इस परिदृश्य में कुछ और भी फ़िल्में हैं जिनका योगदान सिनेमा और बॉक्स ऑफिस के बीच एक मजबूत कड़ी के रूप में तो नहीं देखा जा सकता लेकिन इन फ़िल्मों के चलते सिनेमा का दृश्य बनता है और इनकी संक्षिप्त चर्चा यहाँ आवश्यक है :

(क) जो जीता वही सिकन्दर

उत्तरदायित्व की अनुभूति और पारिवारिक सन्दर्भों में बाह्य संसार के प्रभाव को इस फ़िल्म में बेहद खूबसूरती से फ़िल्माया गया है जो आज के व्यापारिक और कला फ़िल्मों की विभाजन रेखा को बार-बार काटता है। यद्यपि इस फ़िल्म को अपेक्षित जन समर्थन नहीं मिला तो भी खासोआम में इस फ़िल्म को सामान्य से बेहतर समर्थन मिला।

(ख) खेल

राजेश रोशन ने कामचोर फ़िल्म बनाकर एक सम्भावनाशील निर्देशक की उम्मीदें जगाई थीं। खेल फ़िल्म के मार्फत उन्होंने उसे पुख्ता भले ही न किया हो पर उम्मीद खत्म नहीं की। इस फ़िल्म में सफलता के सभी बीज थे केवल दिलचस्पी को सम्हाल नहीं पाए जिसे बार-बार खण्डित होने के चलते यह फ़िल्म टिकट खिड़की पर कामयाब नहीं लगी।

(ग) खिलाड़ी

अक्षय कुमार और आयशा जुल्का ने इस फ़िल्म

की मार्फ़त कोई सम्भावना तो पैदा नहीं की पर ठीक ठाक से बेहतर अभिनेता अभिनेत्री के रूप में अपने आप को प्रस्तुत जरूर किया। आज के क्रूर समाज में नेतृत्व का विषैलापन तथा मामूली हरकतों के बीच खतरनाक स्थितियों की उत्पत्ति का मजेदार नमूना है खिलाड़ी। परन्तु विदेशी फ़िल्मों की नकल को हिन्दुस्तानी रंग में ठीक से नहीं रंग पाने के कारण यह फ़िल्म भी दृश्य बनते हुए अपनी जगह से ओझल हो जाती है।

(घ) माया मेम साब

दीपा साही को लेकर, स्त्री की जटिल मनःस्थिति को प्रस्तुत करने की कोशिश केतन मेहता ने 'माया मेम साब' में की है। परचरित्र की जटिलता केवल 'सेक्स' के दायरे में कैद कर दी गई है, जिन्हें अंतिम दृश्यों में आर्थिक और मानवीय रिश्तों के आसपास रखा गया है। वे भी अपना अपेक्षित प्रभाव नहीं छोड़ पाते क्योंकि उनके मूल में भी वही सेक्स है और समस्याएँ उसी का उत्पादन हैं। एक खूबसूरत फ़िल्म बनाने की जिद इस फ़िल्म में नजर आती है, लेकिन उसका व्यापक सामाजिक सरोकार नहीं नजर आता। नदी के पानी के बहाव को दीपासाही तथा राज बब्बर के संयोग के साथ इस्तेमाल करने में केतन मेहता ने सूझ-बूझ दिखाई है तथा ट्रेन में शाहरुख खान-दीपा साही का एकीकरण ट्रेन के सुरंग में जाने जैसा प्रयोग भी अच्छा सिने अनुभव लगता है। विदेशी कथा को और भी भारतीय बनाने की जरूरत महसूस कराती फ़िल्म बहुत अच्छी नहीं लगी, तो भी दीपा साही बेहद सशक्त अभिनेत्री के रूप में सामने आई है।

(ड़) जुनून

महेश भट्ट ने अब लगभग तय मान लिया है कि सारांश की मार्फ़त जो उन्हें नाम मिला था उसकी उन्हें जरूरत नहीं रही। अब वे अपने बहुआयामी प्रतिभा के जरिए पहचाने जाने चाहते हैं। इसी क्रम में उन्होंने डैडी, आशिकी, सड़क जैसी फ़िल्में बनाईं। इसमें कोई दो राय नहीं कि सिनेमा में दिलचस्पी का तन्तु महेश भट्ट बहुत बारीकी से पकड़ते हैं। इसमें दर्शक को उलझाये रखने में वे सफल होते हैं। यह सफलता जुनून में भी कायम है। क्रिस्टोफर ली के ड्रेकुला वाली प्रस्तुतियों को मद्देनजर रखते हुए आदमी के प्रभाव में चीते को आदमी और आदमी को चीता में तबदील करते हुए उन्होंने जुनून की रचना की है और इसकी सफलता का राज इसी खेल में है। ध्वनि, फोटोग्राफी और अभिनय के साथ प्रकाश-संचालन जुनून को दर्शनीय बनाता है।

(च) चमत्कार

वर्गीय अनुभूतियों के साथ फैंटेसी को चित्रित करने में हिन्दुस्तानी सिनेमा हमेशा नाकामयाब रहा है। ऐसा बहुत कम हुआ है कि पूरी फ़िल्म में फैंटेसी के चरित्र को सामाजिक सन्दर्भों में हास्य के साथ-साथ नैसर्गिक करुणा की बुनावट के साथ प्रस्तुत किया गया हो और दूसरे ऐसे चरित्र में अच्छे-बुरे के विभाजन की मोटी लकीर हमेशा खिंची दिखती है। चमत्कार में यह अवगुण अद्भुत रूप से गायब है। इसके चलते चमत्कार 1992 के सिनेमा में अलग फ़िल्म के रूप में रेखांकित किये जाने योग्य है, जिसमें शाहरुख खान नसीरुद्दीन शाह नई ताजगी के साथ प्रस्तुत हुए हैं।

गिनाने को तो और भी कई फ़िल्में हैं लेकिन सूरज का सातवाँ घोड़ा, धारावी जैसी फ़िल्में कला फ़िल्मों के रूप में सामने आई हैं, जिसमें सूरज का सातवाँ घोड़ा मध्यप्रदेश फ़िल्म विकास निगम द्वारा पुरस्कृत भी हुई है और धारावी अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म फेस्टीवल में सराही गई तो भी ऐसी फ़िल्में सीधे इस सरोकार और लोकप्रियता के लगभग विरुद्ध ही रही है और इनका ऐतिहासिक महत्व बहुत होते हुए भी तात्कालिक रूप से समय की मुख्य धारा में शामिल नहीं हो पाती। यद्यपि इन के पीछे नीयत साफ़ तथा इरादा बहुत व्यापक होता है। राजू बन गया जेन्टलमैन, हीर-रांझा, राधा का संगम, बेखुदी, पुलिस ऑफिसर, सातवाँ आसमान, प्रेमदीवाने, प्रेम कैदी, गीत, द्रोही, अंगार, जीना मरना तेरे संग, विश्वात्मा, जान तेरे नाम, पुलिस और मुजरिम, अपराधी, संगीत, बसंती तांगेवाली, गंगा बनी शोला, पायल, कैद में है बुलबुल, जान से प्यारा, सोने की जंजीर, दुश्मन जमाना, झूठी शान, एक लड़का एक लड़की, कर्मयोद्धा, मीरा का मोहन, दिल का क्या कसूर, सूर्यवंशी इत्यादि फ़िल्में अलग-अलग सी कौंध के जरिए 1992 में जुगनू की तरह जरूर चमकी। कभी संगीत तो कभी अभिनय तो कभी स्टन्ट के नाम पर। किसी भी बड़े परिदृश्य में सब कुछ बड़ा या अच्छा ही नहीं होता यह केवल सापेक्ष कथन होता है और इस नजरिए से 1992 को देखा जाए तो हिन्दुस्तानी सिनेमा का यह कठिन वर्ष जरूर था लेकिन हताशा अथवा नाउम्मीदी का तो नहीं ही था और अभी भी एक बेहतर सिने संसार की सम्भावना नजर आती है। ●

सर्वेक्षण : मराठी

दबाव झेलती मराठी फिल्में

● **शशिकांत किणीकर**

मराठी फ़िल्मों के लिए यद्यपि महाराष्ट्र में ही साढ़े आठ करोड़ मराठीभाषी आबादी उपलब्ध है और महाराष्ट्र की सीमा से लगे कर्नाटर राज्य के बेलगाम, बागलकोट, चिकोड़ी और निपानी क्षेत्रों में भी एक लाख से अधिक मराठीभाषी रहते हैं। फिर भी मराठी फ़िल्मों को कई विषमताओं का सामना करना पड़ रहा है। मराठी फ़िल्मों को जिन बाहरी दबावों का सामना करना पड़ रहा है वे हैं हिन्दी सिनेमा से प्रतिस्पर्धा का दबाव। बढ़ती हुई निर्माण लागत का दबाव। उपयुक्त छबिगृहों का कमी। दूरदर्शन स्टार टी.वी. और अन्य केबल टीवी'ज का दबाव। सरकारी कानून-कायदों का दबाव और भारी करारोपण का दबाव। मराठी फ़िल्मों के भीतरी दबाव भी कम नहीं है। घटिया निर्माण मूल्य। नितांत साधारण और कई बार तो निहायत बुरी कहानियों का चयन। कथित सुपर स्टार्स का अतिरेकपूर्ण अभिनय। फ़िल्मों के प्रदर्शन के लिए गलत समय चुनना और सही भूमिका के लिए गलत कलाकारों का चयन करना ऐसी ही खामियाँ हैं, जिसके बोझ तले मराठी फ़िल्में दबी चली जा रही हैं।

अच्छे सिनेमा और मराठी फ़िल्मों के निर्माण की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए महाराष्ट्र सरकार भी कड़े प्रयास कर रही है। इसके लिए महाराष्ट्र सरकार मनोरंजन कर की वापसी के रूप में आर्थिक अनुदान भी दे रही है। फिर भी मराठी फ़िल्मों का समूचा परिदृश्य बड़ा निराशापूर्ण बना हुआ है। महाराष्ट्र के सिनेप्रेक्षकों (केवल मराठी फ़िल्मों के प्रेक्षण ही नहीं) के सामने अति साधारण और लगभग थोपी गई फ़िल्में देखने के सिवाय कोई विकल्प नहीं बचा है। यही कारण है कि मराठी फ़िल्में राष्ट्रीय परिदृश्य में गुणवत्ता के आधार पर बड़ी कठिनाई से स्थान बना पाती है। बड़ी जद्दोजहद के बाद गत वर्ष फ़िल्मोत्सव ९२ में इंडियन पेनोरमा में **'चौकट राजा'** को शुमार किया गया था। मगर ऐसा कितनी बार हुआ है? फ़िल्मोत्सव ९३ में भी राष्ट्रीय पेनोरमा
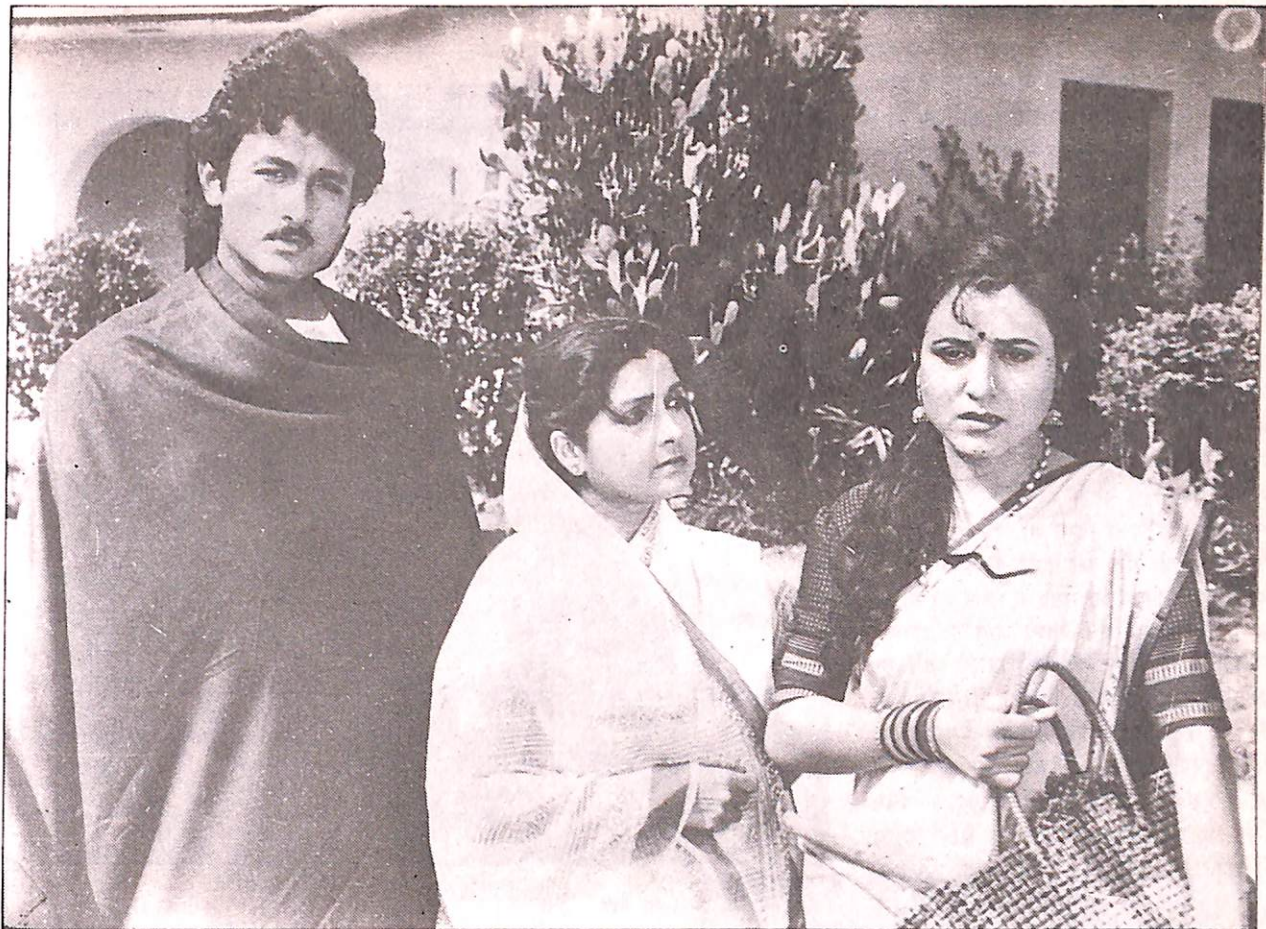
फ़िल्म माहेर ची साड़ी : अजिंक्य देव, आशा लता और किशोरी शहाणे

में राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम की फ़िल्म '**एक होता विदूषक**' बड़ी कठिनाई से स्थान बना पाई मगर ऐसा भी हमेशा कहाँ होता है?

मराठी फ़िल्मों के पितृपुरुष **भालजी पेंढारकर** जो मराठी सिनेमा में अपने योगदान के कारण प्रतिष्ठापूर्ण अलंकरण दादा साहेब फालके अवार्ड से भी सम्मानित हो चुके हैं, उन्होंने हाल ही में बड़े क्षोभ के साथ कहा कि- "एक समय जब मराठी फ़िल्में गुणवत्ता की दृष्टि से इतनी ताकतवर होती थीं कि हिन्दी फ़िल्मों के ख्यातिनाम निर्माता जैसे बाम्बे टॉकीज/ या रनजीत मूवीटोन वाले भी अपने फ़िल्मों का प्रदर्शन तत्काल स्थगित कर देते थे, जब उन्हें पता चलता था कि नवयुग, प्रभात पिक्चर्स या सरस्वती फ़िल्म कम्पनी की मराठी फ़िल्म प्रदर्शित होने वाली है। दुर्भाग्य से मराठी फ़िल्मों की वो ताकत आज पूरी तरह से खो गई है और अब हम मात्र अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहे हैं और चाहते हैं कि हमारी फ़िल्में बस चल जाएँ"। पेंढारकर दादा यह भी महसूस करते हैं कि इस दुर्दशा को किसी भी तरीके से तत्काल बदला जाना चाहिए।

वर्ष १९९२ में कुल उन्नीस मराठी फ़िल्मों को सेंसर सर्टीफिकेट मिला उसमें से भी सात फ़िल्मों को तो एकदम उतरते साल में सेंसर सर्टीफिकेट मिला, जो आज भी प्रदर्शन के लिए लाइन में लगी है। पाँच फ़िल्में जो वर्ष १९९१ में सेंसर की गई थी, वे बमुश्किल १९९२ में प्रदर्शित हो पाई। इन फ़िल्मों में से **" माहेर ची साड़ी"** ने तो छः करोड़ रुपयों का अभूतपूर्व व्यवसाय किया। यह फ़िल्म एक पारिवारिक नाटक थी, जिसे बेशुमार स्त्री प्रेक्षकों ने बार-बार देखा और बार-बार सुबकते और आँसू पोंछते हुए सराहा। यद्यपि इस फ़िल्म का कथा सार जरा भी प्रभावित नहीं करता है फिर भी यह फ़िल्म जमकर व्यवसाय कर रही है और इसने प्रदर्शन के मामले में बॉक्स ऑफिस के सभी कीर्तिमान भंग कर दिए हैं। फ़िल्म के निर्माता-निर्देशक विजय कोंडके, जो इसके पहले तक अपने चाचा दादा कोंडके के साथ प्रोडक्शन इंचार्ज के रूप में जुड़े थे, उनका निर्माता-निर्देशन के रूप में यह पहला प्रयास था। आज भी मराठी फ़िल्मों के समीक्षक और निर्माता-निर्देशक इस बात का विश्लेषण करने की स्थिति में नहीं है कि इस मराठी फ़िल्म की अपूर्व सफलता का कारण क्या है?

वर्ष १९९२ में सेंसर की गई और प्रदर्शित दूसरी उल्लेखनीय फ़िल्म थी **"आहूति"**। फ़िल्म एक औरत की वेदना की कहानी थी, जो एक व्यक्ति ने दुष्कर्म की शिकार होती है जो अंततः उसका जीवन बरबाद कर देता है। वही व्यक्ति वही खेल उस औरत की बेटी के साथ भी खेलना शुरू करता है और उसकी ज़िन्दगी भी बरबाद करने की कोशिश करता है। इस फ़िल्म में औरत की भूमिका अश्विनी भावे ने और कुटिल मुस्कान वाले खलनायक की भूमिका बीते हुए कल के कलाकार यशवन्त दत्त ने निभाई है। यह फ़िल्म अच्छा व्यवसाय कर रही है। खासकर सहानुभूति से भरी महिलाओं की भीड़ खींचने में ते यह फ़िल्म काफी सफल रही है। इसी प्रकार रहस्य-रोमांच से भरपूर फ़िल्म" **काल रात्रि**

बारा वाजता" भी अपने दयनीय प्रस्तुतिकरण के बावजूद बॉक्स ऑफिस पर चमकी। "वाजवा रे वाजवा"/"धरपकड़"/"आयया घरात घरोंग्रा" और "आपन ह्याना पहिलात का" ये चारों कॉमेडी फ़िल्में थी, जिसमें से केवल "वाजवा रे वाजवा" ने थोड़ा व्यवसाय किया। उम्रदराज कॉमेडियन दादा कोंडके एक बार फिर अपनी ही शैली की कॉमेडी फ़िल्म "येऊ का घरात" लेकर आए। अभी कुछ महीने पहले ही यह फ़िल्म बम्बई जैसे शहर में २७ प्रिण्ट के साथ रिलीज हुई और अच्छा व्यवसाय किया।

बम्बई के एक उपनगर में स्कूली छात्रा रिंकू पटेल की जघन्य हत्या वाली सच्ची घटना पर आधारित फ़िल्म **"निष्पाप"** भी वर्ष ९२ में रलीज हुई। रिंकू पटेल को उसके प्रेमी ने उस समय ज़िन्दा जला दिया था जब वो स्कूल में परीक्षा दे रही थी। इस घटना से यद्यपि समूचे महाराष्ट्र में तूफान आ गया था मगर यह फ़िल्म बड़ी सूझबूझ के साथ बनाये जाने के बावजूद अच्छा व्यवसाय नहीं कर पाई। पिछले साल एक और नई बात मराठी फ़िल्मों में देखी गई. विदेशों में फ़िल्मांकन की। "मुम्बई ते मॉरीशस" में कुछ दृश्य मॉरीशस के भी थे जो १९९० में संपन्न दूसरे जागतिक मराठी परिषद के समय लिए गए थे। इस एक नवीनता के सिवा फ़िल्म में बाकी कोई खास बात नहीं थी अतः जनता ने इस फ़िल्म को स्वीकार नहीं किया। पारिवारिक पृष्ठभूमि पर बनाई गई फ़िल्में "अनुराधा", "मयालेक" "अपराधी" और" जगा बेगली पाहिजे" भी अच्छा व्यवसाय नहीं कर पाई। एक लम्बे अंतराल के बाद डॉ. जब्बार पटेल की वापसी- "एक होता विदूषक" फ़िल्म के साथ हुई। राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम द्वारा निर्मित इस फ़िल्म में कई दशक बाद मराठी के प्रख्यात साहित्यकार पु.ल. देशपाण्डे को मराठी फ़िल्मों से जुड़े देखा गया। अभी यह फ़िल्म प्रदर्शित नहीं हुई है अतः इसके बारे में कुछ कहना ठीक नहीं होगा।

लक्ष्मीकांत बेर्डे और अशोक सराफ मराठी फ़िल्मों में छाये रहे। ये दोनों ही हिन्दी फ़िल्मों में प्रवेश के लिए भी कड़ी मेहनत कर रहे हैं मगर वहाँ अभी ये कोई विशेष प्रभाव नहीं बना पाए हैं। दादा कोंडके ने भी पहले हिन्दी सिनेमा में अपनी तकदीर आजमाई थी। दो-तीन हिन्दी फ़िल्में भी बनाई थी मगर उन्हें भी मराठी फ़िल्मों की ओर लौटना पड़ा था क्योंकि वे अपनी हिन्दी फ़िल्में ठीक-ठाक कीमत में नहीं बेच पाए थे। इस समय बेर्डे और सराफ दोनों की ही मराठी फ़िल्मों में अच्छी माँग है और मराठी फ़िल्म निर्माता इन पर पैसा लगाने में
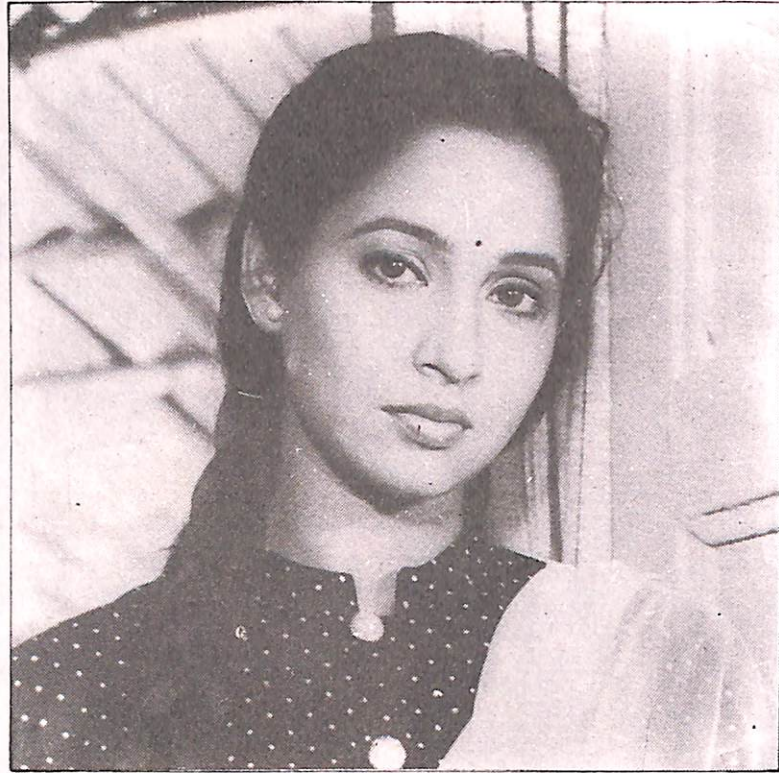
फ़िल्म आहूति : अश्विनी भावे

जरा भी नहीं हिचकिचाते हैं। यशवन्त दत्त, रमेश भाटकर, कुलदीप पवार, नीलू फुले, अंजिक्य देव और सतीश पुलेकर जैसे सितारे इस वर्ष मराठी फ़िल्मों में मुख्य भूमिकाओं में देखे गये। इन नायकों को अपने तई अच्छा सहयोग दिया सविता प्रभुणे, उषा चव्हाण, अल्का कुबाल, निशीगंधा वाड़ और उषा नाईक जैसी नायिकाओं ने। दरअसल अश्विनी भावे की आहूति वाली भूमिका तो उनके अभिनय कैरियर की अब तक की सबसे उत्कृष्ट भूमिका कही जाएगी।

मराठी फ़िल्मों का वातावरण यद्यपि सरसरी तौर पर देखने पर बड़ा निराशाजनक लगता है मगर उम्मीद की किरण अभी भी बाकी है। डॉ. जब्बार पटेल और पु.ल. देशपाण्डे की सर्वाधिक प्रतिष्ठापूर्ण प्रस्तुति- "एक होता विदूषक" अभी भी वर्ष, ९३ की एक महत्वपूर्ण फ़िल्म के रूप में चर्चित है। इसी प्रकार अपेक्षाकृत नये निर्माता ओमप्रकाश खटके की फ़िल्म 'गृह प्रवेश' भी चर्चा में है, क्योंकि यह एक सिनेमास्कोप फ़िल्म है और मराठी में ऐसी फ़िल्में कम ही बनती हैं। वर्ष १९९३ में मराठी फ़िल्मजगत में क्या कुछ होता है यह देखना बड़ा रोचक अनुभव रहेगा।

● **हिन्दी प्रस्तुतिः राजा दुबे**

मराठी फ़िल्मों की सूची

(जनवरी ९२ से दिसम्बर ९२ के बीच सेंसर सर्टीफ़िकेट प्राप्त)

(१) आपन ह्याना पहिलात का
(२) आहूति
(३) अनुराधा
(४) अपराधी
(५) अईका ते नवलाचा *
(६) धरपकड़
(७) हाच सुनबाईचा बहू*
(८) जगा बेगली पाहिजे
(९) जीवलगा
(१०) मयालेक
(११) निष्पाप
(१२) शुभ मंगल सावधान*
(१३) सगले सरीखेच*
(१४) सोनयाची मुम्बई*
(१५) ठन ठन गोपाल*
(१६) वाजवा रे वाजवा
(१७) येऊ का घरात
(१८) वाट पाहते पुनवेची
(१९) एक होता विदूषक

* वर्ष १९९२ में प्रदर्शित नहीं हो पाई

सर्वेक्षण : गुजराती

उदासीनता की परछाइयाँ

● डॉ. यासीन दलाल

भारतीय सिने-इतिहास के आरंभिक वर्षों में गुजराती सिनेमा का अपना खास महत्व रहा है। राजकोट की सौराष्ट्र फ़िल्म कंपनी भारत में फ़िल्म निर्माण की शुरूआत करने वाली संस्थाओं में एक थी, जिसे देश के बाहर भी प्रतिष्ठा हासिल हुई। लेकिन ताज़ा संदर्भों में गुजराती फ़िल्म-उद्योग बहुत ज्यादा प्रभावशाली नज़र नहीं आता। ' भवनी भवाई' जैसी कुछ फ़िल्मों को छोड़ दें, तो उसके खाते में एक भी ऐसी फ़िल्म नहीं, जिसे गर्व के साथ राष्ट्रीय रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सके। आमतौर पर गुजराती फ़िल्म निर्माता बेहतर सिनेमा के प्रति उदासीन नज़र आते हैं। प्रदेश की फ़िल्म इंडस्ट्री पूरी तरह बंबईया फ़िल्मों से प्रभावित होने के कारण वहाँ बनने वाली फ़िल्मों में नवीनता या मौलिकता के नाम पर कुछ नहीं होता।

पिछले कुछ सालों के अंतराल में गुजराती भाषा का सिनेमा निरंतर निष्क्रिय होता गया है। वर्ष १९९१ के दौरान केवल ८ गुजराती फ़िल्में ही प्रदर्शित हो पाई थीं। इस साल इनकी संख्या में और अधिक कमी हुई। 'ओखा हरन', 'धरती ना चोरू' और ' हलो ने मादी गरबे रामदू' आदि चंद प्रदर्शित फ़िल्मों में से सिर्फ ' हलो ने मादी' को ही निर्देशन और अभिनय की दृष्टि से सराहा जा सकता है। भाई-बहन के प्यार की घिसी-पिटी कहानी के बावजूद निर्देशक विभाकर मेहता और नई अभिनेत्री 'साहिबा' दर्शकों को प्रभावित करते हैं।

गुजरात के निर्माता कोई जोखिम नहीं उठाना चाहते, इसलिए फ़िल्म निर्माण के नाम पर एक ही ढर्रे की कहानियाँ परदे पर बार-बार प्रस्तुत हो रही हैं। नतीजतन ने केवल दर्शक इनसे ऊब चुके हैं, बल्कि स्वयं निर्माताओं के समक्ष विभ्रम की स्थिति है। अनेक गुजराती फ़िल्म निर्माताओं ने हिन्दी फ़िल्मों में पैसा लगाने के उद्देश्य से बंबई का रुख कर लिया है। प्रदेश में केवल टी.वी. की बढ़ती लोकप्रियता और सुनसान होते फ़िल्म स्टूडियो को देखते हुए गुजराती फ़िल्म-उद्योग के भविष्य के प्रति अधिक आशान्वित नहीं हुआ जा सकता। ●

हलो ने माड़ी गरबे रामदू फिल्म के दो दृश्य

सर्वेक्षण : बंगला

कोई उम्मीद नहीं जगाती बंगला फ़िल्में

● असीम चक्रवर्ती

पिछले साल यानी १९९२ में प्रदर्शित हुई बंगला फ़िल्मों की संख्या लगभग चालीस थी। इनमें से सिर्फ पाँच ही ऐसी फ़िल्में थी, जिन्होंने इनके निर्माताओं को लाभ पहुँचाया। ये फ़िल्में हैं -

'रक्तलेखा'/, 'शैतान'/, 'इंद्रजीत'/, 'सत्यमिथ्या'/ तथा 'श्वेत पाथरेर थाला'। पर इससे यह बात साफ नहीं होती हैं कि बाकी फ्लॉप थी। फ्लॉप का अर्थ होता है पूरा का पूरा नुकसान। ट्रेड के मुताबिक 'एवरेज' का अर्थ होता है, निर्माताओं का जो खर्चा हुआ वह निकल आया। साथ ही थोड़ा-बहुत लाभ भी हो सकता है और नहीं भी। इस दृष्टि से देखा जाए तो कई फ़िल्में ऐसी भी रहीं जो एवरेज की श्रेणी में आती हैं। जैसे रूपवान/, नेदेनीर प्रेम/, अनुताप/, माँ आदि। इसके अलावा उड़िया फ़िल्म का बंगला संस्करण 'राखे हरि मारे के' भी कलकत्ता के बाहर अच्छी चली। इसलिए इस हिसाब से चालीस फ़िल्मों में से ३० फ़िल्में बिल्कुल फ्लॉप हैं, यानी ऐसी फ्लॉप की संख्या ज्यादा थी, जिन्होंने उनके निर्माताओं को नुकसान पहुँचाया। इन दिनों एक साधारण बंगला फ़िल्म के निर्माण में लगभग बीस लाख रुपए का बजट बैठता है।इसते अलावा प्रिंट और प्रचार का खर्चा अलग से आता है। कुल मिलाकर लगभग तीस लाख रुपए खर्च होता है। इस हिसाब से तीस फ़िल्मों के फ्लॉप होने से इंडस्ट्री को नौ करोड़ रुपए की क्षति पहुँचती है। फ़िर भी कुछ न कुछ तो वापस आता है। इसलिए काँट-छाँट कर ९२ में क्षति की रकम लगभग ५ करोड़ रही। अब देखना यह है कि जो फ़िल्में सफल हुई हैं उनकी सफलता की मुख्य वजह क्या थी? बंगला फ़िल्मों में आजकल मनोरंजन की कौन-कौन-सा मसाला प्रयोग किया जा रहा है तथा वहाँ मुख्य कलाकारों का दबदबा कितना है?

उड़िया फ़िल्म के संस्करण से जो बंगला फ़िल्म बनीं हैं, वह लाभ पहुँचाने के बावजूद इस आलोचना में शामिल नहीं हो सकती हैं, क्योंकि यह मूलतः दूसरे प्रदेश के भाव तथा रुचि को व्यक्त करती है। इसके साथ ही इसमें बंबई के व्यवसायिक फ़िल्मों का मसाला भी मिला हुआ है। इस तरह से यह फ़िल्म न उड़िया, न हिंदी और न बंगला फ़िल्म बन पाई है, लेकिन यदि
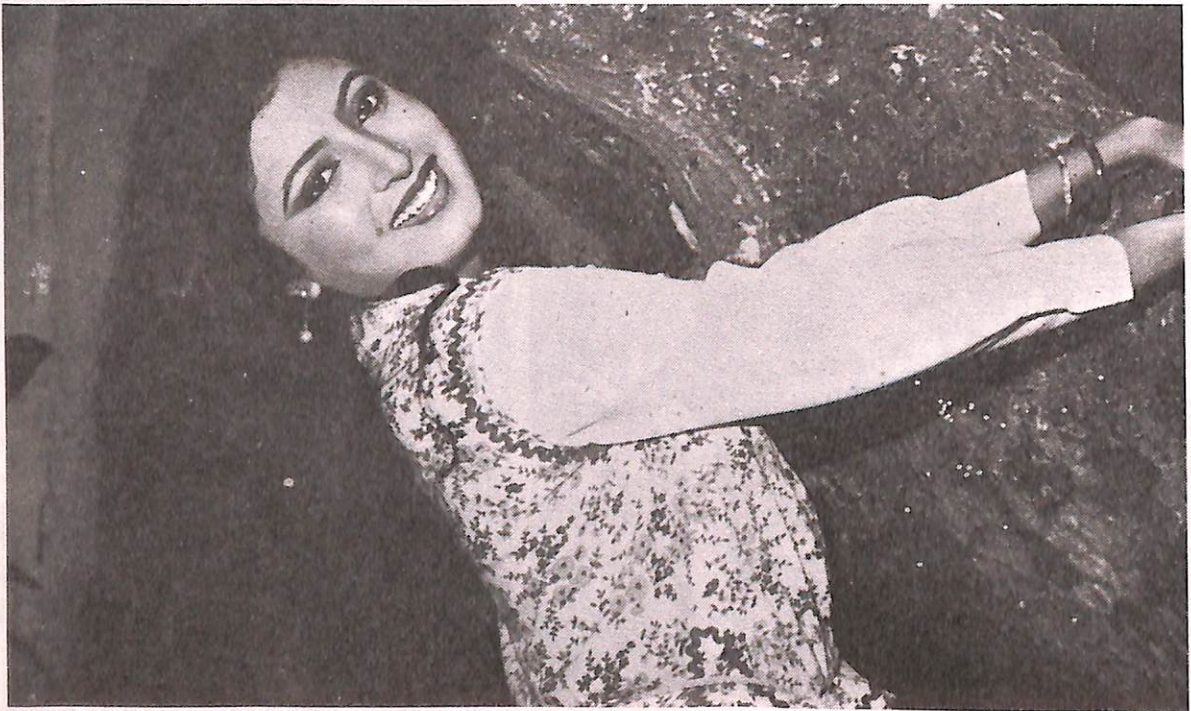
देबाश्री रॉय : दबदबा कायम

इस दृष्टि से देखा जाए तो अधिकांश बंगला फ़िल्मों के बारे में ही ऐसा कहा जा सकता है। यहाँ तक कि सफल बंगला फ़िल्मों के बारे में भी। उन फ़िल्मों की इस आलोचना में इसलिए रखा जा सकता है, क्योंकि इनकी भाषा पटकथा दोनों का आधार बंगला है तथा कलाकार भी बंगभाषी है। राम मुखर्जी निर्देशित 'रक्तलेखा' तथा सचिन अधिकारी निर्देशित 'शैतान' इसी श्रेणी की दो सफल बंगला फ़िल्में है। कुछ साल पहले निर्देशक नसिर हुसैन ने अच्छे संगीत और अच्छे कथा-पटकथा तथा सहज अभिनय के सहारे 'यादों की बारात' जैसी सुपरहिट फ़िल्म बंबइया इंडस्ट्री को दी थी। राम मुखर्जी ने ठीक उसी फार्मूले पर 'रक्तलेखा' बनाकर बॉक्स ऑफ़िस का मन जीत लिया है। लेकिन फर्क सिर्फ इतना है कि यहाँ निर्देशक खुद के कृतित्व में सफल हुआ है, क्योंकि इस फ़िल्म में न तो गाना है और न ही कलाकारों के अभिनय का दबदबा। दिलीप कुमार और वैजन्तीमाला को लेकर फ़िल्म 'लीडर' का निर्देशन भी राम मुखर्जी ने ही किया था। 'रक्तलेखा' उनकी पहला बंगला फ़िल्म है। लेकिन इस तरह की फ़िल्म बंगला की मुख्य धारा की फ़िल्मों को सचमुच कुछ है, पाई है या नहीं इस विषय पर अवश्य बहस की जा सकती है। पर जहाँ अधिकांश फ़िल्में फ्लॉप हो रही है, वहाँ 'रक्तलेखा' की व्यवयासिक सफलता निश्चित रूप से इंडस्ट्री की सहायता करती हैं उसमें एक नई जान डालती है।

वैसे राम मुखर्जी बंबई के है इसलिए हो सकता है, वे बंगला कहानी तथा बंगभाषी की जीवन शैली से उतने घुले-मिले नहीं है। लेकिन 'शैतान' फ़िल्म के निर्देशक सचिन अधिकारी और उनके पटकथा लेखक अमिताभ चट्टोपाध्याय की चर्चा अवश्य जरूरी है। दोनों एक अरसे से बंगला फ़िल्म इंडस्ट्री से जुड़े हुए है। इसलिए बंगभाषी के जीवन शैली को अच्छी तरह से समझते है। पर इसके बावजूद उनकी फ़िल्म 'शैतान' में इसका कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ता है। इन लोगों के पास इस प्रश्न का एक ही उत्तर है, 'दर्शकों को यही पसंद है।' इसमें कोई शक नहीं है कि बंबइया फ़िल्म इंडस्ट्री के 'लाइन अप' में चलने वाला आमा भी इनके अंदर नहीं है। कमोवेश यही बात अंजन चौधरी द्वारा निर्मित निर्देशित फ़िल्म 'इंद्रजीत' के बारे में भी ही बात कही जा सकती है। इसमें निर्देशिक की फ़िल्म भावना एवं प्रस्तुति की व्यर्थता साफ झलकती है। इन फ़िल्मों के लोकप्रिय होने का एकमात्र वजह यह है कि दर्शकों को इससे अच्छा देखने

फ़िल्म : रक्तलेखा

अंजन चौधरी : बंगला के जानेमाने फिल्म निर्देशक

को कुछ नहीं मिलता है। यह भी कहा जा सकता है कि उत्तमकुमार की मृत्यु के बाद टॉलीगंज के कई योग्य फ़िल्म निर्देशक समय के परिवर्तन को समझे बिना गलत कदम उठाकर फ़िसल पड़े है। इनमें से तरुण मजुमदार भी एक है। ऐसे में कुछ अयोग्य निर्देशकों की हिट फ़िल्मों ने और भी अयोग्य निर्देशकों को फ़िल्म बनाने का आमंत्रण दिया है।

'श्वेत पाथरेर थाला' को बंगला शैली में बनी फ़िल्म की श्रेणी में रखना ठीक होगा। बंबइया ढाँचे पर बनाई गई फ़िल्म 'प्रतिदान', 'प्रतिकार' और 'प्रतीक' के निर्देशक प्रभात राय ने 'श्वेत

पाथरेर थाला' में संपूर्णतः अपना रास्ता बदल लिया है। वैसे फ़िल्म 'अनुपात' में ही उन्होंने इसका थोड़ा बहुत आभास दे दिया था। लेकिन एकदम रास्ते बदल कर इतनी सफलता मिलेगी यह उन्होंने सपने में भी नहीं सोचा था। सबने मन ही मन यह तय कर लिया था कि बंगला फ़िल्मों के दर्शक अच्छा कुछ ग्रहण करने को तैयार नहीं। सस्ती चीजों में ही उनकी रुचि है। पर 'श्वेत पाथरेर थाला' की लोकप्रियता और अद्भुत सफलता ने इनकी धारणा को जबरदस्त ठेस पहुँचाया है। इस फ़िल्म की सफलता ने यह सिद्ध कर दिया कि कुशल निर्देशन द्वारा कहानी, गाने एवं अभिनय के समुचित मेल से फ़िल्म को बॉक्स ऑफ़िस में सफलता मिलती ही है।

अस्सी के दशक में 'शत्रु' की अभूतपूर्व सफलता के बाद नब्बे के दशक में बंबइया फ़िल्म की नकल में बनी एक्शन फ़िल्म का जमाना चलता रहा है। जिस धारा में शक्ति सामंत की अमानुष बनी थी। उसके बाद ही लगातार प्रतिदान/, प्रतिकार और प्रतीक बनी। ये तीनों फ़िल्में शक्ति बाबू के सुयोग्य सहकारी प्रभात राय ने बनाई। वीरेश चट्टोपाध्याय की 'मोहनार दिके' भी उसी तर्ज की फ़िल्म है। इसी बीच 'गुरुदक्षिणा' और 'छोटी बहू' अलग किस्म की निकली। ये फ़िल्में कहानी, पटकथा और गाने की उचित संमिश्रण की बदौलत अभूतपूर्व सफल सिद्ध हुई। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि इन फ़िल्मों ने पूर्णतः बंगला फ़िल्म की धारा का अनुकरण किया था, हाँ, यदि बंगला फ़िल्म की धारा का भरपूर उपयोग हुआ तो वह है वीरेश चट्टोपाध्याय के 'कोड़ी दिए किनलाभ' में। यह भी एक देखने लायक बात है कि जब भी बंगला फ़िल्म की धारा का अनुकरण करके किसी निर्देशक को सफलता मिली तो वह बंगला साहित्य के व्यवहार के कारण। जैसे विमल मित्र के उपन्यास से 'कोड़ी दिए किनलाभ' की वैसे ही वाणी वस्तु की रचना पर आधारित है 'श्वेत पाथरेर थाला'। अन्य धारा की फ़िल्मों में भी लगभग हमेशा साहित्य के उपादान का व्यवहार किया जाता है। १९९२ में प्रदर्शित तपन सिन्हा के 'अन्तर्ध्यान' दिव्येन्दु पाल की कहानी पर आधारित है। अन्य धारा की फ़िल्म की आलोचना में रखने के लिए उसका स्वागत किया जाता है। जैसे सत्यजीत राय की फ़िल्में। सत्यजीत राय की मृत्यु के बाद अन्य धारा की फ़िल्मों का भी अंत हो गया है, नहीं को ९२ में रीलिज फ़िल्मों की तालिका में इसका अभाव क्यों होता?

उत्तम कुमार की मृत्यु के बाद से आज ऐसा कोई कलाकार नहीं आया जो दर्शकों को हाल तक खींच पाए। एकमात्र अर्पणा सेन ही ऐसी हैं जो दर्शकों को सिनेमा घर तक खींचने की क्षमता रखती हैं। इसका उदाहरण है 'कोड़ी दिए किनलाभ'। बंगला कलाकारों का दबदबा कम होने के कारण बंबई से कलाकारों को लेकर इस क्षति की पूर्ति करने की भी कोशिश की जा रही हैं। 'श्वेत पाथरेर थाला' में अभिनय करके इन्द्राणी हालदार तथा 'नवरूपा' में अभिनय करके लावणी सरकार बंगला फ़िल्म इंडस्ट्री में जमने की कोशिश कर रही है। निर्माता-निर्देशकों तथा वितरकों के लिए देवश्री, तापस पाल और शताब्दी राय की कदर है। निर्देशन में आकर प्रसन्नजीत सफल नहीं हो पाए। लेकिन अभिनय में उनकी स्थिति ९३ में ही पता चलेगी। १९९३ में यह भी साबित हो जाएगा कि बंगला फ़िल्म अपना रास्ता बदल कर अपनी धारा के अनुरूप फ़िल्म बनाती है या नहीं क्योंकि 'श्वेत पाथरेर थाला' से कुछ सबक बंगला फ़िल्म को मिल सकता है।

सन् १९९२ में तापस पाल की लगभग १५ फ़िल्में रीलिज हुई, लेकिन उनमें से एक भी सुपरहिट नहीं हुई। उनके अनुसार सन् ९३ उनके कैरियर के लिए उल्लेखनीय होगा। दो फ़िल्मों में उन्हें बहुत ही अच्छी भूमिका मिली है। एक के निर्देशक तरुण मजुमदार है तथा दूसरे के सुखेन दास। दोनों ही फ़िल्मों में उनकी भूमिका सुव्यवस्था से लेकर वृद्धावस्था तक की है।

देवश्री राय के लिए यह साल अच्छा हो गया है, फ़िल्म 'ठिकाना' के लिए उन्हें बी.एफ.जे.ए. पुरस्कार मिलेगा। उनकी फ़िल्म रक्तलेखा भी हिट साबित हुई है। इसके अलावा राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला है। इसी साल उन्होंने एक और अच्छी फ़िल्म 'तोमार रक्ते आमार सोहाग' फ़िल्म में भी काम किया। देवश्री के अनुसार सन् ९३ उनके लिए अच्छा रहेगा, क्योंकि चर्चित फ़िल्म 'नहीं विनोदिनी' में विनोदिनी का रोल उन्हें ही मिला है।

प्रसन्नजीत के कैरियर के लिए सन् ९२ अत्यंत उल्लेखनीय वर्ष रहा। इसी साल वे निर्देशक के रूप में सामने आए। उनकी निर्देशित फ़िल्म है 'पुरुषोत्तम'। हाँ उनके व्यक्तिगत जीवन में ऐसी कुछ उथल-पुथल नहीं हुई। ९३ में भी वे अभिनय से ज्यादा निर्देशन में ही समय देंगे।

रंजीत मल्लिक के लिए पिछला साल एक तरह से ठीक-ठाक हो गया। उनकी नवाब/इंद्रजीत/ आदि फ़िल्में सफल हुई, लेकिन अब वे इस एक ढर्रे के अभिनय से तंग आ चुके हैं। अब उनका इरादा कुछ गिनी-चुनी अच्छी फ़िल्मों में काम करने का है।

शताब्दी राय के लिए यह साल कोई उल्लेखनीय नहीं रहा। हर साल की तरह इस साल भी कुछ फ़िल्में रीलिज हुई, जिनमें से कुछ फ्लॉप, कुछ चलीं. सुपरहिट की तालिका में एक भी नहीं आई। वैसे ९३ में अच्छा कुछ कर पाने की आशा है।

इंद्राजी दत्त के लिए यह साल अच्छा हो रहा। उनके द्वारा अभिनीत फ़िल्म ' शैतान' रीलिज हुई। इसमें उसके अभिनय की काफी प्रशंसा भी हुई। इंद्राणी के अनुसार वे ९३ में और अच्छा कुछ करने की कोशिश करेंगी। टीवी में 'कृष्णकांत की व्हील' दिखायी जाएगी, जिसमें उन्होंने भ्रमर की प्रमुख भूमिका निभाई है।

इंद्राणी हालदार के लिए यह साल बहुत ही अच्छा बीता। अभिनय के जगत में अच्छी तरह पैर जमाने में सफल हुआ है। 'श्वेत पाथरेर थाला' में उनका अभिनय निर्माता निर्देशकों को उन्हें साइन करने के लिए बाध्य कर रहा है। ९३ में और भी आगे बढ़ने की तमन्ना है। ●

सर्वेक्षण : असमी

चमकदार चेहरा

देश के फ़िल्म परिदृश्य पर असमिया सिनेमा की उपलब्धियों कम महत्वपूर्ण नहीं रही हैं, लेकिन इसके बावजूद व्यावसायिक पृष्ठभूमि में उसका अस्तित्व सदा चिंता का विषय समझा गया। यही कारण है कि इस वर्ष जबकि ६ राष्ट्रीय पुरस्कार असमिया सिनेमा की झोली में गए, उसके शुभचिंतकों ने अधिक खुशी महसूस नहीं की। दरअसल वे इस बात से परेशान हैं कि असम में फ़िल्म माध्यम का अपेक्षित प्रचार-प्रसार दिखलाई नहीं पड़ता। पूरे प्रदेश में मुश्किल से सौ-डेढ़ सौ सिनेमाघर हैं और वहाँ भी अकसर हिन्दी मसाला फ़िल्मों का ही बोलबाला रहता है। लिहाजा असमिया भाषा में बनी कुछ बेहतरीन फ़िल्में असम में ही प्रदर्शित नहीं हो पातीं।

असमिया फ़िल्म उद्योग ने अपनी विकास यात्रा में उतार-चढ़ाव भरे दौर देखे हैं। १९३५ में पहली असमिया फ़िल्म 'जोटमोति' ज्योति प्रसाद अगरवाल ने बनाई थी, लेकिन इसके काफी समय बाद तक असम के फ़िल्म जगत में शून्य छाया रहा। १९५९ में प्रभात मुखर्जी ने
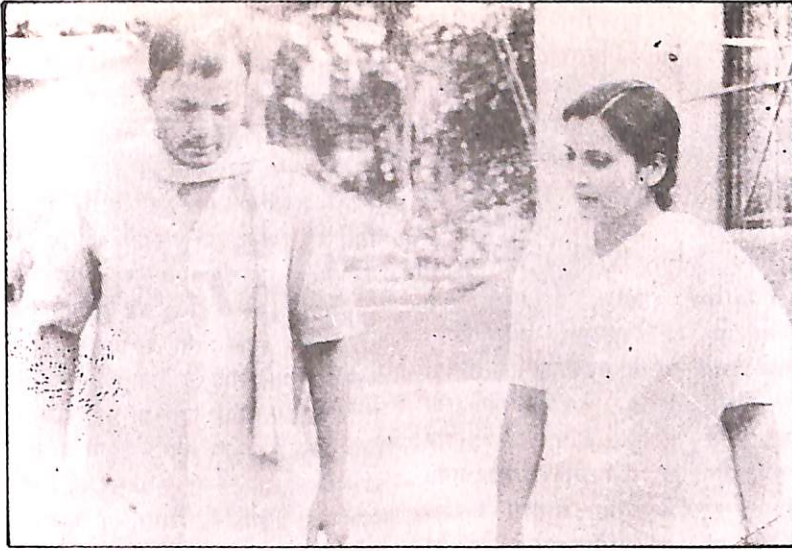
असमिया फिल्म : फ़िरिंगोटी

पूबेरन' का निर्माण कर इस चुप्पी को तोड़ने का प्रयास किया था। यह फ़िल्म बर्लिन फ़िल्मोत्सव में प्रदर्शित की गई। असमिया सिनेमा के लिए सत्तर के दशक का उत्तरार्ध पुनरूत्थान का दौर साबित हुआ। इस दौरान 'पद्म बरुआ', 'भावेन्द्रनाथ सैकिया' और 'अतुल बॉरदोली' की त्रयी ने वास्तविक अर्थों में असमिया भाषा की उत्कृष्ट फ़िल्मों के लिए जमीन तैयार की। पिछले कुछ वर्षों से असमिया सिनेमा राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लगातार सम्मानित होता रहा है। निर्देशक जाहनू बरुआ की ' हलोदया चोराय बाओधन खाए' गौतम बोरा की 'वासोबिपो' १९८८ में बेहद सराही गई थी। जाहनू बरुआ इस वक्त देश के सर्वाधिक प्रतिभाशाली फ़िल्मकारों में शुमार होते हैं।

इस वर्ष भी जाहनू बरुआ द्वारा निर्मित 'फ़िरिंगोति' सत्यजीत राय की 'आगंतुक' के बाद दूसरी सर्वश्रेष्ठ फीचर फ़िल्म के राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित हुई है। इसी फ़िल्म के लिए सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का अवार्ड 'मॉलोया गोस्वामी' ने जीत कर असमिया फ़िल्म जगत को और अधिक गौरवान्वित किया। मॉलोया की यह चौथी फ़िल्म है। अब तक अपनी हर फ़िल्म में उन्होंने सामाजिक समस्याओं से जूझने वाली एक जागरूक और दबंग महिला की आवाज को ही बुलंद किया है। 'फ़िरिंगोति' के अलावा इस साल राष्ट्रीय अवार्ड जीतने वाली अन्य असमिया फ़िल्में हैं; गौतम बोरा की ' सन्स ऑफ अबोटानी', संजीव हजारिका की 'हलधर' और भावेन्द्रनाथ सैकिया कि 'सरोथी'। किसी निर्देशक द्वारा निर्मित सर्वश्रेष्ठ प्रथम फ़िल्मकृति का पुरस्कार 'हलधर' को मिला है। युवा निर्देशक 'संजीव भट्टाचार्य' ने इस फ़िल्म में असम के ग्रामीण जीवन की जद्दोजहद को चित्रित किया है। सैकिया की 'सरोथी' सर्वश्रेष्ठ क्षेत्रीय फ़िल्म के रूप में पुरस्कृत हुई है। हमेशा की तरह इस बार भी उन्होंने अपनी फ़िल्म में पारिवारिक जीवन की सामान्य दिनचर्या को धरातल बनाकर मानवीय स्वभाव की अवगुंठित परतें उघाड़ने की कोशिश की है। सर्वश्रेष्ठ ध्वनिमुद्रण का तकनीकी पुरस्कार जीतने वाली 'सन्स ऑफ अबोटानी' गौतम बोरा की एक वृत्तचित्र नुमा फ़िल्म है, जो असम के जातीय जन-जीवन पर प्रकाश डालती है। बोरा अपनी फ़िल्मों में समाज के उपेक्षित तबके की परेशानियों को स्वर देने के लिए चर्चित रहे हैं।

महती उपलब्धियों के बावजूद असमिया फ़िल्मकार असम में सिनेमा की वर्तमान स्थिति को देखते हुए खिन्न नजर आते हैं। सार्थक सिनेमा का भविष्य दर्शकों की उदासीनता के कारण वहाँ अधिक उज्जवल जान नहीं पड़ता। जाहनू बरुआ तो 'फ़िरिंगोति' के बाद असमिया में फ़िल्म न बनाने की घोषणा कर चुके हैं। उनकी यह फ़िल्म गौहाटी में बमुश्किल एक हफ्ते तक चल पाई। निश्चित रूप से अच्छी फ़िल्मों के लिए ऐसी प्रतिक्रिया निराशाजनक है। बहरहाल उम्मीद करनी चाहिए, कि तमाम दिक्कतों के बावजूद असम का फ़िल्म-उद्योग उत्कृष्टता के मानकों से पीछे नहीं हटेगा।

● प्रस्तुति : राहुल शर्मा

सर्वेक्षण : मलयालम

प्रतिष्ठा बरकरार

क्षेत्रीय भाषा की फ़िल्मों में मलयालम सिनेमा की श्रेष्ठता निर्विवाद मानी जाती है। रामू करियात/जी. अरविंदन/अदूर गोपाल कृष्णन/शाजी करुण/ जान अब्राहम/ वासुदेवन नायर जैसी फ़िल्म-हस्तियों को जन्म देने वाले मलयालम सिनेमा ने लगातार बेहतर फ़िल्मों का निर्माण कर अपना दबदबा बनाए रखा। दरअसल केरल का फ़िल्म उद्योग दो परस्पर विपरीत रास्तों पर अग्रसर है। एक ओर जहाँ सेक्स-प्रधान फ़िल्मों के बहुतायत से निर्माण के लिए उसे दोषी ठहराया जाता है, वहीं दूसरी तरफ स्वयंवरम्/वस्तुहारा/ओरिडथ/ पिरावी जैसी फ़िल्मों के रूप में सार्थक सिनेमा को उसका अतुलनीय योगदान भी नकारा नहीं जा सकता।

मलयालम सिनेमा ने इस साल अपनी पचपनवी वर्षगाँठ मनाई है। १९३७ में फ़िल्म 'बालन' के निर्माण से रखी गई केरल के फ़िल्म उद्योग की बुनियाद पर उत्तरोत्तर सृजन बखूबी होता रहा है। सवाक फ़िल्मों के आरंभिक दौर में केरलवासियों ने अधिक उत्साह नहीं दिखाया था। पचास के दशक में रामू करियात की फ़िल्म 'नील कुयिल' ने मलयालम सिनेमा की एक नई पहचान बनाई। अस्पृश्यता पर आधारित इस फ़िल्म को समांतर सिने आंदोलन की शुरूआत करने वाले प्रयासों में गिना जा सकता है। रामू करियात उन पहले फ़िल्मकारों में थे, जिन्होंने सिनेमा के पारंपरिक कथ्य स्वरूप को बदल कर उसे सामाजिक सरोकारों से जोड़ा। उनकी अगली फ़िल्म 'चेम्मीन' १९६५ में प्रदर्शित हुई थी। सलिल चौधरी के संगीत, मन्ना डे के पार्श्वगायन और सत्यनशीला की कलाकार जोड़ी के हृदयस्पर्शी अभिनय ने इस फ़िल्म को एक 'मास्टरपीस' की ऊँचाइयाँ प्रदान की। 'चेम्मीन' में मछुआरों के यंत्रणापूर्ण जीवन का इतना मार्मिक चित्रण था कि दर्शक अपने आँसू रोक नहीं पाए।

रामू करियात की परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए मलयालम सिनेमा के क्षितिज पर जिन फ़िल्मकारों का उदय हुआ, उन सभी की प्रतिबद्धता सार्थक सिनेमा के साथ थी। अदूर/अरविंदन/अब्राहम आदि के रचनाकर्म में उच्चतर मानवीय मूल्यों के प्रतिष्ठापन हेतु अकुलाहट और साथ ही सामाजिक विसंगतियों

के प्रति क्षोभ की भावना साफ दृष्टिगोचर होती है। प्रयोगवादी फ़िल्मकारों में अदूर गोपालकृष्णन का स्थान काफी ऊँचा है। उनकी फ़िल्मों 'अनंतरम'/मुखामुखम/ 'स्वयंवरम्'/ मेथिलुक्कल आदि को सिने माध्यम के कई साहसिक और अभिनव प्रयोगों के लिए याद किया जाएगा। अदूर की एक फ़िल्म 'एलीपथ्थयम' इंग्लैंड के फ़िल्म संस्थान द्वारा पुरस्कृत की गई थी। इसके अलावा यह गौरव भारत से केवल सत्यजीत राय की 'अपराजितो' को ही मिला है।

अदूर को जहाँ उनके क्रांतिकारी प्रयोगों के लिए सराहा गया, वहीं जी. अरविंदन अपनी सौंदर्यचेतना और कलाबोध के लिए चर्चित हुए। 'वस्तुहारा' और 'ओरिडथ' जैसी फ़िल्मों में उनका रहस्यवादी दार्शनिक स्वरूप परदे का काव्य बनकर दर्शकों तक पहुँचता है। अरविंदन के अलावा जिस अन्य मलयाली फ़िल्मकार ने गंभीर विषयों पर फ़िल्में बनाईं, वो थे जान अब्राहम! हालाँकि अब्राहम का रचना संसार उनकी असामाजिक मृत्यु के कारण अधिक विस्तृत नहीं हो पाया। लेकिन 'अग्रहरथिल कजूथाई' और 'अम्मा अरियन' के रूप में जो विचारोत्तेजक फ़िल्म कृतियाँ उन्होंने तैयार कीं, वो उन्हें अत्यंत समर्थ फ़िल्मकारों की श्रेणी में खड़ा करती हैं। अदूर, अरविंदन और अब्राहम के बाद सर्वाधिक ख्याति अर्जित करने वाले मलयाली निर्देशक 'शाजी करुण' हैं जिनकी फ़िल्म 'पिरावी' ने अवार्ड जीतने का कीर्तिमान रच डाला था।

मलयालम सिनेमा की गौरवशाली परंपरा अपनी निरंतरता बनाए हुए हैं। वर्ष, १९९१ के लिए इस वर्ष दिए गए राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कारों में केरल ने महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की। फ़िल्म 'भारथम' के लिए 'मोहनलाल' को सर्शश्रेष्ठ अभिनेता का अवार्ड मिला है। इसी फ़िल्म में येसूदास पार्श्वगायन के लिए पुरस्कृत किए गए। 'भारथम' के पहले भी वह कई बार सर्वश्रेष्ठ पार्श्वगायक का खिताब जीत चुके हैं। अलबत्ता 'मोहनलाल' के लिए जरूर राष्ट्रीय अवार्ड जीतने का यह पहला मौका था। पिछले एक दशक से अभिनयरत मोहनलाल को मैमूटी के साथ मलयालम सिनेमा में एक नई 'स्टार' परंपरा का जनक माना जाता है। 'भारथम' में उनकी भूमिका एक ऐसे गायक की है, जो संगीत का व्यावसायिक दोहन पसंद नहीं करता।

मोहनलाल और येसूदास के अलावा केरल के लिए राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार जीतने वाले अन्य व्यक्ति है; लेखक/ निर्देशक वासुदेवन नायर! उनकी फ़िल्म 'कडवु' इस बार सर्वश्रेष्ठ पटकथा लेखन के लिए पुरस्कृत हुई। इसे श्रेष्ठ मलयालम फ़िल्म का पुरस्कार भी मिला है। 'कडवु' के पहले नायर की एक फ़िल्म 'निर्मलयम्' (१९७३) ने भी सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म का राष्ट्रपति पदक जीता था। इस लिहाज से उनकी गिनती आदतन अवार्ड हासिल करने वालों में की जानी चाहिए। श्रेष्ठ प्रस्तुति के लिए इस वर्ष राष्ट्रीय अवार्ड जीतने वाली एक अन्य मलयालम फ़िल्म 'यमनम' का निर्देशन 'गोपी' ने किया है। सामाजिक मसलों पर निर्मित फ़िल्मों में 'यमनम' अव्वल झाँकी गई। इस फ़िल्म में सर्वश्रेष्ठ सहायक अभिनेत्री का अवार्ड 'सांथा देवी' को मिला।

पुरस्कारों की इस प्रभावी सूची को देखकर लगता है कि मलयालम सिनेमा के इतिहास में सफलता के स्वर्णिम अध्याय आगे भी जुड़ते रहेंगे। समूचा मलयाली फ़िल्म उद्योग इसके लिए प्रतिबद्ध नजर आता है। ●

सफलता- विफलता के बीच झूलता तेलगु सिनेमा

● के. एन. टी. शास्त्री

बदलते आस्वाद के बीच सिने जगत के लिए बीता वर्ष अपनी प्रहारक क्षमता के प्राकट्य का वर्ष था। हिन्दुस्तानी सिनेमा में यह लहर स्टार टी.वी और एम.टी. वी. के कारण उपजी संस्कृति का परिणाम थी जिससे हिन्दुस्तानी सिनेमा को प्रेक्षकों का ध्यान खींचने के लिए फूहड़ कॉमेडी का सहारा लेना पड़ा। तेलगु सिनेमा भी अपने को इस लहर से अलग नहीं रख पाया। बीते वर्ष में तेलगु की 134 फ़िल्में प्रदर्शित हुई जिसमें से 28 फ़िल्में दूसरी भाषाओं से डब की गई थीं। डब की गई ज्यादातर फ़िल्में तमिल से डब की गई थीं। तमिल सिनेमा से यदि हम इस स्थिति की तुलना करें तो तमिल की बीते वर्ष में 172 फ़िल्में प्रदर्शित हुईं जो अभी तक का एक कीर्तिमान है। तमिल में भी 51 फ़िल्में ऐसी थीं जो दूसरी भाषा से डब की गई थीं और विडम्बना देखिए वे सभी तेलगु से डब की गई थी।

रेवती : फिल्म अंकुरम

बीता वर्ष तेलगु सिनेमा के लिए कैसा रहा इस बात का अन्दाज़ इस कोरी आँकड़ेबाजी से नहीं लगाया जा सकता है क्योकि बीते वर्ष में जो 106 निव्वल तेलगु फ़िल्में प्रदर्शित हुई उनमे से मात्र 13 फ़िल्में ही सौ दिन चल पाई यानी बॉक्स ऑफिस की दहलीज पर तेरह फ़िल्में ही सफल गिनी गईं। इनमें से भी ज्यादातर फ़िल्में वे थी जो दूसरी भाषा की सफल फ़िल्में का 'रीमेक' थीं। चाण्टी जिसमें वैंकटेश और मीना की जोड़ी थी, वो तमिल फ़िल्म चिन्न थम्बी के आधार पर ही बनी थी। बगद में यही फ़िल्म हिन्दी में 'अनाड़ी' के नाम से बनी, यहाँ भी हीरो वैंकटेश ही थे (हीरोइन थीं करिज्माकपूर)। चाण्टी की अभूतपूर्व सफलता ने मीना को तेलगु सिनेमा की चहेती नायिका बना दिया। इसी प्रकार चिरंजीवी की प्रमुख भूमिका वाली फ़िल्म घराना मोगुडु भी तमिल फ़िल्म मन्नान का तेलगु संस्करण थी। तमिल में बनी फ़िल्म में मुख्य भूमिकाएँ रजनीकान्त और विजयाशान्ति ने निभाई थी। तेलगु में यद्यपि यह फ़िल्म सुपर हिट रही मगर वास्तव में यह तमिल फ़िल्म का

फूहड़ संस्करण भर थी। तेलगू फ़िल्म में विजयाशान्ति के स्थान पर रम्याकृष्णा थी। चिरंजीवी यद्यपि अपनी इस सफलता को के.विश्वनाथ निर्देशित आपनबन्धकुडु में नहीं भुना पाये। इस फ़िल्म ने न तो दर्शकों को प्रभावित किया न समीक्षकों को। के.विश्वनाथ औव चिरंजीवी दोनों के लिए यह बड़ी विफलता थी। कुछ अन्य फ़िल्में जो 'रीमेक' थी और जिनमें अभी भी बॉक्स ऑफिस पर सफलता का माद्दा है वे फ़िल्में हैं- कोडी रामकृष्ण निर्देशित पेल्लम चेबीट विनाली जिसमें मीना ने अपनी स्थिति और मजबूत की थी और सुन्दरकाण्ड जिसमें वैंकटेश और शोभना की प्रमुख भूमिका थी। दूसरी फ़िल्म भाग्यराजा की तमिल फ़िल्म का रीमेक थी।

नरेश और सिंदूजा एक कॉमेडी फिल्म में

निव्वल तेलगु फ़िल्मों में, अल्लारी मोगुडु बॉक्स ऑफिस पर सबसे अधिक कमाई वाली फ़िल्म साबित हुई और इस सफलता ने ही मोहन बाबू को 'कलेक्शन किंग' का खिताब दिलवाया। उनकी अन्य फ़िल्म अल्लाडुगुड़ भी बाज़ार में अच्छी रही। इस वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय फ़िल्म समारोह की पेनोरमा फ़िल्मों की सूची में चयन को लेकर विवादित फ़िल्म सूरीगाडु एक नाटकीय उत्तेजनात्मक अनुभव साबित हुई जिसने निर्देशक दसारी नारायण राव की विलक्षण प्रतिभा से परिचय करवाया। इस फ़िल्म की मुख्य भूमिका भी दसारी नारायण राव ने की है। बिना किसी सौन्दर्यमूलक या कथागत खासियत के इस फ़िल्म का नाम पेनोरमा फ़िल्मों की सूची में आना विस्मयजनक था। यही बात स्वाति किरणम् के बारे में भी कही जा सकती है। इस फ़िल्म में के.विश्वनाथ मलयालम फ़िल्मों से मेम्मोटी को तेलगु फ़िल्मों में लाये और उसे राधिका के साथ काम का अवसर दिया। यह फ़िल्म शास्त्रीय संगीत मूलक फ़िल्म होने का ढोंग रचती है। वैसे यह एक अच्छा शकुन है कि दर्शक ऐसी फ़िल्म को समूची निर्ममता के साथ ठुकरा देते हैं जबकि केन्द्र शासन ऐसी फ़िल्म का चयन पेनोरमा फ़िल्मों के खण्ड के लिए करता है।

फिल्म वृन्दावनम् का एक दृश्य

एन.टी.रामाराव को भी बीते वर्ष में 'सम्राट अशोक' की विफलता से भारी धक्का लगा। वाणी विश्वनाथ का अधनंगा नाच और मोहनबाबू का हास्य भी फ़िल्म को नहीं बचा पाया। रामाराव के सुपुत्र एन.बालकृष्णा को तो शुरूआत में ही यानी जनवरी 92 में ही विफलता का सामना करना पड़ा जब उनकी फ़िल्म धर्म क्षेत्रम् पिट गई मगर उन्होंने अगली ही फ़िल्म रोवडी इन्सपेक्टर से इस नुकसान की भरपाई भी करली। इस फ़िल्म में एन.बालकृष्णा ने विजयाशान्ति के साथ काम किया था। यह फ़िल्म तमिल में भी डब की गई और मद्रास में तो इस फ़िल्म ने बॉक्स ऑफिस पर भी भारी सफलता बटोरी। साल के अन्तिम दिनों में भी एन.बालकृष्णा की एक और फ़िल्म अश्वमेघम् भी प्रदर्शित हुई। इस फ़िल्म में भी विजयाशान्ति ही नायिका थी और अभी तक प्राप्त संकेतों के अनुसार यह फ़िल्म भी औसत प्राप्त करेगी।
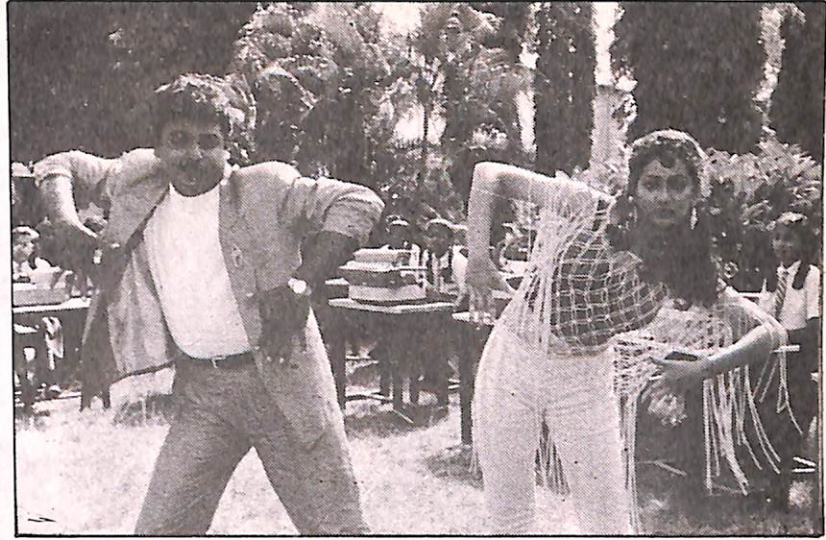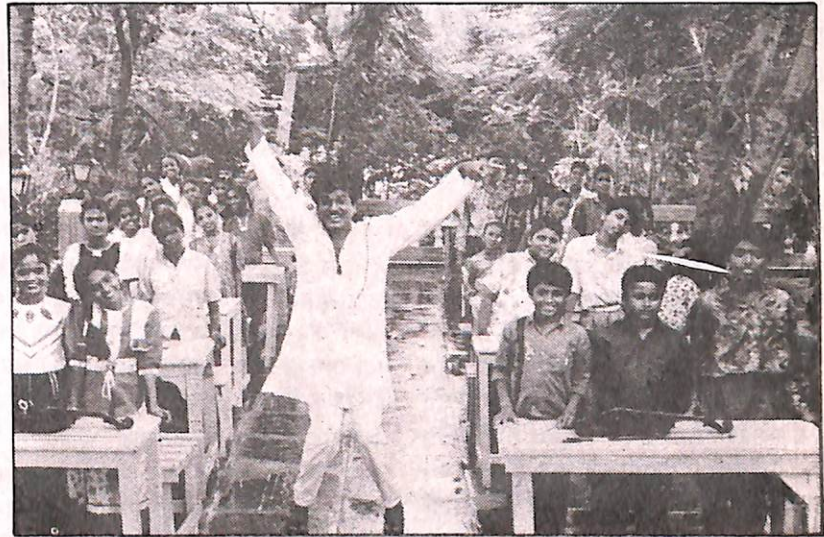
निर्देशकों की सूची में एक नया नाम ई.व्ही.व्ही. सत्यनारायण का भी तेजी से उभरा। दो सफल फ़िल्मों **सीतारत्नमगरी अभई** और **जाम्बल:किडी पम्ब** के साथ। इन फ़िल्मों में विनोदकुमार और रोज़ा की सफल जोड़ी भी थी मगर इन फ़िल्मों को देखकर लगा कि तेलगु सिनेमा के सम्वाद लेखक कितना कामोत्तेजक लिख रहे हैं और ये फ़िल्मं तेलगु फ़िल्म निर्माताओं के घटिया आस्वाद को भी प्रतिबिम्बित करती है। ए.नागेश्वर तेलगु सिनेमा के सदाबहार कलाकार हैं। कॉलेज पिल्लडु फ़िल्म में उन्हें अड़सठ साल की उम्र में भी कॉलेज स्टूडेन्ट दिखाया गया है। इस फ़िल्म को भी भारी सफलता मिली। यह फ़िल्म साक्षरता के

रम्या कृष्णा

प्रसार के लिये चलाई जा रही "अक्षर ज्योति योजना" को केन्द्र में रखकर तैयार की गई थी। नागेश्वर राव के सुपुत्र नागार्जुन ने भी बीते वर्ष में बुरा समय देखा। फाज़िल जैसे प्रख्यात निर्देशक का नाम जुड़ा होने के बावजूद नागार्जुन की फ़िल्म **किलर** पिट गई। यही हश्र रामगोपाल वर्मा की फ़िल्म **अन्तम्** का हुआ। यही फ़िल्म बाद में हिन्दी में "द्रोही" के नाम से बनी। इस सबके बावजूद नागार्जुन ने **प्रेसीडेन्टुगरी पेल्लम** फ़िल्म के माध्यम से अपनी ग्रामीण-छैला वाली छवि बरकरार रखी। राजशेखर की फ़िल्म अक्का मोगुडु ने नागार्जुन की "क्रान्तिकुमार नुमा" देशप्रेमी की छवि भी बनाई। वर्ष 1992 की प्रमुख विफल फ़िल्में थी **धर्मक्षेत्रम्, ब्रह्मा, चिन्नारायडु, अन्तम् और आपतबन्धकडु।**

छठवें दशक में विजया प्रोडक्शन्स के नाम से फ़िल्म बनाने वालों ने फिर से फ़िल्म निर्माण का कामकाज "चन्दामामा विजया प्रोडक्शन्स" के बैनर तले आरम्भ किया। इस बैनर की वापसी फ़िल्म वृन्दावनम् से हुई। तथाकथित तेलगु कॉमेडी के फूहड़ता भरे वातावरण में ज़रा-सी सूझ-बूझ भरी तब्दीली लाने का काम वृन्दावनम् के माध्यम से जरूर किया गया मगर पटकथा लेखक ने चार्ली चेप्लिन की फ़िल्मों से इतने आइडिये, इतने दृश्य, हूबहू फ़िल्म में उतारे कि बावजूद संगीतम् श्रीनिवास राव के निर्देशन, राजेन्द्र प्रसाद के लेखन और रमैयाकृष्ण की उपस्थिति के यह फ़िल्म औसत सफलता ही पा सकी। विजया वाले अब रजनीकान्त को लेकर एक तमिल फ़िल्म की योजना बना रहे हैं जिसका निर्देशन पी.वासु करेंगे।

ए.नागेश्वर राव ने पिछले साल चार फ़िल्मों में काम किया जिसमें से तीन तो बुरी तरह पिट गईं मात्र कॉलेज पिल्लडु में ही उनको सफलता मिली। चिरंजीवी ने दो फ़िल्मों में काम किया एक हिट रही तो दूसरी पिट गई। बालकृष्णा ने तीन फ़िल्मों में काम किया जिसमें से एक हिट रही नागार्जुन के साथ भी ऐसा ही हुआ। वैंकटेश की भी इस साल तीन फ़िल्में आईं तीनों ही रीमेक थी। गत वर्ष मोहनबाबू की वापसी भी ढेर सारी सफलताओं के साथ हुई। इधर राजेन्द्रप्रसाद ने अपने लिये कॉमेडी हीरो की छवि खुद गढ़ी। उनकी यह छवि वर्ष 92 की सभी छः फ़िल्मों में और भी मजबूत होती चली गई। राजेन्द्रप्रसाद की फ़िल्मों को लगातार दीवाने दर्शक मिलते रहे और बावजूद घटिया कहानिय़ों के, राजेन्द्रप्रसाद येनकेन प्रकारेण फ़िल्म को ठोंक पीट कर दुरूस्त करते रहे।

अब हम तेलगु सिनेमा की नायिकाओं के प्रदर्शन का आकलन करें तो विजयाशान्ति निश्चित रूप से सबसे आगे रहीं जबकि मीना जनता की कल्पनाओं को साकार करने में सफल रहीं। अब रोजा, मीना को पछाड़ने की कोशिश में जुटी है। बीते वर्ष में हिन्दी फ़िल्मों की कई नायिकाएँ भी हैदराबाद आईं। नगमा ने तो अपनी दो फ़िल्मों के माध्यम से "ग्लैमर क्वीन" की छवि बना ली है जबकि पूजा बेदी ने मोहनबाबू के साथ एक फ़िल्म साईन की है जो इस वर्ष प्रदर्शित होगी।

हमेशा की तरह इस वर्ष भी हैदराबादी सिनेमा उद्योग में जमकर उठापटक हुई। अलेक्जेन्डर फ़िल्म के सेट पर असल ज़िन्दगी के माफिक मारपीट हो गई एक स्टण्ट मास्टर ने एक हैदराबादी खलनायक को वास्तव में घूंसा जड़ दिया। इसका नतीज़ा यह हुआ कि फाइटर्स एसोसिएशन ने सभी प्रकार के फ़िल्म निर्माण में हिस्सा न लेने का निर्णय लिया (जी हाँ! तेलगू सिनेमा में फ़िल्म में फाइटिंग सीक्वेन्स करने वालों का अपना एक संगठन भी है)। बिना फाइटर्स के तेलगू सिनेमा की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती इससे इस विवाद से हैदराबादी सिनेमा का कामकाज ठप्प हो गया। यह स्थिति छः सप्ताह तक बनी रही। वर्ष के समाप्त होते-होते दिसम्बर 92 में फिर एक ऐसा ही हादसा हुआ जिसने फ़िल्म कर्मियों को

हड़ताल के लिए उकसाया और फिर एक बार हैदराबाद में शूटिंग थम गई।

आंध्रप्रदेश सरकार ने फ़िल्म निर्माताओं को हैदराबाद की ओर आकर्षित करने के लिए फ़िल्म निर्माण के लिए दिये जाने वाले अनुदान की राशि भी गत वर्ष बढ़ाई। फिर भी इस सम्बन्ध में कई शिकायतें मिली है कि फ़िल्म निर्माता इन सुविधाओं का अपने तईं ऐसा उपयोग कर रहे हैं जिससे फ़िल्म की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। सेंसर के कामकाज की भी गत वर्ष जमकर आलोचना हुई क्योंकि कई प्रदर्शित फ़िल्मों में बड़े घटिया सम्वाद भी सेंसर की नज़र से बचकर निकल गये। आंध्रप्रदेश फ़िल्म उद्योग के एक प्रवक्ता के अनुसार हिन्दी फ़िल्मों की हीरोइन्स को मुख्य रूप से तेलगु फ़िल्मों में इसीलिए लिया जाता है क्योंकि उन पर अशोभनीय और द्विअर्थी सम्वाद आसानी से फ़िल्माये जा सकते हैं। उनको तेलगु नहीं आती इस बात का लाभ फ़िल्म निर्माताओं को मिल जाता है। पिछले दिनों सैंसर बोर्ड ने इस सिससिले में हैदराबाद में एक प्रेस कॉन्फ्रेन्स भी की और उस प्रवृत्ति का खुलासा करते हुए उसकी समाप्ति का दावा भी किया। इस सबके बावजूद फ़िल्म निर्माता रिविजन कमेटी के पास गये और सैंसर ने जो दृश्य कटवा दिये थे उन्हें फिर से जुड़वा लाये।

कला और तेलगु सिनेमा दो एकदम विपरीत ध्रुव हैं लेकिन जटला वैंकटास्वामी नायडू ने शिशिरम् के रूप में एक अच्छी फ़िल्म बनाई। जे.वी. नायडू इसके पूर्व प्रत्युषम (प्रद्युषम) भी बना चुके हैं जो समान्तर तेलगु सिनेमा की प्रतिनिधि फ़िल्म थी। पेनोरमा चयन समिति की मद्रास पेनल ने शिशिरम् को देखा भी था मगर दुर्भाग्य से पेनल ने उसे इस आधार पर ख़ारिज कर दिया कि वरिष्ठ रचनाकार इस फ़िल्म को नहीं समझ पाये थे। इस आशय की कुछ टिप्पणियाँ प्रेस समीक्षाओं में भी छपी थी। जटला ने इस फ़िल्म में अति यथार्थवादी दृष्टिकोण और प्रतीकों का खुलकर प्रयोग किया था। उन्होंने फ़िल्म में मोन्टाज़ बनाने के लिए श्वेत-श्याम और रंगीन कल्पना दृष्यों का कुशलता से प्रयोग किया। दुर्भाग्य से विद्वत आलोचनाओं और आलोचकों ने इस एक अच्छे प्रयोग पर बड़ी ठण्डी तेलुगु समीक्षा मार्का टिप्पणियाँ की। इसी बीच उमा महेश्वर राव की एक फ़िल्म आई अंकुरम, इसमें ओमपुरी और रेवती ने मुख्य भूमिकाएँ निभाई थीं। फ़िल्म एक नए विषय को लेकर बनाई गई थी। फ़िल्म में रेवती एक बच्चे को रेल्वे कम्पार्टमेन्ट में छोड़ जाती है जो संयोग से ओमपुरी को मिल जाता है। ओमपुरी बच्चे के माता-पिता की तलाश करता है और इस फेर में ढेर सारे विवादों में फँस जाता है। यह फ़िल्म समान्तर सिनेमा आन्दोलन की प्रतिनिधि फ़िल्मों में से नहीं है क्योंकि फ़िल्म में स्थितियाँ अति नाटकीयता के साथ फ़िल्माई गई हैं जिससे यथार्थ की अनुभूति नहीं आ पाती है फिर भी उमा महेश्वर राव इस फ़िल्म के माध्यम से अपनी बात को प्रभावी ढंग से कहने में सफल रहे हैं। कुछ दृश्य अवश्य फ़िल्म में कन्नड़ फ़िल्मों से उठाये गये लगते हैं मगर रेवती का अभिनय तो उत्कृष्ठ कहा जायेगा। फ़िल्म बॉक्स ऑफिस पर भी बेहद सफल रही। दुर्भाग्य से वो पेनोरमा खण्ड के लिए नहीं चुनी जा सकी। राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम द्वारा तैयार की गई **यज्ञम्** भी थियेटर्स तक का सफर तय नहीं कर पाई।

आने वाला वर्ष बड़ी सफलताओं की आशा जगाता है। बापू अपनी महत्वाकांक्षी फ़िल्म कवि सार्वभौमा श्रीनाथ के लिए एन.टी.रामाराव को निर्देशित करेंगे जबकि मोहन बाबू ने एन.टी.रामाराव को मेजर चन्द्रकान्त के लिए साईन किया है। एन.टी. रामाराव समूची कुशलता के साथ किसी फ़िल्म को निर्देशित नहीं कर पाते हैं यह बात पहले भी प्रमाणित हो चुकी है अतः दो अलग-अलग सक्षम निर्देशकों के निर्देशन में एन.टी.रामाराव सफल सिद्ध होंगे ऐसी उम्मीद की जा सकती है। चिरंजीवी मुत्ता मपस्ट्री के लिए मीना के साथ काम करेंगे और बाम्सी जिनकी फ़िल्म पिछले साल पेनोरमा फ़िल्मों में शामिल थी उनकी फ़िल्म डिटेक्टिव नारद के विफल होने से उन्हें बड़ा धक्का लगा और अब वे रेलंगी नरसिंहराव राव के लिए संगीत निर्देशन कर रहे हैं।

दूसरे अन्य वर्षों की तरह नये साल से भी कुछ ज्यादा उम्मीदें नहीं हैं। बहरहाल तेलगु सिनेमा के पास अभी कोई ऐसा निर्देशन नहीं है जिसे प्रयोगधर्मी या लीक से हटकर काम करने वाला कहा जा सके। वी.नरसिंहराव राव इस बात के एकमात्र अपवाद है जो अपने छायाकार ए.के.बीद के साथ (वीर भी अब स्वयम् को एक निर्देशक के रूप में विकासित कर रहे हैं) प्रयोगधर्मिता के क्षेत्र में रेंगते-रेंगते आगे बढ़ रहे हैं।

फिल्म कॉलेज बुल्लोडु में अक्किनेनी नागेश्वर राव एक युवक की तरह नृत्य प्रस्तुत करते हुए

खण्ड : सात : साक्षात्कार एवं विश्लेषण

बम्बइया फिल्मों का अर्थशास्त्र

• शोमा.ए.चटर्जी

हिन्दी फिल्म-उद्योग का अर्थ तंत्र किस तरह काम करता है? क्या यह सचमुच चरमरा रहा है, जैसा कि अधिकतर फिल्म-निर्माता इसे निरूपित करते हैं; अथवा उनकी हाय-तौबा में कोई वज़न नहीं?

बंबइया फिल्मों का अर्थशास्त्र एक रोचक अध्ययन का विषय है। जहाँ इण्डस्ट्री के महारथी भी गला फाड़ कर फिल्म व्यवसाय की दुर्दशा का रोना रो रहे हैं, वहीं दूसरी ओर फिल्मों का निर्माण और प्रदर्शन पहले की तरह जोर-शोर से जारी है। बहुतेरे समीक्षकों के अनुसार मुद्रास्फीति की बढ़ती दर ने फिल्म निर्माण की लागत को बुरी तरह प्रभावित किया है। लेकिन सवाल उठता है कि फिर फिल्में आखिर बन किस तरह रही हैं?

देश के समूचे फिल्म-उद्योग पर लोकप्रियता और सम्प्रेषण के लिहाज से मुख्यधारा का हिन्दी सिनेमा ही हावी है। लेकिन फिल्म-निर्माण के बढ़ते खर्चे के कारण प्रतिवर्ष प्रदर्शित होने वाली हिन्दी फिल्मों की संख्या में कुछ कमी आई है। इसका मतलब यह नहीं कि फिल्म बनाने वाले पीछे हट रहे हैं। नई फिल्मों के मुहूर्त का आँकड़ा किसी तरह निराशाजनक नहीं; और इनमें से ज्यादातर बड़े बजट वाली फिल्में है।

वर्ष के पहले छः महीनों में प्रदर्शित फिल्मों की संख्या को देखते हुए पिछले वर्ष की अपेक्षा इस साल 16% कम फिल्में प्रदर्शित हुई हैं। वर्ष 1991 के प्रथमार्ध में 83 फिल्में प्रदर्शित हुई थीं, जबकि 1992 में केवल 70 का ही प्रदर्शन सम्भव हो पाया। इनमें से 9 दक्षिण भारतीय फिल्मों से डब की गई थी; और ये सभी फ्लॉप रहीं। कुल प्रदर्शित फिल्मों का केवल 12.86% व्यावसायिक दृष्टि से सफल फिल्मों की श्रेणी में रखा जा सकता है। बॉक्स ऑफिस सफलता के आधार पर इस वर्ष प्रदर्शित फिल्मों का गुणानुक्रम इस प्रकार रहा :

* सुपरहिट - बेटा

* हिट - खुदा गवाह/शोला और शबनम

* सेमी हिट - बसंती ताँगेवाली/जान तेरे नाम/खिलाड़ी

* औसत - मेरे सजना साथ निभाना/पनाह/पुलिस ऑफिसर/त्यागी

मोटे तौर पर सुपरहिट उस फिल्म को माना जाता है, जो अपनी लागत से चार-पाँच गुना ज्यादा मुनाफा दे। जबकि निर्माण व्यय से दो गुना शुद्ध लाभ देने वाली फिल्म को हिट की श्रेणी में रखते है। औसत फिल्म वह है जो अपनी लागत जैसे-तैसे बटोर ले। इस लिहाज से वर्ष के प्रथम छः माह में प्रदर्शित 70 फिल्मों में से 60 घाटे का सौदा साबित हुई।

लेकिन इसके बावजूद फिल्म निर्माताओं का उत्साह ठण्डा पड़ता नज़र नहीं आता। अब भी प्रतिदिन एक दर्जन फिल्मों के मुहूर्त हो रहे हैं। हिट फिल्म का कोई जमा-जमाया फार्मूला न होने से नई फिल्मों के लिए ख़तरे की सम्भावना काफी ज्यादा है। उदाहरण के लिए प्रेम कथानकों पर आधारित दो फिल्मों 'कयामत से कयामत तक' और 'मैंने प्यार किया' की सफलता से उत्प्रेरित होकर निर्माताओं ने धड़ल्ले से प्रेम कहानियों पर फिल्म बनाना शुरू दीं। लेकिन इन सबको बॉक्स ऑफिस पर असफलता का मुँह देखना पड़ा। नए कलाकार, निर्माता और वितरक बुरी तरह धराशायी हो गए।

वितरक अब प्रेम सम्बन्धी फिल्मों से कतराने लगे है। राहुल राय और सलमान खान जैसे रोमांटिक अभिनेता पिछले वर्ष की अपेक्षा उतार पर है। जबकि सरफिरा और साहेबजादे की असफलता के बावजूद संजय दत्त ने अपनी माँग बरकरार रखी है। उनके नाम पर वितरक फिल्म खरीदने से नहीं हिचकिचाते। संजय की निर्माणाधीन फिल्म 'खलनायक' अभी से देश के सभी वितरण क्षेत्रों में बिक चुकी है। 'बेटा' की सफलता के बाद अनिल कपूर तथा 'शोला और शबनम' के बाद गोविन्दा का बाजार भी पहले से सुधरा है।

वरिष्ठ निर्माता एस.के.कपूर द्वारा किए गए एक तुलनात्मक अध्ययन के अनुसार फिल्म निर्माण की लागत पिछले 5 वर्षों के दौरान दुगनी से भी ज्यादा हो गई है। अगर फिल्म की लागत एक करोड़ मानें, तो विभिन्न का आकलन इस प्रकार होगा :

मद	व्यय 1987 रु.	व्यय 1992 रु.
कलाकार	20 लाख	40 लाख
कच्चा माल	6 लाख	20 लाख
शूटिंग व्यय	8 लाख	20 लाख
संगीत	3 लाख	10 लाख
प्रचार	2 लाख	10 लाख
स्टॉफ/ तकनीशियन आदि	10 लाख	10 लाख
कुल	49 लाख	1.10 करोड़

उपरोक्त आँकड़ों से स्पष्ट है कि फिल्म निर्माण की लागत में चिन्ताजनक वृद्धि हुई है। निर्माता-निर्देशक अमित खन्ना इण्डस्ट्री में बढ़ती अनिश्चितता के लिए तीन कारणों को ज़िम्मेदार ठहराते हैं। पहला फिल्म निर्माण के लिए यथोचित वित्तीय संस्थाओं का अभाव। दूसरा निर्माताओं में काम के प्रति समर्पण की कमी और तीसरा फिल्म की शूटिंग में होने वाला अनावश्यक विलम्ब! अक्सर कलाकारों की 'डेट्स' न मिल पाने के कारण शूटिंग रद्द करना पड़ती है। इसकी वजह से फिल्म की लागत में इजाफा स्वाभाविक है उधर शूटिंग में देरी होने से फायनेन्सरों का दबाव निर्माता पर बढ़ने लगता है। उन्हें अपने निवेश पर अधिक ब्याज वसूलने की जल्दी होती है।

लागत मूल्य-वृद्धि की भयानक तस्वीर के बावजूद हैरत की बात है कि बड़े बजट वाली फिल्में पहले से अधिक बन रहीं हैं। समझ में नहीं आता कि इसके लिए पैसा कहाँ से आएगा? आखिर निर्माता अपनी फिल्मों पर पागलपन की हद तक पैसा खर्चने को क्यों उत्सुक हैं? वर्तमान में निर्माणाधीन सात फिल्में ऐसी हैं, जिनका अपेक्षित बजट 10 करोड़ के आँकड़े को छूता है। सुनील अग्निहोत्री द्वारा निर्देशित 'सिंगर' के मात्र एक गाने का फिल्मांकन 35 लाख रुपए में पूरा हुआ। ऐसे ही अफलातूनी खर्चों वाली अन्य
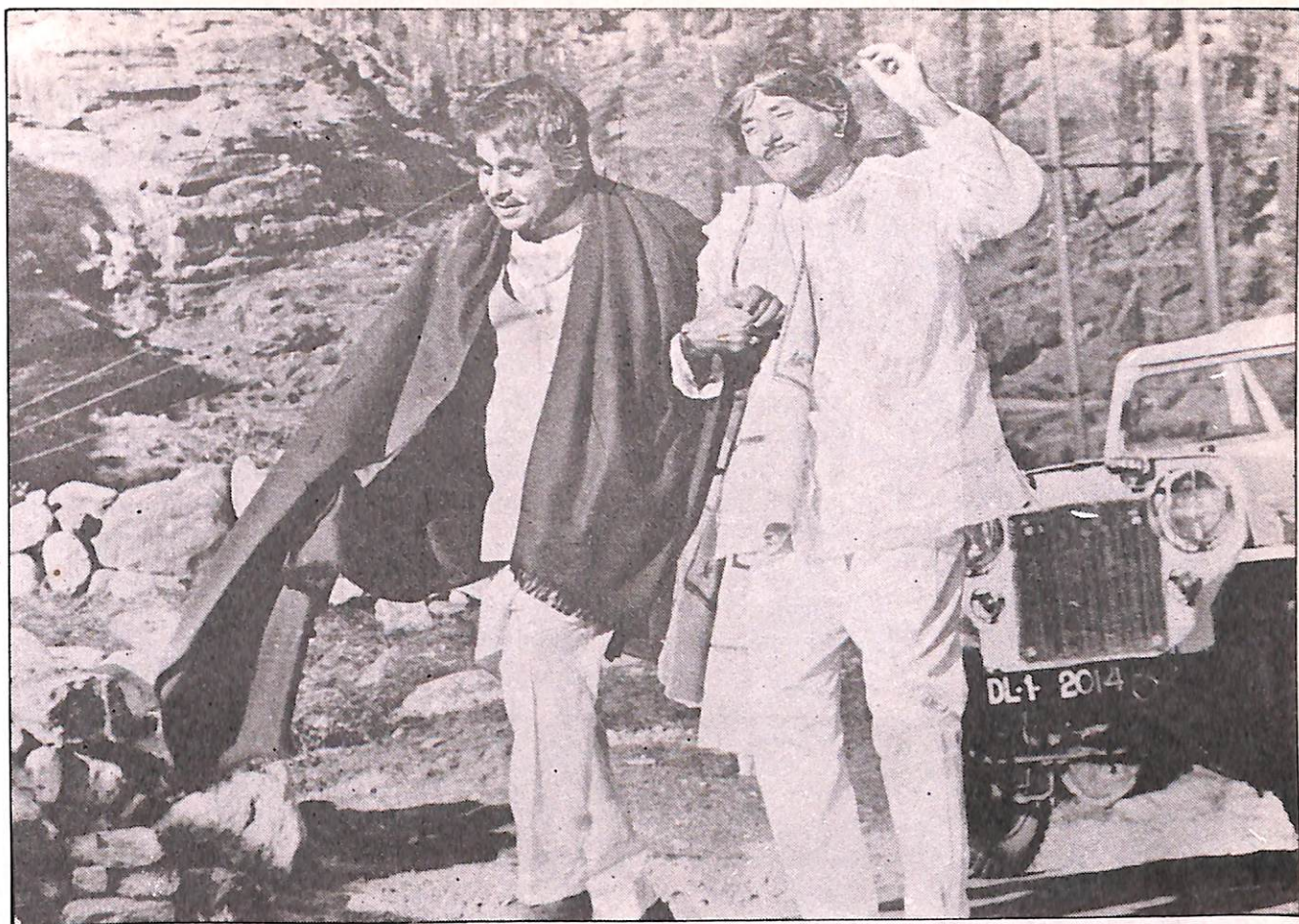
महँगी फिल्मों की मजबूरी : फिल्म सौदागर में दो दिग्गज दिलीपकुमार और राजकुमार

फिल्में हैं : रूप की रानी चोरों का राजा/क्षत्रिय/कलिंग/परम्परा/टाइम मशीन और खलनायक!

वितरकों ने पिछले कुछ वर्षों में फिल्में खरीदने के लिए जो गला-काट प्रतिस्पर्धा दर्शाई, उसी का नतीजा है कि आज सितारों ने अपना पारिश्रमिक अनाप-शनाप बढ़ा रखा है। औसतन एक स्थापित कलाकार को 35 से 50 लाख रुपए एक फिल्म के लिए दिये जाते हैं। इतनी बड़ी राशि अदा करने के बाद निर्माताओं की साँस गले में अटकी रहती है। अब आज के एक्टर कोई अमिताभ बच्चन तो हैं नहीं, कि फ्लॉप होने के बावजूद उनकी फिल्म लागत वापस कर जाए।

स्पष्टतः फिल्म निर्माण कुल मिलाकर कोई खास फायदे का धंधा नहीं। इसे उद्योग मानना भी गलत होगा। यह एक तरह का नशा है, जिसका शिकार फिल्म बनाने से बाज नहीं आता; चाहे फायदा हो या नुकसान! ●

फिल्म सेन्सरशिप की विसंगतियाँ

● **शोमा ए. चटर्जी**

भारत में फिल्म सेन्सरशिप कानूनी है। सिनेमेटोग्राफ अधिनियम, 1952 प्राथमिक रूप से उन उपबंधों पर आधारित हैं, जो कि भारतीय संविधान के एक भाग हैं। अनुच्छेद 19 स्वतंत्रता के अधिकार का निर्देश करता है जो कि एक मूल अधिकार है। अनुच्छेद 19 (1) सभी नागरिकों को 'उचित निर्वन्धनों' के अधीन रहते हुए भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है। अनुच्छेद 19 (2) में ऐसे ' उचित निर्वन्धनों' के स्थूल क्षेत्र दिए गए हैं। भारत की प्रभुता और अखंडता/राज्य की सुरक्षा/विदेशी राज्यों का साथ मैत्रीपूर्ण संबंध/लोक व्यवस्था की अवमानना या मानहानि या किसी पद के प्रति अभ्यारोपण। ये निर्वन्धन हमारे देश में सेन्सरशिप के आधार हैं।

वास्तविकता में यह चित्र इतना सीधा-सादा नहीं है। हर दूसरे दिन कोई नया विवाद अपना घिनौना सिर उठाता है। विवाद इस बारे में होता है कि फिल्मों में क्या दिखाया जाना चाहिए और क्या नहीं दिखाया जाना चाहिए, या कि इस अथवा उस फिल्म में से क्या काँटा जाना चाहिए और क्या नहीं काँटा जाना चाहिए। भारतीय सिनेमा और विशेषतः हिंदी सिनेमा के संबंध में शब्द 'सेन्सरशिप' की सुनते ही हमारी आँखों के सामने एक ऐसी विशालकाय कैंची का चित्र उभर आता है, जो कि फिल्म की रील पर रील काटे जा रही हो। आज महेश भट्ट की फिल्म **सड़क** की बारी आती है तो कल **शशि रंजन** की फिल्म **सियासत** की बारी आती है। जहाँ तक फिल्म **सड़क** का संबंध है, जब **फिल्म मेकर्स**

कम्बाइन ने भारत में सेन्सरशिप (जो कि केंद्रीय नेतृत्व के हस्तक्षेप से दुगनी निरर्थक हो जाती है) की अनियमित नीतियों के विरुद्ध सामूहिक क्रोध का प्रदर्शन किया तो यह फिल्म पास कर दी गई।

प्रमाण पत्र अभिप्राप्त करने की प्रक्रिया भी बहुत अधिक घुमावदार हैं। पहले तो **सीबीएफसी (सेंट्रल बोर्ड ऑफ फिल्म दि सर्टिफिकेशन)** फिल्म को दस्तूरी तौर पर देखता है और फिर उसे बोर्ड की परीक्षण समिति को समीक्षा के लिए प्रस्तुत करता है। वहाँ से फिल्म पुनरीक्षण समिति के पास जाती है और फिर वहाँ से पुनर्पुनरीक्षण समिति के पास जाती है। यदि प्रत्येक समिति फिल्म में कोई भी बात आपत्तिजनक नहीं पाती (अर्थात यदि वह नियमों का उल्लंघन नहीं करती) तो फिल्म को प्रमाण पत्र मिल जाता है। यदि इन समितियों में से एक या अधिक समितियों को कोई आपत्ति हो तो या यदि उनमें आपसी सहमति न हो तो निर्माता **दिल्ली** में स्थित **अपीलीय अधिकरण** को अपील करता है। यदि **अधिकरण** फिल्म को नामंजूर कर देता है तो निर्माता उच्च न्यायालय को अपील करता है।

शशि रंजन और **विनोद ठक्कर** द्वारा निर्मित फिल्म **सड़क** को दिल्ली में स्थित अपीलीय प्राधिकरण के पास जाना पड़ा था। इसका व्यावहारिक अर्थ यह है कि उच्च प्राधिकारियों द्वारा सेन्सर की राय के विरुद्ध व्यवस्था दी जा सकती है। इसलिए यदि निर्माता के ताल्लुकात उस स्तर पर हो तो उसे सी.बी.एफ.सी. की राय की चिंता करने की आवश्यकता नहीं होती।

इस प्रकार यह नीति स्पष्ट हो जाती है सी.बी.एफ.सी. को बहुधा सत्तासीन राजनीतिज्ञों के आदेशों को मानना पड़ता है। इससे वह विधिक लिखत, जो कि स्वतंत्रता की प्रत्याभूति देती है, शून्य और अकृत हो जाती है।

यदि हम हिन्दी सिनेमा की सेंसरशिप के इतिहास को देखें तो उसकी कार्य प्रणाली में जो विसंगतियाँ अंतर्निहित हैं वे विसंगतियाँ साबित हो जाती हैं, जिनके चलते कानून से सदमा उतना नहीं पहुँचता जितना कि मन बहलाव होता है। यदि किसी के पास राजनीतिक शक्ति हो तो वह निर्बाध प्रमाण पत्र प्राप्त कर सकता है। **संजय खान** की फिल्म **अब्दुल्ला** को स्टेट पैनल ने 'ए' प्रमाण पत्र दिया। इसलिए **संजय खान** उड़कर दिल्ली गए और 'यू' प्रमाण पत्र ले आए। उन्होंने **संजय गाँधी** निधि में पाँच लाख रु. का दान दिया था। चमत्कार हो गया और यह फिल्म **उत्तरप्रदेश, केरल, पंजाब, दिल्ली** और **महाराष्ट्र** में इसलिए कर मुक्त हो गई, क्योंकि वह राष्ट्रीय एकता का संवर्धन करती थी। इसे आप क्या कहेंगे?

फिरोज खान की फिल्म **कुर्बानी** को 'ए' प्रमाण पत्र दिया गया, जबकि पूरी लंबाई की फिल्म को 'यू' प्रमाण पत्र दिया गया। इसका निहितार्थ यह है कि इस फिल्म का एक हिस्सा सार्वजनिक प्रदर्शन योग्य नहीं था, लेकिन पूरी फिल्म सार्वजनीन प्रदर्शन के योग्य थी। इसी फिल्म निर्माता की फिल्म **अपराध** को उसके प्रथम विमोचन के समय 'यू' प्रमाण पत्र दिया गया.

दो पाटों के बीच पिसती फिल्मी स्त्री : फिल्म बटवारा में धर्मेन्द्र, विनोद खन्ना और श्रीप्रदा
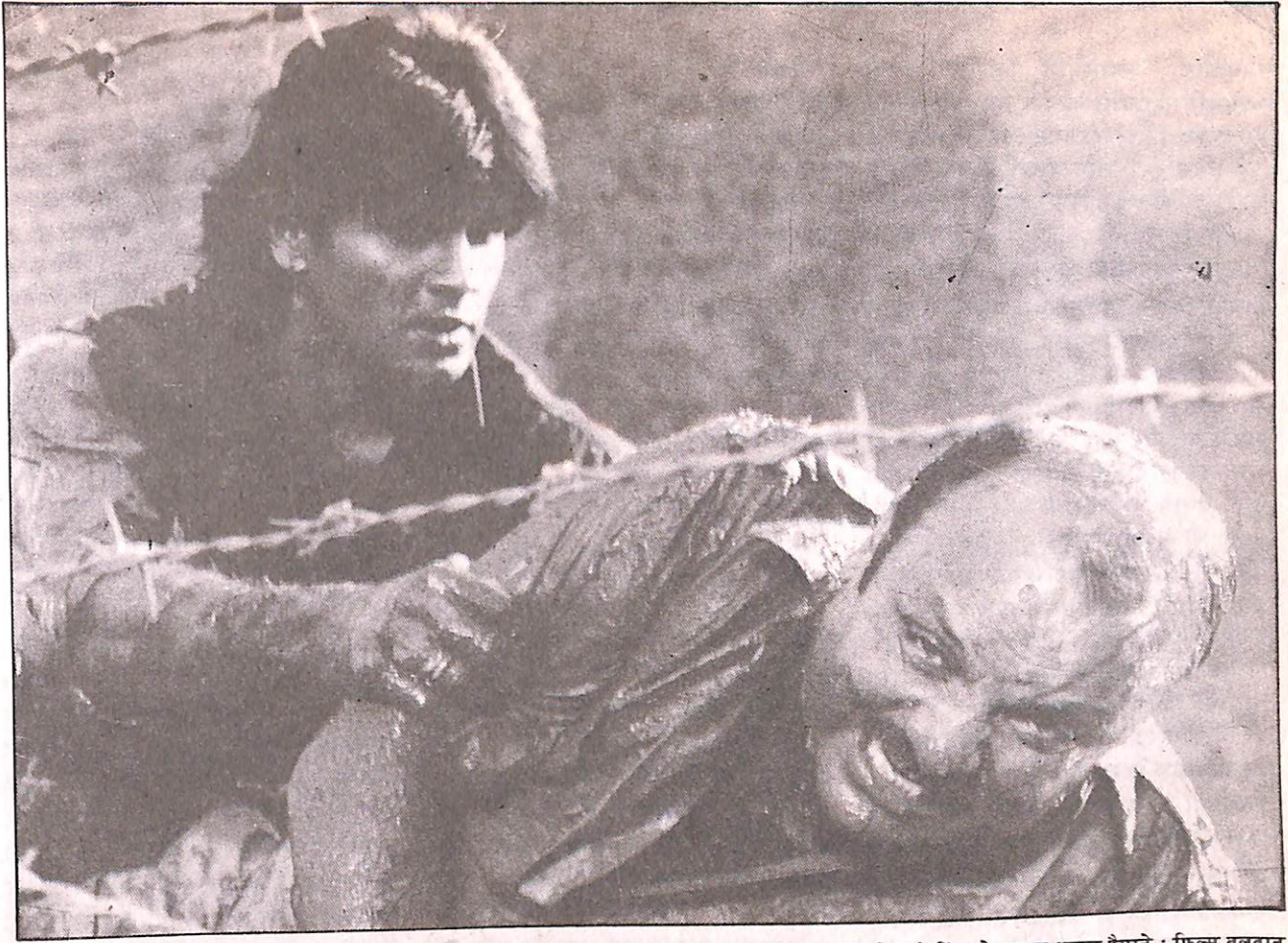
फिल्मी हिंसा के अलग-अलग पैमाने : फिल्म बलवान

किंतु जब दस वर्ष बाद उसका पुनर्विमोचन हुआ तो उसे 'ए' प्रमाण पत्र दिया गया।

सी.बी.एफ.सी. के 7 मई, 1983 तक संशोधित मार्गदर्शक सिद्धांतों में सेन्सरशिप के तीन उद्देश्य अधिकथित है। (क) सिनेमा का माध्यम समाज के मूल्यों और मानदंडों के प्रति उत्तरदायी तथा संवेदनशील है। (ख) कलात्मक अभिव्यक्ति तथा सर्जनात्मक स्वतंत्रता को अनुचित रूप से प्रतिबंधित किया जाए और सेन्सरशिप सामाजिक परिवर्तन के प्रति संवेदनशील हो। ये उद्देश्य सिनेमेटोग्राफ अधिनियम 1952 (1952 का 37) की धारा 5-ख की उपधारा (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए फिल्मों को मंजूरी देने के लिए केंद्रीय शासन द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार अधिकथित किए गए हैं।

समाज के मानदंड वस्तुतः क्या हैं और उन्हें कौन परिभाषित करता है? कलात्मक अभिव्यक्ति तथा सर्जनात्मक स्वतंत्रता का क्या अर्थ हैं? उन्हें स्पष्टतः परिभाषित क्यों नहीं किया गया है? 'अनुचित रूप से प्रतिबंधित करना' क्या है? उद्देश्य (क) उद्देशय् (ग) से असंगत है। सिनेमा किसी समाज के मूल्यों और मानदंडों के प्रति संवेदनशील कैसे रह सकता है, जबकि उन मूल्यों मानदंडों में ही निरंतर परिवर्तन होता रहता है? इसी के साथ सिनेमा सामाजिक परिवर्तन के प्रति अनुक्रियाशील कैसे बना रह सकता है? समाज के मूल्यों और मानदंडों का समर्थन करने का ध्वनितार्थ है कि परिवर्तन का प्रतिरोध करना, भले ही प्रतिरोध सुव्यक्त न हो। जो नियम सार्व विधिक है उनकी संविरचना में और परिभाषा में विमर्शपूर्ण द्वैध वृत्ति क्यों है? इसके अतिरिक्त **सी.बी.एफ.सी.** को आकाश से **स्टार** तथा **केबल** द्वारा किए जा रहे आक्रमण घुसपैठ को देखते हुए भी कुछ करना चाहिए, क्योंकि उनपर कोई भी सेन्सरशिप नहीं है, जबकि फिल्मों पर है। इसमें दो अर्थ है (1) पहला अर्थ तो यह है कि **डिश** से जुड़े हुए नगरीय दर्शक ढेर सारे बिना सेन्सर वाले ऐसे कार्यक्रम देख सकते हैं, जो कि भारतीय मूल्यों और मानदंडों से संबंधित नहीं है, जैसे कि **स्टार के भीतर एम.टी.वी.** के कार्यक्रम और (2) दूसरा अर्थ यह है कि बिना सेन्सर वाले कार्यक्रम वैकल्पिक नेटवर्कों के जरिए अपने घर पर ही देखे जा सकते हैं, इसलिए सेन्सरशिप के नियमों का हौआ उतना ही निरर्थक हो सकता है, जितना निरर्थक वह कागज है, जिस पर ये नियम छपे हुए हैं। वैसे ही सेन्सरशिप अपने आप पर एक मजाक बन गई है।

17 जून, 9181 से सी.बी.एफ.सी. फिल्म निर्माताओं को यह उपदेश देने लगा कि वे ऐसे दृश्यों या शब्दों से परहेज करें, जो कि स्त्रियों की अपमानजनक दासता को स्त्रियों का प्रशंसनीय गुण बताते हो। (नियम चार-क)। उसमें आगे यह कहा गया है कि यदि अधिक काट-छाँट से वह चीज दूर नहीं होती, जो कि फिल्म में अवांछनीय हो, तो फिल्म को प्रमाण पत्र नहीं दिया जाना चाहिए। इसी आधार पर **आर.के. नैयर** की फिल्म **पति परमेश्वर** को प्रमाण पत्र देने से इनकार कर दिया गया। इसे लेकर **बंबई उच्च न्यायालय** के दो विद्वान

न्यायाधीशों **न्यायमूर्ति लेन्टिन** तथा **न्यायमूर्ति अग्रवाल** के बीच मतभेद हो गया। आखिरकार फिल्म को पास कर दिया गया और सिनेमाघरों में दिखाया गया। किंतु दर्शकों ने इस फिल्म को नकार दिया। इस फिल्म को लेकर न्यायालय में जो वाद चला था उसका सिनेमाघरों पर थोड़ा भी असर नहीं पड़ा।

नियमों में इस परिवर्धन के दस वर्षों से भी अधिक समय बाद **सी.बी.एफ.सी.** ने **बेनाम बादशाह** या **प्रतिघात** जैसी फिल्मों को 'ए' प्रमाण पत्र कैसे दिया? यदि फिल्म **पति परमेश्वर** पर यह आरोप लगाया गया था कि उसमें स्त्री को अपमानजनक दासता की स्थिति में दर्शाया गया है तो **बेनाम बादशाह** में तो स्त्री की स्थिति उससे भी बदतर साबित हुई। इस फिल्म में नायिका उस पेशेवर बदमाश से विवाह करने का प्रण करती है, जिसने उसके साथ धन के लिए बलात्कार किया था, क्योंकि वह यह कहती है कि एक बलात्कारित स्त्री के लिए यही एकमात्र मार्ग है। यह फिल्म **सी.बी.एफ.सी.** के किस उद्देश्य को पूरा करती है? क्या इस प्रकार की फिल्म समाज के मूल्यों तथा मानदंडों के प्रति उत्तरदायी है? या कि क्या ये उदाहरण संबंधित फिल्म निर्माता की 'कलात्मक अभिव्यक्ति' तथा 'सर्जनात्मक स्वतंत्रता' के उदाहरण हैं?

जटिल प्रश्न यह है कि क्या सर्जनात्मक स्वतंत्रता प्रतिबंधात्मक पर्यावरण में पनप सकती है, या कि क्या प्रतिबंधात्मक पर्यावरण कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए बाधक हो सकता है। यह प्रश्न अधिक जटिल और संभ्रमपूर्ण हो सकता है, क्योंकि 'कलात्मक अभिव्यक्ति' और 'सर्जनात्मक स्वतंत्रता' के निर्वचन विशुद्धतः व्यक्ति निष्ठ बन सकते हैं। **टीनू आनंद** यह कह सकते हैं कि फिल्म **शहंशाह** उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति की रीति है और इसलिए उस फिल्म के विमोचन को प्रतिबंधित करना उनकी 'सर्जनात्मक स्वतंत्रता' को प्रतिबंधित करना है। **आर.के नैयर** भी अपनी फिल्म **पति परमेश्वर** के बारे में यही बात कह सकते हैं और **बी.आर. चोपड़ा** अपनी फिल्मों **आज की आवाज** और **इन्साफ का तराजू** के बारे में यही बात कह सकते हैं।

मेरी आवाज सुनो (जीतेंद्र), **अंधा कानून** (अमिताभ बच्चन और रजनीकांत) तथा **शहंशाह** (अमिताभ बच्चन) फिल्मों में नायक न्यायालय में बेखौफ और बेधड़क घुस जाता है। वह कानून को अपने हाथों में ले लेता है और इर्द-गिर्द के सभी लोगों की धुनाई करता है और न्यायालय की मर्यादा के राज्य के न्यायिक तंत्र का कैरिकेचर बना देता है।

फिल्म **शहंशाह** को बारीकी से देखने पर घबरा देने वाले कुछ दृश्य सामने आते हैं, नायक खलनायक को रस्से में फँसाकर न्यायालय कक्ष में फाँसी देने की कोशिश करता है। बचाव पक्ष का वकील खलनायक को निर्दोष साबित करने के लिए न्यायाधीश पर पिस्तौल तानकर उसे डराता है। नायक पूरी फिल्म में दर्शकों के मन में और फिल्म के शेष पात्रों के मन में यह बात बैठा देना चाहता है कि वह स्वयं कानून है और इसके लिए वह यह बात बार-बार दोहराता रहता है। यह सब **सी.बी.एफ.सी.** के निम्नलिखित नियमों का उल्लंघन है, जो कि इस प्रकार है (छह) " भारत की प्रभुता और अखंडता को प्रश्नग्रस्त नहीं किया जाएगा", (सात) "राज्य की सुरक्षा को संकट या खतरे में नहीं डाला जाएगा", (नौ) "लोक व्यवस्था को खतरे में नहीं डाला जाएगा" तथा (दस) **बोर्ड** को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि न्यायालय की मानहानि या अवमानना वाले दृश्य या शब्द प्रस्तुत न किए जाएँ। तब **सी.बी.एफ.सी.** ने इस फिल्म को प्रमाण पत्र कैसे दिया? **सी.बी.एफ.सी.** ने फिल्म **योद्धा** को पास कैसे किया, जिसमें एक न्यायाधीश को एक ऐसे प्रधान खलपुरुष के रूप में दिखाया गया है जो कि एक माफिया संगठन का नेतृत्व करता है? **आज का गुंडा राज, विकी दादा** और **तहलका** जैसी फिल्मों को पास करने के बारे में **सी.बी.एफ.सी.** क्या कह सकता है?

दक्षिण भारतीय फिल्मों को अखिल भारतीय प्रदर्शन के लिए हिंदी में डब क्यों किया जाता है? इस प्रश्न का उत्तर सीधा-सादा है। दक्षिण भारत में बोर्ड का क्षेत्रीय पैनल दक्षिण भारतीय फिल्मों के बारे में उदार है। इसलिए **शिवा** जैसी फिल्म जो कि बंबई में या किसी अन्य क्षेत्र में सेन्सर के जाल में फँस गई होती दक्षिण में पास हो जाती है। डब की गई फिल्मों के बारे में शासन के निर्देश यह है कि यदि मूल फिल्म प्रमाणित की कजा चुकी हो तो दृश्यों को सेन्सर न किया जाए। किंतु यदि किसी मूल क्षेत्रीय फिल्म को हिन्दी में पुनर्निर्मित किया जाता है तो उसे प्रमाणन के प्रयोजनार्थ 'नई' फिल्म माना जाता है। उदाहरणार्थ **कमल हासन** के अभिनय वाली **तमिल** फिल्म **कल्याण रामन** को 'यू' प्रमाण पत्र दिया गया, किंतु जब उसे **धर्मेन्द्र** को प्रमुख भूमिका में लेकर हिंदी में पुनर्निमित किया गया तो उसे 'ए' प्रमाण पत्र दिया गया।

दूसरी ओर परिष्कृत अश्लीलता वाली **मलयालम** फिल्में और यहाँ तक कि भोंडी अश्लीलता और हिंसा वाली कुछ **तमिल** और **तेलुगू** फिल्मों को **सी.बी.एफ.सी.** के क्षेत्रीय बोर्डों से निर्बाधन मिल जाता है और फिर उन्हें अखिल भारतीय प्रदर्शन के लिए **हिंदी** में डब किया जाता है। विभिन्न भारतीय राज्यों में क्षेत्रीय पैनलों के नैतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवहार की उनकी अपनी नृजातीय आचरण संहिताएँ होती हैं, जो कि सभी क्षेत्रों के लिए एक जैसी नहीं होतीं। इसके अतिरिक्त, भाषायी समूह उस फिल्म के बारे में निर्णय करना कठिन पाते हैं, जिसकी भाषा दो नहीं जानते। इसलिए उन्हें केवल दृश्यों को देखकर निर्णय करना पड़ता है, क्योंकि द्वयर्थक वाक्य या विस्फोटक और उत्तेजक संवाद उनकी समझ में नहीं आते।

बंबई में स्थित केंद्रीय बोर्ड में भी अध्यक्ष के अतिरिक्त विभिन्न पृष्ठ भूमियों वाले कम से कम 20 मनोनीत सदस्य होंगे। यह सच है कि वे हमारे विविधतापूर्ण समाज के अणुविश्व का निर्माण करते हैं, किंतु यह भी सच है कि ये सभी 20 सदस्य किसी फिल्म के सभी पहलुओं पर निजी सर्व सम्मत निर्णय पर नहीं पहुँच सकते। फिल्म-निर्माता की कलात्मक अभिव्यक्ति और 'सर्जनात्मक स्वतंत्रता' संबंधी विचार और इन सदस्यों के विचार एक जैसे कैसे हो सकते हैं? इसलिए **सी.बी.एफ.सी.** की संरचना में ही कोई त्रुटि है।

सी.बी.एफ.सी. के विरुद्ध अन्य आरोप भी लगाए जाते हैं, जिनमें भ्रष्टाचार के आरोप भी शामिल हैं। **मोहन दीप** जो कि दो वर्षों तक बंबई में स्थित **सी.बी.एफ.सी.** के सदस्य रह चुके हैं, गुस्से में आकर कहते हैं कि सेन्सरशिप सत्ता की सुरक्षा का एक तरीका है। वे कहते हैं, "मैंने सुना है कि मार्गदर्शक सिद्धांतों को अनदेखा करने के लिए लेन-देन होता है या उसी कारण के लिए राजनीतिक शक्ति का उपयोग किया जाता है। ये सभी फिल्म निर्माता', जो कि सेन्सरशिप का समर्थन करते हैं, राजनीतिज्ञों के हाथों खेल रहे हैं। वे निर्माता यह अभिस्वीकार कर रहे हैं और मान्य कर रहे हैं कि दूसरे लोगों को उनकी रचना के गुण-दोषों का विवेचन करने का और एक लोकतंत्र में 'यह करो और यह न करो' कहने का अधिकार है।

किंतु फिल्म निर्माताओं के पास सेंसर प्रमाण पत्र की साविधिक अपेक्षाओं का पालन करने के सिवाय न तो कोई चारा है, क्योंकि उसके बिना

वे अपनी फिल्मों का कानूनी तौर पर सार्वजनिक प्रदर्शन नहीं कर सकते और न उनके पास इतनी परिपक्वता तथा बुद्धिमत्ता है कि वे खुद ही अभिलाषा कल्पित सेन्सर कर लें।

जब तक ऐसा नहीं होता तब तक हमें भारतीय दर्शन के सभी मानवतावादी सिद्धांतों का उल्लंघन करने वाली फिल्मों, हिंसा और सेक्स का प्रदर्शन करने वाली फिल्मों और पुरुष तथा स्त्री की शरीर-रचना का उपयोग व्यावसायिक कारणों से करने वाली फिल्मों के निष्क्रिय दर्शकों की भूमिका निभानी होगी। वे दिन लद गए जब खलनायक पश्चाताप किया करता था और अंतिम शॉट के सामूहिक फोटोग्राफ में अच्छे मुख्य पात्रों के साथ दिखाई दिया करता था। अब फिल्मों में केवल एक ही खलनायक नहीं होता। आज प्रत्येक फिल्म में लगभग आधे दर्जन खलनायक होते हैं। उनके अपने-अपने गुंडे और बदमाश लोग होते हैं। आज का चयन मस्तिष्क के बजाय हाथों का उपयोग अधिक करता है। आज नायक और खलनायक को विभोदित करने वाली तीव्र रेखा इतनी धुँधली हो गई है कि हम यह नहीं जान पाते कि क्या नायक वस्तुतः नायक है या कि वह नायक भी है और खलनायक भी है। इस बीच दुर्भाग्यवश सेंसर बोर्ड गौण महत्व का होता जा रहा है और मुख्य धारा वाली औसत फिल्म को देखने पर उसकी अनुपस्थिति सुस्पष्ट हो जाती है। ●

मैं अपनी हर फिल्म में दर्शकों को चौंकाना चाहता हूँ : नसीरुद्दीन शाह

एक अत्यंत प्रतिभासंपन्न अभिनेता के रूप में **नसीरुद्दीन शाह** की ख्याति सर्वविदित है। सत्तर के दशक में समानांतर सिने-आंदोलन की शुरूआत के साथ जिन प्रमुख फिल्म हस्तियों का उदय हुआ, नसीर उनमें से एक थे। बेहतर सिनेमा के साथ उनका नाम अभिन्न रूप से जुड़ा है। उत्तरप्रदेश के बाराबँकी जिले में जन्मे और अलीगढ़ में तालीमयाफ्ता नसीरुद्दीन शाह ने अभिनय का विधिवत प्रशिक्षण राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (एन.एस.डी.) और फिल्म इंस्टीट्यूट (पुणे) जैसी प्रतिष्ठित संस्थाओं से प्राप्त किया था। सिने-जगत में उनका पदार्पण फिल्म **'निशांत'** (१९७५) से हुआ था। श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित इस फिल्म में उनका काम बेहद सराहा गया। इसके बाद व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह पर आधारित नसीर की दो अन्य फिल्में आई - 'मंथन' और 'अल्बर्ट पिंटो को गुस्सा क्यों आता है'। नसीर को अपनी क्षमता सिद्ध करने के लिए इतने प्रारंभिक अवसर पर्याप्त थे। बाद में उन्होंने अपने बहुमुखी कला सामर्थ्य का परिचय 'स्पर्श'/, 'मासूम'/, 'जाने भी दो यारों'/ जैसी परस्पर भिन्न कथानकों वाली फिल्मों में काम कर दिया।

नसीरुद्दीन शाह को मिले पुरस्कारों की सूची काफी विस्तृत है। उन्होंने 'स्पर्श' (१९८०) और 'पार' (१९८५) के लिए राष्ट्रीय अवार्ड तथा 'मंथन' (१९७७), 'आक्रोश' (१९८०), 'चक्र' (१९८१) और 'मासूम' (१९८३) के लिए फिल्मफेअर पुरस्कार हासिल किए। 'पार' फिल्म में बेहतरीन अभिनय के लिए वेनिस फिल्मोत्सव में उन्हें सर्वश्रेष्ठ अभिनेता के पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। टीवी सीरियल 'मिर्जा गालिब' में उनका काम सबके आकर्षण का केन्द्र बना। हिन्दी के अलावा नसीर कुछ अन्य भाषा की फिल्मों में भी काम कर चुके हैं। इनमें 'भवनी भवाई' (गुजराती), 'मने' (कन्नड़), 'प्रतिदान' (बंगला) और 'दि परफेक्ट मर्डर' (अंग्रेजी) के नाम उल्लेखनीय हैं।

पिछले कुछ समय से नसीर ने कला फिल्मों से मुँह मोड़कर व्यावसायिक सिनेमा का रुख कर लिया है। 'त्रिदेव' की सफलता के बाद वह बंबइया फिल्म जगत में ही व्यस्त रहने लगे हैं। इस अचानक परिवर्तन की वजह उनके प्रशंसकों को समझ में नहीं आ रही।

यह नई धारा का सिनेमा ही था, जिसने बतौर अभिनेता आपको स्थापित किया। लेकिन आज आप इस सिने-आंदोलन के कटु आलोचक हैं। उन फिल्मकारों पर आक्षेप करने से भी नहीं हिचक रहे, जिनके साथ काम किए आपको ज्यादा अरसा नहीं हुआ?

मेरी सबसे बड़ी नाराज़गी इस बात को लेकर है, कि समानांतर सिनेमा इतनी लज्जाजनक मौत मरा है। इसके तथाकथित कर्णधारों की लुंज-पुंज प्रतिबद्धता मुझे और भी विचलित करती है। आखिर सार्थक सिनेमा को अपने जीवन का एकमात्र ध्येय बताने वाले अक्सर आसानी से मौका मिलते ही अन्य लुभावने मगर अर्थहीन विकल्पों की तरफ आकर्षित क्यों हो जाते हैं? कुछ सज्जनों ने नई धारा के सिनेमा की दुर्दशा के लिए मुझ जैसे कलाकारों को जिम्मेदार ठहराते हुए हम पर उदासीनता का आरोप लगाया है। लेकिन मैने को कला फिल्मों में काम करने से कभी इंकार नहीं किया। मैं सिर्फ उन निर्देशकों के साथ अब और काम नहीं करना चाहता, जिनके साथ पहले कर चुका हूँ। श्याम बेनेगल इस मामले में अपवाद है। उनके लिए मैं कुछ भी करने को तैयार हूँ। क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम मेरी क्षमता पर भरोसा किया था।

मगर बेनेगल और निहलानी तो अब भी कला फिल्मों से जुड़े हुए हैं?

इसे मैं 'कृत्रिम श्वास प्रक्रिया' कहूँगा। अपनी बात मुझे इस तरह स्पष्ट करने दीजिए। सामान्यतः कला फिल्मों के ज्यादातर निर्देशकों ने मुझे सिर्फ अपनी पहली फिल्म कृति से ही प्रभावित किया है। कुछ मामलों में यह प्रशंसाभाव आगे भी जारी रहा। उदाहरण के लिए बेनेगल, निहलानी, गुलजार और शेखर कपूर के नाम इस क्रम में लिए जा सकते हैं। इन लोगों में मैंने काम के प्रति जवाबदेही, उत्साह और कलाकारों से तादातम्य की क्षमता महसूस की है। लेकिन ये सभी विशेषताएँ उनकी हर अगली फिल्म के साथ खत्म होती जान पड़ती हैं। मुझे नहीं लगता कि पिछले पंद्रह सालों में सिने-माध्यम पर इनकी पकड़ निरंतर मजबूत हुई हो।

ऐसा क्यों?

यह उन्हीं से पूछिए।

आपने हाल ही में मृणाल सेन की निर्देशकीय क्षमता पर भी प्रश्न चिह्न उठाए हैं?

उन जैसे लब्ध प्रतिष्ठित फिल्मकार से इतने अधकचरे और चलताऊ काम की अपेक्षा नहीं की जा सकती, जिसका परिचय उन्होंने अपनी नई फिल्म 'जेनेसिस' में दिया है।

क्या देश में कोई ऐसा फिल्मकार है, जो आपके अनुसार सिनेमा की भाषा सही ढंग

नसीरुद्दीन शाह

से संप्रेषित करने की क्षमता रखता हो?

अरविंदन और अब अदूर गोपालकृष्णन ऐसे फिल्मकार हैं, जिन्होंने कोई समझौता नहीं किया। उन्होंने महज फिल्मोत्सवों में शामिल होने के उद्देश्य से फिल्में नहीं बनाई।

मगर केरल में उनकी फिल्मों का एक विशिष्ट दर्शकवर्ग भी तो है?

अपना दर्शकवर्ग उन्होंने खुद 'तैयार' किया है। क्या किसी हिन्दी फिल्मकार में इतनी क्षमता है? बहानेबाजी से काम नहीं चलेगा। इस दिशा में प्रयत्न करने होंगे।

आपकी आरंभिक फिल्मों में अभिनय का जो वैविध्य नज़र आता था, वह अब नदारद सा क्यों हो गया है?

यह मत भूलिए कि व्यावसायिक सिनेमा में न कलाकार महत्वपूर्ण होता है, न पात्र! बल्कि सिर्फ स्टार छवि ही सर्वोपरि है और स्टार होने का मतलब है - दर्शकों की माँग के अनुरूप अपने अभिनय को एक खास साँचे में ढाल लेना। स्टार बनने का यह एक सबसे बड़ा खतरा है कि आपकी कला संकुचित हुए बिना नहीं रह सकती। भारत में एक भी ऐसा स्टार नहीं, जो चरित्रानुरूप अपने अभिनय की विविधता के कारण सफल हुआ हो। अब दिलीप कुमार को ही लीजिए। वे चाहे गरीब गाँव वाले का पात्र निभाएँ या किसी शहजादे का; उनकी स्टार-छवि परदे पर हमेशा हावी रहती है।

इसे आप कलाकार की ताकत मानेंगे या कमज़ोरी?

यह सचमुच एक गम्भीर बहस का विषय हो सकता है। यदि एक चित्रकार के चित्रों में उसकी विशिष्ट शैली का प्रभाव गलत नहीं माना जाता तो अभिनय के मामले में हम अलग नज़रिया क्यों अपनाएँ? यहाँ तक कि 'पॉल स्काफील्ड' और 'मर्लन ब्रान्डो' जैसे अत्यंत समर्थ अभिनेता भी अपनी 'स्टार छवि' से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सके। तो क्या इससे उनकी कला का अनुभव कम होता है। फिल्म पूरी तरह एक निर्देशकीय रचना है, इसलिए कलाकार की छवि के आधार पर फिल्म गढ़ने की आम परंपरा को मैं गलत मानता हूँ। दुर्भाग्य से सिर्फ लोकप्रिय सिनेमा में ही नहीं, बल्कि कला फिल्म जगत में भी कुछ हद तक यह रवैया हावी है। यहीं से कलाकार की परेशानियाँ शुरू होती हैं।

सुना है, आजकल आप फिल्म-लेखकों पर जोर दे रहे हैं, कि वे आपके लिए 'लाउड रोल' न लिखें?

मैं हर फिल्म में चीखने-चिल्लाने से तंग आ चुका हूँ। मगर मेरे लिए इसी किस्म की भूमिकाएँ लगातार लिखी जा रही हैं। शायद यह सच हो कि आक्रामक भूमिकाओं में दर्शकों ने मुझे खासतौर पर पसंद किया। किंतु मेरी आभिनय क्षमता के दूसरे पहलू भी तो उजागर होने चाहिए।

क्या यह आपके पूर्व वक्तव्य के विपरीत नहीं, जिसमें आपने कहा था कि एक 'स्टार' के लिए रीतिबद्ध होना जरूरी है?

मैं खुद को स्टार नहीं मानता।

फिर भी व्यावसायिक सिनेमा में आप अंशतः स्टार-छवि तो अपना ही चुके है?

इसके बावजूद मैं किसी खास सीमारेखा में न बंधने के लिए संघर्षरत हूँ। मैं कुछ ऐसा करना चाहूँगा जो भारत में अभी तक किसी ने नहीं किया। याने वो स्टार बनने की कोशिश, जिसके प्रदर्शन के बारे में कोई पूर्वानुमान न लगाया जा सके। मैं अपनी हर फिल्म में दर्शकों को चौंकाना चाहता हूँ। निस्संदेह एक अप्राक्क्थनीय स्टार बनना हँसी-खेल नहीं, इसमें खतरे की गुंजाइश ज्यादा है। फिर भी मैं यह खतरा उठाऊँगा, क्योंकि बार-बार एक जैसे ढर्रे पर मुझसे काम नहीं हो सकता। इसलिए मैं निर्माताओं से विविध भूमिकाओं के लिए अनुरोध कर रहा हूँ।

'जाने भी दो यारो' आपकी एक बेहतरीन फिल्म थी। आप अपने लिए खुद इस तरह की फिल्मों का निर्माण क्यों नहीं करते?

मैं इसी कोशिश में हूँ। ऑस्कर वाइल्ड की एक कहानी 'केंटरवाइल घोस्ट' पर फिल्म बनाने का विचार काफी समय से मेरे मन में है। संभवतः इसकी पटकथा जल्दी ही तैयार हो जाएगी और इस वर्ष इसे फिल्माया भी जा सकेगा।

क्या आप अपनी भूमिका के लिए संवाद-अदायगी, हाव-भाव, संवेगों आदि का पद्धतिबद्ध पूर्वाभ्यास करते हैं?

नहीं-नहीं, यह सब तात्कालिक ही होता है। मैं संबंधित चरित्र को अपने स्वभाव में समाविष्ट करने की कोशिश करता हूँ। इसके लिए मेरे विचार से किसी व्यक्तित्व को 'ओढ़ने' की बजाए अपने ही अवचेतन में उसका 'अन्वेषण' करना कहीं ज्यादा असरदार तरीका है।

इस संदर्भ में आप कोई उदाहरण दे सकते हैं?

ठीक है ! मैं अपनी फिल्म 'निशांत' और टीवी सीरियल 'मिर्जा गालिब' का जिक्र करता हूँ। 'निशांत' में मुझे आंध्रप्रदेश के एक जागीरदार परिवार से संबद्ध एक पात्र निभाना था। अब चूँकि स्वयं मेरे पिता एक जमींदार थे, इसलिए मैंने अपने उन्हीं खानदानी गुणों को अपने भीतर टटोलने का प्रयास किया। इसी तरह 'मिर्जा गालिब' की शूटिंग के दौरान मैं हरदम महसूस करता रहा, कि मैं ही 'गालिब' हूँ, और इनका सारा कलाम मैंने ही लिखा है। दुनिया के हर आदमी की चारित्रिक विशेषताएँ किसी न किसी अंश तक हम सब में मौजूद रहती हैं। बतौर अभिनेता मैं ऐसी ही विशेषताओं को तलाश कर उनके संवर्धन और संप्रेषण की कोशिश करता हूँ।

छोटे परदे पर चरित्र-चित्रण के लिए क्या आपको अपनी अभिनय शैली में किसी समायोजन अथवा अतिरिक्त प्रयास का सहारा लेना पड़ता है? और क्या आप दूरदर्शन को भी फिल्म जितना ही प्रभावोत्पादक माध्यम मानते हैं?

दोनों माध्यमों के अंतर्भूत घटक एक से हैं। सिर्फ कलाकार को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सिनेमा द्वारा दर्शकों के सम्मुख पेश की जाने वाली छवि यथार्थ का विस्तारित रूप (लार्जर दे लाइफ) होती है, जबकि टीवी पर सीमित। जहाँ तक दर्शकों के ध्यानाकर्षण का प्रश्न है, तो 'मिर्जा गालिब' जैसे गंभीर टीवी सीरियल को 'बुनियाद' या 'रामायण' की तरह लोकप्रियता नहीं मिल सकती। यदि इसे बड़े परदे के लिए बनाया जाता, तो भी इसका दर्शकवर्ग बढ़ने की गुंजाइश नहीं थी।

इसका मतलब आप यह नहीं मानते कि कलाधर्मी प्रयास दूरदर्शन के लचर कार्यक्रमों/केबल/वीडियो आदि की वजह से अवरुद्ध हुए हैं?

बिल्कुल नहीं! इसके लिए मैं पूरी तरह फिल्मकारों को ही दोषी समझता हूँ। वे अपनी भूमिका जिम्मेदारी से नहीं निभा पा रहे। आम फ़िल्मी सितारों की तरह सार्थक सिनेमा का ढिंढोरा पीटने वाले भी दौलत और शोहरत मिलते ही हवा में उड़ने लगते हैं। सुविधाभोगी जीवन शैली जल्दी ही उन्हें यथार्थ से विमुख कर देती है। वातानुकूलित घरों और कारों में बैठकर किसी बेरोजगार युवक पर तो फिल्म नहीं बनाई जा सकती। आप उसे परदे पर किस तरह अभिव्यक्ति देंगे?

आप खुद को यथार्थ से जोड़े रखने के लिए क्या करते हैं?

आम-आदमी के बीच उठता-बैठता हूँ। फुरसत का वक्त फिल्मी पार्टियों में गुजारने की बजाय
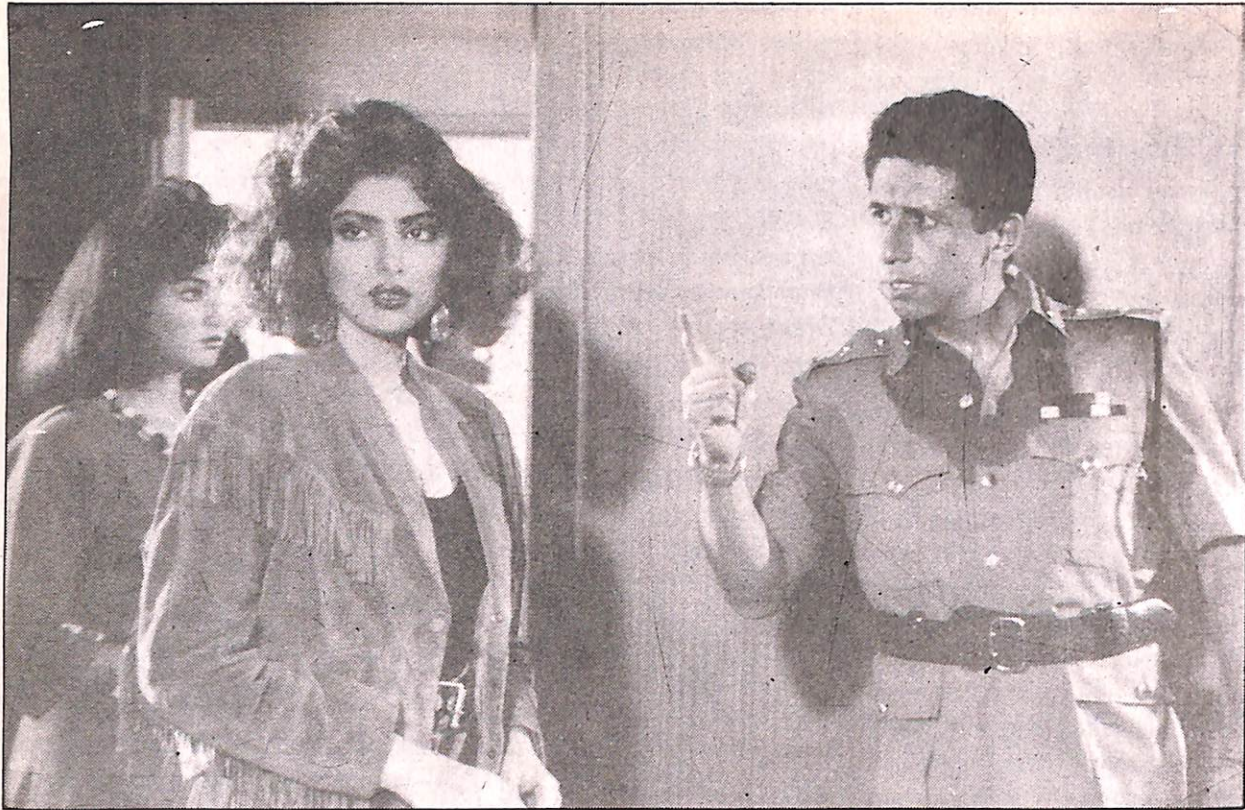
फिल्म विश्वात्मा में सोनम और नसीरुद्दीन शाह

वास्तविक जिंदगी से साक्षात्कार के लिए इस्तेमाल करना मुझे अधिक पसंद है। व्यावसायिक फिल्मों में सफलता के बाद खुद को एक 'बिकाऊ वस्तु' बनते देख मुझे कोफ्त होती है लोग मेरा पीछा ही नहीं छोड़ते, जिस कारण मैं बंधा-बंधा सा महसूस करता हूँ।

अब यह तो मत कहिए कि दौलत और शोहरत की कामयाबी से आप खुश नहीं?

मैं खुश हूँ। पैसा और सुविधा किसे अच्छे नहीं लगते। लेकिन लोकप्रियता से मेरे निजी जीवन में बुरी तरह हस्तक्षेप हुआ है। और यह मुझे पसंद नहीं।

हमारे देश में अभिनेता धड़ल्ले से राजनीति अपना रहे हैं, इस बारे में आपका क्या ख्याल है?

केवल खराब कलाकार सफल राजनेता बनते हैं। उदाहरण के लिए रोनाल्ड रेगन दुनिया के सबसे घटिया अभिनेताओं में से थे।

पहली बार अभिनय की तरफ आप कैसे आकृष्ट हुए?

बचपन से ही मुझे पता चल गया था कि इसी एक काम को मैं सलीके से निभा सकता हूँ। पढ़ाई में खास दिलचस्पी नहीं थी। जमकर फिल्में देखता था। 'एन्थोनी क्विन', 'स्पेंसर ट्रेसी', 'क्लार्क गेबल' जैसे अभिनेता मेरे आदर्श थे। इन आकर्षक व्यक्तित्व वाले कलाकारों से मैं अपनी तुलना नहीं कर सकता था। लेकिन जब मैंने 'क्लार्क लाफ्टन' को परदे पर देखा तो मुझे लगा कि साधारण चेहरे-मोहरे के बावजूद एक अच्छा एक्टर बना जा सकता है। इसी विश्वास पर मैं 'जैफ्री कैंडल' के 'थियेटर ग्रुप' से जुड़ गया और मैंने उनके साथ कई नाटक मंचित किए। 'जैफ्री' ने ही सर्वप्रथम मुझे कला-जगत की बारीकियों से अवगत कराया। उनकी समझाइशों से मेरे आत्मविश्वास में भी काफी अभिवृद्धि हुई।

किशोरावस्था में मैं अपने-आप से संतुष्ट नहीं था। मुझे हरदम महसूस होता है कि मैं, मैं न होकर कोई और होता, तो ज्यादा अच्छा था। कुछ अंशों तक यह भावना मुझमें अब भी जीवित है। मगर जिस तरह की पहचान आज फिल्मों में मेरी बन गई है, उसे देखते हुए शायद ही कोई इस बात पर यकीन करे। अब तो मुझे अपनी बेटी की उम्र वाली लड़कियों के साथ परदे पर नाचना-गाना पड़ता है। सचमुच यह बड़ी अजीब स्थिति है।

अतीत में झाँककर कुछ उस वक्त के बारे में बताइए, जब 'सत्यदेव दुबे' जैसे रंगकर्मियों के निर्देशन में आपने काम शुरू किया था। 'एन.एस.डी.' (राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय) में बिताए दिनों को याद कर क्या कभी आपको ऐसा नहीं लगता, कि अपने मूल लक्ष्य से आप भटक गए हैं?

थिएटर कभी मेरा मूल लक्ष्य था ही नहीं। मैं हमेशा से सिनेमा की तरफ ही आकर्षित रहा। लेकिन एक ज़माने में यह अलभ्य स्वप्न की तरह प्रतीत होता था। इसलिए थिएटर को मैंने एक यथार्थपरक विकल्प मानते हुए एन.एस.डी. में दाखिला ले लिया।

सत्यदेव दुबे की मैं काफी इज्जत करता हूँ। जिस तरह ३०-३५ सालों तक तमाम परेशानियों के बावजूद रंगकर्म से उन्होंने नाता जोड़े रखा, वह उनकी दृढ़ प्रतिबद्धता का परिचायक है। परंपरागत मान्यताओं से लड़ने की उनमें गजब की हिम्मत थी। वे पहले रंगकर्मी थे, जिन्होंने

'आधे-अधूरे', 'ह्यवदन', 'इसप गॉगल्स' जैसे अपेक्षाकृत उपेक्षित नाटकों का मंचन किया। उनके काम में समझौतावादी रवैये की ज़रा भी झलक नहीं मिलती। सत्यदेव जी के संघर्षमय जीवन से मैं हमेशा प्रेरणा पाता रहा हूँ।

फिल्मों में कामयाबी मिलने के बाद भी आप थिएटर से क्यों जुड़े हुए हैं?

क्योंकि इसमें मुझे खुशी मिलती है। इस बहाने वक्त का सार्थक उपयोग हो जाता है। नाटकों के लिए फिल्मों की अपेक्षा अधिक धैर्य और समय की ज़रूरत पड़ती है। नाटकों का मंचन आसान काम नहीं। 'वेटिंग फॉर गोदो' के मंचन की तैयारी में हमें पूरा एक वर्ष लगा।

बतौर कलाकार आपने अनेक पुरस्कार जीते। इतनी तारीफ पाकर कैसा लगता है?

अवार्ड मुझे रोमांचित नहीं करते। उन्हें अक्सर जोड़-तोड़ के जरिए हासिल किया जाता है। आश्चर्य नहीं अगर 'पार' जैसी फिल्म के लिए मुझे मिला अवार्ड भी किसी के प्रयासों का नतीजा हो। एक्टिंग के लिए दिए जाने वाले पुरस्कारों का कोई निर्धारित मापदंड नहीं होता। आमतौर पर ये कलाकार के प्रदर्शन की बजाय उसकी प्रतिष्ठा से प्रभावित होकर दिए जाते हैं, लिहाज़ा उनका खास महत्व नहीं बचा रहता।

जो बात मुझे सर्वाधिक खलती है, वह यह कि इन पुरस्कारों का निर्धारण करने वाले कला समीक्षक खुद को भगवान से कम नहीं समझते। तिस पर इन्होंने कला के शास्त्रीय समालोचन का एकमेव अधिकार हासिल कर रखा है। अगर वास्तव में इनके पास कला-समीक्षा का कोई शस्त्र सम्मत तरीका होता, तो दुनिया के अनेक महान कलाकारों के बारे में हमें इतनी भिन्न अस्पष्ट राय सुनने को नहीं मिलती।

वस्तुतः अभिनय या तो सर्वथा प्रशंसनीय होता है, या फिर नितांत अर्थहीन। इसकी गुणवत्ता के निर्धारण का यही एकमात्र पैमाना होना चाहिए। दुर्भाग्यवश कलाकारों को अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए उन समीक्षकों का मुँह ताकना पड़ता है, जिनकी कला संबंधी अवधारणाएँ स्वयं बहुत स्पष्ट नहीं है इसलिए उनके मूल्यांकन को सर्वोपरि मान लेना अनुचित होगा।

देखा जाए तो रंगमंच पर नाटक की समाप्ति के बाद हॉल में गूँजने वाली तालियों की गड़गड़ाहट से बढ़कर किसी कलाकार के लिए बड़ा सम्मान हो ही नहीं सकता। क्योंकि इसके साथ सैकड़ों दर्शकों की आत्मीय भावनाएँ जुड़ी होती हैं। **(फ्रंटलाइन में प्रकाशित गौरी रामनारायण के साक्षात्कार के प्रमुख अंश/साभार)** ●

अभिनय का व्याकरण शास्त्र और नसीर

● **श्रीधर राघवन**

मंथन का तेज़मिजाज ग्रामीण भोला, **'स्पर्श'** का नेत्रहीन प्राध्यापक, **'चक्र'** का आवारा नौजवान लुक्का, **'पार'** का दलित-शोषित हरिजन, **'मासूम'** का अंतर्द्वन्द्व से ग्रस्त पिता- इन तमाम पात्रों में आपको कौन-सी विशेषता नज़र आती है? अगर आप परदे पर इन चरित्रों की गंभीर पड़ताल करें, तो महसूस होगा कि इन्हें निभाने वाले कलाकार नसीरुद्दीन शाह का अभिनय एक खास शास्त्रीय शैली में ढाला है। साफ-शफाक और एकदम संतुलित। कला-जगत में इसे मैथड-एक्टिंग या प्रक्रियाबद्ध अभिनय कहते हैं। अर्थात ऐसा अभिनय जो एक्टिंग के व्याकरण-शास्त्र द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुरूप हो। संवाद अदायगी, हाव-भाव, पर संचालन, मुख-मुद्रा, श्वास-प्रच्छवास; सभी कुछ किताबी पढ़तियों पर आधारित। आम तौर पर फिल्म-कलाकार इसकी बजाए तात्कालिक अभिनय को पसंद करते हैं, जिसमें इस तरह की सख्त पाबंदियाँ नहीं होती। जबकि मैथड-एक्टिंग के लिए हर छोटी से छोटी चीज़ का निर्धारित मानकों के अनुसार जबरदस्त पूर्वाभ्यास किया जाना जरूरी है। पश्चिम में **डस्टिन हाफमैन** और **राबर्ट डी नीरो** जैसे अभिनेता इस श्रम-साध्य अभिनय शैली के विशेषज्ञ माने जाते हैं। नसीर को इनका भारतीय प्रतिरूप कहा जा सकता है। उनके अलावा भारत में सिर्फ ओम पुरी गंभीरतापूर्वक 'मैथड एक्टिंग' का अनुसरण करने वाले प्रमुख अभिनेता हैं।

मैथड-एक्टिंग आखिर किन अर्थों में एक कलाकार को श्रेष्ठ बनाती है? क्या किताबी अभिनय जीवन के असमतल धरातल पर खरा उतर सकता है? अथवा रीतिबद्ध नियमों के परिपालन में क्या कलाकार की सहजता बची रह पाती है? इस संदर्भ में एक उदाहरण लारेंस ओलिवर का दिया जा सकता है, जिन्होंने मैथड-एक्टिंग के चक्कर में कमर तोड़ते एक नए अभिनेता पर कटाक्ष किया था कि 'साहबजादे - आप सिर्फ अभिनय की ज़हमत क्यों नहीं उठाते'। बहरहाल नसीर पर यह बात लागू नहीं होती। उन्होंने अपनी काबिलियत हर तरह से प्रमाणित की है। मैथड-एक्टिंग की खूबियों और सीमाओं से वह भली-भाँति वाकिफ है। उनके अनुसार एक कलाकार की बुनियाद मज़बूत करने के लिए मैथड-एक्टिंग महज़ जरिया हो सकता है। ठीक इसी तरह जैसे कोई वैज्ञानिक भौतिक शास्त्र या रसायन शास्त्र के मूलभूत सिद्धांतों का अपने प्रयोगों में सहारा लेता है। सैद्धांतिक धरातल पर मज़बूत होने के कारण मैथड-एक्टिंग में आत्म-विश्वास की कमी नहीं रहती। मगर इसके अलावा कलाकार व्यक्तिगत संभावनाओं से परिपूर्ण भी होना चाहिए। वरना वह हर बात के लिए किताब में झाँकेगा। और फिर उसकी अवस्था हास्यास्पद हो जाएगी। वैसे भी प्रत्येक भूमिका शास्त्रीय अभिनय की माँग नहीं करती। उदाहरण के लिए अगर आपको सिर्फ कार चलाना है, तो सिवाय स्टीयरिंग संभालने के आप और क्या कर सकते हैं?

नसीर का मानना है कि हमारे यहाँ मैथड की गलत व्याख्या के चलते इसे एक मज़ाक बना दिया गया है। किसी भूमिका को अदा करने से पूर्व उसका शास्त्रीय विवेचन कलाकार के लिए बेहतर प्रदर्शन में मददगार सिद्ध हो सकता हैं, किंतु बगैर स्वतःस्फूर्त संवेगों (स्पॉन्टेनियस रिएक्शन) के मैथड-एक्टिंग कारगर सिद्ध नहीं हो सकती। दिक्कत यह है कि हिन्दी फिल्मों और खासतौर पर व्यावसायिक सिनेमा में इसकी उपादेयता अधिक नहीं रह पाती। एक कलाकार को बमुश्किल 'त्रि-आयामी भूमिका' निभाने का अवसर मिलता है। अर्थात एक ऐसी भूमिका जो चरित्र के अंतर्भूत तत्व को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करती हो। मगर यहाँ होता यह है कि कलाकार के साथ तमाम गैरज़रूरी चीजो मसलन नाच-गाना, मारधाड़, इश्क-मोहब्बत, मेलोड्रामा आदि को भी जोड़ दिया जाता है। उससे अपेक्षा की जाती है कि वह दर्शक को गुदगुदाने के लिए हर संभव उपाय का सहारा ले। यही वजह है, कि परदे पर चित्रित चरित्र अक्सर आम ज़िंदगी से बहुत दूर होते हैं, और उन पर नाटकीयता हावी नज़र आती है।

क्या नसीर द्वारा अभिनीत कुछ ताज़ा फिल्में स्वयं इस बात की पुष्टि नहीं करती? आखिर तहलका/, त्रिदेव/, लक्ष्मणरेखा/, विश्वात्मा

जैसी फिल्मों में मैथड-एक्टिंग की गुंजाइश कहाँ है? क्या इन भूमिकाओं में सचमुच कोई ऐसी बात थी, जिसे नसीर के अलावा अन्य अभिनेता नहीं निभा पाता? मगर नसीर की सार्थक भूमिकाओं पर नज़र डालें, तो यकीन हो जाएगा कि वे वाकई एक अनूठे अभिनेता हैं। उनका आरंभिक कैरियर आदर्श अभिनय की तमाम परिभाषाओं पर खरा उतरता है। स्पर्श/, मिर्च-मसाला/, भवनी भवाई/, चक्र/, मंडी/, जाने भी दो यारों आदि फिल्मों में उनकी विलक्षण अभिनय क्षमता पूरी तरह साबित हुई है। अगर एक मैथड-एक्टर के रूप में हमें उनका आकलन करना है, तो ऐसी ही फिल्मों को बतौर उदाहरण लेना होगा। प्रत्येक भूमिका के लिए नसीर खुद को आवश्यकतानुरूप तैयार करते हैं। 'जलावा' और 'पार' में अपना शरीर सौष्ठव उन्होंने विख्यात पश्चिमी अभिनेता अर्नाल्ड श्वार्जेनेगर की तरह कड़े परिश्रम द्वारा विकसित किया था। हाल ही में जब एक फिल्म के लिए उन्हें संवादों का पूर्वाभ्यास करना था, तो वे इस कदर जुटे कि उन्हें चिकित्सक की मदद लेनी पड़ी। उनका गला खराब हो गया था। वाक विशेषज्ञ से सलाह लेने पर पता चला कि वह बोल ज्यादा रहे थे, और साँस कम ले रहे थे।

इतना समर्पित कलाकार अपनी तमाम प्रतिबद्धताओं को एक झटके में त्याग कर 'तहलका' जैसी फिल्मों में नितांत फूहड़पन तक कैसे पहुँच गया ? श्याम बेनेगल और गोविंद निहलानी जैसे फिल्मकारों को छोड़ अनिल शर्मा और राजीव राय उन्हें प्रिय क्यों लगने लगे ? बंबइया फिल्मों में उनका मन इस तरह रमा कि सार्थक सिनेमा की सार्थकता पर ही उन्होंने प्रश्नचिह्न खड़े कर दिए। कथा फिल्मों के प्रति नसीर की अचानक उदासीनता और व्यावयासिक सिनेमा को लेकर उनका अतिरिक्त उत्साह खासे विवाद का विषय रहा है। इस अनपेक्षित रुख परिवर्तन से सभी आश्चर्यचकित हैं। हाल ही में एक वीडियो पत्रिका को दिए गए साक्षात्कार में विनोद चोपड़ा ने नसीर के बारे में तीखी टिप्पणी करते हुए कहा कि अगर उन्हें पैसा मिले तो शायद वे किसी जर्दे के विज्ञापन के लिए भी बिकनी पहनने को तैयार हो जाएँगे।

नसीर इस कटाक्ष का बुरा नहीं मानते। उनका कहना है - 'अपने मत को लेकर मैं स्वयं काफी मुखर रहा हूँ, लिहाज़ा किसी की व्यक्तिगत राय पर मुझे आपत्ति नहीं होनी चाहिए।'

एक ज़माने में नसीरुद्दीन शाह को समानांतर सिने-आंदोलन की पहचान माना जाता था। अपनी पूरी निष्ठा के साथ उन्होंने इसके उत्थान के लिए काम किया। लिहाज़ा उनके अचानक बदलाव को लेकर खलबली मचना स्वाभाविक थी। संयोगवश उनके अलग होते ही समानांतर सिनेमा भी कमज़ोर पड़ने लगा। क्या उन जैसे समर्थ कलाकारों की उदासीनता को इसके लिए ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जाना चाहिए? शाह के अनुसार कोई भी आंदोलन अपनी ज़ड़ता के कारण खत्म होता है। वरना किसी में इतना सामर्थ्य नहीं, कि उसे कमज़ोर कर सके। दरअसल कुछ लोग चाहते थे कि मैं कला फिल्मों में ही घिसटता रहूँ। व्यावसायिक सिनेमा में मेरा शारीरिक और आर्थिक सौष्ठव उन्हें अच्छा नहीं लगा। एक कुपोषण का मारा दीन-हीन आदमी कला फिल्मों के लिए उपयुक्त हो सकता है, लेकिन निजी ज़िंदगी में नहीं। खुद को समृद्धशाली बनाने में आखिर क्या बुराई है? बेशक लोग कह सकते हैं कि मैं कलाकार कहलाने का हक खो चुका हूँ, क्योंकि मैंने अपनी आत्मा बेच दी है। मगर मैं फिर यही कहूँगा कि ये उनका नज़रिया है। 'यह मान्यता बिल्कुल गलत है कि एक कलाकार लोकप्रिय सितारा बनते ही कला के प्रति अपना दायित्व खो देता है। मैं इस धारणा को मिटाना चाहता हूँ।'

नसीर को चाहे आज कला सिनेमा का द्रोही करार दिया जाए, लेकिन वे अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरी तरह भूल गए हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता। गंभीर रंगकर्म से उनका नाता बदस्तूर जुड़ा हुआ है। अपनी तमाम व्यस्तताओं के बीच थिएटर के लिए वह समय निकाल ही लेते हैं। कई बार तो उन्हें फिल्म की शूटिंग के दौरान नाटकों की तैयारी करना पड़ती है। हाल ही में उन्होंने एक फिल्म के निर्देशन का भी बीड़ा उठाया है। उनके अनुसार कला और व्यावसायिक सिनेमा के छदम् विभेद से यह फिल्म परे होगी। बंबइया फिल्मों की औसत भूमिकाओं के बीच नसीर ने पिछले दिनों अमेरिकी निर्माता 'टेरेंस ग्रेस' की फिल्म 'मि. अहमद' में एक बार फिर अपनी प्रभावशाली मैथड-एक्टिंग का परिचय दिया है। कई आकर्षक प्रस्तारों के बावजूद नसीर आमतौर से हॉलीवुड की किश्ती पर सवार होने को कभी उत्सुक नहीं रहे। उनका कहना है- 'पश्चिमी फिल्मों में भारत की ज़हालत का परिचायक बनना मुझे पसंद नहीं। यूरोपीय कभी हमें मुख्य भूमिका में देखना गवारा नहीं करेंगे, वे सदा हम पर दरिद्रता की छाप निहारना चाहते हैं।' हालाँकि ओम पुरी द्वारा 'सिटी ऑफ जॉय' में किए गए काम को नसीर ने तहेदिल से सराहा। उनके मत में ओम को इस फिल्म के लिए ऑस्कर पुरस्कार मिलना चाहिए था। लेकिन दुर्भाग्यवश फिल्म व्यावसायिक दृष्टि से अधिक सफल नहीं हो सकी।

व्यावसायिक सिनेमा के महिमामंडन और कला फिल्मकारों की आलोचना में नसीर भले ही काफी उत्साहित नज़र आ रहे हों, लेकिन उनका मोहभंग अवश्यंभावी है। उन जैसा गंभीर कलाकार ग्लैमर के तिलिस्म में हमेशा के लिए खोकर नहीं रह सकता। उनकी रचनात्मकता उन्हें इस तरह विलीन नहीं होने देगी। उम्मीद की जानी चाहिए ति क्षणिक तफरीह के बाद नसीर अपनी जड़ों तक वापस लौटेंगे, जहाँ कई संभावनाएँ उनके पारस स्पर्श का इंतज़ार कर रही हैं।

● **हिन्दी प्रस्तुति : राहुल शर्मा**

भरी दोपहर में सूर्यास्त : स्मिता पाटिल

● जीतेन्द्र मुछाल

बंबई का विख्यात ब्रेवोर्न स्टेडियम खचाखच भरा था। फिल्म उद्योग की प्रतिष्ठित हस्तियों ने 'होप ८६' नामक समारोह का आयोजन किया था तथा सभी सितारे और सुपर सितारे उसके आयोजन से जुड़े थे। चहल-पहल के बीच राजेश खन्ना ने मंच पर राजबब्बर को आमंत्रित किया। काफी बार घोषणा दोहराई गई मगर राजबब्बर का पता नहीं चला। सभी विस्मित थे। उनके मौजूद न होने पर क्योंकि इस समारोह के आयोजन में बब्बर ने जी जान से मेहनत की।

राजबब्बर इन क्षणों में अपनी पत्नी तथा विख्यात सिने-तारिका स्मिता पाटिल के पास मौजूद थे, जो जिन्दगी तथा मौत के बीच एक हारी हुई लड़ाई लड़ रही थी। प्रसव के पश्चात २७ नवम्बर ८६ से उसे तेज बुखार ने जकड़ रखा था। हालत लगातार बिगड़ रही थी। १२ दिसम्बर को अन्दरूनी हेमरेज के कारण नाम तथा मुँह से खून तेजी से निकलने लगा था। जसलोक अस्पताल की गहन चिकित्सा इकाई में डॉक्टरों का दल इलाज में व्यस्त था। दरअसल डॉक्टरों ने जिसे पहले प्रसव पश्चात की आम शिकायत तथा बुखार समझा था वह घातक निकला। 'ओ पाजिटिव' ग्रुप का रक्त लगातार शरीर में डाला जा रहा था ताकि नाक एवं मुँह से निकलने वाले खून की पूर्ति हो सके। यह सब कार्यवाईयाँ चल रही थी कि तारीख बदलकर १३ से १४ दिसम्बर ८६ हो गई और रात १२.४० पर स्मिता पाटिल ने आखिरी साँस ली।

भरी जवानी याने सिर्फ ३१ साल की उम्र में दुनिया छोड़ कर जाने वाली इस महान अभिनेत्री ने सिर्फ उम्र ही कम पाई थी वरना उपलब्धियों के मामले में वह इतना कुछ अर्जित कर चुकी थी जो आम लोग सौ साल जीकर भी पाने को तरसते हैं। अभिनेत्री के रूप में उसकी छवि कालजयी की श्रेणी में आ चुकी थी। महान मगर कम उम्र की यह नायिका महाराष्ट्र के सम्पन्न परिवार से जुड़ी थी। महाराष्ट्र राज्य के पूर्व मंत्री शिवाजी राव पाटिल की तीन बेटियों में से यह दूसरी बेटी १७ अक्टूबर १९५५ को पूना में जन्मी थी। स्मिता की माताजी श्रीमती विद्या पाटिल ने उन दिनों का जिक्र करते हुए कहा था - 'उसे बचपन से ही मन की बात कहने की आदत थी। यदि उसके साथ या उसके सामने किसी अन्य के साथ अन्याय होता था तब वह फौरन प्रतिकार करती थी।' अन्याय के विरुद्ध प्रतिकार की यह भावना स्मिता के व्यक्तित्व का अंग बन गई, जब फिल्मकारों ने सरकारी नीतियों के विरुद्ध एकजुट होकर प्रदर्शन किया तब प्रसवकाल के आखिरी दिनों में होने के बावजूद स्मिता ने काली सलवार कमीज पहन कर 'प्रोटेस्ट मार्च' में भाग लिया। स्मिता की जिन्दगी में साहस, संघर्ष तथा न्याय की रक्षा के लिए सर्वस्व दाँव पर लगाने की क्षमता ही खास विशिष्टता थी।
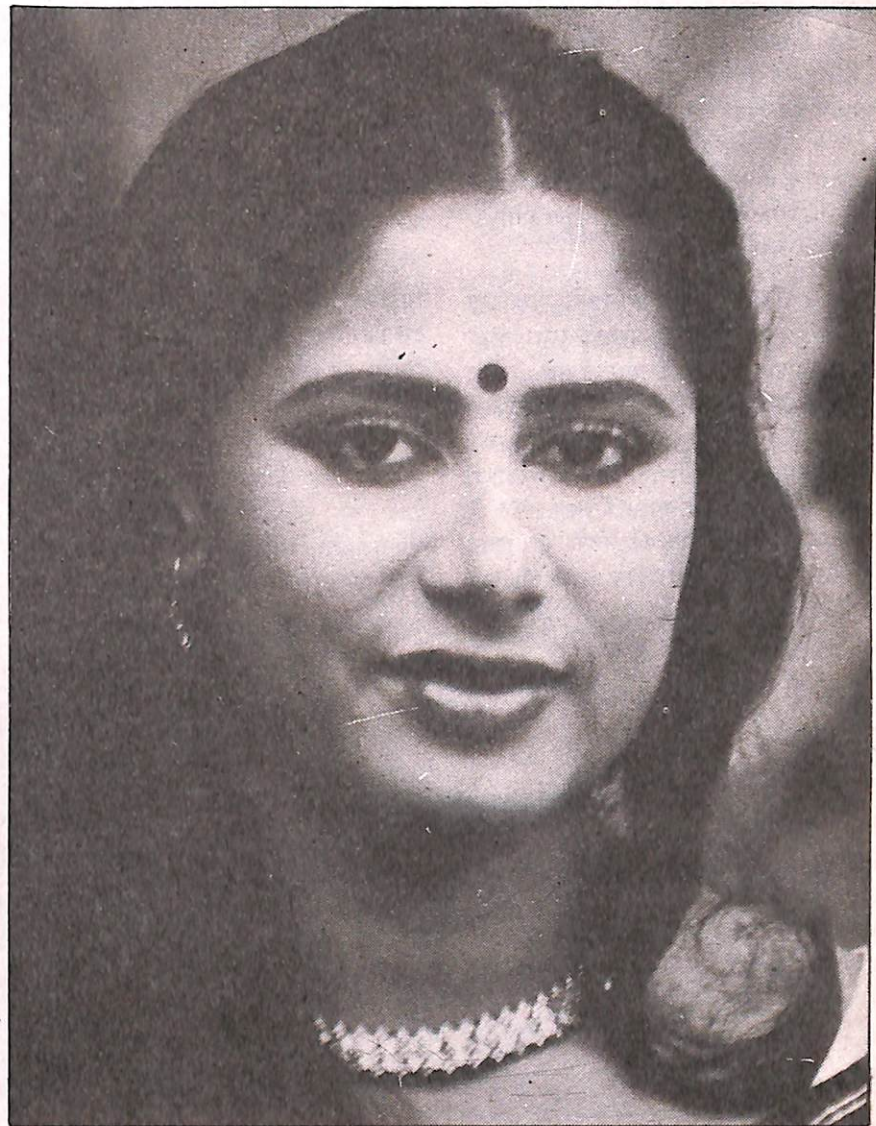
स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद उसने पूना के फर्ग्यूसन कॉलेज में प्रवेश लिया तथा इसी दौरान शुरू हुआ फिल्मी जीवन का पहला अध्याय। अपने मित्र अरुण - की फिल्म 'तीसरा माध्यम' में उसने अभिनय किया। यह एक वृत्त चित्र था। जब परिवार बम्बई शिफ्ट हुआ तब स्मिता ने पहले एलफिंस्टन कॉलेज में प्रवेश लिया मगर बाद में उसने सेन्ट जेवियर कॉलेज में प्रवेश ले

लिया। अपने मित्र के बार-बार जोर देने पर उसने दूरदर्शन के लिए स्क्रीन टेस्ट दिया तथा पहले मराठी उद्घोषिका तथा बाद में समाचार वाचिका के रूप में कार्य करना शुरू किया। समाचार वाचिका के रूप में १९७४ में उसका चेहरा विख्यात फिल्मकार श्याम बेनेगल ने देखा। देखते ही उन पर जो प्रतिक्रिया हुई उसे उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया - 'परदे पर उसके चेहरे ने मुझे बेहद प्रभावित किया। उसमें आत्म विश्वास के साथ भाव प्रदर्शन की नैसर्गिक क्षमता थी। मुझे लगा कि इस लड़की में निपुण कलाकार बनने की अपार संभावनाएँ हैं।'

श्याम बेनेगल ने स्मिता के सामने 'चरणदास चोर' में काम करने का प्रस्ताव रखा। थोड़ी हिचकिचाहट के बाद स्मिता ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया। श्याम बेनेगल की अगली फिल्म 'निशान्त' ने स्मिता के कैरियर को नया मोड़ दिया। इस फिल्म में स्मिता के काम की शैली का उल्लेख करते हुए श्याम बेनेगल कहते हैं, 'तब स्मिता कैशोर्य वय की लड़की थी। उसने अभिनय की कोई औपचारिक शिक्षा भी नहीं पाई थी। इसके बावजूद अपनी नैसर्गिक अभिनय क्षमता एवं पात्र में स्वयं के व्यक्तित्व को डुबो देने की योग्यता से लगता ही नहीं था कि वह अभिनय कर रही है। लगता था कि पात्र ही जीवन्त हो उठा हो।'

स्मिता की उसी विशिष्टता ने उसे नसीरुद्दीन, शबाना आज़मी तथा ओमपुरी से अलग ऊँचाई दी। वैसे इन चारों ने ही अभिनय को नए अर्थ तथा आयाम दिए मगर स्मिता की विशिष्टता यही थी कि वह अभिनय नहीं करती थी पात्र को जीवन्त कर देती थी।

'निशान्त' के बाद 'भूमिका' में स्मिता ने निहायत उलझे चरित्र को परदे पर साकार किया। इस फिल्म में उसे अभिनय का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। इस तरह सिर्फ दूसरी फिल्म में ही वह राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित हो गई।

इसके बाद स्मिता के लिए पीछे मुड़कर देखने का कोई मौका ही नहीं था। 'अर्थ' का मनोरोगी पात्र, 'चक्र' की झोपड़पट्टी वाली महिला तथा अपनी पहचान खोजती 'सुबह' की नायिका और 'मिर्च मसाला' की शोले जैसी ग्रामीण महिला के रूप में स्मिता जितनी सशक्त रही वैसी ही नैसर्गिक रही 'बाजार' और 'मण्डी' की देह बेचने वाली नारी के रूप में। दरअसल स्मिता के कैरियर ग्राफ में आने वाले उतार-चढ़ाव तथाकथित सार्थक/कला/गैर व्यावसायिक सिनेमा से गहरा रिश्ता है। यह कहना मुश्किल है कि स्मिता का असर इस सिनेमा पर पड़ा या इस सिनेमा ने स्मिता के कैरियर को प्रभावित किया। यह बेशक कहा जा सकता है कि दोनों के मिलन ने दर्शकों को बेहद प्रभावित एवं आनन्दित किया। स्मिता का कैरियर सिर्फ बारह साल के विस्तार में फैला है। आकार में छोटा यह कैरियर गुणवत्ता की दृष्टि से ऐतिहासिक रहा है। लगभग आधा दर्जन भारतीय भाषाओं में उसकी ६० फिल्में बनीं तथा अपने समय के सभी प्रतिष्ठित निर्देशकों के साथ उसने काम किया। बेनेगल/गोविन्द निहलानी/जब्बार पटेल/कितन मेहता/जी. अरविंदन आदि बीसियों नाम गिनाए जा सकते हैं। इन सभी निर्देशकों ने स्मिता की प्रतिमा को मुक्त कंठ से सराहा। 'मिर्च मसाला' एवं 'भवनी भवाई' के निर्देशक

मिर्च मसाला : स्मिता पाटिल

केतन मेहता कहते हैं, उसका व्यक्तित्व उस तार की तरह है जिसमें अभिनय विद्युत की भाँति प्रवाहित रहता है, जो अनुभव करने का अवसर पाता है। वह अभिनय की गहराई से अभिभूत हो जाता है। 'आक्रोश' तथा 'अर्द्धसत्य' के निर्देशक गोविन्द निहलानी के अनुसार- 'वह जन्मजात अभिनेत्री थी। खुशदिल लड़की थी और नेक इंसान थी।' सच तो यह है कि स्मिता पाटिल की उपलब्धियों का विवरण ही भारतीय समानान्तर सिनेमा का इतिहास है। भारतीय नारी की छवि को नया अन्दाज देने वालों में स्मिता तथा शबाना का नाम प्रमुख है। इन दोनों ने ही फिल्मों में भारतीय नारी की छवि को नया रूप दिया है। यदि कल्पना करें कि श्याम बेनेगल नहीं बल्कि मनमोहन देसाई या प्रकाश मेहरा स्मिता को फिल्मों में पहला अवसर देते तब क्या होता। यदि ऐसा होता तब शायद स्मिता उनकी कसौटी पर खरी नहीं उतरती क्योंकि वे कमसिन, खूबसूरत, गदराए बदन वाली नायिकाओं को ही चाहते ताकि सिनेमा हॉल में दर्शक गुदगुदी महसूस करते रहे। स्मिता पारम्परिक कसौटी पर कभी सुन्दर नहीं रही। यह कमी उनके लिए वरदान बन गई। उसे अपनी आंतरिक प्रतिमा दिखाने का मौका मिला, जो तन के आकर्षण से कहीं ज्यादा खूबसूरत थी। स्मिता की आँखों की भाषा, भावनाओं को हावभाव से प्रदर्शित कर सकने की क्षमता अद्वितीय थी। सच तो यह है कि नायिकाएँ आती-जाती रहेंगी मगर स्मिता का प्रभाव अमर रहेगा।

स्मिता पाटिल कला फिल्मों में ही सफल रही हो ऐसा नहीं है, अपने कैरियर के उतरार्द्ध में उसने व्यावसायिक फिल्मों में काफी काम किया और लोकप्रियता पाई। 'शक्ति',/'वारिस'/, 'अमृत'/ आदि फिल्मों के माध्यम से वह व्यावसायिक सिनेमा में स्थापित हो गई। यहाँ भी उसे श्रेष्ठ अभिनेत्री के रूप में स्वीकारा एवं सराहा गया। मेरी दृष्टि में स्मिता उन सम्मानों तथा पुरस्कारों से ऊँची थी जो उसे मिले। उसने तो लोगों के हृदय को आन्दोलित कर पाने का सामर्थ्य पाया था। उसे तीन बार में राष्ट्रीय अवार्ड से सम्मानित किया गया तथा पद्मश्री की उपाधि दी गई। राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अन्तरराष्ट्रीय फिल्म दर्शकों एवं समीक्षकों ने भी इसकी प्रतिभा को मुक्त कंठ से स्वीकारा। जब उसकी चुनिन्दा फिल्में फ्रांस में दिखाई गईं तब हॉल खचाखच भरे रहते थे। अपनी प्रशंसा से अभिभूत होकर - स्मिता ने वहाँ कहा था - 'मैं यह सम्मान पाकर गौरवान्वित महसूस कर रही हूँ। यह मेरी निजी उपलब्धि का सम्मान नहीं है बल्कि उन भारतीय परम्पराओं तथा विशिष्टताओं का सम्मान है जिनकी रचना भारत में हुई।' राजबब्बर तथा स्मिता दाम्पत्य सूत्र में बंधे। यह जोड़ी 'जवाब', 'अवाम', 'आज की आवाज' तथा 'दहलीज' में परदे पर आई। स्मिता ने पहले से ही विवाहित राजबब्बर से ब्याह क्यों रचाया। मई ८५ में सम्पन्न हुए इस बहुचर्चित विवाह के बारे में स्मिता ने कहा था "दुनिया में ऐसी बहुत सी चीज़ें होती हैं, जिन्हें समझना कठिन होता है। जिनकी व्याख्या नहीं की जा सकती। वे घटनाएँ तो बस अनायास घट जाती हैं। वैसे मुझे परवाह नहीं है कि लोग मेरे बारे में क्या कहते हैं।"

स्मिता ने दुनिया की परवाह नहीं की मगर किस्मत के सामने वह विवश थी। यह एक विचित्र संयोग ही कहा जाएगा कि स्मिता के जीवन में हूबहू वही घटा जो - उसकी एक फिल्म का घटनाक्रम था। 'पेट प्यार और पाप' नामक फिल्म में उसने एक झोपड़पट्टी में रहने वाली ऐसी युवती की भूमिका की थी जो एक ड्राइवर (राजबब्बर) की दूसरी पत्नी बन जाती है। फिल्म के अंत में वह एक नवजात शिशु को छोड़कर मर जाती है। लगभग ऐसा ही स्मिता के असली जीवन में घटा।

गिरीश कसरावल्ली :

अन्वेषण और अनुबोध का सार्थक स्पर्श

'तबरन कथे' और 'मने' यह दो फ़िल्में विश्व सिनेमा में भारत की प्रतिनिधि फ़िल्म-कृतियों के बतौर प्रतिष्ठित हो चुकी हैं। इनके निर्देशक **गिरीश कसरावल्ली** उन फ़िल्मकारों में है, जिन्होंने सिनेमा को नई व्याख्याओं से समृद्ध करने का काम किया है। अपने डेढ़ दशकीय फ़िल्म जीवन में गिरीश ने हालाँकि अधिक फिल्में नहीं बनाईं,, किंतु उनका सार्थक रचनाकर्म उन्हें देश के अग्रणी निर्देशकों में खड़ा करता है। कर्नाटक के इस बहुचर्चित फ़िल्मकार ने कन्नड़ सिनेमा को न केवल राष्ट्रीय बल्कि अंतरराष्ट्रीय रंगमंच पर भी एक अलग पहचान दिलाई है। गिरीश अपनी फ़िल्मों में मानवीय संवेदना के उच्च प्रतिमानों और प्रतीकात्मक संदर्भों से संश्लिष्ट उनकी अर्थवत्ता के लिए जाने जाते हैं। उनकी फ़िल्मों का रचनाशिल्प एक ऐसे अद्भुत 'स्थिर आवेग' का अनुभव देता है, जिसमें रचनाकार की प्रतिबद्धता का धरातल अनुभूत सत्यों के प्रति आंदोलित तो होता है मगर मानव धर्म के अनुशीलन की व्यवहारगत सौम्यता उसे अराजक नहीं होने देती। इस लिहाज से गिरीश कसरावल्ली की फ़िल्में नैतिक और चारित्रिक दृष्टि से अत्यंत परिष्कृत चिंतन की परिचायक है।

उदाहरण के लिए उनकी पहली फ़िल्म कृति 'घटश्राद्ध' (१९७७) को लें। रूढ़िवादी समाज व्यवस्था की खोखली नैतिकताओं का कच्चा-चिट्ठा खोलने वाली इस फ़िल्म में एक युवा विधवा यमुनक्का पर ब्राह्मणों के अत्याचार का चित्रण है। कर्नाटक के ब्राह्मणों में किसी व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत करने के लिए उसका जीते जी श्राद्ध कर दिया जाता है। इस रस्म को 'घटश्राद्ध' कहते हैं। पति की मृत्यु के बाद 'यमुनक्का' को एक युवक से प्रेम संबंध रखने के लिए यह स्थिति झेलना पड़ती है। जबकि दूसरी ओर उसका पिता अपनी बेटी की आयु वाली लड़की से विवाह करता है। इस विडंबना को 'घटश्राद्ध' प्रश्नोन्मुख स्वरूप में दर्शाती है। लेकिन इस तरह की विषयवस्तु पर आधारित अन्य फ़िल्मों की तरह यह ब्राह्मणों पर आक्रमण की दृष्टि से सायास प्रस्तुत की गई नहीं लगती। कथानक के प्रति गिरीश का 'ट्रीटमेंट' एक सुधारक के विनम्र और सर्जक नज़रिए का आभास देता है न कि किसी मूर्तिभंजक की अद्विग्नता का। उनकी नज़र में 'यमुनक्का' पर ब्राह्मणों का अत्याचार निंदनीय तो है, किंतु वे उसे जातिगत आक्षेप का मुद्दा नहीं बनाना चाहते। फ़िल्म के अंत में 'यमुनक्का' द्वारा अपने उत्पीड़कों को माफ किया जाना वस्तुतः उसकी एक अत्यंत तीखी प्रतिक्रिया है, जो - महानता का दंभ भरने वाले ब्राह्मणों को परोक्ष रूप से बुरी तरह लज्जित कर देती है। अनंतमूर्ति की मूल कहानी में ऐसा नहीं होता। 'घटश्राद्ध' इस दृष्टि से एक अत्यंत प्रभावी फ़िल्म-कृति है।

स्वर्णकमल पुरस्कार से सम्मानित इस फ़िल्म पर कुछ आलोचक ब्राह्मणों के प्रति अतिरिक्त उदारवादी दृष्टिकोण का आरोप लगाते हैं, किंतु गंभीरता से देखा जाए को यह सच नहीं। गिरीश का प्रयास वास्तव में उस महान भारतीय अवधारणा को पुष्ट करने का है, जिसके तहत अंतःकरण की पवित्रता से द्वेष और मलिनता के भाव तिरोहित हो जाते हैं।

गिरीश की अगली फ़िल्में 'आक्रमण' (१९७९) और दारिगल 'मोरू' (१९८१) भी नारी उत्पीड़न पर केन्द्रित थीं। यद्यपि 'घटश्राद' की अपेक्षा इन्हें कम ख्याति मिली, किंतु विचारशील वर्ग को इन्होंने अपने विचारोत्तेजक सवालों से खासा प्रभावित किया। रचनात्मक गुरुत्व के लिहाज से 'तबरन कथे' (१९८७) कसरावल्ली की सर्वाधिक प्रभावी फ़िल्म समझी जाती है। इसे सर्वश्रेष्ठ फीचर फ़िल्म के बतौर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई अवार्ड मिले थे। निर्देशन के लिए स्वर्ण पदक के अलावा फ़िल्म के अभिनेता **चारू हसन** को सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार दिया गया था। समाज में नैतिक मूल्यों के ह्रास और नौकरशाह प्रशासन तंत्र की विद्रूपताओं पर 'तबरन कथे' एक अत्यंत सशक्त वक्तव्य है। फ़िल्म की कहानी एक साधारण सरकारी कर्मचारी 'तबरा' पर आधारित है। जिसे ईमानदारी और निष्ठापूर्वक काम करने के बावजूद प्रताड़ित होना पड़ता है। उसूलों के बदले मिली यंत्रणा उसे विक्षिप्त सा कर देती है। 'तबरन कथे' में जहाँ राजनीतिक स्वर मुखर है, वहीं कसरावल्ली की एक अन्य फ़िल्म 'बन्नड़ा वेश' धार्मिक प्रवंचनाओं की तहकीकात करती है।

'मने' (१९९०) का जिक्र किए बगैर गिरीश कसरावल्ली के रचनाकर्म की ऊँचाइयों का जायजा नहीं लिया जा सकता। यद्यपि भारत में इसे कमोबेश उपेक्षा का रवैया सहना बड़ा, किंतु देश के बाहर यह फ़िल्म बेहद सराही गई। लंदन फ़िल्मोत्सव में समीक्षकों ने इसे उत्कृष्टता और अभिनव फ़िल्मकृति निरूपित किया था। 'मने' (घर) आत्यंतिक बुनावट की दृष्टि से एक अत्यंत जटिल फ़िल्म है। हालाँकि इसका कथानक किसी 'क्लासिकी' चौखट में गढ़ा गया नहीं लगता, मगर सांकेतिक रूप से इसकी प्रस्तुति कई विलक्षण मानवीय संवेदनाओं का स्पर्श करती है। कहानी में एक नवविवाहित दंपत्ति राजन्ना (नसीर) और गीता (दीप्ति नवल) शहर के एक व्यस्त इलाके में मकान किराए पर लेते हैं। हर पति-पत्नी की तरह उनके भी सपने हैं, जो यथार्थ में खरे नहीं उतरते। पति काफी खुशमिजाज स्वभाव का है, और वह अपने नए घर को 'स्वर्ग का द्वार' कहता है। इसी तरह टूटी-फूटी चारपाई को उसने नाम दिया है 'दिव्य शय्या', जिस पर पति-पत्नी दुनिया-जहान के सपने देखना चाहते हैं।। लेकिन आस-पास का शोरगुल इस युगल की निकटता में खलल डालता है। उनके सपने शहरी जीवन की कड़वी वास्तविकताओं में बिखरने लगते हैं। पति-पत्नी के रिश्तों में दरार पड़ जाती है। अपनी पत्नी से बेहतर प्यार करने वाला राजन्ना परिस्थितियों के चलते उस पर चारित्रिक आक्षेप भी लगा डालता है। मनुष्य की नैतिक परिभाषाएँ किस कदर लिजलिजी हो सकती है, इसे रेखांकित करने के लिए फ़िल्म में यह संदर्भ जोड़ा गया है। मानव मन के अन्वेषण और अनुरोध का 'मने' काफी जीवंत स्पर्श करती है। प्रतीकात्मक रूप से इन दुर्बोध बिम्बों को दर्शाने के लिए 'गिरीश' ने रंगों का अद्‌भुत इस्तेमाल किया है। कहानी के अंत में 'गीता' द्वारा पति के अपमानजनक व्यवहार को भुला कर की गई नई शुरूआत को मानव गरिमा से संपृक्त उस आत्म-स्वीकृति के रूप में देखा जा सकता है, जिसे कसरावल्ली की हर फ़िल्म किसी न किसी तरह रेखांकित करती है।

दरअसल महान कलाकृति अपनी शुद्ध पवित्रता में ही सर्वाधिक तीक्ष्ण या प्रभावोत्पादक हो सकती है।

●

अदूर गोपालकृष्णन

ध्वनि फिल्म की आत्मा है

● **शशि शर्मा**

केरल के अदूर गोपालकृष्णन, सत्यजीत राय के बाद दूसरे ऐसे भारतीय फ़िल्मकार हैं, जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय सिने परिदृश्य पर एक प्रमुख शख्सियत के रूप में जाना जाता है। विश्व कला संस्थानों द्वारा उन्हें कई प्रतिष्ठित पुरस्कार मिल चुके हैं। इनमें खासतौर पर ब्रिटिश फ़िल्म संस्थान द्वारा प्रदत्त 'सदरलैंड' ट्राफी उल्लेखनीय है, क्योंकि इसे पाने का गौरव अदूर के अलावा भारत से सिर्फ सत्यजीत राय को ही मिला था।

१९७२ में मलयाली फ़िल्म **'स्वयंवरम'** से निर्देशकीय जीवन की शुरूआत करने वाले अदूर ने अपने बीस साला फ़िल्मी कैरियर में बहुत कम फ़िल्में बनाई हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वह अपने रचनाकर्म में मौलिकता और दक्षता को कितना महत्व देते हैं। उनकी सभी फ़िल्में स्वयंवरम् / कोडियत्तम/ इलिपथ्थयम/मुखामुखम/ अनंतरम और मथिलुगल विश्व सिनेमा में प्रमुख स्थान रखती है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से इनका कोई जवाब नहीं।

कलाप्रिय के साथ अदूर ने अपने रचनाकर्म के विषय में बातचीत की। मुख्य अंशः-

आपको मूलतः कला फ़िल्मकार माना जाता है, क्या इस तरह के वर्गीकरण से आप संतुष्ट हैं?

मैं दर्शकों को सड़कछाप या अभिजात्य वर्ग के दायरे में रखकर फ़िल्म नहीं बनाता। मेरी फ़िल्में प्रत्येक दर्शक के लिए हैं। एक प्रतिबद्ध फ़िल्मकार को चाहिए कि वह दर्शक की अभिरुचि को परिष्कृत करने का प्रयास करे। मैं चाहता हूँ कि मेरी फ़िल्में ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचे, ताकि कला का यथासंभव विस्तृत प्रसार हो।

क्या इसी वजह से आप अपनी फ़िल्मों में व्यावसायिक सिनेमा के लोकप्रिय सितारों को मुख्य भूमिका में लेते हैं?

व्यावसायिक सिनेमा से भी कई अच्छे कलाकार जुड़े हैं। उनकी प्रतिभा में किसी को संदेह नहीं होना चाहिए। फ़िर उनके नाम से ज्यादातर दर्शक आकृष्ट होते हैं। देश के कई प्रमुख कलाकारों ने मेरे साथ काम करने की इच्छा प्रकट की है। जरूरत के मुताबिक मैं उन्हें मौका भी देता हूँ। लोकप्रिय सिनेमा के मुकाबले काफी कम पारिश्रमिक मिलने के बावजूद वे मेरी फ़िल्मों में काम करने हेतु इसलिए उत्सुक रहते हैं, क्योंकि उन्हें इसमें आत्मसंतोष मिलता है।

क्या सार्थक सिनेमा के प्रति दर्शकों की बेरुखी चिंताजनक नहीं हैं?

राष्ट्रीय स्तर पर स्थिति सचमुच दुर्भाग्यपूर्ण है,

लेकिन कम से कम केरल में हमें इस दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ता, क्योंकि यहाँ दर्शक सिनेमा के प्रति काफ़ी जागरूक हैं, और सुरूचिपूर्ण फ़िल्मों को उनकी उपेक्षा नहीं सहनी पड़ती। केरल की तरह बंगाल के दर्शकों से भी कलात्मक सिनेमा को प्रोत्साहन मिला है, लेकिन कुल मिलाकर आम भारतीय दर्शक कलाबोध के लिहाज से पर्याप्त विचारशील नहीं है।

आप अंग्रेजी में फ़िल्में क्यों नहीं बनाते, इससे आपको अंतर्राष्ट्रीय फ़िल्मकारों के साथ प्रतिस्पर्धा में सहायता मिलेगी?

मैं नहीं मानता कि महज भाषा की वजह से किसी फ़िल्म का महत्व कम हो जाता है। भाषा के साथ संस्कृति का अटूट संबंध है, और उसमें रद्दोबदल करके मैं फ़िल्म की विश्वसनीयता पर आँच नहीं आने देना चाहता। फ़िर अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शन के वक्त हर फ़िल्म के साथ उपकथन (सब टाईटल) तो होते ही हैं। इसलिए दर्शकों को भाषावरोध की समस्या नहीं होनी चाहिए। भाषा से अनभिज्ञ होने के बावजूद भी वे इस तरह फ़िल्म का रसास्वादन ले सकते है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आप भारतीय सिनेमा की स्थिति को किस रूप में आँकते हैं?

बेहद खराब! गुणवत्ता के लिहाज से हमें काफी मेहनत करनी होगी। दरअसल हम लोग जीवन के हर क्षेत्र में चलताऊ काम करने के आदी हैं। फ़िल्म व्यवसाय भी इसका अपवाद नहीं। हमारे ज्यादातर फ़िल्मकार उत्कृष्टता को महत्व नहीं देते। उनकी यह दलील उचित नहीं कि तकनीकी कारणों की वजह से हम विदेशी फ़िल्म निर्माताओं से पीछे हैं, क्योंकि अगर काम के प्रति समर्पण का भाव हो, तो बगैर समुचित साधनों के भी उम्दा फ़िल्म का निर्माण किया जा सकता है और फ़िर अविकसित राष्ट्रों के फ़िल्मकार भी तो अच्छी फ़िल्में बना ही रहे हैं। हमारी हालत क्या उनसे भी गई बीती है? दरअसल मुझे भारत में सिनेमा के प्रति खतरनाक उदासीनता का माहौल नजर आता है?

क्या इस स्थिति में सुधार की कोई गुंजाइश या संभावना है?

सबसे पहले हमें अपनी जड़ता का परित्याग करना होगा। सरकार को इस दिशा में आगे आना चाहिए। बेहतर हो अगर राष्ट्रीय स्तर पर फ़िल्म परिवीक्षण निकायों का गठन किया जाए, जो प्रदर्शित होने वाली फ़िल्मों की गुणवत्ता पर नजर रखें, लेकिन इसके पहले भी पहला दायित्व फ़िल्मकारों का है। उन्हें व्यावसायिक समझौतों की बजाए उत्कृष्टता को प्राथमिकता देनी होगी।

आप अपनी फ़िल्मों में ध्वनि को काफी महत्व देते हैं, इसकी कोई खास वजह?

आमतौर पर ध्वनि को लेकर निर्माताओं का कामचलाऊ रवैया रहता है। लेकिन मेरे विचार से इसके महत्व को फ़िल्मांकन के दौरान नज़रंदाज नहीं किया जाना चाहिए। ध्वनि के प्रभावी प्रस्तुतिकरकण द्वारा फ़िल्म का स्वरूप काफी निखर आता है। कथ्य की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए कई बार ध्वनि की मदद ली जा सकती है।

आप कछुआ चाल से फ़िल्म बनाते हैं, इसके अलावा आपकी फ़िल्मों में प्रस्तुति भी काफी धीमी रहती है। इस आरोप के जवाब में आप क्या कहेंगे?

अक्सर व्यावसायिक कारणों से फ़िल्म निर्माण

फिल्म : इलिपथ्ययम्

में देरी हो जाती है। मगर मेरी फ़िल्मों के बनने में विशेष देर इसलिए भी होती है, क्योंकि फ़िल्म को सौ प्रतिशत खरा बनाए बगैर मुझे संतुष्टि नहीं मिलती। इस हेतु मैं अपनी फ़िल्मों के ज्यादातर दृश्य दोबारा शूट करता हूँ।

जहाँ तक मेरी फ़िल्मों के धीमे प्रक्रियण का सवाल है, तो ऐसा मैं इसलिए करता हूँ, ताकि फ़िल्म यथार्थ के करीब लगे। मसाला फ़िल्मों में घटनाएँ काफी तेज गति से बदलती हैं, क्योंकि उनका उद्देश्य दर्शकों को फंतासी की दुनिया में ले जाना होता है, लेकिन इस तरह आनन-फानन में सब कुछ निपटा देने से फ़िल्म के शिल्प और कथ्य का अंतर्वेष्ठन काफी कमजोर हो जाता है, जिसे मैं उचित नहीं समझता।

समकालीन फ़िल्मकारों के बारे में आपकी क्या राय है?

कुछ तो बेहद प्रतिभा संपन्न हैं, जैसे दक्षिण भारतीय सिनेमा में बालचंदर और के. विश्वनाथ। लेकिन ज्यादातर नए फ़िल्मकारों को फ़िल्म निर्माण के बारे में अधकचरा ज्ञान है, और वे इस माध्यम को चौपट करने पर तुले हैं।

अब तक की उपलब्धियों पर कैसा लगता है?

सुखद! खासतौर से मेरे गृह प्रदेश केरल में मुझे जितनी लोकप्रियता और सराहना मिली, वो किसी को भी अभिभूत करने के लिए काफी है बतौर फ़िल्मकार पूर्ण संतोष का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि रचना एक अनवरत प्रक्रिया है। ●

प्रतिबद्ध फिल्मकार: आनंद पटवर्धन

आनंद पटवर्धन के नाम से अधिक लोग परिचित नहीं होंगे। शायद इसलिए कि वह एक ऐसे फिल्मकार हैं, जो आत्म-प्रलाप की बजाए दृश्यगत मैली वास्तविकताओं पर कैमरा केन्द्रित रखना अधिक पसंद करते हैं। पिछले दो दशकों से आनंद वृत्तचित्र निर्माण के क्षेत्र में सक्रिय हैं। उनके बनाए वृत्तचित्रों को देश-विदेश में काफी सराहना मिली। विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं पर उन्होंने विचारोत्तेजक वृत्तचित्र तैयार किए। इनमें आपातकाल के दौरान हुए जन-उत्पीड़न, पंजाब समस्या और अयोध्या विवाद जैसे राष्ट्रीय महत्व के विषय शामिल है। वृत्तचित्रों को आनंद इसलिए तरजीह देते हैं, क्योंकि उनकी राय में इसके ज़रिए फिल्मकार अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता अधिक असरदार ढंग से निभा सकता है।

आनंद के वृत्तचित्रों का फिल्मांकन काफी प्रभावशाली होता है, क्योंकि वह स्वयं एक अच्छे कैमरामेन भी है। पहली बार उन्होंने कैमरा संभाला था, जब वह अमेरिका में अध्ययनरत थे। वियतनाम युद्ध के वक्त अमेरिका में हुए युद्धविरोधी प्रदर्शनों के कुछ दृश्य उन्होंने बतौर प्रशिक्षणार्थी शूट किए। भारत आने पर उनका रुझान वृत्तचित्र-निर्माण की ओर हुआ। उनका पहला वृत्तचित्र भारतीय गाँवों में तपेदिक चिकित्सा कार्यक्रमों से संबंधित था। 1975 में उन्होंने जयप्रकाश नारायण के जन आंदोलन पर आधे घंटे की एक लघु फिल्म बनाई। इस विवादास्पद फिल्म में आंदोलनकारी छात्रों पर पुलिस के बर्बर अत्याचार का चित्रण था। इसके बाद आनंद द्वारा निर्मित लगभग हर वृतचित्र को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कार मिले। 1978 में बने "प्रिज़नर्स ऑफ कांशिएंस" को प्रतिष्ठित 'टाइन अवार्ड' से सम्मानित किया गया। कनाडा में भारतीय प्रवासियों के साथ जातीय भेदभाव पर निर्मित उनके वृत्तचित्र 'अ टाइम टु राइज़' (1981) और बंबई की गंदी बस्तियों पर

आधारित 'बाम्बे अवर सिटी' (1985) पेरिस में स्पेशल ज्यूरी के सम्मान से पुरस्कृत हुए। पंजाब समस्या पर बिल्कुल नए कोण से प्रकाश डालते हुए आनंद ने अपने एक वृतचित्र 'इन मेमोरी ऑफ फ्रेंड्स' में शहीद भगत सिंह के विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता पर ज़ोर दिया है। इस विश्लेषणात्मक डॉक्यूमेंट्री को उम्दा प्रस्तुति के लिए बेहद सराहा गया। आनंद ने पिछले दिनों अयोध्या विवाद पर डेढ़ घंटे की एक लघुफिल्म 'इन दि नेम ऑफ गॉड' तैयार की है।

भारत की अपेक्षा आनंद के वृतचित्र विदेशों में अधिक पसंद किए गए। ब्रिटेन के 'चैनल-फोर' पर उनके वृत्तचित्रों का नियमित रूप से प्रसारण होता रहा है। भारतीय दूरदर्शन पर उन्हें अधिक मौके नहीं मिल सके। उनका एक वृतचित्र सरकार ने आपत्तिजनक मानते हुए इसके किसी भी स्वरूप में प्रसारण हेतु प्रतिबंधित कर रखा है। दरअसल अपनी बेबाक और विवादास्पद कार्यशैली की वजह से आनंद काफी आरोपों में घिर रहे है। कुछ आलोचकों द्वारा उन्हें मीरा नायर की तरह उन फिल्मकारों की श्रेणी में रखा जाता है, जो भारत की भुखमरी और जहालत का **चित्रण** महज़ इसलिए करते है, ताकि विदेशों में वाहवाही बटोर सके। आनंद इस आरोप से कतई सहमत नहीं। उनका कहना है-"समस्याओं से मुँह चुरा कर हम अपना ही नुकसान करेंगे। मैं अभिव्यक्ति में खरापन पसंद करता हूँ। लाग-लपेट या समझौतापरस्त रवैया मुझे गवारा नहीं होता। ऐसे रचनाकर्म को मैं प्रयोजनशून्य मानता हूँ, जिसमें हकीकत का ठीक-ठीक बयान न किया गया हो। आपको मेरे वृत्तचित्रों में आज की वास्तविकताओं के अलावा भविष्य की संभावनाओं की भी झलक मिलेगी। ●
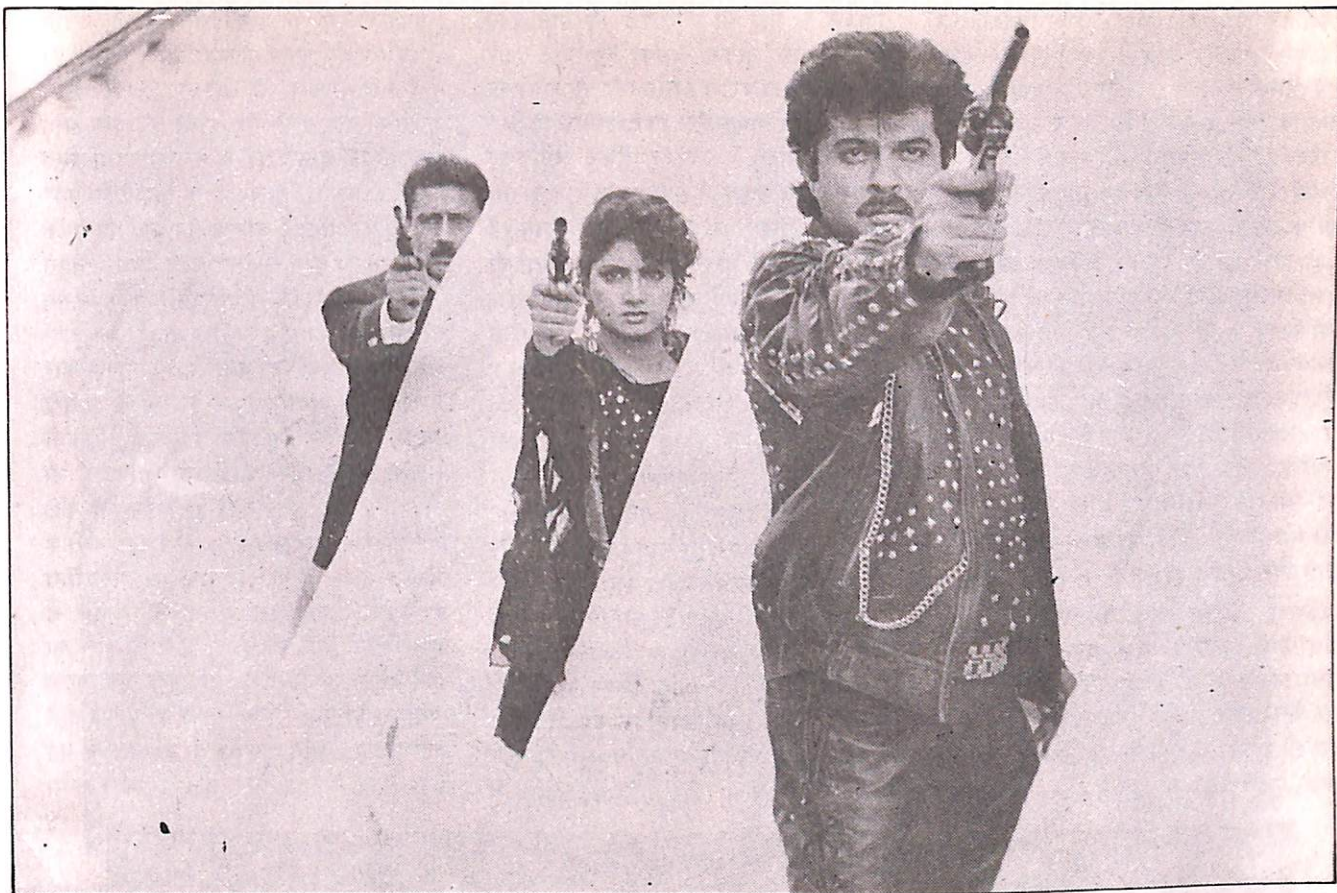
फिल्म : रूप की रानी चोरों का राजा : जैकी श्रॉफ, श्रीदेवी और अनिल कपूर

फिल्में कैसे बनती हैं ?
फिल्में कैसे बिकती हैं ?
फिल्में कैसे प्रदर्शित होती हैं ?

● जयप्रकाश चौकसे

तीस वर्ष पहले की घटना है. आर.के. नैयर और केवल कपूर लोकल ट्रेन से चर्च गेट जा रहे थे! रास्ते में नैयर ने अखबार में नानावटी प्रकरण की खबरें पढ़ीं और उस पर फिल्म बनाने का विचार आया। केवल कपूर उन्हें मैरीन ड्राइव पर रहने वाले एक फायनेंसर के घर ले गया जिसे यह विचार अच्छा लगा! उसने नैयर को पच्चीस हजार रुपए दिए। शाम तक नैयर ने सुनीलदत्त को अनुबंधित कर लिया और **"ये रास्ते हैं प्यार के"** शुरू हो गई। फिल्म पूरी भी हुई और सफल भी रही। उस जमाने में इतना आसान था फिल्म बनाना। आज फिल्म बनाना बड़ा कठिन काम है। हर चीज की कीमत इतनी बढ़ गई है कि केवल एक फिल्म पूरी जिंदगी की कमाई डुबो सकती है। ईस्टमन कलर निगेटिव का एक रोल अर्थात लगभग एक हजार फुट की कीमत चौदह हजार रुपए है और एक मध्यम दर्जे की फिल्म में लगभग एक लाख फुट निगेटिव लगता है। बहुत किफायती निर्देशक भी साठ हजार फुट से कम में फिल्म नहीं बना पाता, क्योंकि **जिसे आम आदमी बर्बादी समझता है, वह फिल्म माध्यम की अनिवार्यता है। आप जो फिल्म देखते हैं, वह प्रायः 16000 फुट की होती है, परंतु इसे बनाने में पाँच गुना निगेटिव लगना**

फिल्म की सहज प्रक्रिया है। अच्छे निर्देशक दो लाख फुट निगेटिव का प्रयोग करते हैं। एक शॉट पहले ही टेक में सही नहीं हो जाता। कभी तकनीशियन की भूल होती है। कभी कलाकार से गलती होती है और कभी सब कुछ ठीक सा दिखाई देने पर भी निर्देशक संतुष्ट नहीं होता क्योंकि उसकी कल्पना के अनुरूप शॉट मुश्किल से ही होता है। हर अच्छा निर्देशक सही शॉट के भी दो टेक लेता है। एक शॉट को पाँच बार लेना फिल्म निर्माण की सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया है। शरीर की पाचन क्रिया की तरह ही जटिल हैं फिल्म निर्माण। एक्शन फिल्मों में और भी अधिक निगेटिव लगता है क्योंकि साहसी दृश्यों के लिए एक से अधिक कैमरे लगते हैं और हाई स्पीड का भी प्रयोग होता है जिसे लोग स्लो मोशन शॉट कहते हैं। इसमें पात्र की क्रिया धीमी दिखाई देती है।

उदाहरण के लिए 'हिना' फिल्म में ट्राली का थ्रिल दृश्य जिसमें नायक तार पर लटक कर ट्राली को किनारे लाने का प्रयास करता है। इसमें चार कैमरों का प्रयोग किया गया था और दस दिन की शूटिंग में सभी कैमरा मिलाकर पच्चीस हजार फुट निगेटिव शूट किया था। अंतिम संपादन के बाद पाँच मिनिट का सही दृश्य मिला। इसमें नायक, उसका डुप्लीकेट और उसकी डमी का प्रयोग हुआ। डमी उस पुतले को कहते हैं जिसे नायक जैसे कपड़े पहनाकर ऊंचाई से फेंका जाता है और डुप्लीकेट उस स्टंट कलाकार को कहते हैं जिसका प्रयोग साहसी दृश्य में लाँग शॉट में करते हैं। यह ध्यान रहे कि डुप्लीकेट की सुरक्षा की भरपूर व्यवस्था की जाती है। हॉलीवुड में सौ प्रतिशत सुरक्षा और इन्श्योरेंस की व्यवस्था है। एक्शन के दृश्यों में हम हॉलीवुड से सिर्फ पचास साल पीछे हैं।

आम व्यावसायिक फिल्मकार पहले सेट-अप या प्रपोजल बनाता है अर्थात उन सितारों और तकनीशियन की टीम बनाना जो आसानी से फायनेंसर एवं वितरकों को धन लगाने के लिए प्रलोभित करे। लोकप्रिय नायक, नायिका और निर्देशक को अनुबंधित किया जाता है और फिर कहानी पर विचार होता है। इस विचार-सत्र में अमेरिकन फिल्म या पुरानी हिंदी फिल्म या क्षेत्रीय भाषा में बनी सफल फिल्म पर विचार होता है और विशेष ध्यान इस बात पर रखा जाता है कि हमारे अनुबंधित सितारों की छवि के अनुसार कथा है। विदेशी कथा के 'भारतीयकरण' पर जोर दिया जाता है, क्षेत्रीय विषय का भी 'भारतीयकरण' किया जाता है। यहाँ भारतीयकरण से तात्पर्य है आम हिंदी दर्शक को बात भली और अपनी लगे। यह बात अलग है कि आम दर्शक के मन को पढ़ना बहुत कम फिल्मकारों, अखबार के संपादकों और नेताओं को आता है और अजीब बात यह है कि इसी ज्ञान का दम्भ ये तीनों श्रेणी के लोग बहुत करते हैं। विदेशी फिल्म या पुरानी फिल्म के नए संस्करण के विचारवान को कथाकार का दर्जा देते हैं और मसालों को बनाने वाला पटकथाकार कहलाता है। संवाद लेखक के रूप में तीसरी 'प्रतिभा' का समावेश होता है और इस तिकड़ी के बॉस होते हैं निर्देशक। अधिकांश फिल्मों का थिंक टैंक ऐसा ही बनता है। आज भी कुछ फिल्मकार हैं जो पहले कथा की रचना करते हैं फिर कथा के अनुरूप सितारों को अनुबंधित करते हैं। व्यावसायिक सिनेमा में विस्तार से कथा लिखने वाले को पटकथा लिखने वाले का दर्जा देते हैं जबकि पटकथा लिखना एक स्वतंत्र विधा है। दुनिया में सिर्फ भारत ही एक देश है जहाँ संवाद लिखने वाला होता है। सच तो यह है कि पटकथा और संवाद एक ही सृजन क्रिया

फिल्म : मैंने प्यार किया : भाग्यश्री और सलमान खान

फिल्म : दामिनी : मीनाक्षी शेषाद्री और ऋषि कपूर

के नाम हैं, मसलन "दीवार" में अमिताभ कहता है कि मेरे पास बंगले हैं, कारें है, सत्ता है। तुम्हारे पास क्या है? शशिकपूर कहता है मेरे पास माँ है। यह संवाद ही पूरा दृश्य है और इसके बिना दृश्य ही क्या है। आपने कभी किसी विदेशी फिल्म में संवाद लेखक का स्वतंत्र क्रेडिट देखा है? भारत में संवाद लेखक इसलिए आया कि अधिकांश फिल्मकार गैर हिंदी भाषी थे और उन्हें अंग्रेजी या उर्दू में लिखी पटकथा के हिंदी अनुवादक की आवश्यकता थी। इसी अनुवादक को कालांतर में संवाद लेखक कहा गया (शुद्ध सिनेमा बिम्ब का माध्यम है परन्तु नाटक में संवाद का बहुत महत्व है। हिंदी फिल्म नाटक और अति नाटकीयता के प्रभार से मुक्त नहीं हुई है, इसलिए संवाद का इतना महत्व है। आज भी बहुत सी फिल्में फोटोग्राफ नाटक मात्र हैं. गीतों के कारण इन्हें ऑपेरा भी कहा जा सकता है जबकि हॉलीवुड में म्युजिकल फिल्में एक अलग ही विधा है।

सेट अप बनाने के बाद निर्माता फायनेंसर की खोज करता है। कुछ निर्माता अपने धन से चंद रीलें बनाने के बाद फायनेंसर के पास जाते हैं। प्रायः फायनेंसर दो आधार पर मिलता है। (1) फायनेंसर किसी वितरण क्षेत्र को गिरवी रखकर आंशिक पूँजी लगाता है। (2) फायनेंसर निर्माता के साथ वर्ल्ड राईट का अनुबंध करता है जिसके तहत पूरी फिल्म के लिए धन देता है और प्रदर्शन के समय वितरकों से आए धन पर दस प्रतिशत की रकम बतौर मुनाफे के लेता है। वह ओवर फ्लो में पचास प्रतिशत का अधिकारी होता है। वितरक अपनी लागत पर 25 प्रतिशत का मुनाफा लेता है और इसके बाद की आय को ओवर फ्लो कहते हैं। दस वर्ष बाद फिल्म के निगेटिव पर अकेले निर्माता का अधिकार होता है। हर प्रकार के अनुबंध में फायनेंसर फिल्म के लेबोरेटरी से एक अधिकार पत्र लेता है जिसके तहत उसकी लिखित आज्ञा के बिना वितरकों को फिल्म का प्रिंट नहीं मिल सकता। इस पत्र पर निर्माता के साथ लेबोरेटरी के मालिक के भी दस्तखत होते हैं और यह खत फिल्म उद्योग में सबसे बड़ी सुरक्षा माना जाता है। इसी तरह के पत्र उन कलाकारों और तकनीशियनों को भी दिए जाते हैं जिनका बकाया मेहनताना प्रदर्शन पर देना तथ्य होता है। सभी प्रमुख कलाकारों और तकनीशियनों को उनके मेहनताने का तीस से पचास प्रतिशत धन प्रदर्शन के समय दिया जाता है। अगर आप एक नायक को पूरी फिल्म में काम करने का दस लाख देना तय करते हैं तो चार या पाँच लाख रुपए उसे प्रदर्शन के समय मिलता है और बाकी रकम फिल्म के शूटिंग दिनों में प्रगति के अनुसार दी जाती है। मसलन नायक का सौ दिन का काम है, तो पाँच हजार रुपए प्रतिदिन के हिसाब से देना होता है परन्तु यह रकम रोज़ नहीं दी जाकर हर शूटिंग शेड्यूल के पहले दी जाती है। बहुत से चरित्र अभिनेता प्रतिदिन के हिसाब से पैसा लेते हैं और उन्हें कोई लैब लेटर नहीं दिया जाता। अगर किसी फिल्म में सितारों की फीस पचास लाख है, तो लगभग तीस या पैंतीस लाख शूटिंग के दरमियान दिए जाते हैं और शेष राशि के लैब लेटर दिए जाते हैं, इसलिए फिल्म के संपूर्ण बजट में और निर्माणाधीन बजट में अंतर होता है। वितरक भी अपने क्षेत्र के मूल्य का चालीस प्रतिशत धन निर्माण के समय किश्तों में भेजते हैं और 60 प्रतिशत धन प्रदर्शन के पूर्व प्रिंट लेते समय लैब में जमा करते हैं। बड़ी फिल्मों के लिए वितरक सिनेमा मालिकों से अग्रिम राशि निर्माणाधीन दौर में ही लेता है अतः सिनेमा वह व्यवसाय है जिसमें उपभोक्ता (दर्शक) का

धन माल के निर्माण के समय से ही लगना शुरू होता है। बजट का एक बहुत बड़ा भाग उधारी से चलता है और लगाए हुए धन का अधिकांश भी निर्माता उधार ही लाता है। कमोवेश मामला भारत सरकार की तरह है और लैब लेटर तथा हुंडी निर्माता की अपनी करेंसी है।

निर्माता और निर्देशक मिलकर कैमरामैन, संपादक, साऊंड रिकॉर्डिस्ट, नृत्य और स्टंट निर्देशक, संगीतकार, गीतकार, आर्ट डायरेक्टर, मेक-अप मैन, ड्रेस डिजाईनर, कॉस्ट्यूम निर्माता के साथ अनुबंध करते हैं जिसमें सभी शर्तें स्पष्ट लिखी रहती है। सभी विभागों के सहायकों का मेहनताने के अतिरिक्त कन्वेन्स अलाउंस भी दिया जाता है और यह धन कोई नहीं छोड़ता। प्रतिदिन शूटिंग का 20 प्रतिशत बजट तो कन्वेन्स अलाउंस में खर्च होता है। शूटिंग के लिए जो लोग उपकरण लाते हैं, उन्हें भी यात्रा भत्ता मिलता है। जब बाह्य शूटिंग के लिए यूनिट जाता है, तो उन्हें डेढ़ शिफ्ट का मेहनताना मिलता है और विदेशों में शूटिंग पर विशेष भत्ता संगठनों द्वारा निर्धारित किया गया है। एक मध्यम दर्जे का यूनिट प्रतिदिन शूटिंग पर लगभग 30 हजार रुपए खर्च करती है और आऊटडोर में खर्चा 60 हजार रुपए से ऊपर ही आता है। पहले लेबोरेटरी से निगेटिव उधार या बात है कि भारत विश्व में सबसे अधिक संख्या में फिल्म बनाता है परन्तु रॉ-स्टॉक और सारा उपकरण आयातित है। केवल पाँच वर्ष पूर्व एक अच्छा कैमरा 35 लाख में आयात किया जाता है और आज 70 लाख रुपए देने पड़ते हैं। अधिकांश भारतीय फिल्में दशकों पुराने उपकरण से बनती हैं। यह तो भारतीय तकनीशियन का कमाल है कि साधारण से उपकरण से वे इतना अच्छा परिणाम देते हैं। हमारे यहाँ आज भी शूटिंग के वक्त हर लाइट को तेज या मध्यम करने के लिए मेहनत करना पड़ती है। विदेशों में रिमोट कंट्रोलर आ गए हैं।

फिल्म : थोड़ा सा रोमानी हो जाएं : नाना पाटेकर और अनिता कंवर

पारिश्रमिक अठारह किश्तों में बाँटा जाता है और जिस फिल्म के निर्माण में 18 महीनों से ज्यादा समय लगता है, निर्माता को अतिरिक्त धन देना पड़ता है क्योंकि सभी संगठन इस नियम को पारित कर चुके हैं। कम मेहनताने वाले लोगों को कोई लैब लेटर नहीं दिया जाता। कुछ तकनीशियन अपने मेहनताने को सौ शिफ्टों में बाँट देते हैं और उन्हें प्रति शिफ्ट पैसा मिलता है। हर तकनीशियन और उसके सहायक को अर्थात पूरे यूनिट को अपनी आधा नगद और आधा उधार मिलता था। आजकल केवल स्थापित निर्माताओं को रॉ-स्टॉक उधार मिलता है। निगेटिव केश खरीदने पर प्रतिदिन 30 हजार का खर्च आता है और शूटिंग व्यय 60 हजार रुपए तक है। कैमरे का किराया प्रतिदिन 1500 से 2500 रुपए तक होता है और प्रतिदिन नकद ही दिया जाता है। कैमरे के साथ दो कर्मचारी आते हैं जिनका वेतन कैमरे का मालिक देता है परन्तु यात्रा-व्यय और भत्ता निर्माता को देना पड़ता है। यह भी अजीब पटकथा बनने के बाद उसे इनडोर और आउटडोर हिस्सों में बाँटते हैं तथा किस सैट पर किन कलाकारों के कितने दिन लेने होंगे, इसका निर्णय होता है। प्रमुख कलाकारों से काम्बिनेशन काम की तारीखें लीं जाती हैं। यह सब काम अत्यंत योजनाबद्ध तरीके से करना पड़ता है क्योंकि आजकल इतनी फिल्मों का निर्माण हो रहा है कि कई बार जूनियर आर्टिस्ट अर्थात भीड़ की कमी के कारण शूटिंग नहीं हो पाती। जूनियर आर्टिस्ट का संगठन है और नई
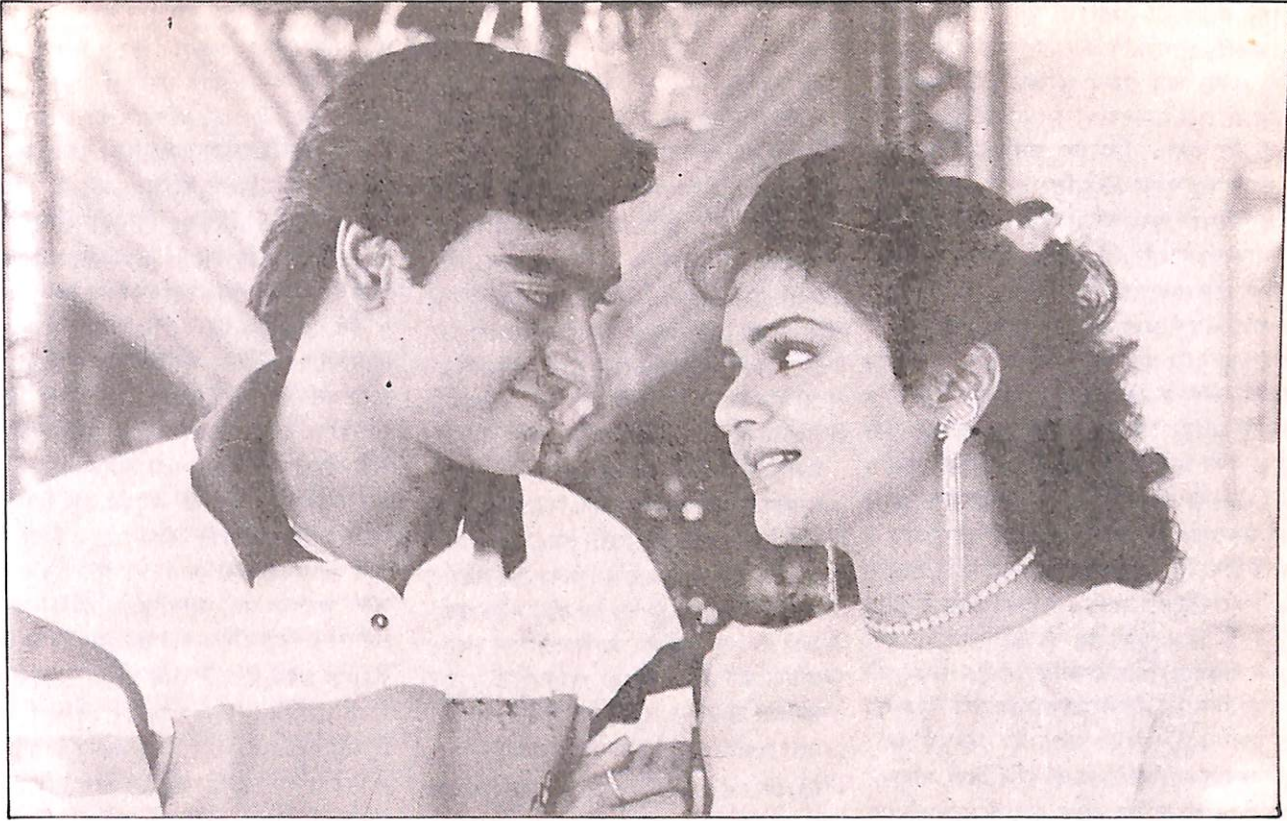
फिल्म : फूल और कांटे : अजय देवगन और मधु

मेम्बरशिप मुश्किल से मिलती है। यूनियन की दादागिरी सभी क्षेत्रों में है। अगर कोई निर्माता भीड़ के दृश्य के लिए स्वयं अपनी व्यवस्था करता है तो उसे उतना ही धन यूनियन को देना पड़ता है। आपने प्रायः भीड़ के दृश्यों में और नृत्य के दृश्यों में बहुत बड़ी उम्र के लोग देखे होंगे क्योंकि जूनियर आर्टिस्ट संगठन की राजनीति नए चेहरों को नहीं आने देती। संगठन को हर कलाकार के मेहनताने में से 10 प्रतिशत धन मिलता है। वह जमाना लद गया जब जूनियर आर्टिस्ट का वेतन कम होता था, अब हर कलाकार प्रतिदिन दो शिफ्ट करता है और तीन सौ रुपए कमाता है। सबसे सशक्त है साजिंदों का संगठन और सबसे अधिक आय भी उनकी है।

आजकल एक गीत के ध्वनि-अंकन पर 70 हजार से एक लाख रुपए साजिंदे में बँट जाते हैं। अधिकांश साजिंदें अपने बाजों के लिए भी धन लेते हैं। इलेक्ट्रॉनिक उपकरण का भाड़ा प्रति शिफ्ट दो हजार रुपए तक होता है। फिल्म निर्माण का व्यय बढ़ते ही सार्थक सिनेमा की सम्भावना खत्म हो गई है। आज फिल्म निर्माण के अर्थशास्त्र ने कहानी में से अर्थ को खोटे सिक्के की तरह बाहर फेंक दिया है।

फिल्म निर्माण व्यवस्था में आज भी अंग्रेजों के जमाने की सीमा रेखा मौजूद है - मसलन सेन्ट्रल इंडिया, सी.पी. बरार और इस्टर्न सरकिट इत्यादि। पूरे भारत में तीन संपूर्ण क्षेत्र हैं बम्बई क्षेत्र अर्थात बम्बई शहर और उपनगर सौराष्ट्र, गुजरात और महाराष्ट्र के कुछ हिस्से जैसे पुणे, शोलापुर, कोल्हापुर इत्यादि। महाराष्ट्र का नागपुर,/ अमरावती,/ भुसावल इत्यादि क्षेत्र सी.पी. बरार में आता है जिसमें मध्यप्रदेश का 50 प्रतिशत भाग भी शामिल है जैसे बुरहानपुर, खंडवा, इटारसी, होशंगाबाद, सागर, बीना, भिलाई, जबलपुर, जगदलपुर, रायपुर, बिलासपुर इत्यादि। सेन्ट्रल इंडिया में मध्यप्रदेश का पुराना मध्यभारत, ग्वालियर और विन्ध्यप्रदेश आता है। सतना और रीवा सेन्ट्रल इंडिया में आते हैं। सेन्ट्रल सर्किट का तीसरा भाग राजस्थान है। सेन्ट्रल इंडिया का मूल्य बम्बई क्षेत्र का 20 प्रतिशत, राजस्थान 20 प्रतिशत और सी.पी. बरार 45 प्रतिशत माना जाता है अर्थात पूरा सेन्ट्रल सर्किट बम्बई क्षेत्र का 85 प्रतिशत माना जाता है। यह आश्चर्य की बात है कि निजाम क्षेत्र में महाराष्ट्र के कुछ शहर आते हैं। दिल्ली और उत्तरप्रदेश मुख्य क्षेत्र है जिसकी कीमत बम्बई क्षेत्र के ही बराबर है। तीसरा प्रमुख क्षेत्र है- इस्टर्न सर्किट जिसमें पश्चिमी बंगाल, विहार, उड़ीसा, मेघालय, असम और काठमांडू आते हैं। आमतौर पर बिहार, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल अलग-अलग बेचे जाते हैं क्योंकि ऐसा करने पर इस क्षेत्र की कीमत बंबई क्षेत्र के भाव से अधिक मिलती है, परंतु इकट्ठा बेचने पर यह बंबई के बराबर ही मूल्य का है। आतंकवाद के पहले पंजाब क्षेत्र बंबई क्षेत्र का 45 प्रतिशत था, इसमें काश्मीर और हिमाचल प्रदेश शामिल हैं। आजकल 17 से 22 प्रतिशत कीमत ही मिलती है। कर्नाटक का मूल्य 10 प्रतिशत है और निजाम अर्थात आंध्रप्रदेश का मूल्य 25 प्रतिशत है। तमिलनाडु

और केरल का मूल्य 15 प्रतिशत है। **बंबई, दिल्ली-उत्तरप्रदेश** और **बंगाल** तीन प्रमुख क्षेत्र हैं, चौथा क्षेत्र **सेंट्रल सरकिट** (सेंट्रल इंडिया सी.पी. और राजस्थान) मूल क्षेत्र का 85 प्रतिशत है और **पंजाब, निजाम, कर्नाटक तमिलनाडु का समग्र मूल्य 65 प्रतिशत से अधिक नहीं है। अर्थात पूरा भारत 4.5 क्षेत्रों में** बँटा है। ओवरसीज और ओवरसीज वीडियो मिलाकर एक क्षेत्र बनता है। सातवें दशक में ओवरसीज बंबई क्षेत्र से बड़ा माना जाता था, परंतु बाद में इसका मूल्य घट गया था पर अब फिर लगभग एक क्षेत्र के बराबर है। फिल्म दुनिया में ओवरसीज मार्केट अर्थात कम्युनिस्ट देश छोड़कर सारी दुनिया। साऊथ अफ्रीका के साथ फिर व्यापार शुरू हो गया है और इसका समावेश ओवरसीज में नहीं होता। आजकल भारत के वीडियो अधिकार कम दामों में जा रहे हैं, क्योंकि केवल और सैटेलाइट टी.वी. की वजह से कैसेट की ब्रिकी बहुत ही घट गई है। विगत चार वर्षों में ऑडियो कैसेट के अधिकार मुँह माँगे दामों पर बिक रहे हैं और इस कैसेट क्रांति का श्रेय गुलशन कुमार को जाता है। 'प्रेमग्रंथ' और 'खलनायक' जैसी फिल्मों के ऑडियो अधिकार फिल्म की शूटिंग प्रारंभ होने के पहले ही एक करोड़ प्रति फिल्म में बिके हैं। आजकल स्थापित बैनर को ओवरसीज वीडियो सहित, भारत वीडियो एवं ऑडियो अधिकार बेचने पर दो करोड़ रुपए की आय होती है जो फिल्म का 75 प्रतिशत बजट के बराबर है। स्थापित बैनर के लिए फिल्मों का स्वर्णयुग आ गया है। भारत के 4.5 वितरण क्षेत्र में दो क्षेत्र और जोड़ दीजिए ओवरसीज और ऑडियो-वीडियो के, इस तरह कुल 6.5 क्षेत्र हैं। मध्यम दर्जे की फिल्म के लिए बमुश्किल 4 क्षेत्र हैं, क्योंकि पूरे दक्षिण (निजाम छोड़कर) भारत में केवल अमिताभ बच्चन की फिल्म ही चलती है और कभी-कभी संगीतमय कहानी भी चल जाती है।

घोषणा पर केवल कुछ निर्माताओं की फिल्में ही बिकती हैं, अन्य निर्माताओं की फिल्में नियमित प्रगति होने पर ही बिक पाती हैं। राजस्थान, सेंट्रल इंडिया और बिहार शीघ्र ही बिक जाते हैं, परंतु बंबई और दिल्ली क्षेत्र में बेचना आसान नहीं है। बंबई क्षेत्र में वितरकों की कमी है और सफल वितरक निर्माता को दाम कम करने के लिए मजबूर करते हैं या 25 प्रतिशत भागीदारी लेने पर विवश करते हैं। इन क्षेत्रों में सिनेमा के साप्ताहिक भाड़े इतने अधिक हैं कि साधारण सितारों की फिल्मों का भाड़ा ही नहीं निकलता। दिल्ली में सिनेमा के भाड़े औसतन एक लाख रुपए प्रति सप्ताह हैं। बंबई में भाड़ों के साथ ही प्रचार का मूल्य बहुत ज्यादा है। सुभाष घई जैसा सफल निर्माता भी पूरी कीमत में बंबई और दिल्ली नहीं बेच पाता है।

निर्माता और वितरक के तीन प्रकार के सौदे होते हैं : **(1) मनी गारेंटेड रॉयल्टी** अर्थात निश्चित कीमत देने के बाद वितरक प्रिंट और प्रचार पर पैसा खर्च करेगा तथा उसे अपनी लागत पर 25 प्रतिशत कमीशन मिलेगा और इस सब के जोड़ के बाद कमाई हुई राशि का 50 प्रतिशत निर्माता को मिलेगा। उदाहरणार्थ अगर एक फिल्म की कीमत 10 लाख एम.जी. है और वितरक प्रिंट तथा प्रचार पर 5 लाख रुपए लगाता है तो उसका कमीशन 3 लाख 75 हजार होगा। अब समग्र लागत 18 लाख 75 हजार है और इसके बाद अर्जित राशि का 50 प्रतिशत निर्माता को जाता है। इस धन को "ओवर फ्लो' कहते हैं।' "मनी गारेन्टेड रॉयल्टी" का प्रचलन अधिक है। **(2) आऊट राईट सेल** : इस व्यवस्था में ओवर फ्लो का प्रावधान नहीं है। सारा मुनाफा या घाटा वितरक को होता है।

(3) अग्रिम धन राशि : इस व्यवस्था में फिल्म के असफल होने पर निर्माता को सारा धन वितरक को लौटाना होता है।

कभी-कभी एम.जी. के साथ कुछ अग्रिम धन की व्यवस्था भी की जाती है। वितरण अधिकार दस वर्ष के लिए होते है और पुरानी फिल्में तीन वर्ष के लिए आऊट राइट व्यवस्था के तहत बेची जाती हैं। वितरक को प्रिंट की कीमत के रूप में बहुत धन खर्च करना पड़ता है। प्रति प्रिंट साठ से अस्सी हजार रुपए कीमत का होता है और एक भव्य फिल्म के 40 से 50 प्रिंट प्रति मूल क्षेत्र खरीदे जाते हैं। **दुनिया के किसी भी देश में प्रिंट इतने महँगे नहीं होते**। दुनिया के किसी भी देश में रॉ स्टॉक पर इतना अधिक कस्टम कर नहीं है। सिनेमाघरों में पुराने प्रोजेक्टर एवं कम वेतन वाले कारीगरों के कारण प्रिंट जल्दी ही खराब होते हैं। रेलवे में प्रिंट चोरी के प्रकरण हैं और डेमेज की राशि वितरक की अगली पीढ़ी को मिलती है। अमेरिका में एक फिल्म के 1500 प्रिंट पहले दिन लगते हैं, जबकि भारत की सबसे बड़ी हिट शोले के छः सौ से ज्यादा प्रिंट अभी तक नहीं बने हैं।

वितरक और सिनेमा मालिक के बीच भी तीन प्रकार के सौदे होते हैं : **(1) किराए के आधार पर** अर्थात किराए की राशि के बाद सारी आय वितरक की और आय कम होने की जवाबदारी भी उसकी। महानगरों में किराया 50 से 60 प्रतिशत है, जबकि छोटे शहरों में किराया 25 प्रतिशत होता है। **(2) प्रतिशत का आधार** : वितरक और सिनेमा मालिक आय का प्रतिशत निश्चित करके फिल्म प्रदर्शित करते हैं। प्रायः वितरक को 65 प्रतिशत और सिनेमा मालिक को 25 प्रतिशत मिलता है। **(3) फिक्सड हायर** : इसमें सिनेमा मालिक निश्चत रकम देकर स्वयं के दम पर फिल्म का प्रदर्शन करता है। छोटे कस्बों में यही आधार चलता है। छोटे कस्बों में मनोरंजन कर की बहुत चोरी होती है। मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और बिहार के कस्बों और छोटे शहरों में कर की चोरी 80 प्रतिशत तक है। किसी भी प्रकार का अनुबंध हो, टिकिट बिक्री का एक प्रतिशत इंडियन न्यूज रिव्यू के नाम पर सरकार को जाता है। आई.एन.आर. और जनपद या म्यूनिसिपल टैक्स और मनोरंजन कर कटने के बाद नेट आय होती है।

वितरक अपने प्रिंट के साथ फिल्म प्रतिनिधि भेजता है, जिसे 35 रुपया प्रतिदिन भत्ते का मिलता है। उसका काम है कि फिल्म के प्रचार में सिनेमा मालिक की मदद करे और हर शो में दर्शकों की गिनती करके डेली कलेक्शन रिपोर्ट पर दस्तखत करे, ताकि सिनेमा मालिक सही आय का ब्यौरा वितरक को भेजे, परंतु आज की महँगाई में 35 रुपए रोज पाने वाले कर्मचारी से ईमानदारी की उम्मीद रखना बेकार है। एक जमाने में फिल्म प्रतिनिधि की नौकरी बड़ी इज्जत वाली नौकरी होती थी। इन सब कारणों से छोटे कस्बों में वितरक फिक्स्ड हॉयर पर फिल्म देना पसंद करता है। हर वितरण क्षेत्र में प्रदर्शन एवं वितरकों का संगठन होता है, जिसकी आज्ञा सभी मानते हैं।

भारत में सिनेमा उद्योग की सबसे बड़ी कमी यह है कि 85 करोड़ जनता के देश में मात्र 13000 सिनेमा हैं, जिनमें से 4000 टूरिंग सिनेमा हैं और 65 प्रतिशत स्थायी सिनेमा केवल दक्षिण भारत में हैं। उत्तर भारत में आबादी का अधिक प्रतिशत है, परंतु सिनेमा कम है। छोटे शहरों और कस्बों के सिनेमा की हालत दयनीय है। दूसरी त्रासदी यह है कि सबसे अधिक फिल्में बनाने वाले देश में रॉ स्टाक नहीं बनता, यहाँ तक कि एक भी उपकरण नहीं निर्मित होता, अतः रुपए के अवमूल्यन का जबरदस्त प्रभाव उद्योग पर पड़ता है। तीसरी गड़बड़ यह है कि सरकार इसे उद्योग ही नहीं मानती।

क्या नया सिनेमा मर गया है ?

● डॉ. सुरेन्द्रनाथ तिवारी

सातवें दशक के अन्त में भारतीय राजनीतिक चेतना, भारतीय समाज के अन्तरसम्बन्धों में तेजी से परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन अकस्मात नहीं था। विगत कई दशकों के सामाजिक-राजनीतिक चेतना के प्रभाव को इस परिवर्तन के मूल्य में देखा जा सकता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है, और फिल्में साहित्य का। एक नए तरीके से उत्कृष्ट साहित्यिक आधार पर फिल्म बनाने वाले अनेक फिल्म निर्देशक सामने आए। उन्होंने लीक से हटकर भिन्न प्रकार की फिल्में बनाने की शुरूआत की जिससे भारतीय सिनेमा में न सिर्फ कथ्य के स्तर पर बदलाव आया, बल्कि शिल्प के स्तर पर भी नए रूप की फिल्म-कला का उदय हुआ। रोचक बात यह कि इन फिल्म-निर्माताओं के बीच फिल्म-निर्माता की शैली तथा विषयवस्तु आदि को लेकर कोई सामान्य सहमति न होने पर भी वे सब अपने कृतित्व को अपनी-अपनी तरह से लीक से हटा एक नई दिशा देने की ओर अग्रसर हो रहे थे।

'भुवनशोम/उसकी रोटी/दुविधा/सारा आकाश/मायादर्पण/27 डाउन/रजनी गंधा तथा अंकुर इस दौर की महत्वपूर्ण हिन्दी फिल्में हैं। कहना न होगा कि एक समय में इस नए प्रकार की इतनी फिल्मों के निर्माण ने धीमे-धीमे एक आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया।

भारतीय सिनेमा के इतिहास में आठवाँ दशक कलात्मक एवं संवेदनशील छोटे बजट की फिल्मों का था। सिने-भाषा का अनुशासित प्रयोग विशिष्ट अभिनय-शैली एवं निर्देशन की दृष्टि से इस विशिष्ट आन्दोलन को 'न्यू वेव' के नाम से जाना गया। अब एक नई बात यह भी उभर आई कि इस दौर में 'न्यू वेव' की फिल्मों ने बड़े बजट की व्यावसायिक फिल्मों को भी चुनौती देना शुरू कर दिया। यह केवल हिन्दी की फिल्मों तक सीमित नहीं रहा, वरन बंगला/कन्नड़ तथा मलयालम में भी देखने में आया।

इस दौरान बनी एक फिल्म, एलिप्पथ्याम अपनी बनावट तथा बुनावट के कारण एक क्लॉसिक कृति बन गई है। कथ्य तथा रूप, वस्तु एवं शैली का ऐसा अप्रतिम संयोजन एलिप्पथ्याम में हुआ है कि इसे सामंती जीवनशैली के ह्रास का महाकाव्य कहा जा सकता है। नायक, अधेड़ उम्र का **उन्नी** जिसके बालों में सफेदी आ रही है - एक विघटित सामंती व्यवस्था का प्रतिनिधि है। तेजी से बदलते समाज में उन्नी का निःशेष दृष्टिकोण उसे जीवन जीने के अयोग्य बना देता है। वह उस पतनोन्मुखी संयुक्त परिवार का मुखिया है, जो सदैव दूसरों के परिश्रम के फल का ही आस्वादन करता रहा है। स्वयं कुछ भी कर सकने में असमर्थ है। तीन बहनों में सबसे बड़ी अविवाहित है और पैतृक सम्पत्ति पर प्रभावपूर्वक अधिकार रखती है। राजम्मा तथा

फिल्म : शतरंज के खिलाड़ी

फिल्म : अर्द्धसत्य
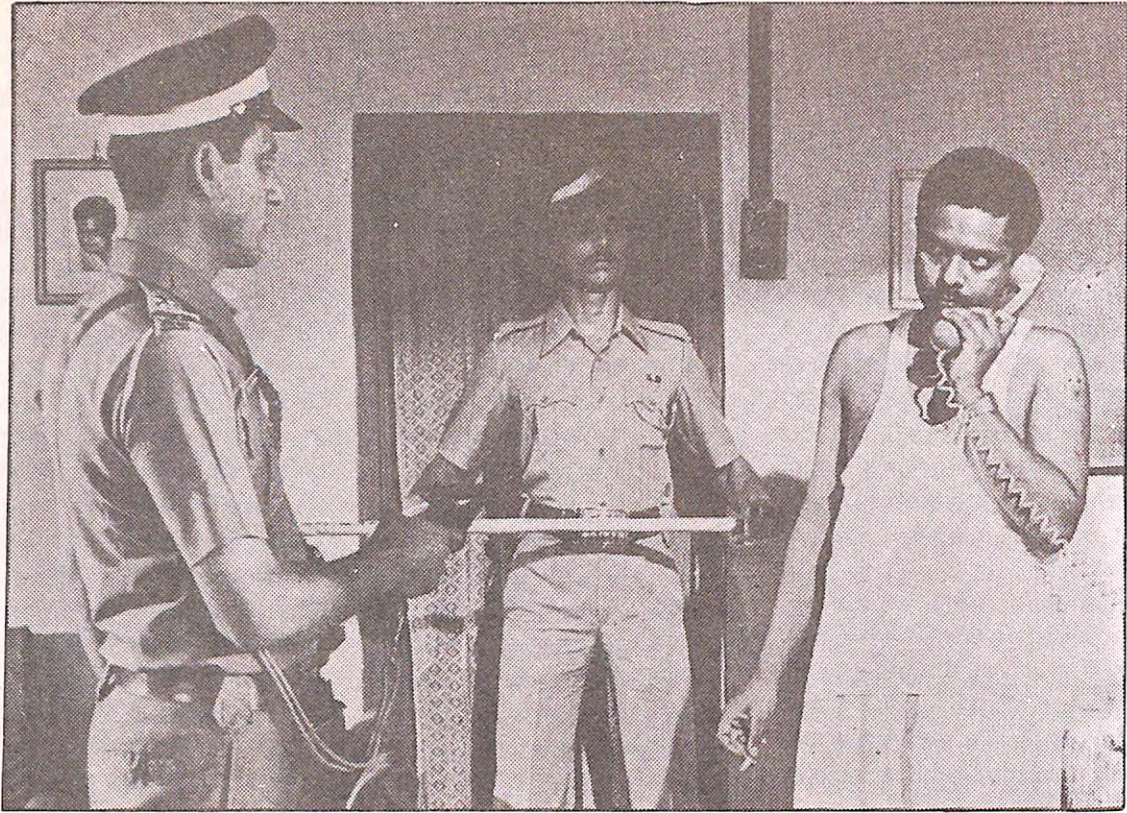
श्रीदेवी, उन्नी से छोटी है। राजम्मा, बच्चों जैसे पराश्रित एवं पोषित रहने वाले अपने भाई की आज्ञाकारिणी एवं स्वयं को तुच्छ समझने वाली दासी की तरह है। चालीस वर्ष के निकट पहुँच रही लेकिन अविवाहित है। राजम्मा अपने भाई की संवेदनहीनता तथा उसके पुराने मूल्यों में विश्वास की मूक शिकार है। श्रीदेवी सबसे छोटी है और घर के बाहर की दुनिया से उसका अधिक सम्पर्क है। वह विद्रोही, उद्धत तथा लौकिक है।

यह सामंती परिवार निष्प्राण हो गया है। जमीन का बँटवारा हो चुका है तथा परम्परागत ढाँचा टूट रहा है। इस मृतप्रायः व्यवस्था के कुछ धूमायित मूल्य अभी भी जीवित हैं और उनका उत्तराधिकारी उन्नी पतनशील अतीत तथा अप्रीतिकार वर्तमान के बीच फँसा है। किसी भी कठिन परिस्थिति के उत्पन्न होने पर वह चूहे की तरह गहरे अंधेरे बिल में छिप जाता है। अपने खोखलेपन तथा अपराधभाव से भयाक्रांत होने पर वह नैराश्यपूर्ण अकेला होता है। परिणामतः धीरे-धीरे वह संभ्रांति की स्थिति में पहुँच जाता है। राजम्मा को दिनभर व्यस्त रखने वाले अनेक कार्यों में चूहेदानी में बन्द हो जाने वाले चूहों को गाँव के तालाब में एक घाट पर छोड़ना है। राजम्मा की मृत्यु होने पर उसी घाट पर उसका विसर्जन होता है। निर्देशक ने राजम्मा के जीवन में निहित करुणा को बहुत गहराई से अभिव्यक्त किया है। राजम्मा की मृत्यु के बाद उस घर में या बिल में उन्नी रह जाता है क्योंकि श्रीदेवी अपने प्रेमी के साथ पहले ही भाग निकली थी।

'एलिप्पथ्याम' के निर्देशक अदूरगोपालकृष्णन ने इस फिल्म के माध्यम से अपनी कला एवं प्रतिभा को प्रतिष्ठित किया है। अभिभूत कर देने वाली सुन्दर, मूर्त बिम्बों की रचना तथा कुशल कलाकार की तरह गति एवं लय पर नियंत्रण अदूर की विशेषताएँ हैं। मूर्त बिम्बों की अनेकार्थी परतें सिने-भाषा को अभिव्यंजक रूप प्रदान करती हैं। उनकी अन्य फिल्मों अनन्तरम तथा मथिलुकुल में भी यह बात देखी जा सकती है।

नाम में क्या धरा है?

भारतीय सिनेमा के इतिहास में मुख्यधारा के विरूद्ध प्रतिष्ठित यह आन्दोलन नया सिनेमा के नाम से आज विशेष रूप से जाना जाने लगा है। फिल्म समीक्षकों ने उसे न्यू वेव का नाम दिया तथा बाद में यह सिनेमा कलात्मक सिनेमा/ समानान्तर सिनेमा/ प्रयोगात्मक सिनेमा के नामों से भी रेखांकित हुआ। सच्चाई तो यह है कि इस सिनेमा का एक सर्वस्वीकृत नामकरण अभी तक नहीं हो सका है। आज इस सिनेमा के लिए सर्वाधिक प्रचलित नाम **नया सिनेमा** है। यह सिनेमा दर्शक के मन पर स्पष्ट छाप छोड़ता है। इसमें दर्शकों की संख्या कम होते हुए तथा बहुसंख्यक विरोधियों के बावजूद पिछले बीस वर्षों से भी अधिक नयेपन की चुनौती स्वीकार कर रहा है। आज बार-बार इस सिनेमा के समाप्त होने या मृत हो जाने की घोषणा की जा रही है। कहा जाता है कि दर्शक कहाँ हैं? इन कला-फिल्मों से न मनोरंजन होता है और न धन की वापसी। वे जनता तक नहीं पहुँच पातीं। इस प्रकार के कितने ही आरोप नया सिनेमा पर लगाए जा रहे हैं। तब क्या हम सचमुच नया सिनेमा की शवयात्रा के दर्शक बन रहे हैं। यदि ऐसा नहीं है तो वस्तुस्थिति क्या है? आज इसकी पड़ताल अधिक प्रासंगिक हो गयी है। इसको बिना व्यावसायिक या लोकप्रिय हिन्दी सिनेमा के चरित्र को समझे नहीं किया जा सकता है।

लोकप्रिय हिन्दी फिल्म एक फैन्टेसी होती है। उसमें सामाजिक स्थितियों का प्रदर्शन सत्य और यथार्थ दोनों ही होता है। लेकिन निर्देशक उसे अतिनाटकीयता से युक्त करके दर्शक को एक स्वप्नलोक में ले जाता है। दर्शक कुछ क्षणों के लिए अपने वास्तविक दुःखों या समस्याओं को भूल कर काल्पनिक आनन्द में डूब जाता है। नारी-पुरुषों के अवचेतन में छिपी आकांक्षाएँ जो सामाजिक मर्यादाओं के कारण व्यक्त नहीं हो पातीं, इस व्यावसायिक या लोकप्रिय सिनेमा के

माध्यम से चरितार्थ होती हैं। ऐसी फिल्मों का निर्देशक फिल्म के हर बिन्दु पर दर्शक के सहज, सरल तथा भावुक स्वभाव का शोषण करता है। इन फिल्मों के निर्माता, निर्देशक की दृष्टि कथानक के चुनाव, आलेख-लेखन (जिसमें संवादों की विशेष चुलबुली, तथा उत्तेजक भाषा सम्मिलित है) गीत : रचना, संगीत की ध्वनि, गति तथा ऐसे ही कैमरे द्वारा शॉट्स के संकलन पर रहती है जो धनोपलब्धि की आकांक्षा से प्रेरित होते हैं। अर्थ प्राप्ति का मुख्य लक्ष्य होने के कारण लोकप्रिय फिल्मों से जुड़े सभी लोगों की दृष्टि ऐसे अवसरों की तलाश में रहती है जहाँ सेक्स अधिक से अधिक उभारा जा सके। ऐसी फैंटेसी फिल्म अतृप्त आकांक्षाओं को तृप्त करने वाली होती है। इन फिल्मों के स्टार सिस्टम ने आम दर्शक के मन में स्टार के प्रति अतीन्द्रिय आकर्षण उत्पन्न किया है। अपने विशिष्ट परिधानों में स्टार को चमकदार बना देने वाली ये फिल्में आमदर्शक को हक्का-बक्का कर देती हैं। स्टार के भावुक, आदर्शपरक संवाद उसे महामानव के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

संक्षेप में संवाद, परिधान, सेट्स, गीत, रोमांस, स्वर्गिक परिवेश तथा अलौकिक शक्ति के संस्पर्श मात्र से अंधा देखने लगे, लंगड़ा चलने लगे, गूँगा बोलने लगे, तथा हृदय-रोगी दौड़ने लगे, लोकप्रिय तथा व्यावसायिक फिल्मों की देन है। गंगा के बीच तन-बदन में आग लगाने वाली छवि, स्क्रिप्ट में नायक-नायिका के बीच सेक्स का अद्भुत सुख तथा मरते समय भी नायक का हाथ नायिका के वक्ष पर होना लोकप्रिय फिल्मों की आम बातें हैं। दरअसल ऐसी फिल्मों का निर्देशक जीवन-मृत्यु के बीच उस सभी को भव्य बना देता है जिससे धन की बहुल वापसी सुरक्षित होती है। वस्तुतः व्यावसायिक सिनेमा सामाजिक समस्याओं को रोमांटिक रूप देता है और मौका पाते ही वह उन्हें अभद्र, अश्लील तथा अवास्तविक बना देता है। वह जनरुचि का शोषण करता है। अपार धनोपलब्धि करता हुआ देश में कालेधन को समृद्ध करता है।

शुरू से ही लोकप्रिय धारा के विरुद्ध जाने का जोखिम उठा कर नए सिनेमा ने पारम्परिक दर्शक खोने का जोखिम भी उठाया। नया सिनेमा किसी प्रकार के अंधविश्वासों को प्रश्रय नहीं देता वरन् उनके विरुद्ध काम करता है। यहाँ, प्रेम या रति का उद्गम मात्र कैमरे की छवियों से नहीं होता वरन् सामाजिक स्थितियों के परिवर्तन से स्त्री-पुरुषों के संबंधों के रूप में सामने प्रस्तुत होता है। यह निश्चित है कि ऐसी फिल्में जो कुछ नया दे सकें, समकालीन और विचारोत्तेजक हों। संख्या में मुख्यधारा की फार्मूला फिल्मों से कम होंगी। कलात्मक या प्रयोगात्मक फिल्मों का निर्माण करने वाले निर्देशक भी कम होंगे और उनके दर्शक भी कम होंगे। परिणामतः इनसे धन की वापसी भी कम होगी। पर यह कमी सापेक्ष है। उच्च कोटि की कला या साहित्य के सृजन में इस तरह के प्रश्न सदैव जुड़े रहते हैं और आज भी हैं। अपने समय के विरोधों एवं विपरीत परिस्थियों का सामना करना भी उच्चकोटि की रचनात्मकता का लक्षण है। एक बार जब यह रचनात्मकता स्वीकृत हो जाए तो फिर यही मुख्यधारा बन जाती है जो '90 के दशक में होने लगा है। '80 का वह सिनेमा जो तब छिटपुट प्रतिबद्ध दर्शक रखता था, अज शक्तिमान होकर लोकप्रियता पाने लगा है, तो वह मरा कैसे कहा जा सकता है?

नया सिनेमा दरअसल आधुनिक मनुष्य की प्रगति तथा मानवीय संस्कृति के विकास के लिए होने वाले संघर्ष की कहानी है। "मनुष्य" की "मनुष्य" के रूप में पहचान उसका केंद्रीय बिंदु है। इस पहचान की प्रतीति कराने के लिए इन फिल्मों का निर्देशक किसी कल्पित संसार की सृष्टि नहीं करता और न दिवास्वप्न देखता है।
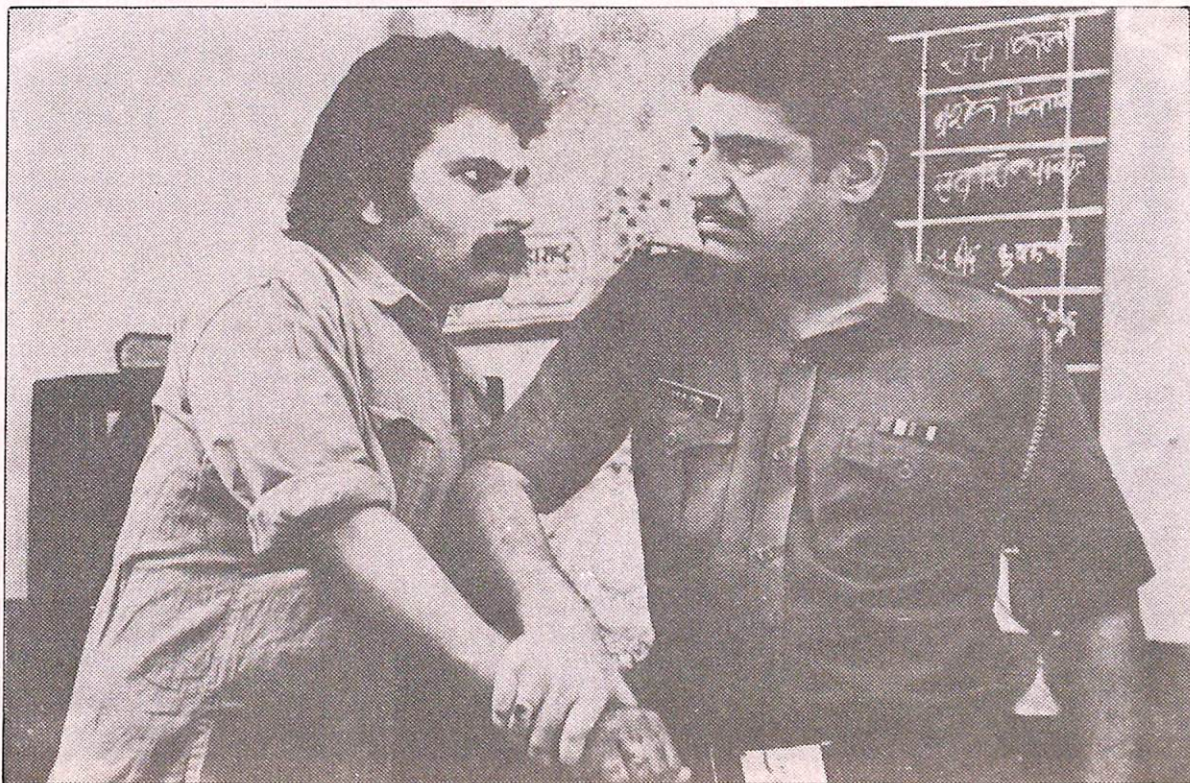
फिल्म : सलीम लंगड़े पर मत रो

उसका सरोकार रोजमर्रा की जिंदगी से है, उस संकट से है जिसका सामना आम आदमी कर रहा है। वह जीवन की साक्षात स्थितियों से अपनी कहानी चुनता है। वह 'मनुष्य' को उसकी संपूर्णता में देखता है, जो अच्छा भी है और बुरा भी है। इसलिए नया सिनेमा की फिल्मों में मानवीय जीवन की ऐसी अनेक प्रतिछवियाँ बिम्बित हुई हैं, जो सामान्यजन की होते हुए भी संवेदनशील हैं अतः इसके नायक-नायिका राजे-महाराजे, लखपति या धनकुबेर नहीं, मध्य और निम्नवर्गीय भारतीय हैं। इन सामान्यजनों के जीवन में व्याप्त मनोरंजन के तत्व को वह छोड़ नहीं देता। कलात्मकता के साथ उसका प्रयोग नया सिनेमा की अनेक फिल्मों में देखा जा सकता है। **हीरो हीरालाल** इसका सटीक उदाहरण है।

उत्कृष्ट कलाकृति मानी जाने वाली हर फिल्म, कैमरे की भाषा के तत्वों से बनी होती है। फिल्म में जो भी चाक्षुष होता है वह निर्देशक की अपनी दृष्टि और उसके निर्णय के आधार पर चयनित होता है। सत्यजीत राय ने सटीक शब्दों में इस बात को कहा है -"वस्तुतः चाक्षुप, विवरण-कथ्य, ध्वनि, दृश्य, भाव आदि सिनेमा के तत्वों का अपेक्षित सहअस्तित्व का सन्निधान ही सिने-कल को विशिष्ट अर्थ देता है। कला फिल्मों के विवेचन से यह देखा जा सकता है कि उनमें कथानक सदैव महत्वपूर्ण तत्व के रूप में उभर कर आया है। उसके प्रस्तुतिकरण तथा फिल्म की आंतरिक बुनावट में पूर्णतः संगति होती है। "नया सिनेमा" की अनेक फिल्में साहित्यिक कृतियों पर आधारित हैं। इन फिल्मों के निर्देशकों ने उन कहानियों के सिनेमा के लिए कच्चेमाल की तरह इस्तेमाल न करके, उन्हें एक नया साहित्यिक एवं कलात्मक आयाम भी दिया है। इस दृष्टि से कला फिल्मों के श्रेष्ठ निर्देशक सत्यजीत राय की "शतरंज के खिलाड़ी" फिल्म बहुत महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त "भुवनशोम" से लेकर "मिर्च मसाला" तक कितनी ही फिल्मों को प्रस्तुत किया जा सकता है। यह उस लोकप्रिय सिनेमा से नितांत भिन्न है, जिसमें कथानक के नाम पर स्टार छवि के अनुकूल कुछ घटनाओं का संकलन कर दिया जाता है।

वर्तमान जीवन के वैविध्य को उसकी आंतरिक संगति के साथ नया सिनेमा में नए आयाम के साथ प्रस्तुत किया गया है। वह समाज के भीतर टूटते-बिखरते जीवन मूल्यों पर अपनी दृष्टि केंद्रित करता है। परंपराओं तथा संस्कारों से ग्रस्त नर-नारी, निपट गरीबी, सामंती अत्याचार, भ्रष्ट व्यवस्था तथा स्त्री और पुरुष के मन के आवेग, सभी नए छायातपों में चाक्षुप हुए हैं।

आक्रोश में एक समसामयिक जीवन स्थिति के आधार पर भारतीय समाज के मूक तबके के अंग, एक शोषित, उत्पीड़ित व्यक्ति की कहानी वर्णित है। एक पुरुष जो आदिवासी है, जिस पर अपनी पत्नी की हत्या करने का आरोप लगाया जा रहा है। वह अपनी पत्नी के हत्यारे को जानता है, किंतु सत्य कह सकने में असमर्थ है। उसका वकील जिसके लिए स्वतंत्र रूप से यह पहला मुकदमा है, पूरी कोशिश के साथ उसे बचाना चाहता है। स्थानीय नेताओं, दादाओं एवं रोजगारियों की दुरभिसंधि उसे मूक बना देती है, लेकिन मूर्तबिम्बों में छिपा उसका आक्रोश बिम्बों की अर्थवत्ता में अभिव्यक्त हो उठा है। "भूमिका" में एक फिल्म-अभिनेत्री की अपना जीवन जीने की जिस उत्कंठा के आसपास

फिल्म : धारावी

फिल्म : २७ डाउन

कहानी का तानाबाना बिम्बित हुआ है, वह अप्रतिम है। एक प्रतिभा संपन्न, उज्जवल नारी के जीवन में एक अवांछित पति थोप दिया जाता है कि वह मन से कभी स्वीकार नहीं करती। अतः प्रायः होने वाली दाम्पत्य कलह में बाघनी के समान आक्रोशमय होकर अपनी आजादी की प्राप्ति के लिए संघर्ष करती है। फिल्म में प्रत्येक भाव, ध्वनि, संगीत तथा संदर्भ बड़ी सहानुभूति से नारी के चंडी रूप को तो प्रस्तुत करता ही है, उसे सामंती मूल्यों के संदर्भ में जायज भी ठहराता है। "राव साहेब" में भी नारी की शोचनीय स्थिति का कारण उसके जन्म-जन्मांतर के संस्कार मात्र नहीं हैं। आधुनिकता का दंभ भरने वाले तथा अंग्रेजियत-परस्त पुरुष के औपनिवेशिक संस्कार भारतीय स्त्री के जीवन की कितनी बड़ी त्रासदी बन सकते हैं, इस फिल्म में देखा जा सकता है। स्त्री-पुरुष संबंधों की गहराइयों के ही समान अम्मा अरियन (मलयालम) तथा न्यू दिल्ली टाइम्स (हिंदी) में भ्रष्ट राजनीति तथा अवमूल्यित नेतृत्व के मुखौटों का पर्दाफाश हुआ है।

यह स्पष्ट है कि इन कला फिल्मों ने एक आंदोलन का रूप ग्रहण किया और संपूर्ण फिल्म-संस्कृति तथा दर्शकों को प्रभावित किया। लेकिन किसी भी आंदोलन की कुछ सीमाएँ भी होती हैं। कोई भी कला-आंदोलन विशिष्ट परिस्थितियों की देन होता है। वह अपने उद्भवकालीन वैशिष्ट्य को सदैव बनाए नहीं रख सकता। कालांतर में वह शक्तिमान भी होता है और क्षीण भी होता है। समय के साथ उसमें परिवर्तन आता है जो उसकी जीवंतता का प्रमाण भी होता है। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वह एक समृद्ध परंपरा स्थापित करता है। व्यावसायिक सिनेमा या मुख्यधारा के विरुद्ध आज जो नया सिनेमा बन रहा है, उसमें परिवर्तन के स्पष्ट चिह्न दिखाई पड़ते हैं। आज नया सिनेमा परंपरागत रंगकलाओं के लोकप्रिय तत्वों को अपना रहा है। हास्य तथा मनोरंजन का समावेश व्यंजक की भाषा-व्याकरण तथा उसकी तकनीक के नए प्रयोग अपना कर जहाँ उसकी कलात्मकता को सुरक्षित रखता है, वहीं वह सशक्त कहानी, संगीत के विविध रूपों के सुंदर उपयोग, रंगों के साथ प्रयोग तथा लोकजीवन की जीवंत परंपराओं को ग्रहण करके अपने संकलन और कटिंग की प्रतिभा से वह लोकप्रिय फिल्म बना देता है। केतन मेहता की "भवनी भवाई" (गुजराती) तथा "मिर्च मसाला" में इसे देखा जा सकता है। वे स्वयं इस बात को मानते हैं कि "जो जनता द्वारा देखी न जा सके, ऐसी फिल्म बनाने का कोई लक्ष्य नहीं होता।" इस दृष्टि से "मिर्च मसाला" का विवेचन महत्वपूर्ण होगा।

मिर्च मसाला में कथ्य, चरित्र तथा रूपविधान संलीन होकर नाटकीय अंत प्रस्तुत करते हैं। निर्देशक ने इसे रूप देने में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। फिल्म में विषयवस्तु की संश्लेषणात्मकता से स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और विकसित होकर तीव्र होती हैं तथा लोकजीवन, परंपरा एवं रंगकलाओं पर निर्भर करती हैं। इस शैली से फिल्म में प्रत्येक घटना तथा चरित्र महत्वपूर्ण बन जाता है। संरचना का कसाव अर्थ को गहराई से व्यंजित करता है, जिससे हास्यास्पद स्थितियों के बीच मनुष्य की विद्रूपता उसकी नियति के व्यंग्य में परिणत होती है।

फिल्म का कथ्य इस प्रकार है- सौराष्ट्र के एक छोटे गाँव की कहानी गुजराती के कहानीकार चुनीलाल मेदिया की रचना पर आधारित है। गाँव की एक स्त्री सोनबाई (स्मिता पाटिल) सूबेदार (नसीरुद्दीन शाह) का ध्यान आकर्षित करती है। वह विदेशी शक्ति का प्रतिनिधि है। उसने गाँव के बाहर डेरा डाल रखा है। गाँव के लोगों पर उसकी ताकत और उसके आदमियों का रौब तथा आतंक है। वह अपने समय की तकनीकी शक्ति का भी प्रतिनिधि है जो हवा भर कर बजने वाले ग्रामोफोन से ध्वनित है। गाँव का 'मुखी' औरतें-लड़कियाँ उपलब्ध कराता है।

सोनबाई से थप्पड़ खा कर वह अपमानित होता है। अपने आदमियों को उसका पीछा करने तथा पकड़ लाने की आज्ञा देता है। सोनबाई गाँव के लालमिर्च बनाने वाले कारखाने में छिप जाती है। कारखाने का बूढ़ा बंदूकधारी चौकादार बड़े द्वार पर अंदर से ताला बंद कर लेता है। सोनवाई का पीछा करने वाले सिपाहियों के धमकाने पर भी ताला नहीं खोलता। वहाँ कारखाने में और भी औरतें काम करने आई हुई हैं।

क्रुद्ध सूबेदार गाँव को जला देने की धमकी देता है। वह सोनबाई को तत्काल उसे सौंप देने की माँग करता है। तनाव बढ़ता है। मुखी गाँव के बड़े-बुजुर्गों की सभा बुलाता है। वे निर्णय करते हैं कि गाँव के हित में सोनबाई को सौंप देना चाहिए। लेकिन सोनबाई समर्पण के विरुद्ध मर जाने को तैयार है। मुखी की पत्नी (दीप्ति नवल) सूबेदार के अत्याचार तथा गाँव के निर्णय के विरुद्ध कुछ स्त्रियों को जमा करती है, लेकिन उन्हें कठोरता से एक तरफ कर दिया जाता है। संघर्ष और तनाव के बीच गाँव में दो वर्गों का ध्रुवीकरण हो जाता है। कारखाने के अंदर की स्त्रियाँ तथा उसका समर्थन करने वाली गाँव की स्त्रियाँ तथा बाहर का दमनकारी तंत्र जिसमें गाँव के समस्त पुरुषजन भी हैं। इन दोनों के बीच में खड़ा है बूढ़ा चौकीदार अब्बू मियाँ अपने बचे हुए साहस तथा मानवीय गौरव के साथ।

फिल्म में सामाजिक यथार्थ को रूपक कथा से मंडित करके अधिक प्रभावी बना दिया है। रंगों के इतने सार्थक और मोहक प्रयोग से लगता है जैसे संपूर्ण लोकजीवन रंगों में जीवंत हो उठा है। लालमिर्च का सुंदर रूपक उसके अनेक तत्वों को उभारता है जो धर्म विधि-विधानों के साथ जीवन के पर्ति आसक्ति का भी द्योतक है। किसी प्रकार के समझौते से रहित "मिर्च मसाला" एक कलात्मक लोकप्रिय फिल्म है।

शुरूआती दौर में नया सिनेमा युगों से गरीबी और जेहालत झेलते भारतीय शोषित सर्वहारा के भीतर संचित व्यवस्था विरोधी क्रोध तथा उसके व्यवस्था द्वारा दमन के अपना विषय बनाता है। वहीं विकास की प्रक्रिया में आगे वह समसामयिक जीवन में निरंतर बढ़ती हुई हिंसा, सांप्रदायिकता से उत्पन्न तनावों को भी अनेक स्तरीय संदर्भों में प्रस्तुत करता है, जहाँ शोषित भी कभी मौका लगने पर शोषक बन बैठता है। इससे यह बात सिद्धि होती है कि क्रमशः मुख्य धारा सिनेमा से ही जुड़े रहे विषयों के क्षेत्र में भी प्रवेश करके नया सिनेमा सार्थकता के साथ उसका कलात्मक ढाँचे में प्रस्तुत कर सकता है।

इस दृष्टि से अल्पसंख्यकों की सामाजिक स्थिति तथा सांप्रदायिकता के मूल कारणों की खोज करती हुई फिल्म "सलीम लंगड़े पे मत रो" एक बहुत महत्वपूर्ण रचना है, जिसे हम सथ्यू के "गर्म हवा" की अगली और अनिवार्य कड़ी भी मान सकते हैं। "गर्म हवा" में जहाँ निर्देशक सथ्यू समस्या के मूल में जाते हैं और प्रश्न करते हैं- "पाकिस्तान कैसे बना?" क्यों इसकी सृष्टि हुई और कहाँ गलती हुई? सईद मिर्जा 'सलीम'... में सवाल बढ़ाते हैं कि उस अतीत को जो इतिहास बन चुका है उसे वर्तमान से कैसे जोड़ा जाए? सांप्रदायिकता जैसी भयावह समस्या को इतिहास व्यापी गहरी दृष्टि से देखना और आज के समय में समझना-समझना निर्देशक की जागरूकता तथा देश और समाज के प्रति उसकी निष्ठा की सशक्त अभिव्यक्ति है। निर्देशक ने कथ्य को ऊपरी तौर से नहीं लिया है। देश-समाज की सतह पर होने वाली हलचलों से नीचे की बुनियादी बातों की पर्तों को इस फिल्म में खोला गया है। सईद मिर्जा के लिए सड़क पर एक व्यक्ति की लाश एक व्यक्तिगत घटना उसकी अक्षमताओं के लिए हो सकती है- लेकिन यह एक ऐतिहासिक घटना भी है। बुनियादी बात मनुष्य को देखने या न देखने की है।

"सलीम लंगड़े ... की छवि एक ऐसे मुसलमान युवक की है जो विभाजन के बाद भारत में जन्मा और पला है। वह महानगर की भीड़भाड़ में जिंदगी बिता रहा है। उसकी जिंदगी हिंसा-द्वेष तथा भीतरी दुनिया के घात-प्रतिघात से भरी हुई है। गरीबा तथा कमजोर प्रेम प्रसंग के साथ कॉफी के कुछ प्यालों पर सारा दिन बिता देना उसकी निर्याति है। अपनी सड़क का यह "दादा" महान स्वप्न भी देखता है। लेकिन क्या सलीम बचपन से ही ऐसा था? नहीं। शिष्ट, जागरुक मुसलमान परिवार के इस युवक की सबसे बड़ी आकाँक्षा थी एक अच्छी नौकरी पाना। नौकरी की तलाश में सलीम उस हद तक पहुँच गया जहाँ से उसका लौटना संभव नहीं हो सका। इस दौर में उसकी भेंट असलम से होती है, जिसका जीवन भी सलीम की तरह अभावों से भरा था, लेकिन शिक्षा तथा जीवन के प्रति उसका प्रत्यक्ष बोध उसकी सबसे बड़ी शक्ति है। वह भिवंडी में हुए दंगों पर बनी फिल्म भी देखता है। इस बीच उसके गिरोह के दोस्त की सुनसान मृत्यु होती है। ये घटनाएँ युवा सलीम को झकझोरती हैं। उसके लिए सब उत्तर रहित प्रश्न बन जाते हैं जो उसे उसके सर्शनाश होने तक ले जाते हैं। सलीम ऐसी दुनिया में पहुँच जाता है, जिसे निर्देशक नागपाड़ा, कमाठीपुरा तथा दो टंकी लेन की जीवंत और यथार्य दुनिया होने का दावा करता है। "यह दुनिया तस्करों, मुनाफाखोरों, वेश्याओं तथा दलालों की दुनिया है। यह वह दुनिया है जहाँ नैतिक मूल्य जनता के सिर के ऊपर खड़े हैं। यह पुलिस तथा चोरों के सहअस्तित्व की दुनिया है। इस दुनिया में वे जिंदा हैं चाकू के साथ और मरते हैं तो भी उसी के साथ। इस दुनिया में लोग 'हम' और 'वे' से समझे जाते हैं विशेषकर जब प्रश्न अभावों का होता है। इस सांप्रदायिक दुनिया में सलीम पैदा हुआ और इसी में वह समस्त हिंसा, धर्मान्धिताओं एवं रागद्वेषों के साथ बड़ा हुआ, जिनसे अज्ञानता जन्मती है।" इस सवकी निष्पादन फिल्म में सटीक व्यंजना से होती है-"वे मस्जिद- मंदिर के लिए लड़ते हैं और गटर में मरते हैं।" जीवन का कितना बड़ा सत्य 'मनुष्य' समझ नहीं पाता। एक का बलिदान दूसरे की संतुष्टि का कारण बनता है।

वस्तुतः यह फिल्म भारत-पाक विभाजन के हिंदू-मुस्लिम सवालों से नहीं जुड़ी है। यह फिल्म एक भारतीय अल्पसंख्यक संप्रदाय की नवोदित भावनाओं सहित कहीं अधिक गहरे एक भारतीय युवक की बेकारी तथा उससे उत्पान्न होने वाली सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों को तथा उसकी त्रासदी को बहुत गहराई से व्यंजित करती है। यदि फिल्म में प्रयुक्त संज्ञाएँ बदल दी जाएँ तो यह स्थिति भारत के किसी भी संप्रदाय जाति या वर्ग के युवा की हो सकती है। कहानी का प्रस्तुतिकरण अत्यंत प्रभावशाली है। सलीम की मृत्यु के बाद कैफी आजमी की एक कविता का पार्श्व गायन के द्वारा ऐसा सुंदर उपयोग किया गया है कि बिंबों के माध्यम से भाषा की प्रेषणीय शक्ति निखर उठी।

कुल मिलाकर पिछले दो दशक की इन फिल्मों को ईमानदारी से परखने पर स्पष्ट होता है कि यह नया सिनेमा फिल्म संस्कृति के माध्यम से निरंतर भारतीय चेतना का विस्तार करने का प्रयास कर रहा है। 'नया सिनेमा' ने मनुष्य के उस बिंब को संरक्षित किया है, जिसमें 'समय सत्य' के दवाओं से नए विश्वास का स्थापन होता है। मानवीय जीवन में नए मानदंड स्थापित होते हैं। नया सिनेमा में मनुष्य अपने समस्त परिवेश के साथ प्रस्तुत होने के कारण अधिक आत्मीय लगता है। भारत के कितने ही निर्देशक आज इस महत्वपूर्ण रचनाधारा में जुटे हुए हैं तथा उनके साथ निरंतर नए नाम भी जुड़ते जा रहे हैं। ●

फिल्म पत्रकारिता : विवाद ही विवाद

● **फ़िरोज रंगूनवाला**

भारत में फ़िल्म पत्रकारिता की शुरूआत काफी शालीन स्वरूप में हुई थी। इसने उत्कृष्ट, गंभीर और समालोचनात्मक लेखन के मानकों पर चलते हुए फ़िल्म वालों और सिनेप्रेमियों के बीच एक संबंध-सूत्र का काम किया। यह स्वस्थ परंपरा १९७० तक जारी रही। इसके बाद कुछ ऐसी फ़िल्म पत्रिकाएँ चलन में आईं, जिन्होंने कलाकारों के निजी जीवन में ताका-झाँकी को ही महत्वपूर्ण समझा। मानव-मन की सहज जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण लोग इन पत्रिकाओं की तरफ जमकर आकर्षित हुए। भाषा के प्रयोग और विषयवस्तु के लिहाज से 'गॉसिप पत्रिकाओं' का स्तर काफी हल्का होता था। अंग्रेजी के ऊटपटाँग प्रयोग और हिन्दी के साथ इसके अपमिश्रण ने दोनों भाषाओं की दुर्दशा की।

भारत में सिनेमालेखन का इतिहास भारतीय सिनेमा जितना ही पुराना है। १८९६-९७ से 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में फ़िल्म संबंधी लेख छपना शुरू हो गए थे। 'पुंडलीक' और 'राजा हरिश्चंद्र' ऐसी पहली दो फ़िल्में थीं, जिन पर फ़िल्म समीक्षकों की कलम चली। बीस के दशक में प्रकाशित होने वाली एक पत्रिका **'मौज-मजा'** में कुछ पृष्ठों पर नियमित रूप से फ़िल्म सामग्री प्रकाशित होती थी। इसके बाद 'चित्रपट' (गुजराती) और 'मोशन पिक्चर्स मासिक', फ़िल्म इंडिया, सिने वॉयस और 'साऊँड' आदि फ़िल्म-पत्रिकाएँ अस्तित्व में आईं। १९५१ में 'स्क्रीन' के प्रकाशन के साथ फ़िल्म पत्रकारिता के ऊँचे मापदंड स्थापित हुए। 'फ़िल्मफेयर' ने इस परंपरा को कुछ समय तक बरकरार रखा, लेकिन बाद में अपनी विश्वसनीयता खोने के कारण यह पत्रिका न इधर की रही न उधर की।

इन उत्कृष्ट फ़िल्म पत्रिकाओं के साथ कुछ स्कैंडलबाज पत्रिकाएँ भी पनपती रहीं। जिन्होंने आज कलाकारों और फ़िल्म लेखकों के बीच विद्वेषपूर्ण स्थिति पैदा कर दी है। हाल ही में जिस तरह का विवाद इनके बीच हुआ, वो किसी युद्ध से कम नहीं था। पंद्रह वर्ष पूर्व भी फ़िल्म-पत्रकारों और एक्टरों के मध्य इस तरह का एक विवाद हो चुका है। तब बंबई के ताज होटल में दिलीप कुमार, राजेंद्र कुमार, जीनत अमान, फ़िरोज खान, जया बच्चन आदि कलाकारों ने फ़िल्म लेखकों के समक्ष अपनी नाराजगी दर्ज कराई थी। फ़िरोज खान ने 'फ़िल्म फेयर' के तत्कालीन संपादक 'आर.के. करंजिया' का ध्यान पत्रिका में छपे उनके एक साक्षात्कार की तरफ खींचा, जो उन्होंने दिया ही नहीं था। जीनत अमान और जया बच्चन ने महिला फ़िल्म-पत्रकारों द्वारा अश्लील लेखन को प्रोत्साहन दिए जाने को लेकर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। लेकिन बाद में यह सारा मामला ठंडा पड़ गया।

इस बार कलाकार अपने पक्ष में दृढ़प्रतिज्ञ नजर आते हैं। अनुपम खेर द्वारा 'स्टार डस्ट' पत्रिका के एक स्तंभ लेखक को मारा गया तमाचा फ़िल्मी पत्रिकाओं के गैरजिम्मेदाराना रवैए के प्रति कलाकारों के क्षोभ का प्रतीक है। वास्तविक कहानी कुछ यों हैं कि अनुपम ने एक नई अभिनेत्री ममता कुलकर्णी की बहन का सिर्फ
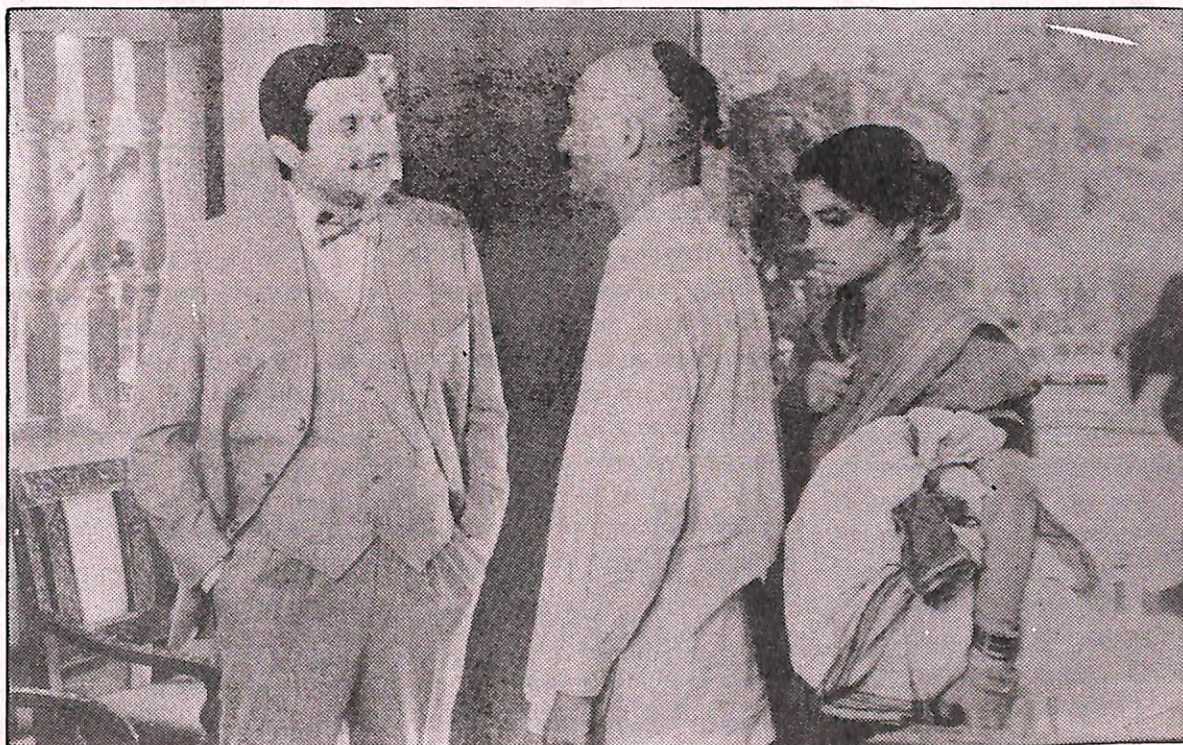
अनुपम खेर : विवादों के घेरे में

हाथ दाबा था। इसे तोड़-मरोड़ कर पत्रिका ने खेर और संबंधित लड़की के बीच अंतरंग संबंधों पर एक चटपटी दास्तान छाप दी। अनुपम को सफाई का मौका भी नहीं दिया गया, उन्हें फ़िल्म-पत्रकार महोदय उनकी जासूसी करने लगे।

अनुपम द्वारा न्यायालय का सहारा लेने पर भी खास नतीजा नहीं निकला। पत्रिका पर ५०० रु. के जुर्माने को छोड़ कोई कार्रवाई नहीं की गई। जाहिर है सितारों को बदनाम कर लाखों रु. कमाने वाली फ़िल्म पत्रिका इस मामूली जुर्माने को बतौर सीख लेने से रही। लिहाजा कलाकारों ने एकजुट होकर खुद फ़िल्म पत्रकारों को सबक सिखाने का फैसला किया। सिने कलाकार संघ के झंडे तले प्रमुख फ़िल्म एक्टर एकत्र हुए, और मिथुन चक्रवर्ती के नेतृत्व में उन्होंने सिने-पत्रिकाओं के खिलाफ बँदूक तान दी। संजय दत्त/ अनिल कपूर/मिथुन आदि के साथ ६० कलाकारों के एक जुलूस ने 'स्टार डस्ट' के कार्यालय के समक्ष विरोध प्रदर्शन करते हुए पत्रिका की प्रतियाँ जलाई।

फ़िल्म कलाकार परिसंघ द्वारा ६ पत्रिकाओं के साथ पूरी तरह असहयोग का निर्णय लिया गया। 'स्टारडस्ट'/'मूवी'/'सिने-ब्लिट्ज'/'स्टार एंड स्टाइल'/'शो टाइम'/और 'फिल्मसिटी' पत्रिकाओं के लिए कलाकारों के इंटरव्यू या फोटो-सेशन प्रतिबंधित कर दिए गए। यहाँ तक सब की सहानुभूति फिल्म वालों के साथ थी, लेकिन जब प्रतिष्ठित और जिम्मेदार प्रकाशनों पर भी कलाकार अन्यथा बरसने लगे तो सारा पत्रकार समुदाय एक तरफ हो गया। और दोनों तरफ से आरोपों-प्रत्यारोपों की झड़ी सी लग गई। पत्रकारों का कहना था कि फिल्म इंडस्ट्री गुंडों द्वारा हथिया ली गई है। लेकिन सवाल उठता है कि फिर अखबार वाले उनके सस्ते प्रचार में क्यों जुटे रहते हैं? उन्हें समाज के लिए कोई अधिक सार्थक काम करना चाहिए।

कुछ पत्रिकाओं ने अभिनेता शाहरुख खान पर गुँडागर्दी करने और एक फिल्म पत्रिका की महिला संपादक के साथ अभद्रतापूर्वक पेश आने का आरोप लगाया था। मगर क्या स्वयं अफवाहबाज पत्रिकाओं का रवैया अभद्र नहीं है? इसी तरह मिथुन चक्रवर्ती पर कुछ लोग 'सिने कलाकार संघ' के माध्यम से फिल्म वालों को बरगलाने का आरोप लगाते हैं। किंतु कलाकारों को एक मंच के नीचे लाने में बुराई क्या है? इसके बगैर उनमें अनुशासन कहाँ से आएगा?

फिल्म कलाकारों और अखबार वालों के बीच तनातनी की इस बीच कई छुटपुट घटनाएँ हुई हैं। पिछले दिनों 'फिरोज खान' और स्टारडस्ट के मालिक 'नारी हिरा' के बीच एक होटल में झड़प हो गई थी। प्रतिबंधित पत्रिकाओं के साथ व्यवहार रखने के लिए कुछ कलाकारों पर किया गया जुर्माना भी चर्चा का विषय बना। सलमान खान ने एक ऐसी ही पत्रिका को फोटो-सेशन देने पर माफी माँगी थी। हालाँकि सफाई में उन्होंने छायाकार से अपने व्यक्तिगत संबंधों का हवाला दिया। लेकिन सच्चाई ये है कि फिल्मी सितारे किसी भी तरह प्रचार पाने का मोह संवरण नहीं कर पाते।

सितारों की आपसी खींचातानी और मतभेदों का उनकी एकता पर बुरा असर पड़ा। देव आनंद खासतौर पर इस मामले में हमेशा अपने अड़ियल रवैये के लिए प्रसिद्ध रहे हैं और फिल्म इंडस्ट्री में उन्हें 'द्रोही' माना जाता है। कुछ वर्षों पूर्व फिल्मी कलाकारों के एक साथ काफी फिल्मों में काम करने पर प्रतिबंध लगाया गया था। मुमताज एक ऐसी ही अभिनेत्री थीं, जिनके फिल्मी अनुबंध इस नियम द्वारा निर्धारित सीमा को छू रहे थे। देव आनंद ने प्रतिबंध की परवाह न करते हुए मुमताज को न केवल अनुबंधित किया, बल्कि नियम लागू करने के लिए फिल्म कलाकार परिसंघ की भी जमकर छीछालेदर की। परिसंघ द्वारा फिल्म पत्रिकाओं से असहयोग के नए नियमों को लेकर इंडस्ट्री में दो धड़े बन गए हैं। देव आनंद के साथ शत्रुघ्न सिन्हा, राज बब्बर, शेखर सुमन, पूजा बेदी आदि कुछ कलाकारों ने पिछले दिनों इस संबंध में अपना विरोध प्रकट किया। समझा जाता है कि इसके पीछे सितारों के व्यक्तिगत मतभेद की भूमिका प्रमुख थी। साथ ही प्रचार के भूखे कुछेक कलाकार संघ के फैसले से जले-भुने बैठे थे। बहरहाल असंतुष्ट कलाकारों का गुट अल्पमत में है, और उनसे सितारों का प्रेस-विरोधी आंदोलन अधिक प्रभावित नजर नहीं आता। कलाकारों के लिए जीत-पत्रिकारिता के खिलाफ जिहाद का इससे अच्छा अवसर नहीं आएगा। पत्रिकाओं द्वारा अनाप-शनाप लिखने से उन्हें सामाजिक और पारिवारिक जीवन में जिस तरह की परेशानियाँ झेलना पड़ती है, उसे देखते हुए उनकी नाराजगी बिल्कुल उचित है, किंतु इसके लिए उन्हें संयमित और एकजुट होकर अपनी बात रखनी होगी।

साथ ही फिल्म-पत्रिकाओं को यह बात समझनी चाहिए, कि प्रेस की स्वतंत्राता के नाम पर अफवाहबाजी, चरित्र-हनन और अश्लीलता को खोजपूर्ण पत्रिकारिता की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। ऐसा करने से सिनेमा संबंधी लेखन की मूल आत्मा खंडित होगी। क्या यह अफसोस की बात नहीं कि फिल्म-पत्रकार कलाकारों पर कीचड़ उछालने में वक्त बरबाद कर रहे हैं, और सिनेमा के बारे में कुछ नहीं लिखा जा रहा? ●

सिनेमा की शताब्दी कैसे मनाएं ?

अट्ठाइस दिसम्बर 1895 को फ्रांस के 'लुमियर' बंधुओं द्वारा चलचित्र-निर्माण की शुरूआत के साथ सिनेमा की बेबुनियाद रखी गई थी। संयोगवश विश्व का पहला फिल्म-शो 7 जुलाई 1896 को भारत में आयोजित हुआ था। इस ऐतिहासिक घटना के महत्व को देखते हुए देश में सिनेमा के शताब्दी समारोह के आयोजन का विचार किया जा रहा है। समारोह के स्वरूप को लेकर फिल्म माध्यम से जुड़े प्रमुख व्यक्तियों की राय जानने की कोशिश की गई। उनके विचार प्रस्तुत है :

सुरेश छाबरिया

(निदेशक, राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार, पुणे)

इस अत्यंत महत्वपूर्ण अवसर पर कुछ सार्थक प्रयास किए जाने चाहिए। मेरे ख्याल में आयोजन को सिर्फ भारत में सीमित रखना उचित नहीं होगा। देश के बाहर भी समारोह के दौरान सिनेमा सम्बंधी विचारगोष्ठियों, सेमिनार और कार्यशालाएँ आयोजित होना चाहिए। जल्दी ही मई 1993 में होने वाली एक संगोष्ठी में हम लोग इनका स्वरूप तय करेंगे।

'फिल्म आर्काइव्ज़' इस अवसर के लिए कुछ महत्वपूर्ण फिल्मों की प्रतिलिपियाँ तैयार कर रहा है, जो समारोह में प्रदर्शित होंगी। मैं समझता हूँ प्रमुख फिल्मों का सिंहावलोकन सिनेमा की ऐतिहासिक महत्ता स्थापित करने में सहायक रहेगा।

सुनीत टंडन

(उपनिदेशक, फिल्मोत्सव निदेशालय, दिल्ली)

फिल्मोत्सव निदेशालय का मुख्य काम देश में फिल्म समारोहों के आयोजन से जुड़ा है। इसलिए सिनेमा की शताब्दी मनाने में हम

सक्रिय योगदान नहीं दे सकेंगे। वैसे भी हमारे पास संसाधनों की भारी कमी है। सरकार को आयोजन के लिए अलग से अनुदान देना चाहिए। देश का फिल्म उद्योग भी सौ वर्ष पुराने भारतीय सिने-इतिहास की शताब्दी मनाने हेतु सरकार से सहयोग करे, तो बेहतर होगा।

सतीश बहादुर
(फिल्म एवं दूरदर्शन संस्थान पूना के भूतपूर्व प्राध्यापक)

निश्चित रूप से यह एक ऐतिहासिक अवसर है। मगर इसके आयोजन की ज़िम्मेदारी कौन लेगा, फिल्म उद्योग? मुझे नहीं लगता कि भारत में फिल्म उद्योग जैसी कोई चीज़ है। ऐसा मैं इसलिए कर रहा हूँ, क्योंकि पिछले सौ सालों के इतिहास में फिल्म वालों ने अपनी बेहतरी के लिए संगठित रूप से कुछ नहीं किया है। सिर्फ कुछ शीर्ष निकाय बना लेने भर से उनका व्यवस्था-तंत्र मज़बूत नहीं हो जाता।

मेरे ख्याल में सिनेमा की शताब्दी के मौके पर भारतीय फिल्मों के शोधपरक अध्ययन द्वारा हम इस समारोह को एक सार्थक आयाम दे सकते है। अच्छे सिनेमा के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयास वांछनीय होंगे। मसलन देश भर में छोटे सिनेमाघरों की संख्या में बढ़ौत्री कर वहाँ उत्कृष्ट फिल्में दिखाई जानी चाहिए।

लेकिन ऐसी उम्मीद दूर की कौड़ी लगती है। फिल्म शताब्दी वर्ष आएगा और गुज़र जाएगा। कुछ मंत्री, कुछ सरकारी अधिकारी, कुछ फिल्म हस्तियाँ एकत्र होंगी - और बस! एक बेकार का आयोजन सम्पन्न हो जाएगा।

जान.एस. कुमारमंगलम
(डीन, फिल्म एवं दूरदर्शन संस्थान, पूना)

सिनेमा की तकनीक और 'फॉर्म' में पिछले सौ सालों के दौरान क्रांतिकारी परिवर्तन आए हैं। इसलिए मेरी नज़र में इन परिवर्तनों का एक गहन विवेचनात्मक अध्ययन शताब्दी समारोह के अवसर पर उचित होगा। सिनेमा के इतिहास पर सूक्ष्म दृष्टिपात कर के ही हम इसके भविष्य का प्रारूप बना सकते हैं। वस्तुतः इस तरह का अध्ययन बहुत पहले शुरू हो जाना चाहिए था, बहरहाल अभी भी देरी नहीं हुई। फिल्म आर्काइव्ज़ जैसी संस्थाओं को मिल कर इस दिशा में प्रयत्न करने चाहिए। तकनीकी क्रांति के इस दौर में सिनेमा का विकास तकनीक की कसौटी पर आँकना आवश्यक है। ●

फिल्म अभिलेखागार : नई जमीन पर

● **शशिकांत किणीकर**

देश में फिल्म संस्कृति के प्रचार-प्रसार और फिल्मी विरासत को संरक्षित रखने के उद्देश्य से १४ फरवरी १९६४ को पूना में राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार (आर्काइव्ज) की स्थापना की गई थी। तब से आज तक इस संस्थान ने अपनी दुष्कर भूमिका को बखूबी निभाया है। फिल्मों के संग्रह और संरक्षण के अलावा सिनेमा संबंधी अन्य वस्तुएँ भी यहाँ सुरक्षित हैं। इसकी स्थापना के वक्त तक बहुत सी फिल्म सामग्री पर्याप्त सावधानी के अभाव में इधर-उधर हो चुकी थीं लेकिन 'आर्काइव्ज' ने इनके संग्रह की दिशा में सार्थक प्रयास करते हुए कई लुप्तप्राय फिल्म पांडुलिपियों छायाचित्र प्रचार सामग्री और सिनेमा संबंधी साहित्य को ढूँढ निकाला।

'आर्काइव्ज' को एक सुव्यवस्थित स्वरूप देने का काम इसके प्रथम निदेशक पी.के. नायर ने किया था। पिछले वर्ष उनकी सेवानिवृत्ति के बाद नए निदेशक सुरेश छाबरिया ने इस जिम्मेदारी को सफलतापूर्वक संभाला है। उनकी देख-रेख में कुछ महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए। फिल्म संरक्षण के लिए एक अत्याधुनिक वातानुकूलित कक्ष तैयार हुआ। जिन फिल्मों की मूल प्रतिलिपियाँ खराब हो चुकी थीं, उनके नए प्रिंट्स बनवाए गए। इसके अलावा दो फिल्म शोधन मशीनों को श्री छाबरिया ने पुनः चालू करवाया, जो पिछले कई सालों से बेकार पड़ी थीं। फिल्मों के संग्रह में भी लगातार अभिवृद्धि हो रही है। इस वर्ष 'आर्काइव्ज' ने विदेशों से सौ फिल्में मंगवाईं। इसके अलावा राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित ३२ नई फिल्मों का समावेश भी संग्रह में किया गया। वर्ष में एकत्र की गई अन्य फिल्म सामग्रियों में करीब १५०० फिल्म दृश्य (स्टिल्स), ७००० समाचार संदर्भ, ८७ पोस्टर्स, ८० ग्रामोफोन रिकार्ड, ३२८ फिल्म पटकथाएँ, ४९ गीत पुस्तिकाएँ, ३०० सिनेमा संबंधी किताबें शामिल हैं। इसी साल फिल्म अभिलेखागार ने १९३३ में बनी एक द्विभाषी (हिन्दी मराठी) फिल्म 'कुरूक्षेत्र' का अत्यंत दुर्लभ प्रिंट भी हासिल किया। इसे एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जा रहा है। चालीस के दशक में बनी कुछ अन्य फिल्में संग्रहित करने के लिए भी अभिलेखागार के अधिकारी प्रयासरत हैं।

सिनेमा के सांस्कृतिक दृष्टि से प्रचार-प्रसार के लिए फिल्म आर्काइव्ज द्वारा देश भर में विभिन्न संस्थाओं एवं संगठनों को फिल्में उपलब्ध कराई जाती हैं। इसके अलावा प्रसिद्ध फिल्मकारों के जीवन और कृतित्व पर जानकारी परक आलेखों का प्रकाशन भी यहाँ से होता है। १९९२ में फिल्म समालोचना विषय पर एक शैक्षणिक कार्यक्रम आयोजित किया था, जिसमें काफी लोगों ने रुचि ली।

फिल्म अभिलेखागार इन दिनों नवनिर्माण की प्रक्रिया में हैं। फिल्म संबंधी विभिन्न सूचनाओं के संग्रह हेतु अब कम्प्यूटरों का उपयोग शुरू किया जा चुका हैं। 'आर्काइव्ज' के निर्माणाधीन नए भवन में कंप्यूटरों के अलावा कई अन्य अत्याधुनिक सुविधाएँ भी उपलब्ध होंगी। ●

खण्ड : आठ : फिल्म साहित्य

भारतीय फिल्मों पर उपलब्ध साहित्य

*भारतीय सिनेमा की सबसे बड़ी ट्रेजेडी यह है कि देखने को तो हजारों फिल्में हैं, मगर उनके बारे में अध्ययन, विश्लेषण अथवा शोध करने के लिए पुस्तकें नहीं के बराबर हैं। हिन्दी सिनेमा के बारे में जो कुछ भी उपलब्ध है, वह अँग्रेजी, मराठी, गुजराती या अन्य भाषाओं में है। फिल्म-प्रेस ने इस दिशा में कभी कोई गम्भीर प्रयास नहीं किए और न कोई हिन्दी प्रकाशक मशाल लेकर चला है। यहाँ हम पहली बार पिछले चार-पाँच दशकों में प्रकाशित पुस्तकों/स्मारिकाओं /पत्रिकाओं /पुस्तिकाओं की सूची प्रकाशित कर रहे हैं, जो सम्पूर्ण न होते हुए भी महत्वपूर्ण है। फिल्म माध्यम के विद्यार्थियों /शोधार्थियों के लिए निश्चित ही यह उपयोगी प्रमाणित होगी * सम्पादक*

संकेत : (1) पुस्तक का नाम (2) लेखक/संपादक/संकलनकर्ता का नाम (3) प्रकाशन वर्ष/पुस्तक का मूल्य (4) प्रकाशक का नाम व पता * लेखक/संपादक/संकलनकर्ता का उल्लेख नहीं* प्रकाशन वर्ष का उल्लेख नहीं* मूल्य का उल्लेख नहीं * प्रकाशक का उल्लेख नहीं।

फिल्म इतिहास

1. भारतीय फिल्मों की कहानी (हिन्दी)
2. बच्चन श्रीवास्तव
3. 1962 रु. 4-50
4. राज्यपाल एण्ड सन्स, पोस्ट बॉक्स 1064 दिल्ली

1. इंडियन फिल्म (अँगरेजी)
2. एरिक बार्नो एवं एस. कृष्णास्वामी
3. 1963 रु. 45-00
4. कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क लंदन, ऑक्सफोर्ड यूनिवसिटी प्रेस, न्यूयार्क, नई दिल्ली।

1. प्रभात काल (मराठी)
2. शांताराम आठवले
3. 1965 रु. 15-00
4. स.कृ. पाध्ये वीनस प्रकाशन, 'तपश्चर्या', 381 शनिवार पेठ, पूना- 411-002

1. सोवियत सिनेमा (हिन्दी)
2. ब्लादीमिर बस्काकोव
3. 1968 रु. 0-30
4. एल.पी. ब्लादीमिरोव द्वारा सोवियत संघ दूतावास सूचना विभाग, नई दिल्ली

1. भारतीय चल-चित्र का इतिहास (हिन्दी)
2. फिरोज रंगूनवाला
3. 1975 रु. 12.50
4. राजपाल एन्ड सन्स, काश्मीरी गेट दिल्ली

1. सेव्हन्टी फाइव इयर्स ऑफ इंडियन सिनेमा (अँगरेजी)
2. फिरोज रंगूनवाला
3. 1975 रु. 32-00
4. इंडियन बुक कंपनी 36/ सी, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली- 110-001

1. इंडियन सिनेमा पास्ट एन्ड प्रेजेन्ट (अँगरेजी)
2. फिरोज रंगूनवाला
3. 1975 रु. 225-00
4. क्लेरियन बुक्स 36/ सी, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली- 110-001

1. भारतीय चलचित्र इतिहास-चित्रपट कथाएँ (हिन्दी)
2. डॉ. महेन्द्र मित्तल
3. 1975 रु. 75-00
4. अलंकार प्रकाशन, 66/6, झील दिल्ली- 110-051

1. ए. पिक्टोरियल हिस्ट्री ऑफ इंडियन सिनेमा (अँगरेजी)
2. फिरोज रंगूनवाला
3. 1979 रुपए 75-00
4. द हेमलीन पब्लिशिंग ग्रुप लिमिटेड
   एस्ट्रोनॉट हाऊस, फेल्थहम, मिडिलसेक्स लंदन (इंग्लैंड)

1. इंडियन सिनेमा 1979 (अँगरेजी)
2. उमा द कुन्हा
3. 1979 रु 10-00
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल्स
   गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली- 110-001

1. इंडियन सिनेमा 1979-80 (अँगरेजी)
2. उमा द कुन्हा
3. 1980 मूल्य बीस रुपए
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल्स 4 थीं मंजिल,
   लोकनायक भवन
   खान मार्केट, नई दिल्ली- 110-003

1. लुकिंग बेक (1896-1960) (अँगरेजी)
2. रानी बुरा
3. 1981 मूल्य बीस रुपए
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल्स 4 थीं मंजिल
   लोकनायक भवन, खान मार्केट, नई दिल्ली- 110-003

1. द न्यू जनरेशन (1960-1980) (अँगरेजी)
2. उमा द कुन्हा
3. 1971 मूल्य बीस रुपए
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल्स, 4 थीं मंजिल,
   लोकनायक भवन, खान मार्केट नई दिल्ली- 110-003

1. इंडियन सिनेमा (1980-81) (अँगरेजी)
2. उमा द कुन्हा
3. 1971 मूल्य बीस रुपए
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल्स, 4थीं मंजिल
   लोकनायक भवन, खान मार्केट नई दिल्ली- 110-003

1. हिस्टोरिकल एन्ड बॉयोग्राफीकल फिल्म्स (अँगरेजी)
2. प्रकाशन विभाग भारत सरकार
3. रु. 0-40 पैसे
4. प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
   भारत शासन नई दिल्ली

1. इंडियन सिनेमा 1981-82 (अँगरेजी)
2. किरण मय राहा
3. 1982 रु. 20-00
4. डॉयरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल एवं नेशनल फिल्म
   डेव्हलोपमेंट कारपोरेशन लि.
   4थीं मंजिल लोकनायक भवन खान मार्केट, नई दिल्ली

1. इंडियन सिनेमा 1982-83
2. अरुणा वासुदेव
3. 1983 रु. 25-00
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल एवं एन. एफ. डी. सी.
   4 थीं मंजिल लोकनायक भवन खान मार्केट, नई दिल्ली

1. इंडियन सिनेमा 1983-84 (अँगरेजी)
2. उमा द कुन्हा
3. 1984 मूल्य पच्चीस रुपए
4. डॉयरेक्टोरेट ऑफ फेस्टिवल एवं नेशनल फिल्म
   डेव्हलपमेंट कारपोरेशन लि.
   4 थीं मंजिल लोकनायक भवन खान मार्केट
   नई दिल्ली- 110-003

1. सेवंटी इयर्स ऑफ इंडिया सिनेमा (1913-1983)(अँगरेजी)
2. टी.एम. रामचंद्रन
3. 1975 रु. 300-00
4. सिनेमा इंडिया इन्टरनेशनल
   ए- 15 आनंद नगर, जुहू, तारा रोड़, बम्बई- 400-009

1. इंडियन सिनेमा 1984 (अँगरेजी)
2. शम्पा बनर्जी
3. 1985 रु. 30-00
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल्स एवं नेशनल फिल्म
   डेव्हलपमेंट का.लि.
   4 थीं मंजिल लोकनायक भवन, खान मार्केट नई दिल्ली

1. इंडियन सिनेमा 1985 (अँगरेजी)
2. पी.के. नायर
3. 1986 मूल्य पच्चीस रुपए
4. डॉयरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल्स एवं नेशनल फिल्म
   डेवलपमेंट का.लि., 4 थी मंजिल लोकनायक भवन ,
   खान मार्केट नई दिल्ली- 110-003

1. इंडियन सिनेमा 1986 (अँगरेजी)
2. रानी बर्रा
3. 1987 मूल्य पच्चीस रुपए
4. डॉयरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल्स एवं एन.एफ.डी.सी. एशियन गेम विलेज कॉम्पलेक्स सिरी फोर्ट नई दिल्ली- 110-016

1. मलयालम सिनेमा (अँगरेजी)
2. के.वी. रमणकुट्टी
3. 1988 मूल्य : उल्लेख नहीं
4. पब्लिक रिलेशन डिपार्टमेंट केरल शासन, तिरुअनंतपुरम (केरल)

1. फिफ्टी इयर्स ऑफ मलयालम सिनेमा (अँगरेजी)
2. नेशनल फिल्म आर्काइव ऑफ इंडिया
3. मूल्य पचास रुपए
4. केरल स्टेट फिल्म विकास कारपोरेशन तिरुअनंतपुरम

1. सोवियत सिनेमा टू डे (अँगरेजी)
2. एन झोरकाया
3. 1988 रु. 40-00
4. पंचशक्ति पब्लिशर्स, 2724 दरियागंज नई दिल्ली- 110-002

1. एफ.टी.आय.आय.फिल्म्स (1964-1987 अँगरेजी)
2. भारतीय फिल्म एवं टेलीविजन संस्थान पुणे
3. उल्लेख नहीं
4. डॉयरेक्टर फिल्म एण्ड टेलीविजन इन्स्टीट्यूट ऑफ इंडिया, लॉ कालेज रोड पुणे- 411-004

1. ट्वेंटी फाइव इयर्स ऑफ एफ.टी.आय.आय. (अँगरेजी)
2. भारतीय फिल्म एवं टेलीविजन संस्थान
3. 1988 रु 20-00
4. फिल्म एन्ड टेलीविजन इन्स्टीट्यूट ऑफ इंडिया लॉ कालेज रोड पुणे- 411-004

1. इंडियन सिनेमा 1987 (अँगरेजी)
2. आशीष राज्याध्यक्ष
3. 1988 मूल्य पच्चीस रुपए
4. डॉयरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल एवं नेशनल फिल्म डेवलपमेंट का.लि., 4 थीं मंजिल लोकनायक भवन, खान मार्केट, नई दिल्ली- 110-003

1. इंडियन सिनेमा 1988 (अँगरेजी)
2. जगमोहन
3. 1989 मूल्य पच्चीस रुपए
4. डॉयरेक्टोरेट फिल्म फेस्टिवल्स 4थीं मंजिल लोकनायक भवन खान मार्केट नई दिल्ली

1. मलयालम सिनेमा 50 वर्ष (अँगरेजी)
2. एम.जी. राधाकृष्णन
3. 1989 रु. 45-00
4. सहृदय फिल्म सोसायटी द्वारा सी- 16 कैलाश बर्वेनगर, घाट कोपर (डब्ल्यू), बम्बई- 400-084

1. हिन्दी सिनेमा का इतिहास (हिन्दी)
2. मनमोहन चड्ढा
3. 1990 रु. 300-00
4. सचिन प्रकाशन 7434 अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110-002

1. फ्लेश बेक सिनेमा इन द टाइम्स ऑफ इंडिया अँगरेजी
2. के.एन. सुब्रमण्यम रत्नाकर त्रिपाठी
3. 1990 रु. 200-00
4. द टाइम्स ऑफ इंडिया 1990 सेन्टिनियम पब्लिकेशन द टाइम्स ऑफ इंडिया बेनेट एन्ड कोलमेन कंपनी लि.बम्बई

1. सेवन डिकेडस ऑफ बंगाली सिनेमा (अँगरेजी)
2. प्रबोध मैत्रा
3. 1990 – उल्लेख नहीं
4. 'नंदन' वेस्ट बंगाल फिल्म सेंटर, कलकत्ता 700-020

1. इंडियन सिनेमा 1989 (अँगरेजी)
2. शम्पा बेनर्जी
3. 1990 – मूल्य पच्चीस रुपए
4. डॉयरेक्टोरेट ऑफ फेस्टिवल्स 4 थीं मंजिल लोकनायक भवन खान मार्केट, नई दिल्ली- 110-003

1. इंडियन सिनेमा 1990 (अँगरेजी)
2. के.एन.टी. शास्त्री
3. 1991 मूल्य पच्चीस रुपए
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल्स 4 थीं मंजिल लोकनायक भवन खान मार्केट, नई दिल्ली- 110-003

1. हिस्ट्री ऑफ तमिल सिनेमा (अँगरेजी)
2. निर्देशक सूचना एवं जन सम्पर्क तमिलनाडु सरकार
3. 1991 मूल्य : उल्लेख नहीं
4. डॉयरेक्टर ऑफ इन्फरमेशन एन्ड पब्लिक रिलेशनस गर्वनमेंट ऑफ तमिलनाडु मद्रास– 600-009

1. ए ग्लिम्पसेस ऑफ कन्नड़ सिनेमा (अँगरेजी)
2. एम.पी. रामकृष्णय्या एच.एन. नरहरिराव
3. 1992 रु. 40-00
4. सुचित्रा फिल्म सोसाटी 36 नौवीं मेन बनाशंकरी सेकंड स्टेज, बंगलौर- 560-070

1. इंडियन सिनेमा *1991* (अँगरेजी)
2. शम्पा बनर्जी
3. 1992 मूल्यः पच्चीस रुपए
4. डॉयरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल 4थीं मंजिल लोकनायक भवन, खान मार्केट नई दिल्ली-

1. इण्डियन सिनेमा 1992 (हिन्दी- अँगरेजी)
2. मंजूलिका दुबे
3. 1993 जनवरी मूल्य : पच्चीस रुपए
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल खान मार्केट नई दिल्ली- 110-003

फिल्म : कथा-पटकथा

1. शर्मीली (हिन्दी)
2. गुलशन नंदा
3. 1971। रु. 2.00
4. साधना पॉकेट बुक्स 39, यू.ए. बैंगलो रोड, दिल्ली 110-007

1. दस्तक (हिन्दी)
2. राजेन्द्र सिंह बेदी
3. 1971। रु. 2.00
4. हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा. लि. जी.टी. रोड। शाहदरा। दिल्ली 110-032

1. दरार (हिन्दी)
2. वेद राही
3. 1972। रु. 2.00
4. मयूर पेपर बेक्स 2135, अन्सारी रोड। दरियागंज। दिल्ली 110-006

1. 27 डाऊन (हिन्दी)
2. रमेश बक्षी
3. 1974। रु. 3.00
4. स्टॉर पब्लिकेशनस प्रा.लि. आसफअली रोड, नई दिल्ली 110-001

1. आँधी (हिन्दी)
2. गुलजार
3. 1975। रु. 3.00
4. हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा.लि., जी.टी. रोड। शाहदरा। दिल्ली

1. शालीमार (हिन्दी)
2. मनोहर मुलगाँवकर
3. 1977। रु. 4.00
4. विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि. 5, अन्सारी रोड। नई दिल्ली 110-002

1. मीरा (हिन्दी)
2. गुलजार
3. 1979। रु. 12.00 सजिल्द रु. 30.00
4. राधाकृष्ण प्रकाशन 2, अन्सारी रोड। दरियागंज। नई दिल्ली 110-002

1. इन सर्च ऑफ फेमिन (अकालेर संधाने) (अंग्रेजी)
2. समिक बन्धोपाध्याय
3. 1983। रु. 35.00
4. नवीन किशोर सीगल बुक्स 26, सरकस एवेन्यू। कलकत्ता 700-017

1. द रुइन्स (खंडहर) (अंग्रेजी)
2. समिक बन्धोपाध्याय (अनुवाद)
3. 1984। रु. 45.00
4. नवीन किशोर सीगल बुक्स, 26, सरकस एवेन्यू। कलकत्ता

1. द चर्निंग (मंथन) (अंग्रेजी)
2. समिक बन्धोपाध्याय (अनुवाद)
3. 1984। रु. 40.00
4. नवीन किशोर सीगल बुक्स 26, सरकस एव्हेन्यू। कलकत्ता 700-017

1. ए सिम्फनी ऑफ वर्डस् ऑन पिरावी (अंग्रेजी)
2. एस.बी. जयराम
3. 1991। मूल्य साठ रुपए
4. चल-चित्र एण्ड क्लोजलुक सोसायटी ऑफ इंडिया। गिरिजा कैलाश रोड। पूजाघूरा। त्रिवेन्द्रम 695-012

1. फेस टू फेस (मुखामुखम) (अंग्रेजी)
2. शम्पा बैनर्जी (अडूर गोपालकृष्णन की फिल्म पर पटकथा)
3. 1985। कीमत 45 रुपए
4. सीगल बुक्स। कलकत्ता

1. द थ्रेस होल्ड (उम्बरठा। मराठी/सुबह/हिन्दी)
2. विजय तेन्डुलकर (जब्बार पटेल की फिल्म)
3. 1985। कीमत 45 रुपए
4. सीगल बुक्स। कलकत्ता

1. भवनी भवाई (अंग्रेजी)
2. शम्पा बनर्जी (केतन मेहता की गुजराती फिल्म)
3. 1986। रुपए साठ मात्र
4. सीगल बुक्स, कलकत्ता

1. द रेट ट्रेप (एलिपथ्थयम) अंग्रेजी
2. शम्पा बैनर्जी (अडूर गोपालकृष्णन् की मलयालम फिल्म)
3. 1985। रुपए पैंतालीस
4. सीगल बुक्स, कलकत्ता

1. मोनोलाग (अंग्रेजी) मलयालम फिल्म अनंतरम्
2. शम्पा बैनर्जी (अडूर गोपालकृष्णन् की फिल्म पर)
3. 1991। रुपए अस्सी मात्र
4. सीगल बुक्स, कलकत्ता

फिल्म आस्वाद एवं विश्लेषण

1. सिनेमा (एक अध्ययन) (हिन्दी)
2. जेकब साम्पिकल
3. रु. 10.00
4. रवि भारती इन्स्टीट्यूट, कुरजी, सदाकत आश्रम, पो.ऑ. पटना पटना 800-010 (बिहार)

1. फाइन आर्ट एन्ड फिल्म क्रेफ्ट (अंग्रेजी)
2. केप्टन एम.के. शिंदे
3. 1962। रु. 15.00
4. जी.आर. भत्कल, पॉपुलर प्रकाशन 35-सी ताड़देव रोड, बंबई 400-034

1. चलचित्र (हिन्दी)
2. जगदीश कुमार 'निमल'
3. 1967। रु. 6.00
4. ग.वा. करमरकर। मंत्री। महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा। राष्ट्रभाषा भवन। नारायण पेठ पोस्ट बॉक्स 560, पूना 411-002

1. चित्रवाणी (ए बुक ऑफ फिल्म एप्रिसिएशन) (अंग्रेजी)
2. गेस्टन रावर्ज
3. 1974। रु. 25.00
4. चित्रवाणी, 76, रफी एहमद किदवई रोड। कलकत्ता

1. फिल्म कैसे बनती हैं (हिन्दी)
2. ख्वाजा अहमद अब्बास
3. 1977। रु. 1.50
4. निर्देशक, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली 110-016

1. हाऊ फिल्म्स् आर मेड़ (अंग्रेजी)
2. ख्वाजा अहमद अब्बास
3. 1977। रु. 1.50
4. निर्देशक, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया ए-5 ग्रीन पार्क। नई दिल्ली 110-016

1. मानव और समूह संचार (हिन्दी)
2. गेस्टन रोवर्ज। बी अन्द्रेयम अनुवादक
3. 1980।
4. सत् प्रकाशन संचार केंद्र सत प्रचार प्रेस। इंदौर 452-001 म.प्र.

1. डाक्यू मीडिया (अंग्रेजी)
2. मीरा दीवान
3. 1985।
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल व नेशनल फिल्म डेव्हलपमेंट कारपोरेशन एशियन गेम्स विलेज काम्प्लेक्स। सिरीफोर्ट। नई दिल्ली 1.

1. इंडियन फिल्म्स टू डे
2. नंदिनी दास
3. 1985। रु. 30.00
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल व नेशनल फिल्म डेवलपमेंट कारपोरेशन 4 थी मंजिल लोकनायक भवन, खान मार्केट। नई दिल्ली 110-003

1. ए थर्ड वर्ल्ड वुमेन्स् फिल्म प्रोग्राम
2. परमिन्दर वीर
3. 1986।
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल व नेशनल फिल्म डेवलपमेंट कारपोरेशन एशियन गेम्स विलेज काम्प्लेक्स। सिरीफोर्ट नई दिल्ली 110-016

1. वाइल्ड लाइफ फिल्म फेस्ट (वन्य जीवन चित्रावली)
2. महेन्द्र व्यास
3. 1987।
4. डारेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल व नेशनल फिल्म डेवलेपमेंट कारपोरेशन एशियन गेम्स विलेज काम्प्लेक्स सिरीफोर्ट नई दिल्ली 110-016

1. मध्यप्रदेश फिल्मोत्सव 1987 (हिन्दी)
2. म.प्र. फिल्म विकास निगम
3. 1987।
4. मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम, भोपाल

1. डाक्यूमेन्टरी 1987 (अंग्रेजी)
2. पंकज बुटालिया
3. 1987।
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल व नेशनल फिल्म डेवलपमेंट कारपोरेशन एशियन गेम्स विलेज काम्प्लेक्स सिरीफोर्ट, नई दिल्ली 110-016

1. द सिनेमा मिस्टिक (अंग्रेजी)
2. फिरोज रंगूनवाला
3. 1990। रु. 60.00
4. मीडिया 90 ज, बम्बई

1. इकानॉमिक्स ऑफ इंडियन सिनेमा (अंग्रेजी)
2. एम.ए. ओम्मान व के.वी. जोसेफ
3. 1991। रु. 150.00
4. मोहन प्रिमलानी, ऑक्सफोर्ड एन्ड आय.बी.एच. पब्लिशिंग कंपनी 66, जनपथ, नई दिल्ली 110-001

फिल्मोग्राफी

1. अशोक कुमार फिल्मोग्राफी (अंग्रेजी)
2. अंकित नहीं
3. अंकित नहीं
4. डारेक्टोरेट ऑफ फिल्म फेस्टिवल। 4 थी मंजिल। लोकनायक भवन। खान मार्केट नई दिल्ली 110-003

1. चिल्ड्रन्स फिल्म्स् फॉर एक्सपोर्ट (अंग्रेजी)
2. *
3. *
4. चिल्ड्रनस् फिल्म सोसायटी। इंडिया फिल्म डिव्हीजन काम्प्लेक्स। 24 डॉ. जी. देशमुख मार्ग। बम्बई- 400-026

1. इंडियन फिल्म इन्डेक्स (1912-1967) (अंग्रेजी)
2. फिरोज रंगूनवाला। विश्वनाथ दास
3. 1968। रु. 4.00
4. फिरोज रंगूनवाला एवं जे. उदेसी, 552-ए होमसजी अदनवाला रोड, किंग्स् सर्कल। बम्बई 400-019

1. इंडियन फिल्मोग्राफी (सायलेंट एन्ड हिंदी फिल्मस 1897-1969) (अंग्रेजी)
2. फिरोज रंगूनवाला
3. 1970। रु. 30.00
4. फिरोज रंगूनवाला एवं जे. उदेसी, 552-ए होमसजी अदनवाला रोड, किंग्स् सर्कल। बम्बई 400-019

1. इंडियन फिल्म्स 1972 (सभी भाषाओं की) (अंग्रेजी)
2. बी.वी. धरप
3. 1973। रु. 35.00
4. बी.वी. धरप। मोशन पिक्चर्स इन्टरप्राइजेस, अलका टॉकीज, पूना 411-030

1. इंडियन फिल्म्स् 1973 (सभी भाषाओं की) (अंग्रेजी)
2. बी. वी. धरप
3. 1974। रु. 35.00
4. मोशन पिक्चर्स इन्टरप्राइजेस
   अलका टॉकीज पूना 411-030

1. इंडियन फिल्म्स 1974 (सभी भाषाएँ) (अंग्रेजी)
2. बी. वी. धरप
3. 1975। रु. 35.00
4. मोशन पिक्चर्स इन्टरप्राइजेस, अलका टॉकीज, पूना

1. इंडियन मोशन पिक्चर 10 वाँ संस्करण (अंग्रेजी)
2. बी. झा
3. 1975। रु. 40.00
4. शॉट पब्लिकेशन्स 3, बी मदन स्ट्रीट। कलकत्ता 700-013

1. इंडियन फिल्म्स 1975 (सभी भाषाएँ) (अंग्रेजी)
2. बी. वी. धरप
3. 1976। रु. 35.00
4. मोशन पिक्चर्स इन्टरप्राइजेस, अलका, टॉकीज पूना

1. इंडियन फिल्म्स 1976 (सभी भाषाएँ) (अंग्रेजी)
2. बी. वी. धरप
3. 1977। रु. 35.00
4. मोशन पिक्चर्स इन्टरप्राइजेस, अलका, टॉकीज पूना

1. इंडियन फिल्म्स् 1977 एवं 1978 (सभी भाषाएँ) (अंग्रेजी)
2. वी. वी. धरप
3. 1979। रु. 40.00
4. मोशन पिक्चर्स इन्टरप्राइजेस, अलका टॉकीज, पूना

1. वी.डी.ओ फिल्म्स् गाइड
2. रानी बुरा एवं गिरीश श्रीनिवासन
3. 1983। रु. 40.00
4. डबल डी पब्लिशिंग कंपनी प्रा.लि. 77 नाज बिल्डिग।
   लेमिंगटन रोड। बम्बई 400-004

1. फिल्मोग्राफी ऑफ सिक्स्टी एमिनेन्ट इंडियन मूवीमेकर (अंग्रेजी)
2. रजत रॉय
3. 1983। रु. 100.00
4. पार्थ सखा मैत्रा। साबन सोसायटी मोसाबोनी, बंगला नं. 23, मोसाबोनी माइन्स। सिंगभूमि 32-104 (बिहार)

1. इंडियन फिल्मस 1983 (सभी भाषाएँ) (अंग्रेजी)
2. बी.वी. धरप
3. 1985। रु. 100.00
4. नेशनल फिल्म आर्काइव ऑफ इंडिया/ 4 लॉ कॉलेज रोड/ पूना 411-004

1. इंडियन मोशन पिक्चर अलमनेक 11 वाँ संस्करण (अंग्रेजी)
2. बी. झा
3. 1986। रु. 150.00
4. शॉट पब्लिकेशनस 3 बी मदन स्ट्रीट कलकत्ता 700-072

1. सेवनटी फाइव ग्लोरियर्स इयर्स ऑफ इंडियन सिनेमा (अंग्रेजी) (1913-1988)
2. राजेन्द्र ओझा
3. 1988। रु. 200.00
4. स्क्रीन वर्ल्ड पब्लिकेशन। प्रकाश स्टुडियो। 295। मिरान्डा विल्डिंग, एन.सी. केलकर रोड। दादर (वेस्ट), बम्बई

1. हिन्दी सिनेमा का सुनहरा सफर (1913-1988) (हिन्दी)
2. बद्रीप्रसाद जोशी
3. 1988। रु. 200.00
4. सिनेवाणी प्रकाशन, राजभवन, मार्वेरोड। मलाड। बम्बई

1. कलेक्शन्स् (अंग्रेजी)
2. राजीव टिक्कू व जावेद जैदी
3. 1989। रु. 90.00
4. अपडेट बी.डी.ओ. पब्लिकेशनस् प्रा.लि. 49। पालिका प्रेस पंचकुइया रोड। नई दिल्ली 110-001

1. चित्र संपदा (मराठी)
2. जागतिक मराठी परिषद
3. 1989। रुर. 25.00
4. रावी बापट। सचिव जागतिक मराठी परिषद। बजाज भवन नरीमन पाइन्ट। बम्बई 400-023

1. कलेक्शन (अंग्रेजी)
2. राजीव टिक्कू व जावेद जैदी
3. 1990। रु. 90.00
4. अपडेट वी.डी.यो. पब्लिकेशनस प्रा.लि.। 49 पालिका प्रेस। पंचकुइयां रोड नई दिल्ली 110-001

1. कलेक्शन्स् (अंग्रेजी)
2. रतन शारदा जावेद जैदी
3. 1991। रु. 110.00
4. अपडेट बी.डी.यो. पब्लिकेशन्स प्रा.लि., 49, पालिका प्रेस, पंचकुइयां रोड, नई दिल्ली 110-001

फिल्म विषयक कानून

1. रिपोर्ट ऑफ कमेटी ऑफ सेक्रेटरीज ऑन डिमांड ऑफ फिल्म इन्डस्ट्री (अंग्रेजी)
   1 सिनेमोटोग्राफ एक्ट 1952 (अंग्रेजी)
2. *
3. *
4. फिल्म फेडरेशन ऑफ इंडिया, 91, वालकेश्वर रोड। बम्बई

1. द सिनेमोटोग्राफ एक्ट (अंग्रेजी)
2. *
3. 1964। रु. 0.50
4. रामनारायण लाल वेणी प्रसाद, लॉ पब्लिशर्स। इलाहाबाद-2 (उ.प्र.)

1. मध्यप्रदेश विधि संग्रह (हिन्दी)
2. कृष्णमोहन शर्मा
3. 1976। रु. 15.00
4. इंडियन लॉ हाऊस, 35, सिख मोहल्ला, इंदौर -3 (म.प्र.)

1. लिबर्टी एन्ड लायसेंस इन द इंडियन सिनेमा (अंग्रेजी)
2. अरुणा वासुदेव
3. 1978। रु. 40.00
4. विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि.। 5 अंसारी रोड। नई दिल्ली 110-002

1. द सिनेमोटोग्राफ एक्ट अद्यतन संशोधित (अंग्रेजी)
   सिने वर्कर्स वेलफेअर सेस एक्ट (नं. 30।1981)
   सिने वर्कर्स वेलफेअर फंड एक्ट (नं. 33।1981)
   सिने वर्कर्स एन्ड सिनेमा थिएटर वर्कर्स रेग्युलेशन एन्ड इम्प्लायमेंट एक्ट (नं. 50।1981)
2. *
3. 1974। रु. 5.00
4. देहली ला हाऊस। 77 गोखले मार्केट न्यू कोर्टस् के सामने दिल्ली 110-054

1. सेन्ट्रल सर्किट सिने एसोसिएशन भुसावल (विधान-नियम) (अंग्रेजी)
2. सन्तोष सिंह जैन
3. 1987।
4. सेन्ट्रल सर्किट सिने एसोसिएशन, इन्दौर (म.प्र.)

आत्मकथा

1. अभिनेत्री की आपबीती (हिन्दी)
2. हंसा वाडकर अनुवादक विजय बापट
3. 1972/ रु. 5.00
4. राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट/दिल्ली

1. स्नेहांकिता (मराठी)
2. स्नेहप्रभा प्रधान
3. 1973 / कीमत 30.00 रुपए
4. रामदास भटकल/पॉप्युलर प्रकाशन 35, सी ताड़देव रोड/बम्बई - 400-034

1. मेरी फ़िल्मी आत्म-कथा (हिन्दी)
2. बलराज साहनी
3. 1974 / रु. 3.00
4. हिन्द पॉकेट बुक्स जी.टी.रोड/शाहदरा/दिल्ली-110-032

1. आय एम नॉट एन आयलैंड (अंग्रेजी)
2. ख्वाजा अहमद अब्बास
3. 1977 / रु. 45.00
4. विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि., नई दिल्ली-110-002

1. मॉय फ़िल्म मेमॉयर्स (अंग्रेजी)
2. बलराज साहनी
3. 1979 / -
4. इम्प्रिंट-11/79, मासिक पत्रिका

1. चंदेरी दुनियेत (मराठी)
2. लीला चिटणीस
3. 1981 / रु. 50.00
4. दामोदर दिनकर कुलकर्णी / श्री विद्या प्रकाशन
250, शनिवार पेठ / अष्ट भुजा रास्ता, पूना - 411-030

1. मी दुर्गा खोटे (मराठी)
2. दुर्गा खोटे
3. 1982 / रु. 35.00
4. केशव विष्णु कोठावळे / मॅजेस्टिक बुक स्टॉल / गिरगाँव नाका / बम्बई-400-004

1. मैं दुर्गा खोटे (हिन्दी)
2. दुर्गा खोटे अनुवादक कुसुम तांबे
3. 1983 / रु. 20.00
4. राधाकृष्ण प्रकाशन
2/38, अन्सारी रोड/दरियागंज/नई दिल्ली-110-002

1. अशी मी जयश्री (मराठी)
2. जयश्री गड़कर
3. 1986/रु. 70.00
4. मनोहर चंपानेरकर/रोहन प्रकाशन,
ए-3/5, सुन्दरनगर/एस.वी.रोड/
मलाड (पश्चिम)/बम्बई-400-064

1. पाऊल खुणा (मराठी)
2. गजानन जागीरदार
3. 1986/रु. 60.00
4. अशोक केशव कोठावळे, मॅजेस्टिक प्रकाशन,
316, प्रसाद चेम्बर्स/रॉक्सी सिनेमा के पास/बम्बई-400-004

1. सिनेमा एण्ड आय (अंग्रेजी)
2. ऋत्विक घटक
3. 1987/रु. 46.00
4. ऋत्विक मेमोरियल ट्रस्ट
1/10, प्रिंस गुलाम मोहम्मद रोड/कलकत्ता-700-026

1. उषाकाल (मराठी)
2. उषा किरण
3. 1969/रु. 65.00
4. दामोदर दिनकर कुलकर्णी,
श्री विद्या प्रकाशन/250, शनिवार पेठ/अष्ठभुजा रस्ता/पूना-411-030

जीवनी

1. विमल रॉय (हिन्दी)
2. रिंकी भट्टाचार्य/श्रीराम तिवारी
3. 45 रुपए, 60 रुपए (सजिल्द)
4. मध्यप्रदेश फ़िल्म विकास निगम मर्यादित, भोपाल

1. राबेर ब्रेसां (हिन्दी)
2. श्रीराम तिवारी
3. *
4. मध्यप्रदेश फ़िल्म विकास निगम मर्यादित, भोपाल

1. श्याम बेनेगल (हिन्दी)
2. श्रीराम तिवारी
3. दो रुपए
4. मध्य प्रदेश फ़िल्म विकास निगम मर्यादित, भोपाल

1. बुद्धदेव दासगुप्ता (अंग्रेजी)
2. अरुण कुमार राय
3. रु. 10.00
4. सेक्रेटरी, सिने सोसायटी, मोसाबनी (बिहार)

1. सुपर स्टार अमिताभ बच्चन (हिन्दी)
2. शिरीष कात्यायन
3. रु. 6.00
4. सुपर पॉकिट बुक्स/गुलाब हाऊस/मायापुरी/नई दिल्ली-

1. धर्मेन्द्र (हिन्दी)
2. फारुक अर्गली
3. रु. 2.00
4. अनिल पॉकेट बुक्स/ईश्वरपुरी/मेरठ (उ.प्र.)

1. द सिनेमा ऑफ आन्द्रे वाज्दा (अंग्रेजी)
2. *
3. *
4. सिने सेन्ट्रल/कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)

1. श्याम बेनेगल
1. सईद मिर्जा
1. मणि कौल
1. ऋत्विक घटक
1. अरविन्दन
1. गौतम घोष
1. केतन मेहता समस्त अंग्रेजी में
2. *
3. *
4. राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम/बम्बई-400-018

1. राज कपूर (हिन्दी)
2. डॉ. महेन्द्र मित्तल
3. रु. 10.00
4. विनयकुमार गुप्ता, मनोज़ पॉकेट बुक्स/
   1584, दरीबाँकलां/दिल्ली-110-006

1. राजकपूर (हिन्दी)
2. श्रीराम ताम्रकर
3. 1988/रु. 12.00
4. मध्यप्रदेश फ़िल्म विकास निगम, भोपाल

1. राजकपूर (मराठी)
2. इसाक मुज़ावर
3. 1976/रु. 15.00
4. ग.तु.बांदोड़कर, प्रिया प्रकाशन
   द्वारा दलाल आर्ट/स्टुडियो/42, केनेडी ब्रिज/बम्बई

1. राजकपूर आणि त्यांचे चित्रपट (मराठी)
2. वसन्त साठे
3. 1979/रु. 16.00
4. दिनकर गांगल/चिटणीस, ग्रंथाली/
   34/902, नेहरू नगर, बम्बई-400-024

1. राजकपूर (आधी हकीकत आधा फसाना) (हिन्दी)
2. प्रहलाद अग्रवाल
3. 1984/रु. 60.00
4. राधाकृष्ण प्रकाशन
   2/38, अन्सारी रोड/दरियागंज/नई दिल्ली-110-002

1. अमृतांजलि (राजकपूर)
2. श्रीराम ताम्रकर/प्रकाश पुरोहित
3. 1986/रु. 5.00
4. डॉ. दशरथसिंह, राजकपूर अमृत महोत्सव समिति,
   9, मीरापथ/इन्दौर-452-003

1. राजकपूर्स फ़िल्म्स हॉरमोनी ऑफ डिसकोर्सेज़ (अंग्रेजी)
2. विमल दिसानायके/मालती सहाय
3. 1988/रु. 225.00
4. विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि.
   576, मस्ज़िद रोड/जंगपुरा/नई दिल्ली-110-014

1. राजकपूर द फेबुलस शो-मेन (अंग्रेजी)
2. बनी रूबेन
3. 1988/रु. 350.00
4. नेशनल फ़िल्म डेवलपमेंट का.लि.
   डी/5, शिवसागर इस्टेट/डॉ.एनीबेसेन्ट रोड/वरली,
   बम्बई-400-018

1. राजकपूर (श्रद्धांजलि) (अंग्रेजी)
2. राष्ट्रीय फ़िल्म आर्काइव, (पूना)
3. 1989 / -
4. द डायरेक्टोरेट ऑफ फ़िल्म फेस्टिवल व नेशनल फ़िल्म
   डेवलपमेन्ट कॉरपोरेशन, 4थी मंजिल/लोकनायक भवन/
   खान मार्केट, नई दिल्ली-110-003

1. जननायक राजकपूर (हिन्दी)
2. जयप्रकाश चौकसे
3. 1991/रु.100.00 सजिल्द/साधारण 20.00 रुपए
4. श्रीमती उषा चौकसे/प्राची प्रकाशन/14, धेनु मार्केट/
   इन्दौर-452-003

1. मीना बाजार (हिन्दी)
2. सआदत हसन मण्टो
3. 1964/रु.6.00
4. राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
   8, नेताजी सुभाष मार्ग/नई दिल्ली-110-002

1. वैजयन्तीमाला (हिन्दी)
2. बच्चन श्रीवास्तव
3. 1968/रु. 1.00
4. सुबोध पॉकेट बुक्स/2, दरियागंज/दिल्ली-110-006

1. मीना कुमारी (अंग्रेजी)
2. विनोद मेहता
3. 1972/रु. 5.00
4. अश्विनी जे.शाह/जयको पब्लिशिंग हाऊस/125, महात्मा गाँधी रोड/बम्बई-400-001

1. डॉ.पी.वी.पाथी (अंग्रेजी)
2. जगमोहन
3. 1972/रु. 20.00
4. नेशनल फ़िल्म आर्काइव्ह ऑफ इण्डिया/पूना-411-004

1. गुरुदत्त (अंग्रेजी)
2. फिरोज़ रंगूनवाला
3. 1973/रु. 20.00
4. नेशनल फ़िल्म आर्काइव्ह ऑफ इण्डिया, पूना-411-004

1. राजेश खन्ना (हिन्दी)
2. प्रमोदकुमार गुप्ता
3. 1973/रु. 2.00
4. रंगभूमि कार्यालय, 5 ए/15, अन्सारी रोड/दिल्ली-110-006

1. हेमा मालिनी (हिन्दी)
2. बच्चन श्रीवास्तव
3. 1973/रु. 2.00
4. सुबोध पॉकेट बुक्स/2, दरियागंज/दिल्ली-110-006

1. बलराज साहनी एन इंटीमेट पोर्ट्रेट (अंग्रेजी)
2. पी.सी. जोशी
3. 1974/रु. 6.50
4. विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि., दिल्ली-110-006

1. सुपर स्टार धर्मेन्द्र (हिन्दी)
2. उत्तमा रश्क
3. 1974/रु. 2.00
4. सुबोध पॉकेट बुक्स
2, अन्सारी रोड/दरियागंज/दिल्ली-110-006

1. पृथ्वीराज कपूर (अंग्रेजी)
2. संतोष कुमार गुलवदी/एस श्रीनिवास (अनुवाद)
3. 1976/रु. 1.50
4. राष्ट्रोत्थान साहित्य/भारत-भारती चिल्ड्रन बुक सीरीज़/कैम्प गोवड़ानगर/बंगलौर-560-019 (कर्नाटक)

1. मीना कुमारी (मराठी)
2. इसाक मुज़ावर
3. 1976/रु. 10.00
4. ग.तु. बांदोड़कर/प्रिया प्रकाशन/दलाल स्टुडियो/ 42, केनेडी ब्रिज/बम्बई-400-004

1. विद्रोही कलाकार अमिताभ (हिन्दी)
2. फारूक अर्गली
3. 1977/रु. 3.00
4. जनता पॉकेट बुक्स/2, सुभाष मोहल्ला/गाँधीनगर/दिल्ली-110-031

1. देव आनन्द (मराठी)
2. इसाक मुज़ावर
3. 1977/रु. 15.00
4. ग.तु.बांदोड़कर/प्रिया प्रकाशन/2री मंजिल/156, दिलीप निवास/दादी शेठ/अग्यारी लेन/बम्बई-400-002

1. मृणाल सेन (अंग्रेजी)
2. रघुनाथ रैना
3. 1980 / -
4. डिपार्टमेन्ट ऑफ इन्फॉरमेशन एण्ड कल्चरल अफेअर्स पश्चिम बंगाल सरकार/कलकत्ता

1. फ्लैश बेक (मराठी)
2. इसाक मुज़ावर
3. 1981/रु. 25.00
4. महेश श्री कुलकर्णी/दिन पुष्प प्रकाशन/कृष्णा, 12 बी.डी.भालेराव मार्ग/गिरगाँव/बम्बई-400-004

1. बलराज माय ब्रदर (अंग्रेजी)
2. भीष्म साहनी
3. 1981/रु. 15.00
4. डायरेक्टर, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया ए-5, ग्रीन पार्क/नई दिल्ली-110-016

1. कहानी नरगिस की (हिन्दी)
2. गोविन्द सिंह
3. 1981/रु. 8.00
4. अनुपम बुक्स/कमलानगर/दिल्ली-110-007

1. ऋत्विक घटक-ए रिटर्न टू द इपिक (अंग्रेजी)
2. आशीष राजाध्यक्ष
3. 1982/रु. 45.00
4. स्क्रीन युनिट/एच-156, मोहन नगर ऑफ दत्त मन्दिर रोड/दहानुकर वाड़ी/कांदिवली (वेस्ट)/बम्बई-400-067

1. रूपेरी (मराठी)
2. रेखा देशपाण्डे
3. 1983/रु. 27.50
4. दामोदर दिनकर कुलकर्णी/श्री विद्या प्रकाशन/250, शनिवार पेठ/पूना-411-030

1. एस.सुखदेव (अंग्रेजी)
2. जगमोहन
3. 1984/रु. 25.00
4. नेशनल फ़िल्म आर्काइव्ह ऑफ इण्डिया एवं सूचना प्रसारण मंत्रालय/नई दिल्ली-110-001

1. ऋत्विक कुमार घटक (अंग्रेजी)
2. हेमन्ती बनर्जी
3. 1985/रु. 30.00
4. नेशनल फ़िल्म आर्काइव्ह ऑफ इण्डिया 4 लॉ कॉलेज रोड/पूना-411-004

1. वी.दामले एण्ड एस.फत्तेलाल (अंग्रेजी)
2. बापू वाटवे
3. 1985/रु. 30.00
4. नेशनल फ़िल्म आर्काइव्ह ऑफ इण्डिया 4, लॉ कॉलेज़ रोड/पूना-411-004

1. वी.एन.रेड्डी
2. रेण्डर गॉय
3. 1985/रु. 30.00
4. नेशनल फ़िल्म आर्काइव्ह ऑफ इण्डिया 4, लॉ कॉलेज़ रोड/पूना-411-004

1. प्रोफाइल फाइव फ़िल्म मेकर्स फ्रॉम इण्डिया
2. शम्पा बेनर्जी
3. 1985/रु. 25.00
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फ़िल्म/फेस्टिवल नेशनल फ़िल्म डेवलपमेन्ट कॉरपोरेशन/4थी मंजिल/लोकनायक भवन/खान मार्केट/नई दिल्ली-110-003

1. शिरीषासन (मराठी)
2. शिरीष कणेकर
3. 1985/रु. 30.00
4. प्रमोद बाबूराव ईनामदार/ईनामदार बंधु प्रकाशन/637, सदाशिव पेठ/पूना-411-030

1. यादों की बारात (मराठी)
2. शिरीष कणेकर
3. 1985/रु. 65.00
4. प्रमोद बाबूराव ईनामदार/ईनामदार बंधु प्रकाशन/637, सदाशिव पेठ/पूना-411-030

1. गुरूदत्त (तीन अंकी शोकांतिका) (मराठी)
2. अरूण खोपकर
3. 1985/रु. 50.00
4. दिनकर गांगाल/चिटणीस/ग्रंथाली अभिनव वाचक चलवळ इण्डियन एज्यूकेशन सोसायटी की कन्याशाला नं.1/बाबरेकर मार्ग/शिवाजी पार्क बम्बई-400-028

1. अमिताभ बच्चन (अभिनेता से राष्ट्र नेता) (हिन्दी)
2. गिरिजा पण्डित
3. 1985/रु. 6.00
4. स्टार पब्लिकेशन्स प्रा.लि./आसफ अली रोड/नई दिल्ली

1. चंदेरी बातचीत (मराठी)
2. वसन्त भाळेकर
3. 1986/रु. 30.00
4. मनोहर चम्पानेरकर/रोहन प्रकाशन/ए 3/5, सुन्दर नगर/एस.वी.रोड/मलाड़ (पश्चिम) बम्बई-400-064

1. नितिन बोस (अंग्रेजी)
2. वी.झा.
3. 986/रु. 12.00
4. साधन चक्रवर्ती/जनरल सेक्रेटरी/एशियन फ़िल्म फाऊण्डेशन/94, लेनिन सारणी/कलकत्ता-700-013

1. शांतारामा (डॉ.वी.शांताराम) (मराठी)
2. मधुरा जसराज
3. 1986/रु. 250.00
4. किरण शांताराम/डॉ.वी.शांताराम/चलचित्र शास्त्रीय अनुसंधान व सांस्कृतिक प्रतिष्ठान/राजकमल कलामन्दिर/परेल/बम्बई-400-012

1. ऋत्विक घटक ऑरग्यूमेन्ट/स्टोरीज़ (अंग्रेजी)
2. आशीष राजाध्यक्ष/अमृत गांगार
3. 1987/रु. 45.00
4. 'स्क्रीन यूनिट'/एच-156, मोहन नगर/दहानपुर वाड़ी/कांदिवली (वेस्ट)/बम्बई-400-067

1. कुरूसोवा (अंग्रेजी)
2. मैथिली राव
3. 1987/रु. 10.00
4. यूथ फोरम् फ़िल्म एप्रिसिएशन ग्रुप-बी/7, खेतन इस्टेट 52, रामचन्द्रा लेन/मलाड़ (वेस्ट)/बम्बई-400-064

1. स्मिता पाटिल (मराठी)
2. रेखा देशपाण्डे
3. 1987/रु. 25.00
4. दामोदर दिनकर कुलकर्णी/श्री विद्या प्रकाशन 250, शनिवार पेठ/पूना-411-030

1. शायरा/आमेन (हिन्दी)
2. अंजन कुमार/प्रकाश भातंब्रेकर अनुवादक
3. 1988/रु. 15.00
4. राजकमल प्रकाशन प्रा.लि./1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग/ नई दिल्ली-110-002

1. गुरूदत्त (तीन अंकीय त्रासदी) (हिन्दी)
2. अरूण खोपकर/निशिकांत ठकार अनुवादक
3. 1988/रु. 35.00
4. मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम, भोपाल

1. आन्द्रे तारकोवस्की (अंग्रेजी)
2. अमृत गांगार
3. 1988/रु. 35.00
4. स्क्रीन यूनिट/एच-156, मोहन नगर/दहानुकर वाड़ी/कांदिवली (पश्चिम)/बम्बई-400-067

1. द सेड् एण्ड द ग्लेड् ऑफ किशोरकुमार (अंग्रेजी)
2. आशीष राजाध्यक्ष
3. 1989/रु. 90.00
4. रिसर्च सेन्टर फॉर सिनेमा स्टडीज़/बम्बई-400-025

1. नाळ (मराठी)
2. वसन्त पोतदार
3. 1989/रु. 50.00
4. रवि बेहरे/रविराज़ प्रकाशन/452/2, सदाशिव पेठ तिलक रोड/पूना-411-030

1. फ़िल्मोत्सव (मराठी)
2. भाई भगत
3. 1989/रु. 60.00
4. अशोक केशव कोठावळे/मॅजेस्टिक प्रकाशन/316, प्रसाद चेम्बर्स/गिरगाँव/बम्बई-400-004

1. गुरूदत्त - एक अशांत कलावंत (मराठी)
2. इसाक मुज़ावर
3. 1989/रु. 60.00
4. दामोदर दिनकर कुलकर्णी/श्री विद्या प्रकाशन/250, शनिवार पेठ/पूना-411-030

1. जार्ज मेलिस ए रिट्रास्पेक्टिव्ह (अंग्रेजी)
2. हेमलता अग्रवाल/अनुवादक
3. 1990
4. डायरेक्टोरेट ऑफ इन्टरनेशनल फ़िल्म फेस्टिवल फॉर डाक्यूमेन्टरी एण्ड शार्ट फ़िल्म्स/फ़िल्म ड़िव्हीज़न/फ़िल्म भवन/डॉ.गोपालराव देशमुख मार्ग/बम्बई-400-026

1. सुखदेव-ए रिट्रास्पेक्टिव्ह (अंग्रेजी)
2. जगमोहन
3. 1990
4. डायरेक्टोरेट ऑफ बॉम्बे इन्टरनेशनल फ़िल्म फेस्टिवल फॉर डाक्यूमेन्टरी एण्ड शार्ट फ़िल्म्स/फ़िल्म डिव्हीज़न/फ़िल्म भवन/डॉ.गोपालराव देशमुख मार्ग/बम्बई-400-026

1. ग्रीन टू एवरग्रीन अशोककुमार (अंग्रेजी)
2. रानी बुरा
3. 1990
4. द डायरेक्टोरेट ऑफ फ़िल्म फेस्टिवल/नई दिल्ली

1. अशोक कुमार (हिन्दी)
2. अजात शत्रु
3. 1992/रु. 25.00 सजिल्द रु. 50.00
4. मध्यप्रदेश फ़िल्म विकास निगम, भोपाल

अमिताभ बच्चन : (2 भाग में) (अंग्रेजी)
सुनील दत्त : भावना सौमय्या
हेमा मालिनी : भावना सौमय्या
हेमा मालिनी : भावना सौमय्या
शशि कपूर : भावना सौमय्या
राजेश खन्ना : भावना सौमय्या
जीतेन्द्र : प्रीति शाह
दिलीप कुमार : निरंजन आयंगर

मौसमी चटर्जी : अनुराधा चौधरी
स्मिता पाटिल : शीला वसुना
राज बब्बर : जुलियस डि'सूजा
नूतन : फ्लेश बैक
मेकिंग ऑफ खुदा गवाह (2 भाग में)
लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल (2 भाग में) : डॉ.आर.एम.विजयकर
सत्यजीत राय : सुभाष के. झा
माइकल जेकसन : पॅट्रिसिया पॉल
अमरीश पुरी : इंदु मिरानी
अशोक कुमार : अनुराधा चौधरी

अंग्रेजी मासिक पत्रिका "जी" के साथ पुस्तिका के रूप में मुफ्त वितरित

फिल्मों के विविध विषय पर पुस्तकें/सन्दर्भ ग्रंथ

1. फ़िल्मी सितारों के रोमान्स और अप्सराओं के तलाक (हिन्दी)
2. गिरिजा पण्डित
3. 1968/रु. 2.00
4. साधना पॉकेट बुक्स, बँगलो रोड/दिल्ली-110-007

1. रंगीन दुनिया (हिन्दी)
2. श्यामलाल 'मधुप'
3. 1968/रु. 2.00
4. मधुर पॉकिट बुक्स, कच्ची सड़क/मथुरा (म.प्र.)

1. द केलीडोस्कोप ऑफ इण्डियन सिनेमा (अंग्रेजी)
2. हमीदुद्दीन महमूद
3. 1974/रु. 30.00
4. एफिलिएटेड इस्ट-वेस्ट प्रेस प्रा.लि.
   9, निजामुद्दीन (ईस्ट)/नई दिल्ली-110-013

1. फ़िल्मी रोमान्स (हिन्दी)
2. गिरिजा पण्डित
3. 1974/ रु. 2.00
4. साधना पॉकेट बुक्स 39, यू.ए.बेंगलोरोड/दिल्ली-110-007

1. इण्डियन सिनेमा टू डे (अंग्रेजी)
2. कविता सरकार
3. 1975/रु. 35.00
4. ए.के. घई/मैनेजिंग डायरेक्टर/स्टर्लिंग पब्लिशिंग प्रा.लि., नई दिल्ली-110-016

1. बेअर ब्रेस्टस् एण्ड बेअर बॉटमस् (अंग्रेजी)
2. सी.के. राज़दान
3. 1975/रु. 9.00
4. अश्विन.जे.शाह/जयको पब्लिशिंग हाऊस/121, महात्मा गाँधी रोड/बम्बई-400-001

1. अवर फ़िल्मस्, देअर फ़िल्म (अंग्रेजी)
2. सत्यजीत राय
3. 1976
4. एन.वी. अय्यर, ओरियन्ट लांगमेन लि.
   17, चितरंजन एव्हेन्यू/कलकत्ता-700-072

1. पोर्नो ग्राफी एण्ड सेन्सरशिप इन इण्डिया (अंग्रेजी)
2. जी.डी. खोसला
3. 1976/रु. 40.00
4. इण्डियन बुक कम्पनी
   36 सी, कनॉट प्लेस/नई दिल्ली-110-001

1. व्यूज़ ऑन सिनेमा (अंग्रेजी)
2. मृणाल सेन
3. 1977/रु. 25.00
4. इशान् पब्लिकेशन्स
   7912, महात्मा गाँधी रोड/कलकत्ता-700-009

1. फ़िल्मों में प्रवेश कैसे? (दिल्ली)
2. विनोद तिवारी
3. 1977 रु. 3.00
4. आनन्द पेपर बेक्स, 36-सी, कनॉट प्लेस/नई दिल्ली

1. मेड, मेड, मेड वर्ल्ड ऑफ इण्डियन फ़िल्म्स् (अंग्रेजी)
2. के.ए. अब्बास
3. 1977/रु. 7.00
4. हिन्दी पॉकेट बुक्स जी.टी.रोड/शाहदरा/दिल्ली-110-032

1. एक्टर्स एण्ड एक्टिंग (अंग्रेजी)
2. मोहन बावा
3. 1978/रु. 10.00
4. एच.जी. मीरचन्दानी, इण्डिया बुक हाऊस रूसी मेन्शन/29, बुड हाऊस रोड/बम्बई-400-039

1. सिनेमा इन डेवलपिंग कन्ट्रीज (अंग्रेजी)
2. पब्लिकेशन डिवीज़न
3. 1979/रु. 20.00
4. डायरेक्टर/पब्लिकेशन डिवीज़न/नई दिल्ली-110-001

1. फ़िल्मी दुनिया की झलकियाँ-दूसरा खण्ड [2] (हिन्दी)
2. उपेन्द्र नाथ 'अश्क'
3. 1979/रु. 20.00
4. नीलाभ प्रकाशन,
5, खुसरो बाग रोड/इलाहबाद (उ.प्र.)

1. टाकिंग अबाऊट फ़िल्म्स (अंग्रेजी)
2. चिदानन्द दासगुप्त
3. 1981/रु. 70.00
4. ओरियन्ट लांगमेन लि.
3/5, आसफ अली रोड/नई दिल्ली-110-002

1. यू कान्ट प्लीज़ एवरीवन (अंग्रेजी)
2. कविता सरकार
3. 1982/रु. 15.00
4. पी.सी. माणक्तला/आर.बी.एच.पब्लिशिंग कम्पनी/412, तुलसीयानी चेम्बर्स/212, बेक वे रिक्लेमेशन/नरीमन पॉइन्ट/बम्बई-400-021

1. इण्डियन सिनेमा सुपर बाजार (अंग्रेजी)
2. अरुणा वासुदेव/फिलिप्पी लेंग्लेट
3. 1983/रु. 150.00
4. विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि.
5, अन्सारी रोड/नई दिल्ली-110-002

1. इण्डियन सिनेमा नेक्स्ट डिकेड (अंग्रेजी)
2. डॉ.गोपाल दत्त
3. 1984/रु. 20.00
4. इण्डियन फ़िल्म डायरेक्टर्स एसोसिएशन
501, नवीन आशा/दादा साहब फालके रोड/बम्बई

1. नया सिनेमा (हिन्दी)
2. विनोद भारद्वाज़
3. 1985/रु. 50.00
4. वाणी प्रकाशन
4697/5/21, दरियागंज/नई दिल्ली-110-002

1. द न्यू इण्डियन सिनेमा (हिन्दी)
2. अरूणा वासुदेव
3. 1986/रु. 85.00
4. एस.जी. वासानी, मॅक्मिलन इण्डिया लि.
2/10, अन्सारी रोड/दरियागंज/नई दिल्ली-110-002

1. द मूव्हिंग इमेज़ (अंग्रेजी)
2. डॉ.किशोर वालिचा
3. 1988/रु. 150.00
4. ओरियन्ट लांगमेन लि.
कमानी मार्ग/बेलार्ड इस्टेट/बम्बई-400-038

1. ब्लन्डरींग इन वन्डर लैंड (अंग्रेजी)
2. बी.के. करंजिया
3. 1990/रु. 295.00
4. विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि.
576, मस्ज़िद रोड/जंगपुरा/नई दिल्ली-110-014

1. सिनेमा नया सिनेमा (हिन्दी)
2. ब्रजेश्वर मदान
3. 1990/रु. 70.00
4. पुस्तकायन,
2/4240-ए, अन्सारी रोड/नई दिल्ली-110-002

1. द पेन्टेड् फेस (अंग्रेजी)
2. चिदानन्द दासगुप्त
3. 1991/रु. 295.00
4. रोली बुक्स प्रा.लि.
एम-177/ग्रेटर कैलाश II/नई दिल्ली-110-048

1. शोले-ए कल्चरल रीडिंग (अंग्रेजी)
2. विमल दिसानायके/मालती सहाय
3. 1992/रु. 100.00
4. वाइले इस्टर्न लिमिटेड,
   4835/24, अन्सारी रोड/दरियागंज/नई दिल्ली-110-002

1. भारतीय सिनेमा प्लेटिनम जुबिली-(नईदुनिया का विशेषांक) (हिन्दी)
2. अभय छजलानी
3. 1988/रु. 12.00
4. नईदुनिया, बाबू लाभचन्द छजलानी मार्ग (केशरबाग रोड), इन्दौर-452-009(म.प्र.)

1. सरगम का सफ़र (नईदुनिया का फ़िल्म विशेषांक) (हिन्दी)
2. अभय छजलानी
3. 1989/रु. 16.00
4. नईदुनिया/बाबू लाभचन्द छजलानी मार्ग (केशरबाग रोड), इन्दौर-452-009 (म.प्र.)

1. परदे की परियाँ (1913-1990) (हिन्दी)
2. अभय छजलानी
3. 1990/रु. 25.00
4. नईदुनिया/बाबू लाभचन्द छजलानी मार्ग (केशरबाग रोड), इन्दौर-452-009 (म.प्र.)

1. नायक-महानायक (हिन्दी)
2. अभय छजलानी
3. 1992/रु. 30.00
4. नईदुनिया/बाबू लाभचन्द छजलानी मार्ग (केशरबाग रोड), इन्दौर-452-009 (म.प्र.)

सत्यजीत राय : विशेष

1. सत्यजीत राय- ट्वेन्टीफाइव फिल्म्स् (अंगरेजी)
2. *
3. अंकित नहीं
4. नेशनल फिल्म डेवलपमेंट कारपोरेशन, बंबई (400-021)

1. सत्यजीत राय (हिंदी)
2. *
3. सहयोग राशि : दो रुपए
4. मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम मर्यादित, संस्कृति विभाग का भवन बाणगंगा भोपाल (462-016) (म.प्र.)

1. पोर्ट्रेट ऑफ ए डायरेक्टर सत्यजीत राय (अंगरेजी)
2. मेरी सेटन
3. 1972 रु. 20-00 सजिल्द रु. 25-00
4. विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि.
5. अंसारी रोड- नई दिल्ली -110-002

1. द सिनेमा ऑफ सत्यजीत राय (अंगरेजी)
2. चिदानंद दासगुप्ता
3. 1950 रुपए एक सौ पच्चीस
4. विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.
5. अंसारी रोड नई दिल्ली -110-002

1. सत्यजीत राय स् आर्ट (अंग्रेजी)
2. फिरोज रंगूनवाला
3. 1950 रु. 65-00
4. क्लेरियन बुक्स इंडियन बुक कंपनी जी.टी. रोड, शाहदरा दिल्ली -110-032

1. ट्वेंटी फाइव इयर ऑफ पायेर पांचाली (1955-1980)
2. साइन सेंट्रल कलकत्ता
3. 1950 अंकित नहीं
4. साइन सेंट्रल 2 चौरंगी रोड, कलकत्ता 700-013

1. सत्यजीत राय अंक अगस्त 1950 (अंग्रेजी)
2. काकीनाड़ा फिल्म सर्कल
3. 1950 अंकित नहीं
4. जनरल सेक्रेटरी, काकीनाड़ा फिल्म सर्कल आनंद थियेटर अनेक्सी, पोस्ट बॉक्स नं.
   41, काकीनाड़ा 533-003 (आंध्रप्रदेश)

1. सत्यजीत राय (अंग्रेजी)
2. चिदानंद दासगुप्ता
3. 1969 अंकित नहीं
4. डायरेक्टर ऑफ फिल्म फेस्टिवेल्स 4 थी मंजिल लोकनायक भवन खान मार्केट, नई दिल्ली 110-003

1. फटिकचंद (उपन्यास) अंग्रेजी
2. सत्यजीत राय लीलाराय अनुवादक
3. 1963 रु. 25.00
4. ओरियंट पेपर बेक्स (विजय बुक्स का उपक्रम), मदरसा रोड, काश्मीरी गेट, दिल्ली 110-006

1. पाथेर पांचाली (अंग्रेजी)
2. परिमल मुखोपाध्याय
3. 1964 रु. 70.00
4. आलोकचंद्र चंद्रा, जनरल सेक्रेटरी साइन सेंट्रल, 2, चौरंगी रोड कलकत्ता 700-013

1. जब मैं छोटा था (हिंदी)
2. सत्यजीत राय संदीप मुखोपाध्याय अनुवादक
3. 1964 रु. 24.00
4. राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 8. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110-002

1. फिल्म्स् ऑफ सत्यजीत राय (पूर्वावलोकन) (अंग्रेजी)
2. साइन सेंट्रल
3. 1965 रु. 10.00
4. साइन सेंट्रल 2 चौरंगी रोड, कलकत्ता 700-013

1. सत्यजीत राय (इनर आय) (अंग्रेजी)
2. एन्ड्रयू रॉबिनसन
3. 1969 (ब्रिटेन) 1990 (भारत) रु. 75.00
4. रूपा एंड कंपनी 15, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता- 700-073

1. द वर्ल्ड ऑव सत्यजीत राय (अंग्रेजी)
2. विद्युत सरकार
3. 1992 रुपए एक सौ पचास
4. यूबीएस पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स लि. नई दिल्ली, बंबई, बंगलौर

फिल्म-गीत-संगीत

1. फिल्म पोलेमिक्स (अंग्रेजी)
2. सक्ति बसु- शिवेंदु दासगुप्ता
3. 1992 कीमत पचास रुपए
4. सिने क्लब ऑव कलकत्ता- 13

1. मीना कुमारी की शायरी (हिंदी)
2. गुलजार
3. 1972 रु. 3.00
4. हिंद पॉकेट बुक्स प्रा.लि. जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली

1. आशा भोसले के हिट फिल्मी नग्मे (हिन्दी)
2. डायमंड पॉकेट बुक्स
3. रु. 6.00
4. डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा.लि. 2715, दरियागंज (मोतीमहल के पीछे) नई दिल्ली 110-002

1. गीत भरा संसार (हिन्दी)
2. भरत व्यास
3. रु. 1.00
4. स्टॉर पबिल्केशन्स 2715, दरियागंज, देहली 110-006

1. बेहतरीन फिल्मी गजलें और गीत (हिन्दी)
2. साजन पेशावरी
3. रु. 2.00
4. अशोक पॉकेट बुक्स दरीबाँ कलाँ, दिल्ली 110-006

1. कहीं दीप जले कहीं दिल (हिन्दी)
2. शकील बदायूनी
3. रु. 1.00
4. स्टॉर पब्लिकेशन्स 2715, दरियागंज दिल्ली

1. ट्रिब्युट टू अनिल विश्वास (अंग्रेजी)
2. दक्ष हथी एवं पीयूष शर्मा
3. रु. 35-00
4. विन्टेज हिन्दी म्युजिक लवर्स एसोसिएशन, 29, सुभाष साहेब लेन, सिल्वर जुबिली पार्क, रोड क्रास, बंगलौर

1. के.एल. सहमल प्रिलग्रिम ऑफ द स्वर (अंग्रेजी)
2. राघव. आर. मेनन.
3. 1978 रु. 45.00
4. क्लेरियन बुक्स, इंडिया बुक कंपनी जी.टी. रोड़ शाहदरा दिल्ली 110-032

1. फिल्म-दर्शन (गुजराती)
2. डॉ. यासीन दलाल
3. 1974 रु. 100-00
4. प्रवीणचंद्र एम. पटेल, प्रवीण प्रकाशन लाभ चेम्बर्स, ढेबर भाई रोड़, राजकोट (गुजरात)

1. मुकेश गीत कोष (हिन्दी)
2. हरीश रघुवंशी
3. 1975 रु. 125-00
4. हरीश रघुवंशी द्वारा ऑडियो विजन नानपुरा गेट, सूरज 395-001 गुजरात

1. शंकर-शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य (हिन्दी)
2. डॉ. रवीन्द्र भारती
3. 1976 रु. 100-00
4. अनीता प्रकाशन, गीताजंली बेताल मार्ग, उज्जैन (म.प्र.)

1. फिल्म सिंगर्स (हिन्दी)
2. प्रो. योगेश यादव
3. 1987 रु. 100-00
4. योगेश एस. यादव/आर.के. टेलर के पास/मियाँ अब्बास लेन/कार्नर मदन झपा रोड/बड़ौदा 390-009 गुजरात

1. हिन्दी फिल्म गीत कोष खंड 1 (1931-1940) (हिन्दी)
2. हरमन्दिर सिंह 'हमराज'
3. 1988 रु. 300-00 सजिल्द ट. 450-00
4. श्रीमती सतिन्दर कौर 13351 सचदेव निवास, पंजाब एंड सिंध बैंक के उपर गोविन्द नगर, कानपुर 208-006 (उ.प्र.)

1. हिन्दी फिल्म-गीत कोष खंड (2)1941-1950 (हिन्दी)
2. हरमंदिर सिंह 'हमराज'
3. 1984 रु. 250-00 सजिल्द रु. 400-00
4. सुमेरसिंह सचदेव 13351 सचदेव निवास पंजाब एंड सिंध बैंक के उपर गोविन्द नगर, कानपुर 208-006 (उ.प्र.)

1. हिन्दी फिल्म-गीत कोष खंड (3) (1951-1960) (हिन्दी)
2. हरमंदिर सिंह 'हमराज'
3. 1980 रु. 45-00 सजिल्द रु. 50-00
4. सुमेरसिंह सचदेव 13351 सचदेव निवास, पंजाब एंड सिंध बैंक के उपर गोविन्द नगर, कानपुर 208-006 (उ.प्र.)

1. हिन्दी फिल्म-गीत खंड (4) (1961-1970) हिन्दी
2. हरमंदिर सिंह 'हमराज'
3. 1986 रु. 250.00 सजिल्द रु. 400.00
4. श्रीमती सतिन्दर कौर 13351 सचदेव निवास, पंजाब एंड सिंध बैंक के ऊपर गोविंद नगर कानपुर 205-006 (उप्र.)

1. हिन्दी फिल्म-गीत कोष खण्ड-5 (हिन्दी)
2. विश्वनाथ चटर्जी
3. 1991/रुपए 400/सजिल्द 600 रुपए
4. श्रीमती सतिन्दर कौर, सचदेव निवास, गोविन्द नगर, कानपुर-208006

1. कोशिश संगीत समझने की (हिंदी)
2. कैशवचंद्र वर्मा
3. 1955 रु. 60.00
4. प्रदीपन, प्रकाशन एकांश 65, टैगोर टाऊन, इलाहाबाद-2

1. गंधार- लता मंगेशकर स्वर-यात्रा (1945-1969), (हिंदी)
2. विश्वास नेरूरकर
3. 1969 रु. 200.00
4. श्रीमती नीलम, आर. संसारे एवं श्रीमती बसंती पी. नेरूरकर नीलम प्रकाशन 5, नरेश स्मृति 2 री मंजिल कलवा कन्ज्यूमर सोसायटी के सामने, स्टेशन रोड, कलवा, ठाणे (400-605) (महाराष्ट्र)

1. दास्तान-ए-नौशाद (मराठी)
2. शशिकांत किणीकर
3. 1991 रु. 150.00
4. सौ. शशिकांत उपाध्ये, चंद्रकला प्रकाशन 136 कस्बा पेठ, पुणे 411-011 (महाराष्ट्र)

1. लता मंगेशकर पुरस्कार 1984 नौशाद(हिंदी)
   लता मंगेशकर पुरस्कार 1986 जयदेव (हिंदी)
   लता मंगेशकर पुरस्कार 1987 मन्नाडे (हिंदी)
   लता मंगेशकर पुरस्कार 1988 खैय्याम (हिंदी)
   लता मंगेशकर पुरस्कार 1989 आशा भोसले (हिंदी)
   लता मंगेशकर पुरस्कार 1990 लक्ष्मीकांत प्यारेलाल(हिंदी)
   लता मंगेशकर पुरस्कार 1991 येसुदास (हिंदी)
   लता मंगेशकर पुरस्कार 1992 आर.डी.बर्मन
2. मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग
3. अंकित नहीं
4. भाषा संचालनालय भोपाल (म.प्र.)

फिल्म विषयक महत्वपूर्ण पुस्तिकाएं

1. 'प्रभात' चित्र (मराठी)
2. बापू वाटवे
3. -/रु. 5.00
4. अ.वि. दामले, प्रभात नगर, पूना-411-004

1. पेनोरमा ऑफ इण्डियन सिनेमा (अंग्रेजी)
2. श्रीमती जी.आर. महाजन
3. *
4. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत शासन, नई दिल्ली

1. डॉक्यू-सीन इण्डिया (अंग्रेजी)
2. उपेन्दर चानना
3. - /रु. 20.00
4. इण्डियन डॉक्यूमेन्टरी प्रोड्युसर्स एसोसिएशन 223, फेमस सिने बिल्डिंग/मोज़ेस रोड/महालक्ष्मी/ बम्बई-400-011

1. पेनोरमा फ़िल्म्स
2. संजीत नारवेकर
3. *
4. प्रभात चित्र मण्डल/शारदा सिनेमा बिल्डिंग/दादर/बम्बई-400-014

1. फेस्टिव्हल ऑफ अमेरिकन फ़ीचर फ़िल्म्स् (अंग्रेजी)

2.3 .*

4. राबर्ट सी.मक्ल्यूग्लीन/यू.एस.इन्टरनेशनल कम्युनिकेशन एजेन्सी/अमेरिकन सेन्टर/नई दिल्ली

1. रैनाँ फॉस बिन्डर (अंग्रेजी)
2. सी.आय.इ.डी.एस./बैंगलोर फ़िल्म सोसायटी
3. *
4. बैंगलोर फ़िल्म सोसायटी कमेटी/बैंगलोर

1. मूव्हमेन्ट जनवरी'69 मासिक (अंग्रेजी)
2. अनिल/अखिल श्रीवास्तव
3. 1969/रु. 1.00
4. 9, कार्नेल 84, मेन एव्हेन्यु, खार, बम्बई-400-052

1. क्लोज़ अप

(देवकी बोस पर केन्द्रित फ़िल्म फ़ोरम मासिक) (अंग्रेजी)

2. गजानन जागीरदार
3. 1972/ -
4. फ़िल्म फोरम, 421, हिन्द राजस्थान सेन्टर दादा साहब फालके रोड/बम्बई-400-014

1. क्लोज़ अप (फ़िल्म फोरम मासिक) (अंग्रेजी)
2. के.ए. अब्बास
3. 1974/ -
4. फ़िल्म फोरम, 421, हिन्द राजस्थान सेन्टर दादा साहब फालके रोड/बम्बई-400-014

1. ए सेशन ऑफ स्वीडिश फ़िल्मस् 4/77 (अंग्रेजी)
2. सुधीर नाँदगाँवकर/उपेन्दर चानना
3. 1977/ -
4. सुधीर देसाई/लायजन सचिव/फेडरेशन ऑफ फ़िल्म सोसायटीज़ ऑफ इण्डिया (पश्चिम क्षेत्र) 421, हिन्दी राजस्थान सेन्टर/दादा साहब फालके रोड/बम्बई-400-014

1. रिट्रास्पोक्टिव्ह 1954-1978 (अंग्रेजी)
2. *
3. 1979 / -
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फ़िल्म फेस्टिवल्स,नई दिल्ली-110-003

1. इंगमार बर्गमैन फ़िल्म सेशन

2. 3. *

4. सिने मॉन्टेज, फ़िल्म सोसायटी, नागपुर (महाराष्ट्र)

1. स्क्रीन यूनिट (सोशियो पॉलिटिकल सिनेमा फेस्टिवल) (अंग्रेजी)
2. नगीलाल/अमृत गांगार
3. सेक्रेटरी 'स्क्रीन यूनिट'/पालीवाल विला/1ली मंजिल/जवाहरलाल नेहरू रोड/मुलुन्ड (वेस्ट)/बम्बई

1. इफ्सन
2. अनिल वार्ष्णेय
3. 1981 / -
4. फेडरेशन ऑफ फ़िल्म सोसायटीज़ ऑफ इण्डिया 3,नार्थ एंड कॉम्लेक्स/रामकृष्ण आश्रम मार्ग/नई दिल्ली

1. फोकस'70 (चेकोस्लोवक सिनेमा) (अंग्रेजी)
2. उपेन्दर/वी.के. धरमसी
3. 1981/ -
4. फेडरेशन ऑफ फ़िल्म सोसायटीज़ ऑफ इण्डिया, 421, हिन्द राजस्थान सेन्टर/दादर/बम्बई-400-014

1. वार्षिक रिपोर्ट 1981-82 (मिनिस्ट्री ऑफ इन्फरमेशन एण्ड ब्राडकॉस्टिंग) (अंग्रेजी)
2. 3. *
4. डायरेक्टोरेट पब्लिकेशन डिवीज़न/पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110-003

1. जरनल ऑफ आर्टस् एवं आइडियाज़ (अंग्रेजी)
2. जी.पी. देशपाण्डे
3. 1983/रु. 8.00
4. जी.पी. देशपाण्डे/ताज सर्विसेस लिमिटेड/नोयडा (उ.प्र.) 78-जी, सुजानसिंह पार्क/नई दिल्ली-110-003

1. द जॉन हस्टनस् फ़िल्म फेस्टिवल
2. 3. *
4. माइकल पिस्टर, युनाइटेड स्टेटस् इन्फरमेशन सर्विस/नेहरू हाऊस/नई दिल्ली-110-002

1. सिने वेव (द्वि वार्षिक पत्रिका) (अंग्रेजी)
2. संदीप रॉय
3. 1984/रु. 8.00
4. श्रीमती हांसु रॉय ऑफ गव्हरमेन्ट हाऊसिंग स्टेट-बी, आइडियल एसोशिएन/एफ-2, कलकत्ता-700-0054

1. डाक्यू-मिडिया (अंग्रेजी)
2. मीरा दीवान/शबनम संधु/रजनी मजुमदार
3. 1985/रु. 5.00
4. म.प्र. माध्यम द्वारा म.प्र.फ़िल्म विकास निगम, भोपाल

1. सिने वेव (द्वि वार्षिक पत्रिका) (अंग्रेजी)
2. संदीप रॉय
3. 1985/रु. 8.00
4. श्रीमती हांसु रॉय ऑफ गव्हरमेन्ट हाऊसिंग इस्टेट-'बी', आइडियल एसोसिएशन/एफ-2, कलकत्ता-700-054

1. डाक्यू-मिडिया-86 (अंग्रेजी)
2. अजयकुमार डे
3. 1986/ -
4. फेडरेशन ऑफ फ़िल्म सोसायटीज़ ऑफ इण्डिया, सी-3, भारत भवन, 3, चितरंजन एवेन्यू/कलकत्ता

1. इण्डियन रिट्रास्पेक्टिव्ह (अशोक कुमार, ए.नागेश्वर राव, बी.एन.सरकार, एन.टी.रामाराव) अन्तर्राष्ट्रीय फ़िल्म समारोह'86 के अवसर पर/(अंग्रेजी)
2. पी.के. नायर
3. 1986/ -
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फ़िल्म फेस्टिवल, नई दिल्ली-110-003

1. स्प्लाइस (अंग्रेजी)
2. समीक बन्धोपाध्याय
3. 1987/रु. 6.00
4. नवीन किशोर सीगल बुक्स 26, सर्कस एव्हेन्यु/कलकत्ता-700-017

1. जमशेदपुर सीनेईस्ट (अंग्रेजी)
2. धीरज जाना
3. 1987/रु. 5.00
4. धीरज जाना, 89, टी.आर. गंडक रोड, जमशेदपुर

1. डीप फोकस (अंग्रेजी)
2. ए.एल. जार्ज कुट्टी
3. 1987/रु. 10.00
4. 69, रामामूर्ति बिल्डिंग/काम्माना हल्ली/सेन्ट थामस टाऊन/पोस्ट बैंगलोर-560-084

1. क्लोज़ लुक (अंग्रेजी)
2. व्ही.के. नारायणन
3. *
4. सेक्रेटेरी/चलचित्र/शोभा सदन/मनी मन्दिरम रोड/पूजाप्पुरा/त्रिवेन्द्रम-695-021

1. डाक्यूमेन्टरी'88 (अंग्रेजी)
2. पंकज बुटालिया
3. 1988
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फ़िल्म फेस्टिव्हल, नई दिल्ली

1. ब्लेक अमेरिकन सिनेमा (अंग्रेजी)
2. सुनीत टण्डन
3. *
4. डायरेक्टोरेट ऑफ फ़िल्म फेस्टिवल्स,नई दिल्ली-110-003

1. स्पेक्ट्रम इण्डिया 1990 (अंग्रेजी)
2. संजीत नारवेकर
3. 1990 / -
4. डायरेक्टोरेट ऑफ बॉम्बे इन्टरनेशनल फ़िल्म फेस्टिवल्स ऑफ डाक्यूमेन्टरी एण्ड शार्ट फ़िल्मस्, फ़िल्म डिवीज़न/ फ़िल्म भवन/बम्बई-400-026

1. फ़िल्म मेकर्स इन द मेकिंग (अंग्रेजी)
2. आर. कृष्ण मोहन
3. 1990 / -
4. डायरेक्टोरेट ऑफ बॉम्बे इन्टरनेशनल फ़िल्म फेस्टिव्हल फॉर डाक्यूमेन्टरी एण्ड शार्ट फ़िल्मस्, बम्बई-400-026

1. इण्डियन रिट्रास्पेक्टिव्ह (श्रद्धांजलि पी.सी. बरुआ, मास्टर विनायक, एस.एस.वासन, गुरूदत्त, रामू करियत) (अंग्रेजी)

2.3. *

4. डायरेक्टोरेट ऑफ फ़िल्म फेस्टिवल्स, नई दिल्ली

फिल्म डायरेक्टरी

1. टी.वी. एण्ड वीडियो इन्फरमेशन (अंग्रेजी)
2. राजेन्द्र ओझा
3. 986/रु. 50.00
4. ए स्क्रीन वर्ल्ड पब्लिकेशन बम्बई

1. स्क्रीन वर्ल्ड 13 वीं वार्षिकी 1992 (अंग्रेजी)
2. राजेन्द्र ओझा
3. 1992/रु. 350.00
4. स्क्रीन वर्ल्ड पब्लिकेशनस्
295, एन.सी.केलकर रोड, दादर, बम्बई-400-026

1. सुचित्रा फ़िल्म डायरेक्टरी (हिन्दी)
2. ब्रजभूषण चतुर्वेदी
3. 1993/रु. 50.00
4. 26, शास्त्री कॉलोनी, इन्दौर 452-005

- **प्रस्तुति : पी.आर. जोशी**
- **सन्दर्भ : श्रीराम ताम्रकर** (फ़िल्म कल्चर/इन्दौर)

म.प्र. फिल्म विकास निगम के प्रकाशन

पटकथा : सिनेमा का विचार-पत्र

अंक 1 शीर्षस्थ फिल्मकार सत्यजीत राय पर एकाग्र 10/-
अंक 2 शब्द, बिन्दु, ध्वनि और गति के संबंध मूल्य 10/-
अंक 3 मनुष्यता का संकट और सिनेमा पर एकाग्र-1 10/-
अंक 4 दादा साहब फालके पर एकाग्र मूल्य 10 रुपए
अंक 5 मनुष्यता का संकट और सिनेमा-2 मूल्य 10 रुपए
अंक 6 सेर्गेई मिखाइलोविच आइजेंस्ताइन पर एकाग्र 10/-
अंक 7 राजनैतिक सिनेमा पर एकाग्र मूल्य 20 रुपए
अंक 8 बहुलोकप्रिय सिनेमा पर एकाग्र मूल्य 20 रुपए
अंक 9 हिन्दुस्तानी सिनेमा-नयी चुनौतियाँ मूल्य 20/-
अंक 10 सत्यजीत राय का अन्वेषण, नौशाद आदि 20/-
अंक 11 सुप्रसिद्ध अभिनेत्री स्व. नूतन पर एकाग्र मूल्य 20/-
अंक 12 श्याम बेनेगल पर एकाग्र मूल्य 20 रुपए
अंक 13 नवपरम्परावाद पर केन्द्रित मूल्य 20 रुपए
अंक 14 काल सृजन, वर्णन-वर्णनात्मकता, मेट्रोपॉलिस 20/-
अंक 15 इतिहास और सिनेमा मूल्य 20 रुपए
अंक 16 प्रख्यात समीक्षक स्व. नेत्रसिंह रावत की महत्वपूर्ण फिल्म कृतियाँ मूल्य 20 रुपए
अंक 17 भारतीय सिनेमा का इतिहास, बासु भट्टाचार्य, चाणक्य मूल्य 20/-

फिल्म और फिल्मकारों पर केन्द्रित पुस्तकें

1. **राजकपूर : लेखक - श्रीराम ताम्रकर मूल्य 12 रुपए**
2. **बिमल राय : लेखक - रिंकी भट्टाचार्य मूल्य 45 रुपए/सजिल्द 60 रुपए**
3. **शतरंज के खिलाड़ी : लेखक - डॉ. सुरेन्द्रनाथ तिवारी मूल्य 25/सजिल्द 50 रुपए**
4. **गुरुदत्त : तीन अंकीय त्रासदी : लेखक - अरुण खोपकर मूल्य 35 रुपए**
5. **श्याम बेनेगल मूल्य 2 रुपए**
6. **अशोक कुमार : लेखक -अजातशत्रु मूल्य 25/- सजिल्द 50/-**
7. **सत्यजीत राय : मूल्य 2 रुपए**
8. **सिनेमा एक समझ सम्पादक - विनोद भारद्वाज मूल्य 25 रुपए/सजिल्द 50 रुपए**
9. **भारतीय फिल्म वार्षिकी 92 मूल्य 40 रुपए (सजिल्द 100 रुपए)**
10. **भारतीय फिल्म वार्षिकी 93 मूल्य 40 रुपए (सजिल्द 100/-) रुपए)**

सिनेमा अलंकरण

नईदुनिया पब्लिकेशन्स प्रा.लि भोपाल द्वारा मुद्रित